



# हिंदी व्याकरण

अध० प० कामताप्रसाद गुरु, साहित्य-वाचस्पति,  
व्याकरणाचार्य



नागरीप्रचारिणी समा, काशी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी -  
मुद्रक—महताब राय, नागरी मुद्रण, काशी  
वट पुनमुद्रण, ₹ ०० प्रतिपौ, वं - ००  
मूल्य २)





स्वर्गीय श्री कामठाप्रसाद गुरु

## भूमिका ।

यह हिंदी व्याकरण काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अनुरोध और उद्देशन से लिखा गया है । सभा ने लगभग पोंच बर्य पूर हिंदी का एक सर्वोग पूर व्याकरण लिखवाने का विचार कर इस विषय के दो तीन ग्रंथ लिखवाये थे, जिनमें बाबू संग्रामसाह, एम० ए० और पं० रामकरण शर्मा के लिखे हुए व्याकरण अविश्रांश में उपयोगी निकले । तब सभा ने इन ग्रंथों के आधार पर, अथवा स्वतः रीति से, विस्तृत हिंदी व्याकरण लिखने का गुण मार मुझे सौंप दिया । इस विषय में पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी और पं० माधवप्रसाद सप्रे ने भी सभा से अनुरोध किया था, जिसके लिये मैं आप दोनों महाशयों का कृतज्ञ हूँ । मैंने इस काय में किसी विद्वान् को आगे बढ़ते हुए न देखकर अपनी अक्षमता का कुछ भी विचार न किया और सभा का दिया हुआ मार धन्यवाद पूरक तथा कर्तव्य मुद्रि से प्रहण कर लिया । तब मार को जब मैं पोंच बर्य क परजात्, इस पुस्तक के रूप में बर करकर सभा को लौटाता हूँ कि—

“अर्पित है, गाविद तुम्ही को वस्तु तुम्हारी ।”

इस ग्रंथ की रचना में मैंने पूर्वोक्त दोनों व्याकरणों से सत्र-सत्र सहायता ली है और हिंदी-व्याकरण के आरंभ तक हुए हुए हिंदी और अंग्रेजी ग्रंथों का भी थोड़ा बहुत उपयोग किया है । इन सब ग्रंथों की सूची पुस्तक के अंत में दी गई है । द्विवेदी जी लिखित “हिंदी भाषा की उत्पत्ति” और “त्रिंशद विरक-श्रेण” के “हिंदुस्तानी” नामक लेख के आधार पर, इस पुस्तक में, हिंदी की उत्पत्ति लिखी गई है । अरबी-फारसी शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए मैं अविश्रांश में राजा शिवप्रसादकृत “हिंदी व्याकरण” और प्लाट्स-कृत “हिंदुस्तानी ग्रामर” का आश्रय हूँ । अज्ञे-कृत “उच्च संस्कृत व्याकरण” में मैंने संस्कृत-व्याकरण के कुछ ग्रंथ लिखे हैं ।

तबसे अधिक सहायता मुझे रामले-कृत “शास्त्रीय मराठी व्याकरण” से मिली है जिनकी टीसी पर मैंने अविश्रांश में अपना व्याकरण लिखा है । पूर्वोक्त पुस्तक से मैंने हिंदी में पठित होनेवाले व्याकरण विषयक बर एक वर्गीकरण, विवेचन, नियम और ग्याय-संमठ लक्षण, आबरमक परिवचन

के साथ, लिये हैं। संस्कृत व्याकरण के कुछ उदाहरण भी मैंने इस पुस्तक से संग्रह किये हैं।

पूर्वोक्त ग्रंथों के आतिरिक्त अँगरेजी, बँगला और गुजराती व्याकरणों से भी कहीं कहीं सहायता ली गई है।

इन पुस्तकों के लेखकों के प्रति मैं, नम्रतापूर्वक, अपनी आभार-पत्रिका प्रकट करता हूँ।

हिंदी तथा अम्बाम्य भाषाओं के व्याकरणों से उचित सहायता लेने पर भी, इस पुस्तक में जो विचार प्रकट किये गये हैं, और जो विद्यांत निमित्त किये गये हैं, वे साहित्यिक हिंदी से ही संबंध रखते हैं और उन सबके लिये मैं ही उत्तरदाता हूँ। यहाँ यह कह देना अनुचित म होगा कि हिंदी व्याकरण की छोटी-मोटी कई पुस्तकें उपलब्ध होते हुए भी हिंदी में, इस समय अपने विषय और ढंग भी नहीं एक व्यापक और (संभवतः) मौलिक पुस्तक है। इसमें मेरा कई ग्रंथों का अध्ययन और कई वर्षों का परिश्रम तथा विषय का अनुसंधान और स्वार्थ-त्याग संमिश्रित है। इस व्याकरण में अम्बाम्य विशेषताओं के साथ-साथ एक बड़ी विशेषता यह भी है कि निबन्धों के स्पष्टीकरण के लिये इसमें जो उदाहरण दिये गये हैं वे अधिकतर हिंदी के निम्न-निम्न कालों के लिखित और प्रामाणिक लेखकों के ग्रंथों से लिए गये हैं। इस विशेषता के कारण पुस्तक में ब्यास-संभव, अथर्व-परंपरा अथवा कृत्रिमता का शय नहीं होने पाया है। पर इन सब बातों पर पर्याप्त संमति देने के अधिकारी रोषक हैं।

कुछ लोगों का मत है कि हिंदी के "सर्वांग-पूर्ण" व्याकरण में, मूल-विषय के साथ-साथ, साहित्य का इतिहास, लुप्त-निस्मरण, रस, अलंकार, दृष्टि, मुहावरें आदि विषय रहने चाहिए। यद्यपि ये सब विषय भाषा-ज्ञान की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं, तो भी ये सब अपने-आपमें स्वतंत्र विषय हैं और व्याकरण से इनका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। किन्ती भी मर्यादा "सर्वांग-पूर्ण" व्याकरण नहीं है बिलकुल उस भाषा के विद्यार्थियों और भाषा-ज्ञानियों का पूर्ण विवेचन किया जाय और उनमें ब्यास-संभव स्थिरता लाई जाय। हमारे पूर्वजों ने व्याकरण का यही उद्देश्य माना है\* और मैं इसी

\* उन्होंने सावधानतापूर्वक अपनी भाषा के विषय का अध्ययन किया और जो लिखित ग्रंथें मिलीं उनकी स्थापना की।—आ० भांडारकर।

विद्यार्थी दृष्टि से इस पुस्तक को सवाङ्गपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि यह ग्रंथ पृथक् तथा सवाङ्गपूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इतने व्यापक विषय में विवेचन की कठिनाई और भाषा की अस्थिरता तथा श्लोक की भ्रांति और अशुद्धता के कारण यह बातों का छूट जाना संभव है तथापि मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि इस पुस्तक से आधुनिक हिंदी के स्वरूप का प्रायः पूरा पता लग सकता है।

यह व्याकरण, अथिवाश में, अँगरेजी व्याकरण के हग पर लिखा गया है। इस प्रयाशी के अनुसरण का मुख्य कारण यह है कि हिंदी में चार्ल्स ही से इती प्रयाशी का उदयाग किया है और प्राप्त तक किसी श्लोक ने संस्कृत प्रयाशी का कोई पूरा आदेश उपस्थित नहीं किया। वर्तमान प्रयाशी के प्रचार का दूसरा कारण यह है कि इसमें स्पष्टता और सरलता विशेष रूप से पाई जाती है और लुप्त तथा भाष्य, दानो एव मिश्र रहस्य हैं कि एक ही श्लोक पूरा व्याकरण, विषय रूप में, श्लोक सफ़ा है। हिंदी-भाषा के नियम यह दिन लक्ष्मण यह गोरख का हागा जब इसका व्याकरण 'अशास्त्रार्थी' और 'महामाध्य' के मिश्रित रूप में लिखा जायगा पर यह दिन अभी बहुत पूर दिनाह देता है। यह काय मरे नियम का अक्षरज्ञता के कारण, तुम्हारे है पर इतका संवादन तर्क संभव हागा जब संस्कृत के अक्षितीय व्याकरण हिंदी का एक स्वतंत्र और उन्नत भाषा समझकर इसके व्याकरण का अनु-योजन करेगा। जब तक ऐसा नहीं हुआ है तब तक इस व्याकरण से इस विषय के अन्वय की पूर्ति होने की आशा की जा सकती है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि इस पुस्तक में सभी बाह्य अँगरेजी व्याकरण का अनुकरण नहीं किया गया। इसमें यथासंभव संस्कृत प्रयाशी का ही अनुसरण किया गया है और यथास्थान अँगरेजी-व्याकरण के कुछ दाप भी दिखाए गये हैं।

मेरा विचार था कि इस पुस्तक में मैं विशेषकर 'कारकों' और 'कालों' का विवेचन संस्कृत की शुद्ध प्रयाशी के अनुसरण करता पर हिंदी में इन विषयों की रुढ़ि, अँगरेजी के लमायम से, आम तक इतनी प्रवृत्ति है कि मुझे सहता इस प्रकार के परिवर्तन करना ठचित न जान पड़ा। हिंदी में व्याकरण का पठन-पाठन अभी बाह्यनादस्था ही में है इतकिय इस तरह प्रयाशी के कारण इस रूपे विषय के और भी रूपे हो जाने की आशंका थी। इती कारण मैंने 'विभक्तियों' और 'धातुधाराओं' के बदल 'कारकों' और 'कालों' का नाम-होख तथा विचार किया है। यदि आवश्यकता जान पड़ेगा तो



ये विषय किसी अगले संस्करण में परिवर्तित कर दिये जायेंगे। तब तक संभवतः विमर्शिका को मूल शब्दों में मिलाकर लिखने के विषय में कुछ सब-संमत निश्चय हो जायगा।

इस पुस्तक में बैसा कि ग्रंथ में अन्वय (पृ० ७१ पर) कहा है, अवि-काश में नही पारिभाषिक शब्द रखे गये हैं जो हिंदी में 'भाषा-शास्त्र' के द्वारा प्रचलित हो गये हैं। यथापि ये वे सब शब्द संस्कृत व्याकरण के हैं जिससे मैंने और भी कुछ शब्द लिये हैं। थोड़े बहुत आवश्यक पारिभाषिक शब्द मराठी तथा बँगला भाषाओं के व्याकरणों से लिये गये हैं और उपयुक्त शब्दों के अभाव में कुछ शब्दों की रचना मैंने स्वयं की है।

व्याकरण की उपयोगिता और आवश्यकता इस पुस्तक में यथास्थान बतलाई गई है, तथापि यहाँ इतना कहना उचित मान पड़ता है, कि किसी भी भाषा के व्याकरण का निर्माण उसके साहित्य की पूर्ति का कारण होता है और उसकी प्रगति में सहायता देता है। भाषा की उचा स्वतंत्र होनेपर भी व्याकरण उसका सहायक अनुवाही बनकर उसे समय-समय और स्थान स्थान पर जो आवश्यक सुझाएँ देता है उससे भाषा को लाभ होता है। जिस प्रकार किसी संस्था के संतोषपूर्वक चलने के लिए सबसंमत नियमों की आवश्यकता होती है, ठीक प्रकार भाषा की पंचसता दूर क्रम और उचित व्यवस्थित रूप में रखने के लिए व्याकरण ही प्रधान और सर्वोत्तम साधन है। हिंदी भाषा के लिये यह नियंत्रण और भी आवश्यक है, क्योंकि इसका स्वरूप उपमाभाषाओं की बीजाणुतानी में अमिश्रित सा हो रहा है।

हिंदी-व्याकरण का प्रारंभिक इतिहास अंधकार में पड़ा हुआ है। हिंदी भाषा के पून रूप 'अपभ्रंश' का व्याकरण हेमचंद्र ने बारहवीं शताब्दी में लिखा है पर हिंदी-व्याकरण के प्रथम आध्यात्म का पता नहीं लगता। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी के आरंभ-काल में व्याकरण की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एक ही स्वयं भाषा ही उस समय अपूर्णावस्था में थी, और दूसरे लोकों को अपनी मातृभाषा के ज्ञान और प्रयोग के लिए उस समय व्याकरण की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। उस समय लोगों में गद्य का अधिक प्रचार न होने के कारण भाषा के सिद्धांतों की और संभवतः लोगों का ध्यान भी नहीं जाता था। जो हा, हिंदी के आदि व्याकरण का पता लगाना स्वतंत्र खोज का विषय है। मुझे यहाँ तक पुस्तकों का पता लग सका है हिंदी-व्याकरण के आदि निर्माता के अंगरेज थे जिन्होंने इतनी उन् की

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में इस भाषा के विभिन्न सम्पन्न की आकृति का प्रकाश हुआ था। उस समय कलकत्ते के डाट-विनियम कालेज के अध्यक्ष डा. गिलहाइस्ट ने अंगरेजी में हिंदी का एक व्याकरण लिखा था। उन्हीं के समय में प्रेमसागर के रचयिता सल्लूजी लाल ने "व्यापद" के नाम से हिंदी-व्याकरण की एक छोटी पुस्तक रची थी। मुझे इन दोनों पुस्तकों का देखने का मौक्या प्राप्त नहीं हुआ, पर इनका उल्लेख अंगरेजी के लिखे हिंदी-व्याकरण में तथा हिंदी-साहित्य के इतिहास में पाया जाता है।

सल्लूजी लाल के व्याकरण के लगभग २५ वर्ष पश्चात् कलकत्ते के पादरी आरंभ बाहब ने हिंदी-व्याकरण की एक छोटी-सी पुस्तक लिखी जो कई वर्षों तक स्कूलों में प्रचलित रहा। इस पुस्तक में अंगरेजी-व्याकरण के ढंग पर हिंदी-व्याकरण के कुछ साधारण नियम दिये गये हैं। पुस्तक की भाषा पुरानी, पंडितानुसार और बिदेसी शैली की स्वामयिक शैली से भरी हुई है। इसके पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी-व्याकरण से लिये गये जान पड़ते हैं और हिंदी में उन्हें समझत समय विषय की कई मुश्किलें हो गई हैं।

विनाही-विद्रोह के पीछे शिक्षा विभाग की स्थापना होने पर पं० राम बदन की "भाषा-तत्त्व-बीनिधि" प्रकाशित हुई जो एक साधारण पुस्तक है और जिसमें कहीं कहीं हिंदी और संस्कृत की मिश्रित प्रयोजन की आ उपयोग किया गया है। इसके पीछे पं० श्रीलाल का "भाषा-विद्रोह" प्रकाशित हुआ जिसमें हिंदी व्याकरण के कुछ अधिक नियम पाये जाते हैं। फिर सन् १८६६ ईसवी में बाबू नरसीनारायण राय-कृत "नरसीन-विद्रोह" निकला। राय महाराज पंचाक्ष-निवासी बंगाली और वहाँ के शिक्षा विभाग के एक कर्मचारी थे। आने आने पुस्तक में "भाषा-विद्रोह" का उल्लेख कर उसके विषय में जो कुछ लिखा है उसके आशय की कृति का पता लगाता है। आप लिखते हैं— "भाषा-विद्रोह" की रीति स्वाभाविक है, पर इसमें सामान्य वा अनादर्यक विषयों का विस्तार किया गया है, और जो अत्यंत आकर्यक या अत्यांत संस्कृत शब्द वा भाषा में व्यवहृत होते हैं उनके नियम यहाँ नहीं दिये गये। "नरसीन-विद्रोह" में भी संस्कृत प्रयोजन का आधिक अनुसरण पाया जाता है। इसके पश्चात् पं० हरिगोपाल पाण्डे ने अपनी "भाषा-तत्त्व-बीनिधि" लिखी। पाण्डे महाराज महाराष्ट्री थे, अतएव उन्होंने मराठी-व्याकरण के अनुसार आकर्य और विभक्ति का विवेचन, संस्कृत की रीति पर किया है और कई पारिभाषिक शब्द मराठी-व्याकरण से लिये हैं। पुस्तक की भाषा में

स्वभावतः मराठीपन पाया जाता है। यह पुस्तक बहुत कुछ अँगरेजी ढंग पर लिखी गई है।

सगम्य इसी समय ( सन् १८७३ ई० में ) राजा शिवप्रसाद का हिंदी व्याकरण निकला। इस पुस्तक में दो विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि पुस्तक अँगरेजी ढंग की होने पर भी इसमें संस्कृत-व्याकरण के सूत्रों का अनुकरण किया गया है; और दूसरी यह कि हिंदी के व्याकरण के साथ-साथ भामरी अक्षरों में उर्दू का भी व्याकरण दिया गया है। इस समय हिंदी और उर्दू के स्वयं के विषय में बाद-विवाद उत्पन्न हो गया था, और राजा साहब दोनों बोलियों को एक बनाने के प्रयत्न में अग्रगण्य थे, इसी लिए आपको ऐसा दोहरा व्याकरण बनाने की आवश्यकता हुई। इसी समय मारतेंद्र हरिश्चंद्रजी ने बच्चों के लिये एक छोटा-सा हिंदी व्याकरण लिखकर इस विषय की उपयोगिता और आवश्यकता सिद्ध कर दी।

इसके पीछे पादरी एथरिंगटन साहब का प्रसिद्ध व्याकरण "भाषा मातृकर" प्रकाशित हुआ जिसकी सन् ४० बप से आठ तक एक-सी अरल बनी हुई है। अखिरांत में कृत होने पर भी इस पुस्तक के आधार और अनुकरण पर हिंदी के कई छोटे-मोटे व्याकरण बने और बनते जाते हैं। यह पुस्तक अँगरेजी ढंग पर लिखी गई है और बिन पुस्तकों में इसका आधार पाया जाता है उसमें भी इसका ढंग लिया गया है। हिंदी में यह अँगरेजी प्रणाली इतनी पक्की हो गई है कि इसे खंडने का पूरा प्रयत्न आज तक नहीं किया गया। मराठी, गुजराती, बँगला, आदि भाषाओं के व्याकरणों में भी बहुधा इसी प्रणाली का अनुकरण पाया जाता है।

इसपर गत २५ वर्षों के भीतर हिंदी के छोटे-मोटे कई एक व्याकरण प्रकाशित हुए हैं किन्तु विशेष उल्लेख-योग्य १० केशवराव भट्ट-कृत "हिंदी व्याकरण", ठाकुर रामचरखर्चिंह-कृत "भ्यषा-व्याकरण", १० रामाबलार शर्मा का "हिंदी-व्याकरण", १० विरेश्वरदास शर्मा का "भाषा-उत्तर प्रकाश" और १० रामदहिम मिश्र का प्रवेशिका-हिंदी-व्याकरण है। इन व्याकरणों में किसी ने प्रायः देखा, किसी ने पूर्णतया बिदेही और किसी ने मिश्रित

• "हिंदी-व्याकरण" और उसके संचित संस्करण प्रकाशित होने तथा इनकी बहस करके कई व्याकरण यन्त्रों के कारण 'भाषा-मातृकर' का प्रचार बहुत घट गया है।

प्रणाली का अनुकरण किया है। पं० गोविन्दनारायण मिश्र ने "विमर्श-विचार" लिखकर हिंदी-विमर्शियों की व्युत्पत्ति के विषय में संवेद्यपूर्ण समालोचना की है और हिंदी-व्याकरण के इतिहास में एक नवीनता का समावेश किया है।

मैंने अपने व्याकरण में पूर्वोक्त प्रायः सभी पुस्तकों के अधिष्ठित विवादास्पद विषयों का, ब्यवधान, कुछ सर्वा और परीक्षा की है। इस पुस्तक का प्रकाशन आरंभ होने के पश्चात् पं० अचिकाप्रसाद वाचपती की "हिंदी कौमुदी" प्रकाशित हुई इसलिये अध्यात्म पुस्तकों के समान इस पुस्तक के किसी विवेचन का विचार मेरे ग्रंथ में न हो सका। "हिंदी कौमुदी" अध्यात्म सभी व्याकरणों की अपेक्षा अधिक व्यापक, प्रामाणिक और शुद्ध है।

कैलाश, प्रीत्य, पिकाट आदि विदेशी लेखकों ने हिंदी-व्याकरण की उत्तम पुस्तकें, अंगरेजों के लाभार्थ, अंगरेजों में लिखी हैं पर इनके ग्रंथों में किये गये विवेचनों की परीक्षा मैंने अपने ग्रंथ में नहीं की, क्योंकि माया का शुद्धता की दृष्टि से विदेशी लेखक पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माने जा सकते।

अतः, हिंदी-व्याकरण का यह प्रायः सौ वर्षों का, संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। इसके जाना जाता है कि हिंदी-भाषा के बितने व्याकरण आज तक हिंदी में लिखे गए हैं वे विशेषकर पाठशालाओं के छोटे-छोटे विद्यार्थियों के लिये निर्मित हुए हैं। उनमें बहुधा साधारण (स्थूल) नियम ही पाये जाते हैं बितते माया की व्यनक्ति पर पूरा प्रकाशन नहीं पढ़ सकता। शिक्षित समाज में उनमें से एक किसी भी व्याकरण को अभी विशेष रूप से प्रामाणिक नहीं माना है। हिंदी व्याकरण के इतिहास में एक विशेषता यह भी है कि अध्यात्म माया-भाषा भाषाओं ने भी इस भाषा का व्याकरण लिखने का उद्योग किया है बितसे हमारी भाषा की व्यापकता, इसके प्रामाणिक व्याकरण की आवश्यकता और साथ ही हिंदी-भाषा व्याकरणों का अभाव अथवा उनके उदासीनता ध्यान में रहता है। हिंदी-भाषा के लिये यह एक बड़ा शुभ विह्वल है कि कुछ दिनों में हिंदी-भाषा लेखकों (विशेषकर शिक्षकों) का ध्यान इस विषय को आकर्षित हो रहा है।

हिंदी में अनेक उप-भाषाओं के होने तथा उन्हीं के साथ अनेक वर्षों से

इसका संयत्न करने के कारण हमारी भाषा की रचना शैली अभी तक बहुधा इतनी अस्थिर है कि इस भाषा के व्याकरण को व्यापक नियम बनाने में कठिनाई होनी अथवा सामना करना पड़ता है। ये कठिनाईयों भाषा के सामाजिक संयत्न से भी उत्पन्न होती हैं, पर निर्दोष लेखक इन्हें और भी बढ़ा देते हैं। हिंदी के स्वराज्य में अर्द्धमात्र्य लेखक बहुधा स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया करते हैं और व्याकरण के शासन का अगम्यता होने के कारण इस विषय के अधिष्ठानों को भी पराधीनता मान लेते हैं। प्रायः लोग इस बात की भूल जाते हैं कि साहित्यिक भाषा सभी देशों और भाषाओं में लेखकों की मातृ-भाषा अथवा बोझ-भाषा की भाषा से बोझी बहुत भिन्न रहती है और वह मातृ-भाषा के समान, अगम्यता ही से आती है। ऐसी अवस्था में, केवल स्वतंत्रता के आदेश के बशीरून हाकर शिष्ट भाषा पर विदेशी भाषाओं अथवा प्रांतोप-भोजियों का अधिकार बसलाना एक प्रकार की राष्ट्रीय अपराधकता है। यदि स्वयं लेखकगण अपनी साहित्यिक भाषा को योग्य अवसर और अनुसरण से शिष्ट, स्पष्ट और प्रामाणिक बनाने की चेष्टा न करेंगे तो वैवाक्य "प्रयोग शरय" का विदांत कहाँ तक मान सकेगा ? मैंने अपने व्याकरण में प्रथमा-तुरीय से प्रांतीय भोजियों का बोझ-बहुत विचार करके, केवल साहित्यिक हिंदी का विवेचन किया है। पुस्तक में विषय-विस्तार के द्वारा यह प्रबल भी किया गया है कि हिंदी पाठकों की रूचि व्याकरण की ओर प्रवृत्त हो। इन सब प्रयत्नों की सफलता का निश्चय विश्व पाठक ही कर सकते हैं।

इस पुस्तक में एक विशेष नुति रह गई है जो काकातर ही में दूर हो सकती है, जब हिंदी भाषा की पूरी और वैज्ञानिक खोज की जायगी। मेरी समझ में किसी भी भाषा के सर्वांग पूरा व्याकरण में उस भाषा के रूपांतरों और प्रयोगों का इतिहास लिखना आवश्यक है। यह विषय इस व्याकरण में न था तथा, क्योंकि हिंदी भाषा के आरंभ-काल में, समय-समय पर ( प्रायः एक एक शताब्दि में ) बदलनेवाले रूपों और प्रयोगों के प्रमाणात्मक उदाहरण, कहाँ तक मुझ पता लगा है, उपलब्ध नहीं है फिर इस विषय के प्राग्य प्रतिपादन के लिये शब्द शास्त्र की विशेष योग्यता है। एही अवस्था में मैंने "हिंदी-व्याकरण" में हिंदी भाषा के इतिहास के बदले हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास देने का प्रयत्न किया है। पचास में यह बात अनुचित और अनावश्यक प्रतीत होती है कि भाषा के संपूर्णा रूपों और

प्रयोगों की नामावली के स्थान में कवियों और लेखकों तथा उनके ग्रंथों का शुद्ध नामावली दी जाय। मैंने यह विषय कबल इच्छित किया है कि पाठकों का, प्रस्तावना के रूप में, अपनी भाषा की महत्ता का बोझ-बहुत अनुमान हो जाय।

हिंदी के व्याकरण का सर्वसमर्थ होना परम आवश्यक है। इस विचार से काशी नागरीप्रचारिणी समाज ने इस पुस्तक का दोहराने के लिये एक संस्थापन-समिति निरूपित की थी। उसने गुरु दरहरे की दृष्टि में अपनी बैठक की, और आवश्यक (किंतु साधारण) परिवर्तन के साथ इस व्याकरण को सर्वसमर्थ से स्वीकृत कर लिया। यह बात लेखक, हिंदी-भाषा और हिंदी-साहित्य के लिये अत्यंत लाभदायक और महत्वपूर्ण है। इस समिति के निम्नलिखित सदस्यों ने बैठक में भाग लेकर पुस्तक के संस्थापनादि कार्यों में अमूल्य सहयोग दी है—

- आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।  
 साहित्याचार्य पं० राजाबहादुर शुभा, एम ए० ।  
 पंडित अंबेदकर शुभा गुनेरु, बी० ए०  
 ग० ब० पंडित लक्ष्मणराम मज, बी० ए० ।  
 पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०  
 बाबू जगन्नाथदास (रवाकर) बी० ए० ।  
 बाबू रामानुजराव बी० ए० ।  
 पंडित रामचंद्र शुक्ल ।

इन सब लोगों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का मैं विशेषतया कृतज्ञ हूँ, क्योंकि आपने हस्तलिखित प्रति का अधिर्दाय भाग पढ़कर अनेक उपयोग्य सुझावों देने की कृपा और परिश्रम किया है। लेखक के पं० मन्दिनारायण मिश्र तथा पं० अशिका प्रसादजी बाबूजी समयान्तर के कारण समिति की बैठक में योग न दे सके बितरसे मुझे आप लोगों की विह्वल और संमति का क्षाम प्राप्त न हुआ। व्याकरण-संशोधन-समिति की संमति अत्यंत दी गई है।

अतः मैं, मैं बिना पाठकों से नम्र निवेदन करता हूँ कि आप लोग कृपाकर मुझे इस पुस्तक के दोषों का सूचना करवायें। यदि इच्छेच्छा से पुस्तक का द्वितीय-संस्करण का सोचान्वय प्राप्त होगा तो उसमें उन दोषों को दूर करने

का पूरा प्रयत्न किया जायगा । तब तक पाठक-गण कृपामूर्त "हिंदी-म्याफरस" के सार का ठीकी प्रकृति ग्रहण करें जिस प्रकार—

संत ईस गुन गइहि पय परिहरि बारि-बिफार ।

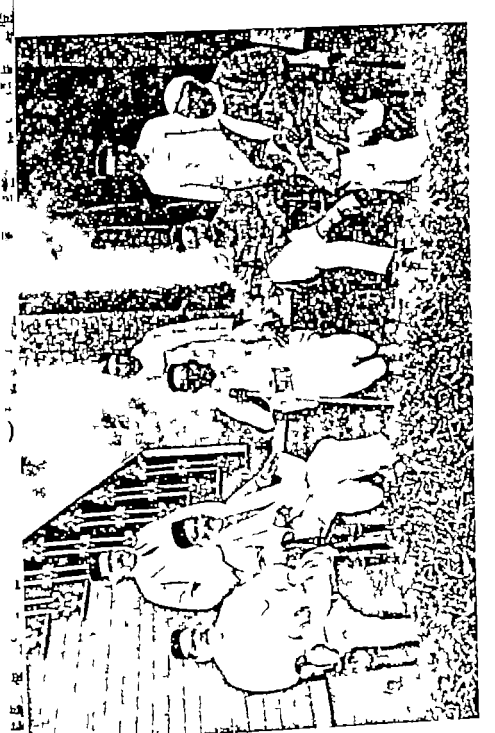
गढ़ा काटक  
बलपुर  
बसंत-पंचमी,  
सं० १९७७

}

निवेदन—  
कामताप्रसाद गुरु







# व्याकरण-संशोधन समिति की संमति ।

श्रीशुभ मंत्री,

जागरीप्रचारिणी सभा,

काशी ।

महाराष्ट्र,

सभा के निरूपण के अनुसार व्याकरण-संशोधन-समिति का कार्य बृहस्पति वार आरिष्वक शुक्ल ३ संवत् १३०० ( ता० १३ अक्टूबर १९२० ) को सभा भवन में बयासमय आरंभ हुआ । हम लोगों ने व्याकरण के मुख्य मुख्य सर्गी सर्गी पर विचार किया । हमारा संमति है कि सभा में वा व्याकरण विचार के लिये सुपबाह्य प्रस्तुत किया है वह वाह तक प्रकाशित व्याकरणों में सभी बातों में उत्तम है । वह इसे विस्तार से लिखा गया है । प्रायः काह सर्ग हूटन नहीं पाया । इसमें संदेह नहीं कि व्याकरण बही यथेपया से लिखा गया है । हम इस व्याकरण की प्रकाशन-बीम्ब समझते हैं और अपने सहयोगी पंडित कामताप्रसादजी गुह के सायुबाह्य देते हैं । उन्होंने ऐसे अच्छे व्याकरण का प्रकाशन करके हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण सर्ग की पूर्ति कर ही ।

जहाँ-जहाँ परिवर्तन करना आवश्यक है उसके विषय में हम लोगों ने सिद्धांत स्थिर कर दिये हैं । उनके अनुसार सुधार करके पुस्तक सुपबाह्ये का मात दिग्ग-लिखित महाराष्ट्रों को दिया गया है—

- ( १ ) पं कामताप्रसाद गुह,  
असिस्टेंट मास्टर, मॉडल हाई स्कूल, जबलपुर ।
- ( २ ) पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी  
छात्री कर्ता, काबपुर ।
- ( ३ ) पंडित श्रीधर रामी गुहारी, बी० ए०,  
जबलपुर भवन, मेयो कॉलेज, भतमेर ।

## विशेष-कर्ता—

महावीरप्रसाद द्विवेदी

रामाचतार शर्मा

खन्नाप्रोफर एच

रामनारायणमिश्र

बगचापदास

पद्मचर शर्मा

रामचंद्र गुप्त

दयानन्दुर्वरदास

कामताप्रसाद गुप्त

## नवीन संस्करण की भूमिका

हिंदी व्याकरण का यह नवीन संस्करण लगभग बीस वर्षों पर्याप्त प्रकाशित हो रहा है। इसमें कई वर्षों से यह अग्रगण्य था। हिंदी-क्षेत्र में हमारी नवीन व्याकरणिक हितों को ध्यान में रखते हुए ही, लेखक ने यह सोचा कि अनेक अक्षरों के अभाव में इसका नया संस्करण इतने दिनों तक प्रकाशित नहीं कर सकी थी। पिताजी ने नवीन संस्करण की पंजीयन प्रक्रिया के कुछ मास पूर्व तैयार कर समा के पास भेज दी थी। बार वर्षों बाद इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन का अन्त अन्त हुआ है। इस संस्करण में नूतन पिताजी ने संशोधन और परिवर्तन कर व्याकरण के उन स्थलों को ठीक-ठीक और विवेचनापूर्ण बनाने का भार प्रकृत किया है जो हिंदी में नये प्रयोगों और अभिव्यक्तियों के कारण विवाद उत्पन्न और शंकापूर्ण समझे जाते थे।

यदि इस संशोधन में अधिकारी विशाल समय-समय पर अपना ठीक-समय सुझाव देते रहें तो उनका समुचित समावेश अगले संस्करण में हो जाएगा।

द्विपितपुरा  
बनसपुर  
वसंत बंधारी  
स.स. १० ३

}

रामेश्वर गुरु  
राजेश्वर गुरु

निवेदन-कर्ता—

महावीरप्रसाद द्विवेदी

रामावतार शर्मा

ब्रह्मचारीशर सन

रामनारायणमिश्र

बगदायदास

शंकर शर्मा

रामचंद्र शुक्ल

श्यामसुंदरदास

अमताप्रसाद शुक्ल

---

## नवीन संस्करण की भूमिका

हिंदी व्याकरण का यह नवीन संस्करण लगभग बीस वर्ष पश्चात् प्रकाशित हो रहा है। इतने वर्षों से यह अप्राप्य था। हिंदी-क्षेत्र में इसकी माँग अत्यधिक होती हुए भी, ऐसा है कि अनेक अड़थकों के कारण समा इसका नया संस्करण इतने दिनों तक प्रकाशित नहीं कर सकी थी। पिताजी ने नवीन संस्करण की पांडुलिपि सत्यु के हृद्य मास पूर्व तैयार कर समा के पास भेज दी थी। चार वर्ष बाद इस महत्त्वपूर्ण प्रयत्न के प्रकाशन का अवसर अब आया है। इस संस्करण में पूरे पिताजी ने संशोधन और परिवर्तन का व्याकरण के उन स्थलों को तर्कपूर्ण और विवेचनापूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न किया है जो हिंदी में नये प्रयोगों और अभिव्यक्तियों के कारण विवाद प्रसूत और अंधाधुंध समझे जाने लगे थे।

यदि इस संबंध में अधिकारी विद्वान् समय-समय पर अपने तर्क-संगत सुझाव देते रहें तो इनका समुचित समावेश आगले संस्करण में हो जायगा।

दीक्षितपुरा,  
बबकपुर  
नवीन संस्करण  
दिनांक २ ०६

}

रामेश्वर गुरु  
राजेश्वर गुरु



# विषय-सूची

## —प्रस्तावना—

१—माया	१
२—माया और व्याकरण	५
३—व्याकरण की सीमा	५
४—व्याकरण से लाभ	५
५—व्याकरण के विभाग	६

## —हिंदी की उत्पत्ति—

१—आदिम माया	५
२—आय-मायार्थ	६
३—संस्कृत और प्राकृत	१०
४—हिंदी	१३
५—हिंदी और उर्दू	१६
६—वस्तुम और वस्तु शब्द	२३
७—देराज और अनुकरण-वाचक शब्द	२५
८—विदेशी शब्द	२६

## पहला भाग

### वचन-विचार

पहला अध्याय—वर्तमानकाल	२७
दूसरा ,, —कतिरि	२८
तीसरा ,, —धरौं क्य ठकारय और बर्गीकरण	३३
चौथा अध्याय—हरणकाल	४६
पाँचवा ,, —धमि	४६



## दूसरा भाग

शब्द-साधन ।

## पहला परिच्छेद—शब्द-भेद

पहला अध्याय—शब्द-विकार	५३
दूसरा " — शब्दों का वर्गीकरण	५५

## पहला खंड—विकारी शब्द ।

पहला अध्याय—संज्ञा	६३
दूसरा " —सबनाम	७२
तीसरा " —विशेषण	९९
चौथा " —क्रिया	११२

## दूसरा खंड—अव्यय ।

पहला अध्याय—क्रिया-विशेषण	१३५
दूसरा " —संबंध-सूचक	१५५
तीसरा " —समुच्चय-बोधक	१६६
चौथा " —विश्रम्यादि-बोधक	१८३

## दूसरा परिच्छेद—रूपांतर

पहला अध्याय—लिंग	१८७
दूसरा " —वचन	२०४
तीसरा " —कारक	२१६
चौथा " —संबंधनाम	२३८
पाँचवाँ " —विशेषण	२४७
छठा " —क्रिया	२५५
साठवाँ " —संयुक्त क्रियाएँ	३१०
आठवाँ " —विभूत अव्यय	३२५

## तीसरा परिच्छेद—भ्युत्पत्ति ।

पहला अध्याय—विभयार्थ	३३९
----------------------	-----

दूतरा	११—उपसर्ग	४३२
तीसरा	११—संस्कृत-प्रत्यय	४४०
चौथा	११—हिन्दी-प्रत्यय	४४४
पाँचवाँ	११—उपू प्रत्यय	४७४
छठा	११—समास	४८६
सातवाँ	११—पुनरुक्त शब्द	४९३

### तीसरा भाग ।

#### वाक्य-विन्यास ।

#### पहला परिच्छेद—वाक्य-रचना

पहला अध्याय—प्रस्तावना		४२३
दूतरा	११—कारकों के अर्थ और प्रयोग	४२३
तीसरा	११—समानाधिकरण शब्द	४४४
चौथा	११—उद्देश्य, कर्म और क्रिया का अन्वय	४४६
पाँचवाँ	११—सर्वनाम	४५३
छठा	११—विशेषण और सर्वत्र कारक	४५३
सातवाँ	११—कारकों के अर्थ और प्रयोग	४५३
आठवाँ	११—क्रियायुक्त शब्द	४७२
नवाँ	११—कृत	४७४
दसवाँ	११—संयुक्त क्रियाएँ	४८२
ग्यारहवाँ	११—अभ्यय	४८४
बारहवाँ	११—अध्याहार	४८७
तेरहवाँ	११—पदक्रम	४९२
चौदहवाँ	११—पद-परिचय	४९५

#### दूसरा परिच्छेद—वाक्य-व्युत्पत्तय ।

पहला अध्याय—विपरिवर्तन		५००
दूतरा	११—वाक्य और वाक्यों में भेद	५०६
तीसरा	११—साधारण वाक्य	५१२
चौथा	११—मिश्र वाक्य	५२४

पौचवौ	॥—संयुक्त वाक्य	५४४
छटा	॥—संक्षिप्त वाक्य	५४८
सातवौ	॥—विशेष प्रकार के वाक्य	५५०
आठवौ	॥—विराम-चिह्न	५५२
परिशिष्ट ( क )	—कविता की भाषा	५६३
॥ ( ख )	—काम्य स्वतंत्रता	५७८

---

# प्रस्तावना

( १ ) भाषा

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर मञ्जी भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्वच्छता समझ सकता है। मनुष्य के कार्य उसके विचारों से उत्पन्न होते हैं और इन कार्यों में दूसरों की सहायता अपना संमति प्राप्त करने के लिये उसे के विचार दूसरों पर प्रकट करने पड़ते हैं। जगत् का सर्वाधिकार व्यवहार बोल-बाज् अथवा लिखा पत्रों से चलता है, इसलिये भाषा जगत् के व्यवहार का मूल है।

[ पहले और तूँ मनुष्य अपने विचार संकेतों से प्रकट करते हैं। क्या केवल टीकर अपनी इच्छा बनाता है। जमी जमी केवल मूल की चेष्टा से मनुष्य के विचार प्रकट हो जाते हैं। कोई कोई बंगाली लोग दिना बोले ही संकेतों के द्वारा वाचनीय करते हैं। इन सब संकेतों को लोग ठीक ठीक नहीं समझ सकते और न इनसे सब विचार ठीक ठीक प्रकट हो सकते हैं। इत प्रकट की लक्षितिक भाषाओं से शिष्ट समाज का काम नहीं चल सकता। ] पशु-पक्षी आदि जो बोझी बोलते हैं उससे दुःख मुख मय आदि मनोविकारों के सिवा और कोई बात नहीं जानी जाती। मनुष्य की भाषा से उसके सब विचार मञ्जी भाँति प्रकट होते हैं इसलिये वह व्यक्त भाषा कहलाती है। दूसरी सब भाषाएँ या बोधियाँ अत्यक्त कहाती हैं।

व्यक्त भाषा के द्वारा मनुष्य केवल एक दूसरे के विचार ही नहीं जान लेते बल्कि उसकी सहायता से उनके नये विचार भी उत्पन्न होते हैं। किसी विषय को सोचते समय हम एक प्रकार का मानसिक संभाषण करते हैं जिससे हमारे विचार प्रागे बढ़कर भाषा के रूप में प्रकट होते हैं। इसके सिवा भाषा से चारपा रुक्ति की सहायता मिलती है। यदि हम अपने विचारों को प्रकट करके लिख दें तो स्थावर्यकता पढ़ने पर हम खेद-रूप में

उन्हें देख सकते हैं और बहुत समय बीत जाने पर भी हमें उनका स्मरण हो सकता है। भाषा की उन्नत या अन्नत अवस्था राष्ट्रीय उन्नति या अन्नति का प्रतिबिम्ब है। प्रत्येक तथा शब्द एक नये विचार का चित्र है और भाषा का इतिहास भाषी उसके बोधबेधाओं का इतिहास है।

भाषा स्थिर नहीं रहती; उसमें सदा परिवर्तन हुआ करते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि कोई भी प्रचलित भाषा एक हजार वर्षों से अधिक समय तक एक सी नहीं रह सकती। जो हिंदी हम लोग आजकल बोलते हैं वह हमारे प्रपितामह आदि के समय में ठीक इसी रूप में न बोलती जाती थी, और न उन लोगों की हिंदी वैसी थी वैसी महाराज पूर्णराज के समय में बोलती जाती थी। अपने पूर्वजों की भाषा की खोज करते करते हमें अंत में एक ऐसी हिंदी भाषा का पता लगोगा जो हमारे लिए एक अपरिचित भाषा के समान कठिन होगी। भाषा में यह परिवर्तन धीरे धीरे होता है—इतना धीरे धीरे कि वह हमको मासूम नहीं होता, पर अंत में, परिवर्तनों के कारण कई नई भाषायें उत्पन्न हो जाती हैं।

भाषा पर स्वान, बलवानु और सम्पत्ता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बहुत से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते हैं, दूसरे देश के लोग उन्हें नहीं बोल सकते। बलवानु में डेर-डेर होने से लोगों के अचारख में अंतर पड़ जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ता की उन्नति के कारण नये-नये विचारों के लिए नये-नये शब्द बनाने पड़ते हैं, जिससे भाषा का शब्द-कोश बढ़ता जाता है। इसके साथ ही बहुत सी बातियाँ अन्नत होती जाती हैं और अब भाषों के अभाव में उनके वाचक शब्द लुप्त होते जाते हैं।

विद्वान् और ग्रामीण मनुष्यों की भाषा में कुछ अंतर रहता है। किसी शब्द का जिस शब्द अन्वय विद्वान् पंडित करते हैं वैसा सर्व-साधारण लोग नहीं कर सकते। इससे प्रभाव भाषा विमिश्रित उसकी शाखा-रूप नई-नई बोलियाँ बन जाती हैं। मिश्र-मिश्र जो भाषाओं के पास-पास बोलने वाले के कारण भी उन दोनों के मेल से एक नई बोलियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

भाषागत विचार प्रकट करने में एक विचार के प्रायः कई अंग प्रकट करने पड़ते हैं। उन सभी अंगों के प्रकट करने पर उस धमस्त विचार का मनुष्य अपनी तरह समझ में आता है। प्रत्येक पूरी बात को वाच्य कहते

है। प्रत्येक वाक्य में प्रायः कई शब्द रहते हैं। प्रत्येक शब्द एक सार्थक  
 इच्छा है जो कई मूक-प्वनियों के योग से बनती है। जब इन बोलते हैं तब  
 शब्दों का उपयोग करते हैं और मित्र मित्र प्रकार के विचारों के लिए मित्र  
 मित्र प्रकार के शब्दों को काम में लाते हैं। यदि इन शब्द का ठीक-ठीक  
 उपयोग न करें तो हमारी भाषा में बड़ी गड़बड़ी पड़ जाय और संभवतः कोई  
 हमारी बात न समझ सके। हाँ, भाषा में जिन शब्दों का उपयोग किया  
 जाता है वे किसी न किसी कारण से कल्पित किये गये हैं, तो भी जो शब्द  
 जिस वस्तु का सूचक है उसका इंसले, प्रत्यक्ष में कोई संबंध नहीं। हाँ  
 शब्दों ने अपने वाच्य पदार्थादि की भावना को अपने में बाँध-सा लिया है  
 जिससे शब्दों का उच्चारण करते ही उन पदार्थों का बोध तत्काल हो जाता  
 है। कोई-कोई शब्द केवल अनुकरण-वाचक होते हैं, पर जिन सार्थक शब्दों  
 से भाषा बनती है उनके धारों से शब्द बहुत धारें रहते हैं।

जब हम उपस्थित लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं तब बहुत  
 कथित भाषा काम में लाते हैं, पर जब हमें अपने विचार बुरावती मनुष्यों के  
 पास पहुँचाने का काम पड़ता है धमका भावी संतति के लिए उनके संग्रह  
 की धारणपद्धता होती है, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते हैं।  
 किसी दूर भाषा में शब्द की एक-एक मूक-प्वनि को पहचानने के लिए एक-  
 एक चिह्न लिख कर लिया जाता है जिसे वर्ण कहते हैं। प्वनि धारों का  
 विषय है पर वर्ण धारों का धार वह प्वनि का प्रतिबिम्ब है। पहले-पहले  
 कबल बोली हुई भाषा का प्रचार या पर पंजे से विचारों का स्थायी रूप  
 देने के लिए कई प्रकार की लिपियाँ विद्यमान हैं। वर्णलिपि लिखने के  
 बहुत समय पहले तक लोगों में चित्रलिपि का प्रचार या जो धारकण भी  
 प्वनी क कई भाषाओं के जगहों लोगों में प्रचलित है। मित्र के पुराने खंडहरों  
 और गुफाओं आदि में पुरानी चित्रलिपि के अनेक नमूने पाये गये हैं और  
 इन्हीं से बर्तों की बर्तमाद्य लिखनी है। इस हेतु में भी बर्तों-बर्तों ऐसी  
 पुरानी वस्तुएँ मिली हैं जिनपर चित्रलिपि क चिह्न माहूम पड़ते हैं। कोई  
 कोई विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि प्राचीन समय क चित्र-धर के किसी  
 किसी धरपत्र के कुछ अक्षय परतमान वर्णों के धारक में लिखते हैं जैसे 'ह'  
 में हाय और "य" में गाय के धारक का कुछ न कुछ अनुसृत्य पाया जाता  
 है। जिस प्रकार मित्र-मित्र भाषाओं में एक ही विचार के लिए बहुतों मित्र  
 मित्र शब्द होते हैं उसी प्रकार एक ही मूक-प्वनि के लिए उनमें मित्र-मित्र  
 धर भी होते हैं।

## ( २ ) भाषा और व्याकरण ।

किसी भाषा की रचना को व्याकरणपूर्वक देखने से ज्ञान पड़ता है कि वहाँमें कितने शब्दों का उपयोग होता है ये सभी बहुधा मिश्र मिश्र प्रकार के विचार प्रकट करते हैं और अपने उपयोग के अनुसार कोई अधिक और कोई कम आवश्यक होते हैं। फिर, एक ही विचार को कई रूपों में प्रकट करने के लिये शब्दों के भी कई रूपों ही होते हैं। भाषा में यह भी देखा जाता है कि कई शब्द दूसरे शब्दों से बनते हैं और सबसे एक भाषा ही अर्थ पाया जाता है। वाक्य में शब्दों का उपयोग किसी विशेष क्रम से होता है और उनमें एक अथवा अर्थ के अनुसार परस्पर संबंध रहता है। इस अवस्था में यह आवश्यक है कि पूर्वात्ता और व्याकरणपूर्वक विचार प्रकट करने के लिये शब्दों के रूपों तथा प्रयोग में स्थिरता और समानता हो। जिस शास्त्र में शब्दों के इन सब और प्रयोग के नियमों का विस्तार होता है उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरण के नियम बहुधा लिखी हुई भाषा के आधार पर विरचित किये जाते हैं, क्योंकि उनमें शब्दों का प्रयोग बोझी हुई भाषा की अपेक्षा अधिक मायबाजी से किया जाता है। व्याकरण (वि+भा+करण) शब्द का अर्थ 'मही मूर्ति समझना' है। व्याकरण में वे नियम समझाये जाते हैं जो शिष्ट शब्दों के द्वारा खीलत शब्दों के रूपों और प्रयोगों में दिखाई देते हैं।

व्याकरण भाषा के आधार है और भाषा ही के अनुसार बढ़ता रहता है। व्याकरण का काम यह नहीं कि वह अपनी और से बने विभक्त बंधक भाषा को बंधक दे। वह इतना ही कह सकता है कि बहुत प्रयोग अधिक हुआ है अथवा अधिकता से किया जाता है, पर उसकी संमति मानना या न मानना समय लोगों की इच्छा पर निर्भर है। व्याकरण के संबंध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि भाषा को नियमबद्ध करने के लिये व्याकरण नहीं बंधाया जाता, बल्कि भाषा पहले बोझी जाती है और उसके आधार पर व्याकरण की उत्पत्ति होती है। व्याकरण और संस्कृत के निर्माण करने के पक्षों पहले से भाषा बोझी जाती है और कबिता रची जाती है।

## ( ३ ) व्याकरण की सीमा ।

जो लोग बहुधा यह समझते हैं कि व्याकरण पढ़कर वे शुद्ध-शुद्ध वाक्य और विलम्ब की रीति सीख लेते हैं। ऐसा समझना पूर्ण रूप से ठीक नहीं। वह वाक्या अधिकांश में शुद्ध (अपवर्जित) भाषाओं के संबंध में ठीक नहीं था

सकती है किन्तु अल्पवय में व्याकरण से बहुत कुछ सहायता निकली है। यह सब है कि शब्दों की बनावट और उनके संबंध की खोज से भाषा के प्रयोग में सुबत्ता आ जाती है, पर यह बात गीय है। व्याकरण न पढ़कर भी लोग टुल-टुल बोलना और लिखना सीख सकते हैं। कई अप्पे, खेचक व्याकरण नहीं जानते परन्तु व्याकरण कावचर भी खेच सकते हैं जैसे किशोर उपयोग नहीं करते। उन्होंने अपनी मातृभाषा का विषय अन्वय से सीखा है। शिक्षित लोगों के लक्ष्ये बिना व्याकरण मात्र शुद्ध भाषा सुसंस्कार ही, टुल-टुल बोलना सीख लेते हैं, पर अधिपिण्ड लोगों के लक्ष्ये व्याकरण पर खेचने पर भी भाषा सुसंस्कार ही बोलते हैं। यदि लोग लक्ष्ये कोई वाक्य शुद्ध नहीं बोल सकता तो उसकी भी उसे व्याकरण का नियम नहीं समझती, बरन शुद्ध वाक्य बोलती है और अल्पवय ही बोलने लगता है।

केवल व्याकरण पढ़ने से मनुष्य अप्पे खेचक या बन्ध नहीं हो सकता। विचारों की स्वतन्त्रता अथवा असतन्त्रता से भी व्याकरण का कोई संबंध नहीं। भाषा में व्याकरण का भूँ न होने पर भी विचारों की सुद्धे हो सकती है और सीखना का अभाव रह सकता है। व्याकरण की सहायता से इन केवल शब्दों का शुद्ध प्रयोग जानना अपने विचार रचना से प्रकट कर सकते हैं, किन्तुसे किता भी विचारवात् मनुष्य का उनके समझ में अतिनाई अथवा अरिह न हो।

### ( ४ ) व्याकरण से ज्ञान ।

यहाँ अब यह प्रश्न हो सकता है कि यदि भाषा व्याकरण से प्रभावित नहीं और यदि व्याकरण की सहायता पाकर इनारी भाषा शुद्ध, शीघ्र और प्रामाणिक नहीं हो सकती तो उसका विनाय करने और उसे पढ़ने से क्या लाभ ? कुछ लोगों का यह भी भावेप है कि व्याकरण एक टुल-टुल और निरुपयोगी विषय है। इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि भाषा से व्याकरण का प्रयोजन ही संबंध है जो प्राकृतिक विचारों से विज्ञान का है। वैज्ञानिक लोग ज्ञान पूर्वक सुविचार का निर्वाह करन हैं और किन नियमों का प्रभाव के प्राकृतिक विचारों में देखते हैं उन्हीं को वे बहुधा सिद्धांतवात् ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु प्रकृत संसार में कोई भी प्राकृतिक अथवा नियमबिहिन नहीं होती, उसी प्रकार भाषा भी नियम-बिहिन नहीं बानी जाती। व्याकरण उन्हीं नियमों का पता लगाकर सिद्धांत निर करत है। व्याकरण में भाषा को



## २—हिंदी की उत्पत्ति

( १ ) आदिम भाषा ।

मिन्न-मिन्न देशों में रहनेवाली मनुष्य जातियों के आकार, स्वभाव आदि की परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि इनमें आश्चर्यजनक धीरे-धीरे अनुसृत समानता है। विदित होता है कि सृष्टि के आदि में सब मनुष्यों के पूर्वज एक ही थे। वे एक ही स्थान पर रहते थे और एक ही से आचार-व्यवहार करते थे। इसी प्रकार, यदि मिन्न-मिन्न भाषाओं के मुख्य-मुख्य विषयों और शब्दों की परस्पर तुलना की जाय तो इनमें भी विभिन्न सादृश्य दिखाई देता है। इससे यह प्रकट होता है कि हम सबके पूर्वज पहले एक ही भाषा बोलते थे। जिस प्रकार आदिम स्थान से एक होकर धीरे-धीरे अहाँ-तहाँ बोलने लगे और मिन्न-मिन्न जातियों में विभक्त हो गये उसी प्रकार उस आदिम भाषा से भी कितनी ही मिन्न-मिन्न भाषायें उत्पन्न हो गईं।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य पहले-पहल पृथिव्या पंड के मध्य भाग में रहता था वा। जैसे-जैसे उसकी संतति बढ़ती गई, क्रम-क्रम से धीरे-धीरे अपना मूल-स्थान छोड़ अन्य देशों में जा पड़े। इसी प्रकार यह भी एक अनुमान है कि पुराना प्रकार की भाषा एक ही मूल भाषा से निकली है। पारबाल्य विद्वान् पहले यह समझते थे कि इमानी भाषा से, जिनमें बहुरी लोगों के धर्मग्रंथ हैं, सब भाषायें निकली हैं, परंतु उन्हें संस्कृत का ज्ञान होने और शब्दों के मूल रूपों का पता लगाने से यह ज्ञात हुआ है कि एक ऐसी आदिम भाषा से, जिसका अब पता लगना कठिन है, संसार की सब भाषायें निकली हैं और वे तीन भागों में बँटी जा सकती हैं—

( १ ) आर्य भाषायें—इस भाग में संस्कृत प्राकृत ( और उससे निकली हुई भारतवर्ष की प्रचलित आर्य-भाषायें ), बँगरी, अरबी, तुर्कानी, सिन्ध, आदि भाषायें हैं।

( २ ) शामी भाषायें—इस भाग में इमानी, अरबी और इन्दी भाषायें हैं।

( १ ) तुलसी भाषाएँ—इस भाग में मुगली, बीबी, चापापी, ब्राह्मिणी ( बहिष्ठी हिंदुस्तान की भाषाएँ ) तुर्की भाषि भाषाएँ हैं ।

### ( २ ) आर्य भाषाएँ

इस बात का अभी तक ठीक-ठीक निर्वय नहीं हुआ है कि संस्कृत भाषि भाषाएँ—आरसी घुमानी, छैदिय, हसी आदि—संस्कृत से निकली हैं अथवा और-और भाषाओं के साथ-साथ यह पिछली भाषा भी आदिम आर्य भाषा से निकली है । जो भी हो, यह बात अचरय निश्चित हुई है कि आर्य लोग जिसके नाम से उनकी भाषाएँ प्रख्यात हैं आदिम स्वाम से हथर-अथर गये और निम्न-निम्न देशों में उन्होंने अपनी भाषाओं की नींव डाली । जो लोग पश्चिम को गये उनसे ग्रीक, छैदिय, ईंगरेजी आदि आर्य-भाषाएँ बोलनेवाली जातियों की उत्पत्ति हुई । जो लोग पूर्व को गये उनके दो भाग हो गये । एक भाग आरस को गया और दूसरा हिंदुस्तान को पारकर अफगान की तराई में से होकर हुआ हिंदुस्तान पहुँचा । पहले भाग के लोगों ने ईरान में मीडी (मादी) भाषा के द्वारा आरसी को जन्म दिया और दूसरे भाग के लोगों ने संस्कृत का प्रचार किया जिससे प्राकृत के द्वारा इस देश की प्रचलित आर्य-भाषाएँ निकली हैं । प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकली हुई हर्षी भाषाओं में से हिंदी भी है । निम्न-निम्न आर्य-भाषाओं की समानता दिखाने के लिए कुछ शब्द नीचे दिए जाते हैं—

संस्कृत	मीडी	आरसी	घुमानी	छैदिय	ईंगरेजी	हिंदी
पितृ	पठर	पिह्र	पादेर	पेदर	फादर	पिता
मातृ	मगर	मादर	मादेर	मेदर	मथर	माता
भ्रातृ	बतर	भ्रादर	भ्रादेर	भेदर	भदर	भाई
दुहितृ	दुधर	दुल्लर	धिगादेर	•	दादर	धी
पुत्र	पत्र	पत्र	हैम	धम	भव	पुत्र
द्वि वी	द्व	द्व	द्वमा	द्वयो	द्व	दो
सु	सु	•	द	द	द्वी	तीन
नाम	नाम	नाम	बोमोमा	बामेब	बेम	नाम
अस्मि	अस्मि	अम	ऐमी	सम	अम	हैं
वहामि	वहामि	दिहम	दिहोमी	हो	•	देहें

## २—हिंदी की उत्पत्ति

( १ ) आदिम भाषा ।

मिश्र-मिश्र देशों में रहनेवाली मनुष्य जातियों के आकार, स्वभाव आदि की परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि उनमें आर्यवर्ष-वर्ष और अशुभ्रत समावृत्ता है । विविध होता है कि सृष्टि के आवि में सब मनुष्यों के पूर्वज एक ही थे । वे एक ही स्वभाव पर रहते थे और एक ही से आचार-भ्रवहार करते थे । इसी प्रकार, यदि मिश्र-मिश्र भाषाओं के मुख्य-मुख्य विषयों और शब्दों की परस्पर तुलना की जाय तो उनमें भी विविध सादृश्य दिखाई देता है । इससे यह प्रकृत होता है कि हम सबके पूर्वज पहले एक ही भाषा बोलते थे । जिस प्रकार आदिम स्वयं से प्रकृत होकर लोग अहाँ-तहाँ बड़ी गये और मिश्र-मिश्र जातियों में विभक्त हो गये उसी प्रकार उस आदिम भाषा से भी कितनी ही मिश्र-मिश्र भाषाएँ उत्पन्न हो गईं ।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य पहले-पहल एशिया एंड के मध्य भाग में रहता था । जैसे-जैसे उसकी संतति बढ़ती गई, कम-कम से चीज अपना मूल-स्थान छोड़ अन्य देशों में जा बसे । इसी प्रकार यह भी एक अनुमान है कि भाषा प्रकार की भाषा एक ही मूल भाषा से निकली है । पाश्चात्य विद्वान् पहले-पहल समझते थे कि इरानी भाषा से, जिसमें पाहली कोर्गी के धर्मग्रंथ हैं, सब भाषाएँ निकली हैं, परंतु उन्हें संस्कृत का ज्ञान होने और शब्दों के मूल रूपों का पता लगाने से यह ज्ञात हुआ है कि एक ऐसी आदिम भाषा से, जिसका अब पता लगना कठिन है, संसार की सब भाषाएँ निकली हैं और वे तीन भागों में बँटी जा सकती हैं—

( १ ) आर्य भाषाएँ—इस भाग में संस्कृत, प्राकृत ( और उससे निकली हुई भारतवर्ष की प्रचलित आर्य-भाषाएँ ), बँगाली, पञ्जाबी, छोटि, आदि भाषाएँ हैं ।

( २ ) शामी भाषाएँ—इस भाग में इरानी, अरबी और इथ्यो भाषाएँ हैं ।

( १ ) दूरानी भाषाएँ—इस भाग में मुगली, चीनी, जापानी प्राचिन ( दक्षिणी हिंदुस्तान की भाषाएँ ) इन्हीं भाषाएँ हैं ।

( २ ) आर्य भाषाएँ

इस बात का ध्यान ठीक ठीक दिव्य नहीं हुआ है कि संपूर्ण आर्य भाषाएँ—भारती, यूनानी, लैटिन, स्वीडिश, आदि—वैदिक संस्कृत से निकली हैं अथवा और और भाषाओं के साथ-साथ यह सिद्ध भी भाषा भी प्राचिन आर्य भाषा से निकली है । जो भी हो यह बात अक्षर्य निरिचत हुई है कि आर्य लोग जिनके नाम से इनकी भाषाएँ प्रख्यात हैं, प्राचिन स्वाम से इभर-उभर गये और निघ-मिघ देशों में इन्होंने अपनी भाषाओं की नींव डाली । जो लोग परिव्रम को गये उनसे प्रोक लैटिन, ईंग्लैशी आदि भाषा-भाषाएँ पाछनवाली जातियों की उत्पत्ति हुई । जो लोग पूर्व को गये उनक जो भाग हो गय । एक भाग भारत को गया और दूसरा हिंदुस्तान को पारकर काशुव की तरफ में से होता हुआ हिंदुस्तान पहुँचा । पहले भाग क लोगों ने इयन में मीरी (मार्दी) भाषा के द्वारा भारत को जन्म दिया और दूसरे भाग के लोगों ने संस्कृत का प्रचार किया, जिससे प्राकृत व द्वारा इस देश की प्रचलित भाषा-भाषाएँ निकली हैं । प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकली हुई इन्हीं भाषाओं में से हिंदी भा है । निघ मिघ भाषा-भाषाओं की समानता दिखान क बिन् इन्द् शब्द नीच दिए जाते हैं—

संस्कृत	मीरी	भारती	यूनानी	लैटिन	ईंग्लैशी	हिंदी
विद्	पठर	विद्	पाठ	पठ	पठ	पिठा
माद्	मन्	माद्	माद्	मैट	मद्	माठा
भ्राद्	ब्रद्	माद्	भ्राद्	भ्रद्	भ्रद्	भाद्
हुदिद्	हुग्पर	हुल्पर	पिगाट	•	कट	धी
ण्ड	पड	पड	हिन	घन	हन	ण्ड
दि, ही	इ	इ	हुभा	हुघो	इ	शु
द	प	•	द	द	प्री	मन
मान	मान	मान	मानाना	मानन	मन	मान
भस्मि	भस्मि	घन	पना	मन	पन	हू
इशमि	इशमि	दिहम	दिहानी	द	•	इइ

इस ताकिक से जान पड़ता है कि निकटवर्ती देशों की भाषाओं में अधिक सामान्यता है और दूरवर्ती देशों की भाषाओं में अधिक भिन्नता। यह भिन्नता इस बात की भी सूचक है कि यह भेद वास्तविक नहीं है और न भाषा में था, किन्तु यह पक्ष से हो गया है।

### ( ३ ) संस्कृत और प्राकृत

जब धार्य-योग पहले-पहले भारतवर्ष में आये तब उनकी भाषा प्राचीन ( वैदिक ) संस्कृत थी। इसे देववाणी भी कहते हैं, क्योंकि देवों की अधिकांश भाषा यही है। रामायण, महाभारत और काशिकास आदि के काव्य जिस परिमार्जित भाषा में हैं वह बहुत पीछे की है। अष्टाध्यायी आदि व्याकरणों में 'वैदिक' और 'कीरुकि' नामों से दो प्रकार की भाषाओं का उल्लेख पाया जाता है और दोनों के विषयों में बहुत कुछ अंतर है। इन दोनों प्रकार की भाषाओं में विशेषताएँ ये हैं कि एक तो संज्ञा के कारकों की विभक्तियों संयोगात्मक हैं, अर्थात् कारकों में भेद करने के लिए शब्दों के अंत में ध्वनि शब्द नहीं आते; जैसे, मनुष्य शब्द का सर्वत्रकारक संस्कृत में "मनुष्यस्व" होता है, हिंदी की तरह "मनुष्य का" नहीं होता। दूसर, क्रिया के पुरुष और वचन में भेद करने के लिए पुरुषवाचक सर्वनाम का अर्थ प्रिया का ही रूप से प्रकट होता है चाहे उसके साथ सर्वनाम क्या हो या न क्या हो; जैसे "गच्छति" का अर्थ "स गच्छति" ( वह जाता है ) होता है। यह संयोगात्मकता वर्तमान हिंदी के कुछ सर्वनामों में और संमाध्य-सम्बन्धकाष्ठ में पाई जाती है, जैसे मुझे, जिन्हीं रहुँ इत्यादि। इस विशेषता की कोई और भाषा बंगाली ( बेंगला ) भाषा में भी अब तक पाई जाती है; जैसे "मनुस्येर" ( मनुष्य का ) सर्वत्रकारक में और "कहिलाम" ( मैंने कहा ) वचन पुरुष में। आगे चलकर संस्कृत की यह संयोगात्मकता दृष्टिकर विधेयात्मकता हो गई।

अशोक के शिलालेखों और पतंजलि के ग्रंथों से जान पड़ता है कि ईसवी सन् के कोई तीन सौ बरस पहले उत्तरी भारत में एक ऐसी भाषा प्रचलित थी जिसमें विषय भिन्न कई बोलियों शामिल थीं। यियों, वाक्यों और शब्दों से धार्य-भाषा का उधारण डीक-डीक न वचन के कारण इस नई भाषा का नाम हुआ या अर इतका नाम "प्राकृत" पड़ा। "प्राकृत" शब्द "प्रकृति" ( मूल ) शब्द से आया है और अरका अर्थ "स्वभाविक" या "गैरकृत" है।

बेहों में गाथा नाम से जो बंध पाये जाते हैं उनकी भाषा पुरानी संस्कृत से कुछ भिन्न है, जिससे जान पड़ता है कि बेहों के समय में भी प्राकृत भाषा थी। मुदिना के लिए वैदिक काल की इस प्राकृत को हम पहली प्राकृत कहेंगे और ऊपर जिस प्राकृत का उल्लेख हुआ है उसे दूसरी प्राकृत। पहली प्राकृत ही ने कई शताब्दियों के पीछे दूसरी प्राकृत का रूप धारण किया। प्राकृत का जो सबसे पुराना व्याकरण मिलता है वह वररुचि का बनाया है। वररुचि दूसरी सत्र के पूर्व पहली सदी में हो गये हैं। वैदिक काल के विद्वानों ने देववाणी को प्राकृत-भाषा की झलक से बचाने के लिए उसका संस्कार करके व्याकरण के नियमों से उसे विभक्तित कर दिया। इस परिभाषित भाषा का नाम 'संस्कृत' हुआ जिसका अर्थ "सुजाता हुआ" अथवा "बनायी" है। यह संस्कृत भी पहली प्राकृत की किसी शाखा से उत्पन्न होकर उत्पन्न हुई है। संस्कृत को नियमित करने के लिए कितने ही व्याकरण बने जिनमें पाणिनी का व्याकरण सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित है। विद्वान् लोग पाणिनी का समय ई. सत्र के पूर्व सातवीं सदी में स्थिर करते हैं और संस्कृत की अवसे ती वर्ष पीछे तक प्रचलित मानते हैं।

पहली प्राकृत में संस्कृत की संघोपात्मकता तो बेसी ही थी, परंतु व्यंजनों के अधिक प्रयोग के कारण उसकी कर्त-कृता बहुत बढ़ गई थी। पहली और दूसरी प्राकृत में अल्प अक्षरों के बिना यह भी एक सेह हो गया था कि कर्त-कृता व्यंजनों के स्थान पर स्वरों की मधुरता का गई, जैसे 'रहु' का 'रहु' और 'बीबबोक' का 'बीबबोअ' हो गया।

बीज-धर्म के प्रचार से दूसरी प्राकृत की बड़ी उन्नति हुई। आजकल यह दूसरी प्राकृत पाप्ती-भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। पाप्ती में प्राकृत का जो रूप था उसका विकास धीरे-धीरे होता गया और कुछ समय बाद उसकी तीन शाखाएँ हो गईं अर्थात् शीरसेनी, मागधी और महाछापी। शीरसेनी-भाषा बहुधा उस प्रांत में बोली जाती थी जिसे आजकल संयुक्त-प्रदेश कहते हैं। मागधी मगध-देश और बिहार की भाषा थी और महाछापी का प्रचार वृद्धि के बंबई, बछर आदि प्रांतों में था। बिहार और संयुक्त-प्रदेश के मध्य भाग में एक और भाषा थी जिसको ऊर्दू मागधी कहते थे। यह शीरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी। कहते हैं बौद्ध तीर्थंकर महावीर स्वामी इसी ऊर्दू-मागधी में बौद्ध धर्म का उपदेश देते थे। पुराने शिव ग्रंथ भी इसी भाषा में हैं। बौद्ध और बौद्ध-धर्म के संस्थापकों ने अपने धर्मों के सिद्धांत धर्मग्रंथ

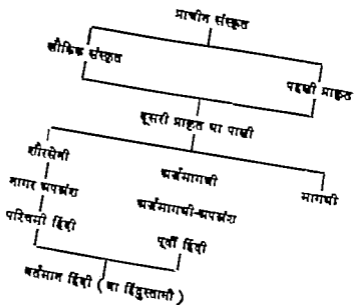
बनाने के लिए अपने ग्रंथ बोलचाल की भाषा अर्थात् प्राकृत में रहे थे । फिर कर्म्यों और नाटकों में भी उसका प्रयोग हुआ ।

चौथे दिनों पीछे दूसरी प्राकृत में भी परिवर्तन हो गया । खिखित प्राकृत का विकास एक भाषा परंतु कबित प्राकृत विकसित अर्थात् परिवर्तित होती गई । खिखित प्राकृत के आचार्यों ने इसी विकासपूर्व भाषा का उल्लेख अपभ्रंश नाम से किया है । “अपभ्रंश” शब्द का अर्थ “बिगड़ी हुई भाषा है ।” ये अपभ्रंश-भाषाएँ मिश्र-मिश्र प्रांतों में मिश्र-मिश्र प्रकार की थी । इनके प्रचार के समय का डीक डीक पता नहीं लगता पर जो प्रमाय मिश्रते हैं उनसे ज्ञाता ज्ञाता है कि ईसवी सन् के प्यारहवें शतक तक अपभ्रंश भाषा में कविता होती थी । प्राकृत के अंतिम व्याकरण हेमचंद्र ने जो बारहवें शतक में हुए हैं अपने व्याकरण में अपभ्रंश का उल्लेख किया है ।

अपभ्रंशों में संस्कृत और दोनों प्राकृतों से लेव हो गया कि उनकी संयोगात्मकता जाती रही और उनमें विष्णुदात्मकता आ गई, अर्थात् कारकों का अर्थ प्रकृत करने के लिए शब्दों में विभक्तियों के बहव अल्प शब्द मिश्रने और किया के रूप से सब नामों का वीथ होना एक गया ।

प्रत्येक प्राकृत का अपभ्रंश पूर्व-दृश्य के और वे मिश्र-मिश्र प्रांतों में प्रचलित थे । भारत की प्रचलित आर्य-भाषाएँ व संस्कृत से निकली है और व प्राकृत से, किंतु अपभ्रंशों से । खिखित साहित्य में बहुतों एक ही अपभ्रंश भाषा का समूह मिश्रता है जिसे भागर-अपभ्रंश कहते हैं । इसका प्रचार बहुत करके पश्चिम भारत में आ । इस अपभ्रंश में कई वाक्यपूर्ण शामिल थीं, जो भारत के उत्तर की तरफ प्रायः समग्र पश्चिमी भाग में बोली जाती थीं । इसी हिंदी भाषा का अपभ्रंशों के मेघ से बनी है—एक नागर-अपभ्रंश जिससे पश्चिमी हिंदी और पंजाबी निकली हैं। दूसरा, अर्द्धमागधी का अपभ्रंश जिससे पूर्व हिंदी निकली है, अथवा, बनेकाली और लुचीसगढ़ में बोली जाती है ।

तोचें किये हुए ये हिंदी भाषा की उत्पत्ति ठीक-ठीक प्रकृत ही आवगी ।



( ४ ) हिंदी ।

प्राकृत भाषाएँ इसकी सन् के कोई आठ-बी सौ वर्ष तक थीर अपभ्रंश-भाषाएँ स्वारहवें शतक तक प्रचलित थीं। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में हिंदी की प्राचीन कविता के उदाहरण पाये जाते हैं। जिस भाषा में मूख "पृष्ठीराज" लिखा गया है उसमें "परमापा" का मेक है। इस "काम्य" में हिंदी का पुराना रूप पाया जाता है। इन उदाहरणों से ज्ञान पड़ता है कि हमारी

● "महा दुष्ठा तु मारिया, बहिष्ठी महारा कंतु ।  
 लखे बंधु बर्षतिप्रभु बर मगा मर एंड ॥"

( हे बहिन, मला दुष्ठा जो मेरा पति मर गया। यदि मामा दुष्ठा पर जाता तो मैं तसियों में ललित होती । )

† लच्छर्य प्राकृत येव शौरसेनी लडुदमना ।  
 लतोऽपि मागधी लडुद वैशाची देशजेति यत् ॥

‡ ललित लुंर लदर लपन मुनल लु लपिय मारि ।  
 लडु लवित्र लपन लविय लकठि लमूठ लभारि ॥

धर्य—'लुंर ( कविता ) ललित है,' लुंर का यह लवम मुनलर लो ने कहा—लपन लवियों की लमूठी ललित का लदर करने से शरीर लवित्र हो जाता है ।



५. वे । इनमें सुरदास मुख्य हैं, जिसका समय सन् १५२० ई० के लगभग है । कहते हैं, इन्होंने सबा छात्र पर० किले हैं, जिसका संग्रह "सुर-सागर" नामक ग्रंथ में है । इस ग्रंथ के चौरासी गुण्यों का वर्षान "श्रीरासीबाठी" नामक ग्रंथ में पाया जाता है, जो एक भाषा के ग्रंथ में लिखा गया है पर इस ग्रंथ का समय निर्दिष्ट नहीं है ।

अक्षर ( १५५६-१९०५ ई० ) के समय में ब्रजभाषा की कविता की अपेक्षा उच्चति हुई । अक्षर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करते थे और उनके दरबार में हिंदू कवियों के समय रहीम, पैजी, फहीस आदि मुख्यतया कवि भी इस भाषा में रचना करते थे । हिंदू कवियों में टीहरमल बीरबल, बरहरि हरिदास, करमेश और रंग आदि अधिक प्रसिद्ध थे ।

२—मध्य-हिंदी—यह हिंदी कविता के सत्ययुग का नमूना है जो अनुमान से सन् १६०० से लेकर १८०० ई० तक रहा । इस काल में केवल कविता और भाषा ही की उच्चति नहीं हुई बल्कि साहित्य-विषय के भी अनेक उत्तम और उपयोगी ग्रंथ लिखे गये । मध्य-हिंदी के कवियों में सबसे प्रसिद्ध गुसाईं तुलसीदासजी हुए, जिसका समय सन् १६०१ से १६२९ ई० तक है । उन्होंने हिंदी में एक महाकाव्य लिखकर भाषा का गौरव बढ़ाया और सर्व साधारण में वैष्णव धर्म का प्रचार किया । राम के अवलम्ब मल होने पर भी गोसाईंजी ने सिध और राम में भेद नहीं माना और मल-मलंतर का विचार नहीं पकसा । वैराग्य बुद्धि के कारण उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति और कीर्तियों के विषय में बहुत नहीं लिखा, तथापि "कृष्णगोतावली" में इन विषयों पर बंधे और मनोहर रचना की है ।

तुलसीदास ने ऐसे समय में रामायण की रचना की जब मुगल राज्य बढ़ हो रहा था और हिंदू समाज के अंधकार जर्मति के कारण बड़े ही रहे थे । अनुपप के नासतिष्ठ विचारों का जैसा अंधका विष तुलसीदास ने खींचा है वैसा और कोई नहीं खींच सका ।

● संभवतः तुलसीदास की पदों की संख्या तथा लाल अनुपपु श्लोकी के अक्षर हीनी । इतने अमर्य लोगो ने सबा लाल पदों की बात प्रपलित कर दी । ग्रंथ का विस्तार बताने के लिये प्राचीन काल से अनुपपु एवं एक प्रकार की नाप मान लिखा गया है ।

रामायण की भाषा अबकी है; पर वह बैसबाही से विरोध मिच्छती-तुच्छती है। गोसाइकी के और ग्रंथों में अविनाश ब्रजभाषा है।

इस काव्य के दूसरे प्रसिद्ध कवि कैलाशदास, विहारीदास, मूपय, मठिराम और नामादास हैं।

कैलाशदास प्रथम कवि हैं जिन्होंने साहित्य-विषयक ग्रंथ रचे। 'इस विषय के इसके ग्रंथ "कविप्रिया" "रसिक-प्रिया" और "रामार्चक्य-संज्ञी" हैं। "रामार्चक्य" और "विद्याम-गीता" भी इसके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी भाषा में संस्कृत-शब्दों की बहुतायत है। इनकी योग्यता की तुलना सुरदास और तुलसीदास से की जाती है। इनका मरणा-काल अनुमान से सन् १५१२ ईसवी है। विहारीदास ने १५५० ईसवी के लगभग "सतसई" रचास की। इस ग्रंथ पर में काव्य के प्रायः सब गुण विद्यमान हैं। इसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। "विहारी-सतसई" पर कई कवियों ने टीकाएँ लिखी हैं। मूपय ने १५७३ ई० में "विहारा-भूषण" बनाया और कई अन्य ग्रंथ लिखे। 'इसके ग्रंथों में देश भक्ति और परमोक्तिमान काव्य दिखाई देता है। इनकी कुछ कविता सही बोली में भी है और अविनाश कविता की-रस से भरी हुई है। विद्यामणि और मठिराम भूपय के भाई थे, जो भाषासाहित्य के आचार्य माने जाते हैं। नामादास जाति के लोग थे और तुलसीदास के समकालीन थे। इन्होंने ब्रज भाषा में "मल्ल-माह" नामक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक वैष्णव मठों का संक्षिप्त वर्णन है।

इस काव्य के उपरान्त ( १७००-१८०० ईसवी ) में राज्यकृति के अरथ कविता की विरोध उद्यति नहीं हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवि मिनादास कृष्णकवि, मिनाटीदास, ब्रजवासीदास, सुरति मिश्र हैं। मिनादान ने सन् १७१२ ईसवी में "मल्ल-माह" पर एक ( पद्य ) टीका लिखी। कृष्णकवि ने "विहारी-सतसई" पर सन् १७२० के लगभग एक टीका रची। मिनाटीदास सन् १७२३ के लगभग रूप और साहित्य के अध्ये वेदाङ्क समझे जाते हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ "सुदोष्यैव" और काव्य निर्यय" हैं। ब्रजवासीदास ने सन् १७०० ई० में "ब्रज-विद्यास" लिखा, जो विरोध छोड़कर है। सुरति मिश्र ने इसी समय में ब्रजभाषा के रूप में "वैताह-पञ्चमी" नामक एक ग्रंथ लिखा। यही कवि समय के प्रथम वेदाङ्क हैं।

३—**आधुनिक हिंदी**—यह काळ सन् १८०० से १९०० ईसवी तक है। इसमें हिंदी-भाष की उत्पत्ति और उन्नति हुई। रँगरेजी काळ की स्थापना और बापे के प्रचार से इस शताब्दी में हिंदी भाष और पद्य की अनेक पुस्तकें बनीं और बनीं। साहित्य के सिवा इतिहास, भूगोल व्याकरण पदार्थ-विज्ञान और धर्म पर हम काळ में कई पुस्तकें लिखी गईं। सन् १८५० ई० के विद्रोह के पीछे देश में शांति-स्थापना होवे पर समाचार-पत्र, मासिक-पत्र, माटक, उपन्यास और समाजोचना का आरंभ हुआ। हिंदी की उन्नति का एक विशेष चिह्न इस समय यह है कि इसमें कहीं बोली (बोलचाल की भाषा) की कविता लिखी जाती है। इसके साथ ही हिंदी में संस्कृत शब्दों का पिरंजुश प्रयोग भी बढ़ता जाता है। इस काळ में सिवा क प्रचार से हिंदी की विशेष उन्नति हुई।

पादरी गिजब्यहस्र की प्रेरणा से बरलूजी बाळ ने सन् १८०७ ई० में "मेमसागर" लिखा जो आधुनिक हिंदी भाष का प्रथम ग्रंथ है। इनके बचाने और प्रसिद्ध ग्रंथ "राजनीति" (काळ-भाषा के भाष में) "समा-विज्ञान" "शाब्दिक" ("विद्यारो-मत्सर्ग" पर टीका), "सिद्धान्त-पचीसी" हैं। इस काळ के प्रसिद्ध कवि पद्याकर (१८१५) व्यास (१८१५) पञ्जरा (१८१६), खुताबसिंह (१८१४), दीनदयालगिरि (१८१५) और हरि रत्न (१८८) हैं।

भाष खेकड़ों में बरलूजीबाळ के परचात् पादरी लोगों ने कई विषयों की पुस्तकें रँगरेजी से अनुवाद कराकर बचवाईं। इसी समय से हिंदी में ईसाई धर्म की पुस्तकें का बचना आरंभ हुआ। सिवा विभाग के खेकड़ों में पं० श्रीबाळ पं० बंशीधर काकपेयी और राजा शिवप्रसाद हैं। शिवप्रसाद ऐसी हिंदी के पद्यवादी थे जिनसे हिंदू-मुसलमान दोनों समझ सकें। इनकी रचना प्रायः ठहू-बंग की होती थी। आर्य-समाज की स्थापना से साधारण लोगों में वैदिक विषयों की कहीं और धर्म-संबंधी हिंदी की अपेक्षा उन्नति हुई। काली की कागरीप्रचारिणी समा ने हिंदी की विशेष उन्नति की है। उसने गठ अर्ध शताब्दि में अनेक विषयों के भ्यूबाधिक सी उत्तम ग्रंथ प्रकाशित किये हैं जिनमें सर्वांग-पूर्व हिंदी-श्रेष्ठ और हिंदी व्याकरण मुख्य हैं। उसने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की विधमबद्ध कोत्र कराकर अनेक दुर्लभ ग्रंथों का भी प्रकाशक किया है। प्रयाग की हिंदी-साहित्य-सम्मेलन नामक संस्था हिंदी की उच्च परीक्षाओं का प्रबंध और संपूर्ण देश में उसका प्रचार राष्ट्रभाषा के रूप में कर रही है। उसने कई एक उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

इस काब के धीर प्रसिद्ध खेखक राजा बहमयसिंह पं० अंबिकाचंद्र व्यास, राजा शिवप्रसाद और मारतेंदु हरिश्चंद्र हैं। इन सब में मारतेंदुजी का आसन्न ठीका है। उन्होंने केवल ३५ वर्ष की आयु में कई विषयों की अनेक पुस्तकें लिखकर हिंदी का उपकार किया और भाषी खेखकों को अपनी मातृभाषा की उन्नति का मार्ग बताया। मारतेंदु के परभाव वर्तमान काब में सबसे प्रसिद्ध खेखक धीर कवि पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी पं० श्रीधर पाठक पं० अयोप्या सिंह उपाध्याय और बाबू मीथिलीशरथ हैं जिन्होंने उच्च कोटि के अनेक ग्रंथ लिखकर हिंदी भाषा और साहित्य का पौरव बढ़ाया है। आधुनिक काब के अन्य प्रसिद्ध खेखक प्रेमचंद्र पं० सुमित्राचंद्र पंत, बाबू जयशंकर प्रसाद, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी पं० माकनकाब चतुर्वेदी उपेंद्रनाथ शर्मा, पशपाब बंद्युबारे बाबुपेयी जैनेन्द्रकुमार दिवकर बबन, श्यामसुंदरदास रामचंद्र शुक्ल और रामचंद्र वर्मा हैं। कवयित्रियों में श्रीमती महादेवी वर्मा और सुमत्राकुमारी चौहान प्रसिद्ध हैं।

### ( ५ ) हिंदी और उर्दू

‘हिंदी’ नाम से जो भाषा हिंदुस्तान में प्रसिद्ध और प्रचलित है उसके नाम रूप धीर विस्तार के विषय में विद्वानों का मतभेद है। कई लोगों की राय में हिंदी और उर्दू एक ही भाषा हैं और कई लोगों की राय में दोनों अलग अलग दो बोधियाँ हैं। राजा शिवप्रसाद सत्य महाशयों की युक्ति यह है कि शहरों और पारम्परिकों में हिंदू और मुसलमान कुछ सामाजिक तथा धर्म संबंधी और वैश्विक शब्दों को जोड़कर प्रायः एक ही भाषा में बातचीत करते हैं और एक दूसरे के विचार पूर्वतया समझ लेते हैं। इसके विरुद्ध राजा बहमयसिंह सत्य विद्वानों का पक्ष यह है कि जिन दो जातियों का धर्म, व्यवहार, विचार सम्प्रदाय और उद्देश्य एक नहीं है उनकी भाषा पूर्वतया एक कैसे हो सकती है? जो दो साधारण लोगों में आसन्न हिंदुस्तानियों की भाषा हिंदी और मुसलमानों की भाषा उर्दू प्रसिद्ध है। भाषा का मुसलमानी कर्नात केवल हिंदी ही में नहीं बल्कि अंग्रेजी गुजराती आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। “हिंदी-भाषा की उत्पत्ति” नामक पुस्तक के अनुसार हिंदी और उर्दू हिंदुस्तानी की शब्दावली है जो परिचयी हिंदी का एक भेद है। इस भाषा का “हिंदुस्तानी” नाम अंगरेजों का रक्ता हुआ है और उसमें बहुधा उर्दू का बोध होता है। हिंदू लोग इस शब्द की “हिंदुस्तानी” कहते हैं और इसे बहुधा “हिंदी बोझेवादी जाति” के धर्म में प्रयुक्त करते हैं।

हिंदी कई नामों से प्रसिद्ध है; जैसे, माया, हिंदवी ( हिंदुई ) हिंदी, पर्वी बोधी और नागरी । इसी प्रकार मुसलमानों की भाषा के भी कई नाम हैं । वह हिंदुस्तापी, उर्दू, रेस्ता और इन्किलबी कहलाती है । इमें से बहुत से नाम दोनों भाषाओं का अर्थात् रूप विरिधत्त न होने के कारण दिये गये हैं ।

हमारी भाषा का सबसे पुराना नाम केवल "भाषा" है । महार्महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार यह नाम भास्वती की टीका में आया है जिसका समय सं० १८८२ है । तुलसीदास ने रामायण में "भाषा" शब्द लिखा है पर अपने फारसी पंजनामें में "हिंदवी" शब्द का प्रयोग किया है । बहुधा पुस्तकों के नामों में और टीकाओं में यह शब्द आसक्त प्रचलित है, जैसे, "भाषा-भास्कर" "भाषा-टीका-सहित", इत्यादि । पादरी आदम साहय की लिखी और सन् १८३० में दूसरी बार छपी "उपदेश-कथा" इस भाषा का नाम "हिंदवी" लिखा है । इन उदाहरणों से स्पष्ट पड़ता है कि हमारी भाषा का "हिंदी" नाम आधुनिक है । इसके पहले हिंदू लोग इसे "भाषा" और मुसलमान लोग "हिंदुई" या "हिंदवी" कहते थे । जलन्जी शाह ने प्रेम-सागर में ( सन् १८०४ में ) इस भाषा का नाम "कड़ी-बोली" लिखा है जिसे आजकल कुछ लोग प जाने वही "दरी-बोली" कहने लगे हैं । आजकल "कड़ी-बोली" शब्द केवल कविता की भाषा के लिए आता है, यद्यपि गद्य की भाषा भी "कड़ी-बोली" है । जलन्जी शाह ने एक जगह अपनी भाषा का नाम "रेस्ता की बोली" भी लिखा है । "रेस्ता" शब्द कबीर के एक ग्रंथ में भी आया है, पर वहाँ असत्य अर्थ "भाषा" नहीं है किंतु एक प्रकार का "बंद" है । ज्ञान पड़ता है कि फारसी-घरबी शब्द मिठाकर भाषा में जो फारसी शब्द लगे गये उन्का नाम रेस्ता ( अर्थात् मिठा हुआ ) रखना गया और फिर पीछे से यह शब्द मुसलमानों की कविता की बोली के लिये प्रयुक्त होने लगा । यह भी एक अनुमान है कि मुसलमानों में रेस्ता का

• सन् १८४४ में दूसरी बार छपी "पदापविधातार" नामक पुस्तक में "हिंदी भाषा" का नाम आया है ।

† ब्रज-भाषा के ओझराठ रूपों से मिलान करने पर हिंदी के आकारांत-रूप 'लज' जान पड़ते हैं । मुंसेलसंड में इस भाषा को 'ठाकी बोली' या 'गुर्की' कहत हैं ।

प्रचार करने के कारण हिंदुओं की भाषा का नाम "हिंदूई" या ( हिंदवी ) रखा गया । इस "हिंदवी" में जितने शब्दों का "बाड़ी-बाड़ी" कहते हैं, कबीर, मूपय नागरीदास आदि कुछ कवियों ने घोड़ी-बहुत कविता की है। पर अधिकतर हिंदू कवियों ने संस्कृत की उपासना और भाषा की मधुरता के कारण ब्रह्म-भाषा का ही उपयोग किया है ।

आरंभ में हिंदूई और रेफ्टा में घोड़ा ही अंतर था । अमीर खुसरो मिनगी शुरु सन् ११२६ ई० में दुई, मुसलमानों में सर्वप्रथम और प्रथम कवि भाषे जाते हैं । उनकी भाषा से जान पड़ता है कि उस समय तक हिंदी में मुसलमानों शब्दों और फारसी शब्दों की रचना की भरमार न हुई थी और मुसलमान लोग प्रायः हिंदी लिखते-पढ़ते थे । जब देहली के शासन में तुर्क, अठगान फारसियों का संपर्क हिंदुओं से होके छाया और वे लोग हिंदी शब्दों के मद्दे परवी, फारसी के शब्द चहुताबत से पहचाने लगे तब रेफ्टा से दूसरा ही रूप प्रारण किया और उसका नाम "उदू" पड़ा । "उदू" शब्द का अर्थ 'अरब' है । शब्दकारों के समय में उदू की बहुत उन्नति हुई जिससे "बाड़ी-बाड़ी" की उन्नति में पाया पड़ गई ।

हिंदी और उदू मूल में एक ही भाषा हैं । उदू हिंदी का कबल मुसलमानी रूप है । चाब भी कई शब्दों की जाते पर अब दोनों में क्रिये अंतर बर्ती पर इसके अनुयायी लोग इस नाम-नाम के अंतर को पूरा ही धरा रहे हैं । यदि हम लोग हिंदी में संस्कृत के और मुसलमान उदू में फारसी-फारसी के शब्द कम लिखें तो दोनों भाषाओं में बहुत घोड़ा मोह रह जाय और संभव है, किसी क्रिष दोनों समुदायों की कृपि और भाषा एक हो जाय । परम मोह के कारण विप्लवी शताब्दि में हिंदी और उदू के प्रचारकों में परस्पर शीघ्रताही शुरू हो गई । मुसलमान हिंदी से घृणा करने लगे और हिंदुओं ने हिंदी के प्रचार पर जोर दिया । परिणाम यह हुआ कि हिंदी में संस्कृत शब्द और उदू में फारसी-फारसी के शब्द बहुत निबल गये और दोनों भाषाएँ विच्छिन्न हो गई । अब हिंदी कई राजनीतिक कारणों से हिंदी उदू का विचार और जो बर रहा है और "हिंदू

- अरब से एक किरिया उठते, उठने लूण रिश्या ।
- बाप का उठके माम को पूजा, आभा नाम बठाया ॥
- घाषा नाम पिता पर बाबा, घपना नाम निबोरी ।
- अमीर खुसरो यों करे, बूक पदेनी मोरी ॥

स्तामी" के नाम से एक लिखनी भाषा की रचना की जा रही है जो न कुछ हिंदी होगी और न कुछ उर्दू ।

आरंभ ही से उर्दू और हिंदी में कई बातों का अंतर ही रहा है । उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें फारसी-फारसी शब्दों की विशेष भरमार-रहती है । इसकी वाच्य-रचना में बहुधा विशेष्य विशेष्य के पहले आता है और ( कविता में ) फारसी के सर्वोच्च कारक का रूप प्रयुक्त होता है । हिंदी के संबंधवाचक सर्वनाम के बड़े-उसमें कभी कभी फारसी का सर्वव्यवाचक सर्वनाम आता है । इसके सिवा रचना में और भी दो एक बातों का अंतर है । कोई-कोई उर्दू शब्दक इन विदेशी शब्दों के लिखने में सीमा के बाहर चले जाते हैं । उर्दू और हिंदी की वाच्य-रचना में भी भेद है । मुसलमान लोग फारसी-आरबी के शब्दों का उपयोग करते हैं । फिर उनके साहित्य में मुसलमानी इतिहास और वृत्तकथाओं के उल्लेख बहुत रहते हैं । शेष बातों में दोनों भाषाएँ प्रायः एक हैं ।

कुछ लोग समझते हैं कि वर्तमान हिंदी की उत्पत्ति बङ्गाली जाड़ ने उर्दू की सहायता से की है । यह मूढ़ है । 'प्रेमसागर' की भाषा ही-भाव में पहले ही से बोली जाती थी । उन्होंने उसी भाषा का प्रयोग "प्रेमसागर" में किया और आवश्यकतानुसार उसमें संस्कृत के शब्द भी भिजाये । मेरठ के आसपास और उसके कुछ उत्तर में वह भाषा अब भी अपने विद्युत् रूप में बोली जाती है । वहाँ इसका वही रूप है जिसके अनुसार हिंदी का व्याकरण बना है । यद्यपि इस भाषा का नाम "उर्दू" या "बङ्गी-बोली" गया है तो भी उसका यह रूप बना नहीं किंतु उतना ही पुराना है जितने उसके वृत्ते रूप—मदभाषा, आरबी मुँदेखण्डी आदि हैं । देहली में मुसलमानों के संयोग से हिंदी-भाषा का विकास जबर हुआ और इसके प्रचार में भी रुचि हुई । इस देश में वहाँ-वहाँ मुगल बादशाहों के अधिकारी गये वहाँ-वहाँ ने अपने साथ इस भाषा को भी लेते गये ।

कोई-कोई लोग हिंदी भाषा को "नागरी" कहते हैं । वह नाम अभी हाल का है और बङ्गाली लिपि के आचार पर रक्खा गया जान पड़ता है । इस भाषा के तीन नाम और प्रसिद्ध हैं—( १ ) देह हिंदी ( २ ) उर्दू हिंदी और ( ३ ) उर्दू हिंदी । "देह हिंदी" हमारी भाषा के उम रूप को कहते हैं जिसमें "हिंदी पुर और किसी बोली की पुर न मिले ।" इसमें बहुधा

तद्भव० शब्द आते हैं। “शुद्ध हिंदी” में तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का भी प्रयोग होता है पर उसमें बिदेसी शब्द नहीं आते। “उच्च हिंदी” शब्द कई अर्थों का बोधक है। कभी-कभी प्रांतिक भाषाओं से हिंदी का भेद बताने के लिए इस भाषा को “उच्च हिंदी” कहते हैं। अंगरेज लोग इस नाम का प्रयोग बहुत ही अर्थ में करते हैं। कभी कभी “उच्च हिंदी” से वह भाषा समझी जाती है जिसमें अनावश्यक संस्कृत-शब्दों की भरमार की जाती है और कभी-कभी यह नाम केवल “शुद्ध हिंदी” के पर्याय में आता है।

### ( ६ ) तत्सम और संस्कृत शब्द

उन शब्दों को छोड़कर जो आरसी आरसी तुर्की अंगरेजी आदि बिदेसी भाषाओं के हैं ( और जिसकी संख्या बहुत थोड़ी—केवल दशमोश—है ) अन्य शब्द हिंदी में मुख्य तीन प्रकार के हैं—

- ( १ ) तत्सम
- ( २ ) तद्भव
- ( ३ ) अर्ध-तत्सम

तत्सम वे संस्कृत शब्द हैं जो अपने अमूर्त स्वरूप में हिंदी भाषा में प्रचलित हैं; जैसे राधा, पिता कवि आधा अपि वायु बल आता, इत्यादि।

तद्भव वे शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिंदी-भाषा में आ गये हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं; जैसे, राव केत, शक्ति, किस्तान।

अर्ध-तत्सम उन संस्कृत शब्दों को कहते हैं जो प्राकृत भाषा बोलने वालों के उच्चारण से बिगड़ते-बिगड़ते कुछ और ही रूप के हो गये हैं; जैसे, बप्प अर्पा, मुँह बंस, इत्यादि।

● इसका अर्थ आगामी प्रकरण में लिखा जायगा।

† इसका अर्थ आगामी प्रकरण में लिखा जायगा।

‡ इस प्रकार के कई शब्द कई उदियों से भाषा में प्रचलित हैं। कोई कोई साहित्य के बहुत पुराने नमूनों में भी मिलते हैं परंतु बहुत से वर्तमान शताब्दि में आते हैं। यह मरती अर्थ तक जारी है। बिल रूप में ये शब्द आते हैं वह बहुत प्राकृत की प्रथमा क एकवचन का है।



स्तामी" के नाम से एक खिचड़ी भाषा की रचना की जा रही है जो न कुछ हिंदी होगी और न कुछ उर्दू ।

भारत ही से उर्दू और हिंदी में कई बातों का अंतर भी रहा है । उर्दू अरबी लिपि में लिखी जाती है और इसमें अरबी-अरसी शब्दों की विशेष भरमार-रहती है । इसकी वाक्य-रचना में बहुधा विशेष्य विशेष्य के पहले आता है और ( कविता में ) अरसी के संबोधन करक का रूप प्रयुक्त होता है । हिंदी के संबोधवाचक सर्वनाम के बदले इसमें कभी कभी अरसी का संबोध वाचक सर्वनाम आता है । इसके सिवा रचना में और भी दो एक बातों का अंतर है । कोई-कोई उर्दू शब्दक इतने विदेशी शब्दों के लिखने में सीमा के बाहर चले जाते हैं । उर्दू और हिंदी की रचना-रचना में भी भेद है । मुसलमान लोग अरबी-अरसी के शब्दों का उपयोग करते हैं । फिर उनके साहित्य में मुसलमानी इतिहास और संतकथाओं के बख्शेब बहुत रहते हैं । शेष बातों में दोनों भाषाएँ प्रायः एक हैं ।

कुछ लोग समझते हैं कि वर्तमान हिंदी की उत्पत्ति बख्तखी शाह के उर्दू की सहायता से की है । यह भ्रम है । 'प्रेमसागर' की भाषा दो भाग में पहले ही से बोलनी आती थी । उन्होंने उर्दू भाषा का प्रयोग "प्रेमसागर" में किया और आवश्यकतानुसार इसमें संस्कृत के शब्द भी मिलाये । मैरठ के आसपास और इसके कुछ अंतर में यह भाषा अब भी अपने विशुद्ध रूप में बोलनी आती है । वहाँ इसका वही रूप है जिसके अनुसार हिंदी का आकारण बना है । यद्यपि इस भाषा का नाम "उर्दू" वा "लखी-बोली" बना है तो भी इसका यह रूप नहीं, किंतु उतना ही पुराना है जितना उसके दूरे रूप—जब्रभाषा अथवा, तुल्यलखी आदि हैं । देहली में मुसलमानों के संबोध के हिंदी-भाषा का विकास बकर हुआ और इसके प्रचार में भी शक्ति हुई । इस देश में कहीं-कहीं मुगल बादशाहों के अधिकारी गये वहाँ-वहाँ वे अपने साथ इस भाषा को भी लेते गये ।

कोई-कोई लोग हिंदी भाषा को "बागरी" कहते हैं । यह नाम चमी हाक का है और नेबनागरी लिपि के आचार पर रक्खा गया जान पड़ता है । इस भाषा के तीन नाम और प्रसिद्ध हैं—( १ ) देठ हिंदी ( २ ) टुज हिंदी और ( ३ ) उज हिंदी । "देठ हिंदी" हमारी भाषा क उस रूप को कहते हैं जिसमें "हिंदी पुर" और किसी बाकी की पुर न मिले ।" इसमें बहुधा

तद्भव\* शब्द आते हैं। "द्वय हिंदी" में तद्भव शब्दों के साथ तत्सम† शब्दों का भी प्रयोग होता है पर उसमें बिदेसी शब्द नहीं आते। "द्वय हिंदी" शब्द कई अर्थों का बोधक है। कभी-कभी प्रांथिक मापानों से हिंदी का भेद बताने के लिए इस मापा को "द्वय हिंदी" कहते हैं। अँगरेज लोग इस नाम का प्रयोग बहुत ही अर्थ में करते हैं। कभी कभी "द्वय हिंदी" से वह भाषा समझी जाती है जिसमें अनावश्यक संस्कृत-शब्दों की भरमार की जाती है और कभी-कभी यह नाम केवल "द्वय हिंदी" के पर्याय में आता है।

### ( ६ ) तत्सम और तद्भव शब्द

उन शब्दों को जोड़कर जो अरसी, अरबी तुर्की अँगरेजी आदि बिदेसी भाषाओं के हैं ( और जिसकी संख्या बहुत छोटी—केवल परमांश—है ) अन्य शब्द हिंदी में मुख्य तीन प्रकार के हैं—

- ( १ ) तत्सम
- ( २ ) तद्भव
- ( ३ ) अर्ध-तत्सम

तत्सम के संस्कृत शब्द हैं जो अपने असली स्वरूप में हिंदी भाषा में प्रचलित हैं; जैसे, राजा पिता कवि आशा, अग्नि वायु बल आता इत्यादि ।

तद्भव के शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिंदी-भाषा में आ गये हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं; जैसे राय, खेत दाहिना किसान ।

अर्ध-तत्सम उन संस्कृत शब्दों की कहते हैं जो प्राकृत भाषा बोलने वालों के उच्चारण से बिगड़ते बिगड़ते कुछ और ही रूप के हो गये हैं; जैसे बप्प अर्ध मुँह बंस, इत्यादि ।

\* इसका अर्थ आगामी प्रकार में लिखा जायगा ।

† इसका अर्थ आगामी प्रकार में लिखा जायगा ।

‡ इस प्रकार के कई शब्द कई सदियों से भाषा में प्रचलित हैं। अर्ध और ताहिण्य के बहुत पुराने मन्तवों में भी मिलते हैं परंतु बहुत से बतमान शब्दाब्धि में आये हैं। यह भरती अर्थी एक बारी है। बिठ रूप में वे शब्द आते हैं वह बहुत प्राकृत की प्रथमा क पक्षरपन का है ।

बहुत से शब्द तीनों रूपों में मिलते हैं; परंतु कई शब्दों के सब रूप नहीं पाये जाते। हिंदी के किन्ना शब्द प्रायः सपके सब तद्भव हैं। यही व्यवस्था सर्वनामों की है। बहुत से संज्ञा शब्द लक्ष्म या तद्भव हैं और कुछ चर्च लक्ष्म हो गये हैं।

लक्ष्म और तद्भव शब्दों में रूप की मिलता के साथ-साथ बहुधा अर्थ भी मिलता ही होती है। लक्ष्म प्रायः सामान्य अर्थ में आता है, और तद्भव शब्द विशेष अर्थ में; जैसे "स्थाप" सामान्य नाम है, पर "वाद्य" एक विशेष स्थाप का नाम है। कभी-कभी लक्ष्म शब्द संशुद्धता का अर्थ निकलता है और तद्भव से बहुता का; जैसे, "देखना" साधारण लोगों के लिए आता है, पर "दर्शन" किसी बड़े आदमी या देवता के लिये। कभी-कभी लक्ष्म के दो अर्थों में से तद्भव दो केबल एक ही अर्थ सूचित होता है जैसे "बंछ" का अर्थ "कुटूब" ही है और 'बंस' भी है; पर तद्भव "बंस" से केबल एक ही अर्थ निकलता है।

यहाँ लक्ष्म, तद्भव और चर्चलक्ष्म शब्दों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

लक्ष्म	चर्चलक्ष्म	तद्भव
आशा	असरी	आम
राजा	•	राय
धाम	बधु	धधा
अग्नि	अगिण	आग
स्वामी	•	साई
कार्य	•	काब
काय	कायल	काय
पंच	•	पंच, पाच
बापु	•	बपार
अधर	अधर	अधर, आतर
रात्रि	रात	•
सब	•	सब
दैन	दुई	•

## ( ७ ) देशज और अनुकरणावाचक शब्द

हिंदी में और भी दो प्रकार के शब्द पाये जाते हैं—

( १ ) देशज ( २ ) अनुकरणावाचक ।

देशज के शब्द हैं जो किसी संस्कृत ( या प्राकृत ) मूल से विक्रमे हुए नहीं जाय पड़ते और जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं चलता; जैसे—लेंदुआ, खिचड़ी, भूषा, देस इत्यादि ।

ऐसे शब्दों की संख्या बहुत जोड़ी है और संभव है कि आधुनिक धार्य—भाषाओं की बढ़ती के नियमों की अधिक खोज और पहचान होने से अंत में इनकी संख्या बहुत कम हो जायगी ।

पदार्थ की पदार्थ अथवा कथित वृत्ति को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाये गये हैं वे अनुकरणावाचक शब्द कहलाते हैं; जैसे—खरखरना, पड़ाम, चट आदि ।

## ( ८ ) विदेशी-शब्द

फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी आदि भाषाओं से जो शब्द हिंदी में आये हैं वे विदेशी कहाते हैं । अंग्रेजी से आबकन भी शब्दों को भरती जारी है । विदेशी शब्द हिंदी में शब्दों के अनुसार अथवा बिगड़े हुए उच्चारण के अनुसार लिखे जाते हैं । इस विषय का पता लगाना कठिन है कि हिंदी में किस किस समय पर कौन कौन से विदेशी शब्द आये हैं; पर ये शब्द भाषा में मिल गये हैं और इनमें कोई कोई शब्द ऐसे हैं जिनके समाचार्यो हिंदी शब्द बहुत समय से अज्ञात हो गये हैं । भारतवर्ष की और और प्रचलित भाषाओं—फिरोप, अर मराठी और बंगाली से भी—हुए शब्द हिंदी में आये हैं । हुए विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जाती है—

( १ ) फारसी ।

आइमी, उम्मेदवार, कमर, खर्च, गुलाब, परना, चाद, चापलूस, हाग, सूझय, चाप, मोजा इत्यादि ।

( २ ) अरबी ।

अराबत, इम्तिहान, देवता, औरत, तनकाद, चारीख, मुकद्दमा, सिफारिश, हाब, इत्यादि ।

( ३ ) तुर्की ।

क़ोतख, \* चकमक \* तगमा तोप छाग इत्यादि ।

( ४ ) पोर्चुगीज ।

कमरा \* नीखाम पादरी \* मारतीख, पेक ।

( ५ ) ब्रैंगरेजी ।

अपीख, ईच, \* क़खर \* क़मेटी, क़ोद, \* गिबास, \* टिख, \* टीव, बोदिस अखर, डिगरी \* पतख, \* ड, \* पीस, फ़ुट \* भीख, रेख, \* खाट, \* खाटेव, समव, स्ख, इत्यादि ।

( ६ ) मराठी ।

प्रगति, छागू, बाखू, बाषा बाखू ( घोर तरख ) इत्यादि ।

( ७ ) ब्रैंगहा ।

उपन्वास, प्राखपख, क़ात मखखोग ( = मखे आखमी ), गख, पिवात, इत्यादि ।

# हिंदी व्याकरण ।

पहला भाग ।

वर्णविचार ।

पहला अध्याय ।

वर्णमाला ।

१—वर्णविचार व्याकरण के उस भाग को कहते हैं जिसमें वर्णों के धाकार, श्रेय उच्चारण तथा इनके श्रेय के शब्द बनाने के नियमों का विवरण होता है ।

२—वर्ण उस मूल-ध्वनि को कहते हैं जिसके खंड न हो सकें, जैसे, अ, इ, क्, ख्, हादि ।

“सबेरा हुआ” इस वाक्य में दो शब्द हैं, “सबेरा” और “हुआ” । “सबेरा” शब्द में साधारण रूप से तीन ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं—स, बे, रा । इन तीन ध्वनियों में से प्रत्येक ध्वनि के खंड हो सकते हैं, इसलिए वह मूल-ध्वनि नहीं है । ‘स’ में दो ध्वनियाँ हैं, स+ध, और इनके कोई और खंड नहीं हो सकते इसलिए ‘स्’ और ‘स’ मूल ध्वनि हैं । ये ही मूल ध्वनियाँ वर्ण कहलाती हैं । “सबेरा” शब्द में स्, अ, ब्, ए, र आ—ये चार मूल ध्वनियाँ हैं । इसी प्रकार “हुआ” शब्द में ह्, उ, आ—ये तीन मूल-ध्वनियाँ या वर्ण हैं ।

३—वर्णों के समुदाय को वर्णमाला कहते हैं । हिंदी वर्णमाला में ४९ वर्ण हैं । इनके दो श्रेय हैं, ( १ ) स्वर ( २ ) व्यंजन ।

• धारणी, शैरर्था, यूनानी आदि भाषाओं में वर्णों के मात्र और उच्चारण एक से नहीं हैं, इसलिए विद्यार्थियों को उन्हें पहचानने में कठिनाई

के भी वर्ण कहलाते हैं; पर जिस रूप में ये लिखे जाते हैं उसे लिपि कहते हैं। हिंदी-भाषा देवनागरी-लिपि में लिखी जाती है।

[ सू० — देवनागरी के सिवा कौसी महाजनी आदि लिपियों में भी हिंदी भाषा लिखी जाती है पर उनका प्रचार खूब नहीं है। ग्रंथ लेखन और छापने के काम में बहुधा देवनागरी लिपि का ही उपयोग होता है। ]

१—व्यंजनों के प्रत्येक उच्चारण दिखाने के लिए उनके साथ स्वर जोड़े जाते हैं। व्यंजनों में मिलने से बदबकर स्वर का जो रूप हो जाता है उसे मात्रा कहते हैं। प्रत्येक स्वर की मात्रा नीचे लिखी जाती है—

अ, आ इ ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ औ

। ि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

१०—अ की कोई मात्रा नहीं है। जब वह व्यंजन में मिलता है, तब व्यंजन के नीचे का चिह्न ( २ ) नहीं लिखा जाता; जैसे, क्+अ=क, ख्+अ=ख।

११—आ इ, औ और औ की मात्राएँ व्यंजन के आगे खगाई जाती हैं; जैसे क्, की, को की,। इ की मात्रा व्यंजन के पहले ए और ऐ की मात्राएँ ऊपर और उ ऊ, ए की मात्राएँ नीचे खगाई जाती हैं; जैसे, क्, कि, की के, कै, ऊ ए, उ।

१२—अनुस्वार स्वर के ऊपर और विसर्ग स्वर के पीछे आता है; जैसे कं, किं, कः, कर्ग।

१३—उ और ऊ की मात्राएँ जब ए में मिलती हैं तब उनका आकार कुछ भिन्न हो जाता है; जैसे, ए, ऊ,। ए के साथ ए की मात्रा का संयोग व्यंजनों के समान होता है; जैसे ए+अ+अर्। ( २५ वॉ चंक देखो )।

● 'देवनागरी' नाम की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। इबाम शाही के मतानुसार देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना तांक विच चिह्नों द्वारा होती थी, जो कह प्रकार क शिवाशादि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। वे यंत्र 'देवनागर' कहलाते थे और उनका मध्य लिखे जाने वाले घनेक प्रकार के तांकविक चिह्न कालांतर में वर्ण माने जाने लगे। इसी से उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।

१७—अ की मात्रा को छोड़कर धीर अ का जो छेड़ व्यंजनों के साथ सब स्वरों में मिथ्याप को बाराहखड़ी० कहते हैं। स्वर अथवा स्वरांत व्यंजन आसुर कहलाते हैं। अ की बाराहखड़ी नीचे ही जाती है—

अ, अ कि की कु कू, के के की कं, का।

१४—व्यंजन दो प्रकार से लिखे जाते हैं ( १ ) खड़ी पाई समेत ( २ ) बिना खड़ी पाई के। अ बू द, ड ब ड ब, र को छोड़कर शेष व्यंजन पहले प्रकार के हैं। सब तयों के सिरे पर एक एक खड़ी रेखा रहती है जो य अ धीर अ में कुछ टोच ही जाती है।

११—नीचे लिखे बच्चों के दो-दो रूप पाये जाते हैं—  
अ धीर अ; अ धीर अ; अ धीर अ; अ धीर अ अ धीर अ अ धीर अ अ

१०—देवनागरी लिपि में बच्चों का उच्चारण धीर नाम शुद्ध होने के कारण जब कभी उनका नाम खेने का काम पड़ता है तब अक्षर के आगे अर छोड़कर उनका नाम सूचित करते हैं जैसे अकार, ककार मकार, सकार से अ क म स का बोध होता है। 'रकार' को कोई-कोई 'रेल' भी कहते हैं।

१८—अब दो वा अथिक व्यंजनों के बीच में स्वर नहीं रहता तब उनको संयोगी वा संयुक्त व्यंजन कहते हैं; जैसे क्य, स्म अ। संयुक्त व्यंजन बहुधा मिथ्याकर लिखे जाते हैं। हिंदी में प्राचा तीव्र से अथिक व्यंजनों का संयोग होता है; जैसे स्तंभ, मत्स्य माहात्म्य।

१३—जब किसी व्यंजन का संयोग उसी व्यंजन के साथ होता है तब वह संयोग द्वित्व कहलाता है। जैसे पक्का, सधा, धध।

१०—संयोग में जिस क्रम से व्यंजनों का उच्चारण होता है उसी क्रम से वे लिखे जाते हैं; जैसे, अन्त बस अशक्त सत्कार।

११—अ य अ जिस व्यंजनों के मेल से बने हैं उनका कुछ भी रूप संयोग में नहीं लिखाई देता। इसलिये कोई-कोई उन्हें व्यंजनों के साथ बर्ल मात्रा के अंत में लिख देते हैं। अ धीर अ के मेल से अ त धीर र के मेल से अ धीर अ धीर अ के मेल से अ श बनता है।

• यह शब्द आरशाघटी का अर्थ है।



**ओष्ठ्य**—इनका उच्चारण ओठों से होता है। जैसे, उ, ऊ, ए, ऊ, व, म, म ।

**अनुनासिक**—इनका उच्चारण मुख और नासिका से होता है, अर्थात् ङ, ञ, ण, न म और अनुस्वार । ( ११ वीं और १२ वीं अंक देखो ) ।

( १०—स्वर भी अनुनासिक होते हैं । ( १२ वीं अंक देखो ) ।

**कंठ लालव्य**—जिनका उच्चारण कंठ और गाल से होता है, अर्थात् प, फे ।

**कंठोष्ठ्य**—जिनका उच्चारण कंठ और ओठों से होता है, अर्थात् ओ, औ ।

**दंत्योष्ठ्य**—जिनका उच्चारण दाँत और ओठों से होता है, अर्थात् ब ।

११—बर्णों के उच्चारण की रीति को प्रयत्न कहते हैं । यद्यपि उत्पन्न होने के पहले वागीन्द्रिय की क्रिया को आभ्यन्तर प्रयत्न और ध्वनि के अंत की क्रिया को बाह्य प्रयत्न कहते हैं ।

१२—आभ्यन्तर प्रयत्न के अनुसार बर्णों के मुख्य चार भेद हैं ।

( १ ) **विभूत**—इनके उच्चारण में वागीन्द्रिय कुछी रहती है । स्वरों का प्रथम विभूत कहाता है

( २ ) **स्पृष्ट**—इनके उच्चारण में वागीन्द्रिय का द्वार बंद रहता है । 'क' से लेकर 'म' तक २५ व्यंजनों की स्पृष्ट वर्ण कहते हैं ।

( ३ ) **ईपत्-विभूत**—इनके उच्चारण में वागीन्द्रिय कुछी रहती है । इस भेद में प, र, ल, व हैं । इनको अंतस्थ बर्ण भी कहते हैं, क्योंकि इनका उच्चारण स्वर और व्यंजनों का मध्यवर्ती है ।

( ४ ) **ईपत्-स्पृष्ट**—इनका उच्चारण वागीन्द्रिय के मध्य बंद रहने से होता है—श, ष, स, ह । इन बर्णों के उच्चारण में एक प्रकार का अर्पण होता है; इसलिये इन्हें ऊप्य वर्ण भी कहते हैं ।

( १४ ) **वाह्य-प्रयत्न** के अनुसार बर्णों के मुख्य दो भेद हैं—(१) अघोष  
( २ ) घोष ।

( १ ) **अघोष** बर्णों के उच्चारण में केवल श्वास का उपयोग होता है, उनके उच्चारण में श्रोत्र अर्थात् नाद नहीं होता ।

( २ ) **घोष** बर्णों के उच्चारण में केवल नाद का उपयोग होता है ।

अधोप वर्ण—क ख, घ, ङ, ट, ठ, ड, ध, ण, फ, ब, भौर, श, ष, स ।  
 अधोप वर्ण—होप व्यंजन धीर सब स्वर ।

[ घ —बाह्य प्रयत्न के अनुसार केवल व्यंजनों के जो भेद हैं वे बाह्य विभे जायेंगे । ( ४४वाँ अंक देखा ) । ]

स्वर ।

३५—उत्पत्ति के अनुसार स्वरों के जो भेद हैं—( १ ) मूल स्वर ( २ ) संधि-स्वर ।

( १ ) जिन स्वरों की उत्पत्ति किसी दूसरे स्वरों से नहीं है, उन्हें मूल स्वर ( वा इन्द्र ) कहते हैं । वे चार हैं—अ, इ, उ और ए ।

( २ ) मूल-स्वरों के मेल से बने हुए स्वर संधि-स्वर कहलाते हैं; जैसे, आ, ई, ए, ऐ, ओ, औ ।

३६—संधि-स्वरों के जो उपभेद हैं—

( १ ) दीर्घ धीर ( २ ) संयुक्त ।

( १ ) किसी एक मूल स्वर में उसी मूल स्वर के मिचाने से जो स्वर उत्पन्न होता है, उसे दीर्घ कहते हैं; जैसे, अ+अ=आ, इ+इ=ई, उ+उ=ऊ, ए+ए=ऐ, ओ+ओ=औ ।

[ ए —अ+इ=ए यह दीर्घ स्वर हिंदी में नहीं है । ]

( २ ) मित्र-मित्र स्वरों के मेल से जो स्वर उत्पन्न होता है उसे संयुक्त स्वर कहते हैं; जैसे, अ+इ=ए, अ+उ=ओ, आ+ए=ऐ, आ+ओ=औ ।

३७—उच्चारण के काल मान के अनुसार स्वरों के जो भेद किये जाते हैं—छानु धीर गुण । उच्चारण के काल-मान को मात्रा कहते हैं । जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा लगती है उसे छानु स्वर कहते हैं; जैसे, अ, इ, उ, ए, ओ । जिस स्वर के उच्चारण में दो मात्राएँ लगती हैं उसे गुण स्वर कहते हैं; जैसे, आ, ई, ऐ, ओ, औ ।

• हिंदी में 'मात्रा' शब्द के दो अर्थ हैं—एक, स्वरों का रूप ( देखा ८ अंका ) तथा, काल-मान ।

**ओष्ठ्य**—इनका उच्चारण ओठों से होता है; जैसे, ठ, ड, प, फ, ब, म, म ।

**अनुनासिक**—इनका उच्चारण मुख और नासिका से होता है, अर्थात् ङ, ञ, य, व म और अनुस्वार । ( ११ वॉ और ४६ वॉ अंक देखो ) ।

( ५ —स्वर भी अनुनासिक होते हैं । ( २६ वॉ अंक देखो ) ।

**कंठ ताह्ण्य**—इनका उच्चारण कंठ और ग्राह्य से होता है; अर्थात् ए, ऐ ।

**कंठोष्ठ्य**—इनका उच्चारण कंठ और ओठों से होता है; अर्थात् ओ, औ ।

**वृत्स्योष्ठ्य**—इनका उच्चारण वृत्त और ओठों से होता है; अर्थात् व ।

१२—बच्चों के उच्चारण की रीति को प्रयत्न कहते हैं । जबकि वापक होने के पहले बागीन्द्रिय की क्रिया को आन्व्यन्तर प्रयत्न और ध्वनि के अंत की क्रिया को वाह्य प्रयत्न कहते हैं ।

१३—आन्व्यन्तर प्रयत्न के अनुसार बच्चों के मुख्य चार भेद हैं ।

( १ ) विद्युत—इनके उच्चारण में बागीन्द्रिय चुली रहती है । स्वरों का प्रयत्न विद्युत कहाता है

( २ ) स्पृष्ट—इनके उच्चारण में बागीन्द्रिय का द्वार बंद रहता है । 'क' से लेकर 'म' तक १५ व्यंजनों को स्पृष्ट यण्य कहते हैं ।

( ३ ) ईपत्-विद्युत—इनके उच्चारण में बागीन्द्रिय कुछ चुली रहती है । इस भेद में घ, ङ, य, व हैं । इनके अंतस्थ बर्ण भी कहते हैं; क्योंकि इनका उच्चारण स्वर और व्यंजनों का मध्यवर्ती है ।

( ४ ) ईपत्-स्पृष्ट—इनका उच्चारण बागीन्द्रिय के द्वार बंद रहने से होता है—श, ष, स, ह । इन बच्चों के उच्चारण में एक प्रकार का अर्पण होता है; इसलिये इन्हें ऊष्म यण्य भी कहते हैं ।

( १४ ) वाह्य-प्रयत्न के अनुसार बच्चों के मुख्य दो भेद हैं—(१) अघोष  
( २ ) घोष ।

( १ ) अघोष बच्चों के उच्चारण में केवल श्वास का उपयोग होता है, उनके उच्चारण में घोष अर्थात् नाद नहीं होता ।

( २ ) घोष बच्चों के उच्चारण में केवल नाद का उपयोग होता है ।

घड़ीय वर्ण—क, ख, ग, घ, ङ, ट, ठ, ड, ध, न, फ, घौर छ, ज, स ।

घोय वर्ण—होव म्यंजव घौर सब स्वर ।

[ १ —बाह्य प्रयत्न के अनुसार केवल म्यंजवों के जो मेद हूँ वे प्रागे दिये जावेंगे । ( ४२वाँ श्लोक दला ) । ]

स्वर ।

३५—इत्यसि के अनुसार स्वरों के दो मेद हूँ—( १ ) मूल स्वर ( २ ) संधि-स्वर ।

( १ ) त्रिय स्वरों की इत्यसि किसी वृत्त स्वरों से नहीं है, उन्हें मूल स्वर ( वा इत्य ) कहते हैं । वे चार हैं—अ, इ, उ घौर य ।

( २ ) मूल-स्वरों के मेद से वने हुए स्वर संधि-स्वर कहलाते हैं, जैसे, वा, ई, ए, ऐ, ओ की ।

३६—संधि-स्वरों के दो उपमेद हूँ—

( १ ) दीर्घ घौर ( २ ) संयुक्त ।

( १ ) किसी एक मूल स्वर में उसी मूल स्वर के मिश्रण से जो स्वर उत्पन्न होता है, उसे दीर्घ कहते हैं, जैसे, अ+अ=आ, इ+इ=ई, उ=उ=ऊ, वा, इ, उ दीर्घ स्वर हैं ।

[ १ —अ+अ=अ यह दीर्घ स्वर हिंदी में नहीं है । ]

( २ ) मिश्र-मिश्र स्वरों के मेद से जो स्वर उत्पन्न होता है उसे संयुक्त स्वर कहते हैं, जैसे, अ+इ=ए, अ+उ=ओ, आ+इ=ई, आ+ओ=यी ।

३७—उच्चारण के द्वारा मात्र के अनुसार स्वरों के दो मेद किये जाते हैं—सप्त घौर गुण । उच्चारण के कथ-मात्र की मात्रा कहते हैं । त्रिय स्वर के उच्चारण में एक मात्रा आती है उसे सप्त स्वर कहते हैं, जैसे, अ, इ, उ अ, । त्रिय स्वर के उच्चारण में दो मात्राएँ आती हैं उसे गुण स्वर कहते हैं, जैसे, आ इ ए, ऐ ओ की ।

• हिंदी में 'मात्रा' शब्द के दो अर्थ हैं—एक, स्वरो वा म् ( ऐङ ट वृत्त श्लोक ) वरा, काल-मान ।

[ सू० १—उच्च मूल-स्वर ह्रस्व और उच्च सभि स्वर युक्त हैं । ]

[ सू० २—संस्कृत में प्लुत नाम से स्वरों का एक तीसरा मेर माना जाता है, पर हिंदी में उसका उपयोग नहीं होता । 'प्लुत' शब्द का अर्थ है "उल्लसता हुआ" । प्लुत में तीन मात्राएँ होती हैं । यह बहुधा दूर से पुकारने, रीने, याने और चिल्लाने में आता है । उसकी पहचान दीर्घ स्वर के आगे तीन का अंक लिख देने से होती है, जैसे, ए । ३, लकके । ३, हूँ । ३, । ]

१८—आदि के अनुसार भी स्वरों के दो भेद हैं—सवर्ण और असवर्ण अर्थात् सजातीय और विजातीय । समाज स्वान और प्रपञ्च से उत्पन्न होने वाले स्वरों को सवर्ण कहते हैं । भिन्न स्वरों के स्वान और प्रपञ्च एक से नहीं होते वे असवर्ण कहलाते हैं । अ, आ परस्पर सवर्ण हैं । इसी प्रकार इ, ई तथा उ, ऊ सवर्ण हैं ।

अ, इ वा अ, ऊ अथवा इ, ऊ असवर्ण स्वर हैं ।

( सू०—ए, ऐ, औ, इम संयुक्त स्वरों में परस्पर सम्यक्ता नहीं है, क्योंकि ये असवर्ण स्वरों से उत्पन्न हैं । )

१९—उच्चारण के अनुसार स्वरों के दो भेद और हैं—

( १ ) साधुनासिक ( २ ) गिरानुनासिक ।

यदि मुँह से पूरा पूरा श्वास निकलता जाय तो ह्रस्व—गिरानुनासिक—अर्थात् निकलती है, पर यदि श्वास का कुछ भी अंश नाक से निकलता जाय तो अनुनासिक अर्थात् निकलती है । अनुनासिक स्वर का चिह्न ( ~ ) चंद्रबिंदु कहलाता है; जैसे गाँव, कँचा । अनुस्वार और अनुनासिक व्यंजनों के समाज चंद्रबिंदु कोई स्वतंत्र बर्ण नहीं है; यह केवल अनुनासिक स्वर का चिह्न है । अनुनासिक व्यंजनों को कोई कोई "नासिक" और अनुनासिक स्वरों को केवल "अनुनासिक" कहते हैं । कभी कभी यह शब्द चंद्रबिंदु का पर्याय वाचक भी होता है । ( अ. पाँ अंक देखो ) ।

२०—( फ ) हिंदी में अल्प अ का उच्चारण प्रायः ह्रस्व के समाज होता है, जैसे, गुल्म, राठ, धन इत्यादि । इस नियम के फल अथवा है—

( १ ) यदि अकारांत शब्द का अन्त्यपर संयुक्त हो तो अल्प अ का उच्चारण पूरा होता है; जैसे, सत्य, इन्द्र, गुल्म, सब, धर्म, अशक्त इत्यादि ।

( २ ) ह, ई या ऊ के आगे य हा तो अण्य अ का उच्चारण पूर्ण होता है; जैसे, ग्रिय, प्रीम रात्रस्य, इत्यादि ।

( ३ ) एकपदी अकारांत शब्दों के अण्य अ का उच्चारण पूरा पूरा होता है; जैसे, अ, ब, र इत्यादि ।

( ४ ) (क) कविता में अण्य अ का पूर्ण उच्चारण होता है; जैसे, "समाचार अब कहनाय पाये", परंतु जब इस ब्यप पर बन्धि होती है; तब इसका उच्चारण बहुधा अपूर्ण होता है; जैसे, "छंद-छंदु-सम देह उमानमन कल्या मनन ।"

( ख ) दीर्घ-स्वरांत शब्दों में यदि दूसरा अक्षर अकारांत हो तो उसका उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे, कडा, कबजे, काना, बाहना, सावना इत्यादि ।

( ग ) चार अक्षरों के द्वस्व-स्वरांत शब्दों में यदि दूसरा अक्षर अकारांत हो तो उसके अ का उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे गङ्गा देवना मासिक सुरभीक कामक्य, बहलीक ।

अन्वय—यदि दूसरा अक्षर संयुक्त हो अथवा पहला अक्षर कोई उपसर्ग हो तो दूसरे अक्षर के अ का उच्चारण पूर्ण होता है; जैसे, पुत्रनाम, पर्वनाम, आचरण, प्रवृत्त ।

( ब ) दीर्घ-स्वरांत चार-अक्षरी शब्दों में तीसरे अक्षर के अ उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे सनमना, विक्रमा, मुनदरी, कचहरी, प्रवृत्त ।

( क ) पीनिक शब्दों में मूल अक्षर के अण्य अ का उच्चारण अपूर्ण ( अपूर्ण ) होता है; जैसे, देव-यन, सुर गऊ, अत्र-दत्ता, मुक-दायक, गीत कता, मम-जीवन, कच-यन इत्यादि ।

४१—हिंदी में ये चार चीं अ उच्चारण संस्कृत से भिन्न होता है । संसम शब्दों में इनका उच्चारण संस्कृत के ही अनुसार होता है; पर हिंदी में ये बहुधा अप् और र्ही बहुधा अर् के समान बोला जाता है; जैसे—

संस्कृत—देवक्य, सर्वक, पीय र्हीनुक, इत्यादि ।

हिंदी—दै, मीठ, र्हीर, र्हीया इत्यादि ।

( क ) ए और ओ का उच्चारण कभी-कभी क्रमशः इ और ए तथा क और ओ का सम्बन्धही होता है, जैसे, एकहा ( इकहा, ) मिहत्तर ( मिहतर ), उचीसा ( ओचीसा ), गुबरीखा ( गाबरीखा ) ।

४२—इस प्रकार अंग्रेजी के कुछ ध्वनों का उच्चारण दिखाने के लिए, अ, आ, इ, उ आदि स्वरों के साथ पिछी और अर्थ र्थ जमाते हैं, इसम, अर, आर । इन चिह्नों का प्रचार सांख्यिक नहीं है और किसी भी भाषा में विदेशी उच्चारण पूर्ण रूप से प्रकट करना कठिन भी होता है ।

### ध्वजन

४३—स्पर्श-ध्वजनों के पाँच वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में पाँच पाँच ध्वज हैं । प्रत्येक वर्ग का नाम पहले वर्ग के अनुसार रखा गया है जैसे—

क-धर्मा—क, ख, ग, घ, ङ ।

ख-धर्मा—ख, ग, घ, ङ, ञ ।

उ-धर्मा—उ, ङ, ङ, ञ, ण ।

त-धर्मा—त, थ, द, ध, न ।

प-धर्मा—प, फ, ब, म, म ।

४४—बाह्य प्रपञ्च के अनुसार ध्वजनों के दो भेद हैं—

( १ ) अक्षयप्राण ( २ ) महाप्राण ।

सिद्ध ध्वजनों में हकार की ध्वनि विशेष रूप से सुनाई देती है अग्रे महाप्राण और शेष ध्वजनों को अक्षयप्राण कहते हैं । स्पर्शध्वजनों में प्रत्येक वर्ग का दूसरा धार चीथा अक्षर तथा ऊपम महाप्राण है। जैसे,—र, य, ल, ष, ठ, ड, ङ, य ङ, म, और ष, य, स, इ ।

शेष ध्वजन अक्षयप्राण हैं ।

सब स्वर अक्षयप्राण हैं ।

[ सू०— अक्षयप्राण अक्षरों का अक्षर महाप्राणों में प्राणवायु का उपयोग अधिक अनुपयुक्त करना पड़ता है । ल, य, ल आदि ध्वजनी व उच्चारण में उनका प्रवृत्ति ध्वजनों के साथ हकार की ध्वनि मिला हुआ सुनाई पड़ती है, अर्थात् ल = ल्+ह, ल्+ह, ल्+ह । उ, अंगरेजी आदि भाषाओं में महाप्राण अक्षर ह मिलाकर बनाये गये हैं । ]

३१—हिंसी में व चीर व के दो दो उच्चारण होते हैं—( १ ) मूर्द्धन्य  
( २ ) द्विस्पृष्ट ।

( १ ) मूर्द्धन्य उच्चारण नीचे दिये स्वामों में होता है—

( क ) शब्द के आदि में; जैसे, बाह, बमक, डग, डग, ठिग, बंग,  
बोह, इत्यादि ।

( ख ) द्विस्व में; जैसे, भाइया, कन्हु कन्हु ।

( ग ) इस्व स्वर के परचाय अनुनासिक व्यंजन के संयोग में; जैसे, बंका,  
विही, चंहु मंहुप इत्यादि ।

( २ ) द्विस्पृष्ट उच्चारण विष्णु का अप्रमाण उच्चारण मूर्द्धा में लगाने से  
होता है । इस उच्चारण के लिए इन अक्षरों के नीचे एक एक चिह्न लगाई  
जाती है । द्विस्पृष्ट उच्चारण बहुधा नीचे दिये स्वामों में होता है—

( क ) शब्द के मध्य अथवा अंत में; जैसे, सक्क, पक्कना, चाव, गद,  
चडाना इत्यादि ।

( ख ) दीर्घ स्वर के परचाय अनुनासिक व्यंजन के संयोग में दोनों उच्चा  
रण बहुधा विकल्प से होते हैं; जैसे, मूंभगा, मूंभगा, लॉड लॉड मेडा,  
मेपा इत्यादि ।

३२—क, ख, ग, म का उच्चारण अवन अवन स्वान चीर नासिक्य से  
किया जाता है । विशिष्ट स्वान से उच्चारण उत्पन्न कर उसे नाक के द्वारा निष्का  
रने से इव अक्षरों का उच्चारण होता है । केवल स्वर-व्यंजनों के एक-एक  
वर्ग के लिए एक-एक अनुनासिक व्यंजन है, अंतस्व चीर उच्च के साथ अनु-  
नासिक व्यंजन का कार्य अनुस्वार से निकलता है । अनुनासिक व्यंजनों के  
बर्णों में विकर से अनुस्वार आता है; जैसे अङ्ग=अंत, कण्ड=कंड,  
अंग इत्यादि ।

३३—अनुस्वार के आगे कोई अंतस्व व्यंजन आया है तो उसका  
उच्चारण दंत-ताम्रण अर्थात् र्ण के समान होता है; परंतु श् प म के साथ  
उसका उच्चारण बहुधा र् के समान होता है; जैसे, र्णवाह, र्णवा, सिंह  
अंग, इंस इत्यादि ।





११—विसर्ग (ः) कर्म बर्ण है। इसके उच्चारण में इ के उच्चारण को एक मूक सा देकर श्वास को मुँह से एकत्रण छोड़ते हैं। अनुस्वार का अनुच्चारण के समान विसर्ग का उच्चारण भी किसी स्वर के परभाव होता है। यह हकार की अपेक्षा कुछ भीमा बोझा जाता है, जैसे, दुःख, अंतःकरण, विः, हा इत्यादि।

( १०—किसी किसी वैयाकरण के मतानुसार विसर्ग का उच्चारण कबल हृदय में होता है, धार मुख के अग्रभागों से उठकर ओर लपक नहीं पाता। )

१२—संयुक्त व्यंजन के पूर्व इत्य स्वर का उच्चारण कुछ मूक के साथ होता है जिससे दोनों व्यंजनों का उच्चारण स्पष्ट हो जाता है; जैसे, मत्प अइय पत्तर इत्यादि। हिंदी में म्, न् आदि का उच्चारण इसके विपरीत होता है; जैसे तुम्हारा, उन्हें तुम्हारा सको।

१३—ही महाप्राय व्यंजनों का उच्चारण एक साथ नहीं हो सकता; इसलिए उनके संयोग में पूर्व बर्ण अक्षरमात्र ही रहता है; जैसे, रक्ता मप्य, पत्तर, इत्यादि।

१४—उर्ध्व के प्रमाण से ज धीर क का एक-एक धीर उच्चारण होता है। ज का दूसरा उच्चारण इत-साहस्य धीर क का इतोप्य है। इन उच्चारणों के बिचे अक्षरों क नीचे एक-एक बिंदी लगाते हैं, जैसे कृष्णत कुनसत, इत्यादि। क धार कृ से अंगरेजी के भी कुछ अक्षरों का उच्चारण प्रकट होता है, जैसे; स्वेज अंस इत्यादि।

१५—हिंदी में ज का उच्चारण बहुधा 'र्ध्व' के सदृश होता है। महा राष्ट्र लोग इसका उच्चारण 'इर्ध्व' के समान करते हैं। पर इसका सत्य उच्चारण प्रायः 'र्ध्व' के समान है।

जया अभ्यास

स्वरापाठ

१६—शब्दों के उच्चारण में अक्षरों पर ली जोर ( बल ) लगता है

जिस अक्षर में आता है उसके पूर्ववर्ती अक्षर के स्वर का उच्चारण कुछ खंभा होता है। जैसे, 'घर' शब्द में अल्प 'अ' का उच्चारण अपूर्ण होता है, इसलिये उसके पूर्ववर्ती 'घ' के स्वर का उच्चारण कुछ घटके के साथ करना पड़ता है। इसी तरह संयुक्त व्यंजन के पहले के अक्षर पर ( ५२ अंक ) जोर पड़ता है जैसे 'पत्थर' शब्द में 'त्' और 'र' के संयोग के कारण 'प' का उच्चारण आघात के साथ होता है। स्वराघात-संबंधी कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं—

- ( क ) यदि शब्द के अंत में अपूर्णोच्चरित अ आदि तो अर्धल्प अक्षर पर जोर पड़ता है जैसे धर भ्रष्ट, सड़क इत्यादि ।
- ( ख ) यदि शब्द के मध्य-भाग में अपूर्णोच्चरित अ आदि तो उसके पूर्ववर्ती अक्षर पर आघात होता है जैसे, अक्कल, बोककर, बिजमर ।
- ( ग ) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती अक्षर पर जोर पड़ता है; जैसे, हनुआ आजा, बिता इत्यादि ।
- ( घ ) विसर्ग-युक्त अक्षर का उच्चारण अटके के साथ होता है; जैसे बुरख, अंतकरख ।
- ( ङ ) शैलिक शब्दों में मूख अवयवों के अक्षरों का जोर जैसा का वैसा रहता है; जैसे गुणवान् बलमय प्रेमसागर इत्यादि ।
- ( च ) शब्द के आरंभ का अ कमी अपूर्णोच्चरित नहीं जाता जैसे धर सड़क, कपड़ा, लड़कार इत्यादि ।

५०—संस्कृत ( या हिंदी ) शब्दों में इ उ वा ल के पूर्ववर्ती स्वर का उच्चारण कुछ खंभा जाता है; जैसे हरि साधु समुदाय, घातु, विरु, मातु, इत्यादि ।

५१—यदि शब्द के एक ही रूप से कई अर्थ निकलते हैं तो इन अर्थों का अंतर केवल स्वराघात से जाना जाता है; जैसे, 'बड़ा' शब्द विधिज्ञान और सामान्य मूलज्ञान, दोनों में आता है, इसलिये विधिज्ञान के अर्थ में 'या' के अल्प 'या' पर जोर दिया जाता है। इसी प्रकार 'की', संबंधकारक की लीङ्गिग-विभक्ति और सामान्य मूलज्ञान का लीङ्गिग एकवचन रूप है इसलिये किये के अर्थ में 'की' का उच्चारण आघात के साथ होता है ।

[ छ — हिंदी में संस्कृत के समान स्वरापाठ स्थित करने के लिए बिहों का उपयोग नहीं होता । ]

### द्वनागरी वयमाला का कोष्ठक

अधोप			धोप							
स्वात	स्वर्ग	ऊप	ऊप	स्वर्ग	स्व					
अक्षरमात्र	महामात्र	महामात्र	महामात्र	अक्षरमात्र	महामात्र	अक्षरमात्र + महामात्र (प्रतुपाठिक)	अंत्य	इत्त	दीर्घ	संयुक्त
क	ख	ग	घ	च	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड
ख	घ	ग	घ	च	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड
ग	घ	ग	घ	च	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड
घ	ग	घ	ग	च	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड
च	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ड	ड	ड	ड
ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ड	ड	ड	ड	ड
झ	ञ	ट	ठ	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड
ञ	ट	ठ	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड
ट	ठ	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड
ठ	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड
ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड	ड

क, ख = द्विसूत्र; ग = द्विन-तादृश्य  
 घ = द्वीप्य ।

(स्वात + आत्मिका + अंत्य + कोष्ठ)

१ अक्षर + पाठ  
 २ अक्षर + कोष्ठ

पौत्रा अध्याय

संधि ।

५१—दो निश्चित अक्षरों के पास पास आने के कारण उनके मेष से जा बिभर होता है उसे संधि कहते हैं । संधि धीरे संपोग में ( १८ वीं अक्षर ) यह अंतर है कि अधोप में अक्षर देने के लिये रहते हैं; परंतु संधि में अक्षर

अपवाद—स्व+ई२=स्वैर; अह+अहिनी=अशौहिनी; म+अज=मौज;  
सुख+भरत=सुखार्त; इच्छ+अक्ष=इच्छार्थ इत्यादि ।

१२—अकार वा आकार के आगे ए वा ऐ हो तो दोनों मिलकर ऐ, और ओ वा औ रहे तो दोनों मिलकर औ होता है । इस विकार को धृति कहते हैं । यथा—

अ+ए=ऐ—एक+एक=एकैक ।  
अ+ऐ=ऐ—मण+ऐक्य=मणीक्य ।  
आ+ए=ऐ—सदा+एव=सदैव ।  
आ+ऐ=ऐ—महा+ऐरव्यं=महैरव्यं ।  
अ+ओ=औ—अक्ष+ओष=अक्षीष ।  
आ+ओ=औ—महा+ओष=महौष ।  
अ+औ=औ—परम+औष्य=परमौष्य ।  
आ+औ=औ—महा+औष्य=महौष्य ।

अपवाद—अ अथवा आ के आगे ओह शब्द आने ली विकल्प से ओ अथवा औ होता है; जैसे विव+ओह=विबोह वा विवीह; अवर+ओह=अवरीह वा अवरीह ।

१३—इस्व वा शीर्ष इकार उकार वा ऋकार के आगे कोई असवर्ण ( विजातीय ) स्वर आने ली इ ई के बन्धे ए उ ऊ के बन्धे ए, और ऋ के बन्धे ए होता है । इस विकार को यण कहते हैं । जैसे,

( क ) इ+अ=य—यदि+अपि=यपि ।  
इ+आ=या—इति+आदि=इत्यादि ।  
इ+उ=यु—प्रति+उपकार=प्रत्युपकार ।  
इ+ऊ=यू—वि+ऊन=व्यून ।  
इ+ए=ये—प्रति+एक=प्रायेक ।  
इं+अ=य—नदी+अर्ष्य=यर्ष्य ।  
इं+आ=या—द्वेषी+आगम=द्वेष्यागम ।  
इं+उ=यु—सखी+उपित्त=सख्युपित्त ।  
इं+ऊ=यू—नदी+ऊर्मि=यूर्मि ।  
इं+ऐ=यै—द्वेषी+ऐरव्यं=द्वेष्यैरव्यं ।

- ( क ) क+अ=क—अनु+अंतर=अन्वतर ।  
 क+आ=का—अनु+आगत=अन्वागत ।  
 क+इ=कि—अनु+इत=अन्वित ।  
 क+ए=के—अनु+एत=अन्वैत ।

- ( ग ) क+अ=र—पितृ+अनुमति=पितृनुमति ।  
 क+आ=रा—मातृ+आनंद=मातृआनंद ।

१३—ए, ऐ, औ वा 'ई' के आगे कौई बिन्दु स्वर हो तो इनके स्थान में क्रमशः अप्, आप्, अक् वा आक् होता है; जैसे—

क+अन=प्+प्+अ+न=क्+अप्+अन=अनप ।

गि+अन=ग्+ऐ+अ+न=ग्+आप्+अ+न=गाअन ।

गो+ईश=ग्+ओ+ईश=ग्+अ+इ+ई+श=गोअईश ।

गौ+इक=ग्+औ+इक=क्+आक्+इ+क=गोअइक ।

१४—ए वा औ के आगे अ आये तो अ का स्वर हो जाता है और उसके स्थान में ह्रस्व अकार ( अ ) का बिन्दु स्वर देते हैं। जैसे ऐ+अपि=तैअपि ( राम० ); औ+अनुमात्र=सौअनुमात्र ( हि० प्र० ); औ+असि=वोअसि ( राम ) ।

[ ए०—हिन्दी में ह्रस्व अकार का प्रचार नहीं है । ]

### व्यञ्जन-सन्धि ।

१५—इ, इ, ए, ऐ के आगे अनुवासिक कौी झीबंजर कौई स्वर वर्ण हो तो उसके स्थान में क्रम से वर्ण अ तीसरा अक्षर हो जाता है। जैसे—

दिइ+गज=दिअज; आइ+इश+वागीश ।

अइ+रिपु=अइरिपु; अइ+आजब=अअजब ।

अए+ज=अअज; अऐ+अंत=अअंत ।

१६—किसी वर्ण के प्रथम अक्षर से परे कौई अनुवासिक वर्ण हो तो प्रथम वर्ण के पहले उसी वर्ण का अनुवासिक वर्ण हो जाता है। जैसे—

## विसर्ग-संधि ।

०८—यदि विसर्ग के आगे च वा ङ हो तो विसर्ग का श हो जाता है, र वा ङ हो तो य, और त वा य हो तो स् होता है जैसे—

विः+चञ्च=विचञ्च, भङ्गुः+उकार=भङ्गुङ्कार ।

मिः+क्षिप्र=मिक्क्षिप्र, मन्वाः+ताप=मन्स्ताप ।

०९—विसर्ग के परचाद् श, य वा स आने ता विसर्ग वैसा का वैसा रहता है । अथवा उसका स्वाम में आगे का बर्ण हो जाता है, जैसे—

दुः+शासन=दुःशासन वा दुरशासन ।

मिः+सदिह=मिःसदिह वा विस्सदिह ।

१०—विसर्ग के आगे क ख वा प, क आने तो विसर्ग का कोई विकार नहीं होता, जैसे—

रजः+कथ=रजाकथ, पयाः+पाप=पयापाप ( हि —पयपाप ) ।

( ख ) यदि विसर्ग के पूर्व ह वा उ हो तो क, ख वा प, क के पहले विसर्ग के बर्ण प होता है, जैसे,

मिः+कपट=मिक्कपट, दुः+कर्म=दुक्कर्म ।

विः+कञ्ज=मिक्कञ्ज, दुः+मकृति=दुक्कृति ।

अपचाद्—दुः+क=दुक्क, मिः+पञ्च=मिक्पञ्च वा मिप्पञ्च । ( घा ) ऊपर उक्तों में विसर्ग के पहले स् आता है, जैसे—

पमा+कार=पमस्कार, पुरा+कार=पुरस्कार ।

माः+कर=मास्कर, माः+पति=मास्पति ।

११—यदि विसर्ग के पूर्व अ हो और आगे ओष-व्यञ्जक हो तो अ और विसर्ग ( घा ) के पहले ओ हो जाता है, जैसे—

अषः+गति=अओगति, मन्वाः+याप=मन्वोयोग ।

लेज +राति=लैजीराति, वया+वृद्ध=वयोवृद्ध ।

( ५ — बन्धोपास और मनाकामना शब्द आरूढ हैं । )

( ६ ) यदि विसर्ग के पूर्व अ ही धीर आये भी अ हो तो धी के परभाव हृद्ये अ का जोप हो जाता है धीर उसके बदले ह्रस्व अकार का चिह्न ऽ कर दते हैं ( ११ वाँ अंक )। जैसे—

प्रथमाः+अप्याप=प्रथमोऽप्याप ।

ममः+अनुसार=मतोऽनुसार ।

८२—यदि विसर्ग के पहले अ या ओ दोहर और कोई स्वर हो धीर आये कई जोप-बर्ष हो ता विसर्ग के स्थान में २ होता है। जैसे—

विः+आशा=विराशा; कुः+अपपीग=बुद्धपपीग ।

विः+गुप्य=विगुंष; यदिः+मुञ्ज=रदिमुंज ।

( ७ ) यदि २ के आगे र हा तो २ का जोप हो जाता है धीर उसके पूर्व का ह्रस्व स्वर हांघं कर दिया जाता है जैसे—

वि. +रस=वीरस; विः+रोग=वीरोग;

पुन२+रचना=पुनारचना ( हि०—पुनरंचना ) ।

८३—यदि अकार के आगे विसर्ग हो धीर उसके आगे अ को दोहर और धीर स्वर हो ता विसर्ग का जोप हो जाता है धीर पास पास आये ह्रस्व स्वरों की फिर संधि नहीं होती। जैसे—

अठः+एव=अठएव ।

८४—दीर्घ स के बदले वि-र्ग हो जाता है; इसलिये विसर्ग खंखी पूर्वोक्त विषय सू के विषय में भी आता है । ऊपर दिये हुए विसर्ग के अहाह रूपों में ही कहीं-कहीं सूत्र सू है जैसे—

अयस्+गति=अयः+गति=अधोगति ।

विस्+गुप=विः+गुप्य=विगुंष ।

तेजस्+पुत्र=तेजाः+पुत्र=तेजोपुत्र ।

बयास्+दा=बयाः+दा=बयोदा ।



८५—अंतर् ए के पक्षे भी विसर्ग होता है । यदि ए के आगे अघोष-वर्ण आये तो विसर्ग का कोई विकार नहीं होता ( ७६ वाँ अंक ) ; और इसके आगे घोष-वर्ण आये तो ए क्योँ का र्योँ रहता है ( ८१ वाँ अंक ) ; जैसे—

मातर्+अस्य=मातास्य ।

अंतर्+अस्य=अन्तास्य ।

अंतर्+पुर=अन्तपुर ।

पुवर्+वक्ति=पुनक्ति ।

पुवर्+वस्य=पुनवस्य ।

---

# दूसरा भाग

## शब्द-साधन

पहला परिच्छेद

शब्द मेद

पहला अध्याय

### शब्द-विचार

८१—शब्द-साधन व्याकरण के उस विभाग को कहते हैं जिसमें शब्दों के मेद ( तथा उनके प्रयोग ) रूपोंतर धार व्युत्पत्ति का निरूपण किया जाता है ।

८२—एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक अक्षरों को शब्द कहते हैं; जैसे—उड़ना, जा खोटा, मैं खरि, परतु, इत्यादि ।

( अ ) शब्द अक्षरों से बनते हैं । 'न' धीरे 'य' के मेल से 'नय' धीरे 'यन' शब्द बनते हैं, धार यदि इनमें 'आ' का योग कर दिया जाय तो 'नाय', 'यान' 'नया', 'याता', आदि शब्द बन जायेंगे ।

( आ ) सृष्टि के संपूर्ण प्रायियों, पशुओं, पक्षियों धार उनके सब प्रकार से संबंधों की व्यक्त करने के लिए शब्दों का उपयोग होता है । एक शब्द से ( एक समय में ) प्रायः एक ही भावना प्रकट होती है, इसलिये कोई भी पूर्ण विचार प्रकट करने के लिये एक से अधिक शब्दों का काम पड़ता है । 'आज तुम्हें क्या सूझी है ?'—यह एक पूर्ण विचार व्यक्त याक्य है धार इसमें पाँच शब्द हैं—आज, तुम्हें क्या, सूझी, है । इनमें से प्रत्येक शब्द एक स्वतंत्र सार्थक अक्षर है धार उससे कोई एक भावना प्रकट होती है ।

( इ ) क, व, का अलग-अलग शब्द नहीं हैं, क्योंकि इनसे किसी प्राची, पवार्य, धर्म वा उनके परस्पर संबंध का कोई बोध नहीं होता। 'क व, का, अक्षर कहाते हैं—इस वाक्य में क, व, का, अक्षरों का प्रयोग शब्दों के समान हुआ है; परंतु इनसे इन अक्षरों के सिवा और कोई माधना प्रकर नहीं होती। इन्हें केवल एक विशेष ( पर शुष्क ) अर्थ में शब्द कह सकते हैं; पर साधारण अर्थ में इनकी गणना शब्दों में नहीं हो सकती। ऐसे ही विशेष अर्थ में विर्यक ध्वनि भी शब्द नहीं जाती है; जैसे, अक्षर 'वा' कहाता है। पागल 'अक्षरबद्ध' कहता था।

( ई ) शब्द के उच्यते में 'स्वतंत्र' शब्द रहने का अर्थ यह है कि माया में कुछ ध्वनियों ऐसी होती हैं जो स्वयं सार्थक नहीं होतीं, पर जब वे शब्दों के साथ जोड़ी जाती हैं तब सार्थक होती हैं। ऐसी परतंत्र ध्वनियों को शब्दांश कहते हैं; जैसे, ता, पव आदि। जो शब्दांश किसी शब्द के पहले जोड़ा जाता है उसे उपसर्ग कहते हैं और जो शब्दांश शब्द के पीछे जोड़ा जाता है, वह प्रत्यय कहाता है; जैसे, 'अक्षरता' शब्द में 'अ' उपसर्ग और 'ता' प्रत्यय है। मुख्य शब्द 'शब्द' है।

[ ६०—(अ) हिंदी में 'शब्द' का अर्थ बहुत ही संक्षिप्त है। "अक्षर ता तुम्हारी याही बात हुई"—इस वाक्य में 'तुम्हारी' भी शब्द कहाता है और जिस 'तुम' से वह शब्द बना है वह 'तुम' भी शब्द कहाता है। इसी प्रकार 'मन' और 'याही' दो अलग अलग शब्द हैं और दोनों मिल कर 'मनयाही' एक शब्द बना है। इन उदाहरणों में 'शब्द' का प्रयोग अलग-अलग अर्थों में हुआ है, इसलिये शब्द का ठीक अर्थ जानना आवश्यक है। किन् प्रत्ययों के पश्चात् वृत्ते प्रत्यय नहीं लगते उन्हें स्वतंत्र प्रत्यय कहत हैं और स्वतंत्र प्रत्यय लगने के पहले शब्द का वा मूल रूप होता है यथार्थ में वही शब्द है। उदाहरण के लिए 'दीनता से' शब्द को लो। इसमें मूल शब्द अर्थात् प्रकृति 'दीन' है और प्रकृति में 'ता' और 'से' दो प्रत्यय लगे हैं। 'ता' प्रत्यय के पश्चात् 'से' प्रत्यय आया है; परंतु 'से' के पश्चात् कोई वृत्ता प्रत्यय नहीं लग सकता, इसलिये 'से' के पहले 'दीनता' मूल रूप है और इसी को शब्द कहेंगे। स्वतंत्र प्रत्यय लगने से शब्द का वा रूपांतर होता है वही इसकी यथार्थ विवृति है और इसे पद कहते हैं। व्याकरण में शब्द और पद का अंतर बड़े महत्व का है और शब्द-साधन में इही शब्दों और पदों का विचार किया जाता है।

(आ)—व्याकरण में शब्द और वस्तु के अंतर पर ध्यान रखना आवश्यक है। यद्यपि व्याकरण का प्रधान विषय शब्द है तथापि कभी-कभी यह भेद बताना कठिन हो जाता है कि हम कौशल शब्दों का विचार कर रहे हैं अथवा शब्दों के द्वारा किसी वस्तु के विषय में क्या कह रहे हैं। मान लो कि हम सृष्टि में एक घटना देखते हैं और तत्संबंधी अथवा विचार वाक्यों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—माली फूल तोड़ता है। इस घटना में तोड़ने की क्रिया करने वाला (कर्ता) माली है परंतु वाक्य में 'माली (शब्द) को कर्ता करते हैं, यद्यपि 'माली' (शब्द) कोई क्रिया नहीं कर सकता। इसी प्रकार तोड़ना क्रिया का फल फूल (वस्तु) पर पड़ता है, परंतु व्याकरण के अनुसार वह फल 'फूल' (शब्द पर) अवलंबित माना जाता है। व्याकरण में वस्तु और उसके बाह्यक शब्द के संबंध का विचार शब्दों के रूप, अर्थ, प्रयोग और इनके परस्पर संबंध से किया जाता है।

८८—परस्पर संबंध रखनेवाले दो या अधिक शब्दों को विषय पूरा पाठ नहीं आती जाती बाह्यवाच्य कहते हैं; जैसे 'बर का घर' 'सब बोसवा', 'दूर से आया हुआ' इत्यादि।

८९—एक पूर्व विचार व्यक्त करनेवाला शब्द-समूह बाह्यक कहलाता है; जैसे उनके कृत्र बीज रहे हैं; क्रिया से मन्नता प्राप्त होता है इत्यादि।

## दूसरा अध्याय

### शब्दों का वर्गीकरण

१०—किसी वस्तु के विषय में मनुष्य की भावनाएँ अलग-अलग प्रकार की होती हैं उन्हें सूचित करने के लिए शब्दों के अलग-अलग भेद होते हैं और उनके अर्थ ही अलग-अलग भी होते हैं।

● वस्तु शब्द से यहाँ प्राणा, उदात्त, अन्त और उनके परस्पर संबंध का (व्याकरण) अर्थ लेना चाहिए।

मान लो कि हम पानी के विषय में विचार करते हैं तो हम 'पानी' या उसके और किसी समानार्थक शब्द का प्रयोग करेंगे। फिर यदि हम पानी के संबंध में कुछ कहना चाहें तो हमें 'गिरा' या कोई दूसरा शब्द कहना पड़ेगा। 'पानी' और 'गिरा' दो अलग-अलग प्रकार के शब्द हैं क्योंकि इनका प्रयोग अलग-अलग है। 'पानी' शब्द एक पदार्थ का नाम सूचित करता है और 'गिरा' शब्द से हम उस पदार्थ के विषय में कुछ विधान करते हैं। व्याकरण में पदार्थ का नाम सूचित करनेवाले शब्द को संज्ञा कहते हैं और उस पदार्थ के विषय में विधान करनेवाले शब्द को क्रिया कहते हैं। 'पानी' शब्द संज्ञा और 'गिरा' शब्द क्रिया है।

'पानी' शब्द के साथ हम दूसरे शब्द लगाकर एक दूसरा ही विचार प्रकट कर सकते हैं जैसे, 'मीठा पानी बहा'। इस वाक्य में 'पानी' शब्द तो पदार्थ का नाम है और 'बहा' शब्द पानी के विषय में विधान करता है। परंतु 'मीठा' शब्द न तो किसी पदार्थ का नाम सूचित करता है और न किसी पदार्थ के विषय में विधान ही करता है। 'मीठा' शब्द पानी की विशेषता बताता है, इसलिये वह एक अलग ही जाति का शब्द है। पदार्थ की विशेषता बतानेवाले शब्द को व्याकरण में विशेषण कहते हैं। 'मीठा' शब्द विशेषण है। "मीठा पानी बसी बहा"—इस वाक्य में 'बसी' शब्द न संज्ञा है, न क्रिया और न विशेषण, वह 'बहा' क्रिया की विशेषता बतलाता है इसलिये वह एक दूसरी ही जाति का शब्द है, और उसे क्रियाविशेषण कहते हैं। इसी तरह वाक्य में प्रयोग के अनुसार शब्दों के और भी भेद होते हैं।

प्रयोग के अनुसार शब्दों की मिश्र-मिश्र जातियों को शब्दभेद कहते हैं। शब्दों की मिश्र-मिश्र जातियाँ बताना इनका वर्गीकरण कहलाता है।

६१—अपने विचार प्रकट करने के लिये हमें मिश्र-मिश्र भाषणांशों के अनुसार एक शब्द को बहुधा कई रूपों में कहना पड़ता है।

मान लो कि हमें 'घोड़ा' शब्द का प्रयोग करके उसके वाक्य पानी की संख्या का बोध करना है तो हम यह गुमाव की बात ब कहेंगे कि 'घोड़ा' नाम के दो या अधिक वाचक हैं, किंतु 'घोड़ा' शब्द के अंत 'घा' के बदले 'ए' करके 'घोड़े' शब्द का प्रयोग करेंगे। पानी गिरा इस वाक्य में यदि हम 'गिरा' शब्द से किसी और काल (समय) का बोध कराया चाहें तो हमें

'गिरा' के बच्चे 'गिरेगा' या 'गिरता है' कहना पड़ेगा। इसी प्रकार 'धीर-धीर शब्दों' के भी रूपांतर होत हैं।

शब्द के धार्य में हेरफेर करने के लिए उस ( शब्द ) के रूप में जो हेर फेर होता है उसे रूपांतर कहते हैं।

११—एक पदार्थ के नाम के संबंध से बहुधा दूसरे पदार्थों के नाम रखे जाते हैं; इसलिए एक शब्द से कई नये शब्द बनते हैं; जैसे, 'दूध' से 'दूधवाला', 'दुधार', 'दुधिया' इत्यादि। कमी-कमी धी या अधिक शब्दों के मेल से एक नया शब्द बनता है; जैसे, गंगा-जब, बीजोन, रामपुर, विकास वही इत्यादि।

एक शब्द से दूसरा नया शब्द बनाने की प्रक्रिया को व्युत्पत्ति कहत हैं।

१२—वाक्य में प्रयोग के अनुसार, शब्दों के आठ भेद होते हैं—

- ( १ ) वस्तुओं के नाम बतानेवाले शब्द संज्ञा।
- ( २ ) वस्तुओं के विषय में विचार करनेवाले शब्द क्रिया।
- ( ३ ) वस्तुओं की विशेषता बतानेवाले शब्द विशेषण।
- ( ४ ) विचार करनेवाले शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्द क्रिया-विशेषण।
- ( ५ ) संज्ञा के बच्चे मानेवाले शब्द सर्वनाम।
- ( ६ ) क्रिया से सामाजिक शब्दों का संबंध सूचित करनेवाले शब्द संबंधसूचक।
- ( ७ ) दो शब्दों या वाक्यों को मिलाकरवाले शब्द समुच्चय-बोधक।
- ( ८ ) केवल मनोबिकार सूचित करनेवाले 'विस्मयादि-बोधक।
- ( ९ ) नीचे लिखे वाक्यों में छाठों शब्द-भेदों के उदाहरण दिये जाते हैं—  
धरे ! सूरज डूब गया धीर तुम धर्मो इसी धर्म के पाछ फिर रहे हो !  
धरे ! विस्मयादि-बोधक है। यह शब्द केवल मनोबिकार सूचित करता है। ( यदि हम इस शब्द को वाक्य से निकाल दें तो वाक्य के धर्म में कुछ भी अंतर न पड़ेगा। )

सूरज—संज्ञा है; क्योंकि यह शब्द एक वस्तु का नाम सूचित करता है।

बूझ गया—क्रिया है; क्योंकि इस शब्द से हम सूरज के विषय में विधान करते हैं।

धीर—समुच्चय-बोधक है। यह शब्द दो वाक्यों को जोड़ता है—

( १ ) सूरज बूझ गया।

( २ ) हम अभी इसी गाँव के पास फिर रहे हो।

इस—सर्वनाम है; क्योंकि यह नाम के बद्दले आया है।

कभी—क्रिया-विशेष्य है और 'फिर रहे हो' क्रिया की विशेषता बतलाता है।

इसी—विशेष्य है; क्योंकि यह गाँव की विशेषता बतलाता है।

गाँव—संज्ञा है।

के—शब्दांश ( प्रत्यय ) है; क्योंकि यह 'गाँव' शब्द के साथ जाकर सार्थक होता है।

पास—संबंध-सूचक है। यह शब्द 'गाँव' का संबंध 'फिर रहे हो' क्रिया से सिखाता है।

फिर रहे हो—क्रिया है।

४४—कर्पांतर के अनुसार शब्दों के दो भेद होते हैं—( १ ) विकारी, ( २ ) अविकारी।

( १ ) जिस शब्द के रूप में कोई विकार होता है उस विकारी शब्द कहते हैं; जैसे,

खड़क—खड़के, खड़कों, खड़की इत्यादि।

देक—देकना, देका, देकी, देकाइ इत्यादि।

( २ ) जिस शब्द के रूप में कोई विकार नहीं होता उसे अविकारी शब्द या अशब्द कहते हैं; जैसे—परंतु, अथावक, किना, पट्टा, हाथ इत्यादि।

४५—संज्ञा, सर्वनाम, विशेष्य और क्रिया विकारी शब्द हैं; और किना विशेष्य संबंध-सूचक, समुच्चय-बोधक और विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द या अशब्द हैं।

[ टि०—हिंदी के अनेक व्याकरणों में संस्कृत की भाषा पर शब्दों के तीन भेद माने गये हैं—( १ ) संज्ञा, ( २ ) क्रिया, ( ३ ) अल्प्य । संस्कृत में प्रातिगर्भिक\*, पाठ और अल्प्य के नाम से शब्दों के तीन भेद माने गये हैं, और ये भेद शब्दों के कर्नांतर के आधार पर किये गये हैं । व्याकरण में मुख्यतः कर्नांतर ही का विचार किया जाता है परंतु जहाँ शब्दों के केवल कर्मी से उनका परस्पर संबंध प्रकट नहीं होता जहाँ उनके प्रयोग वा अर्थ का भी विचार किया जाता है । संस्कृत कर्नांतर हील भाषा है इसलिए उसमें शब्दों का प्रयोग वा अर्थ बहुधा उनके कर्मी ही से जाना जाता है । यही कारण है जो संस्कृत में शब्दों के उतने भेद नहीं माने गये किन्तु अँगरेजों में और उसके अनुसार हिंदी, मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं में माने जाते हैं । हिंदी के शब्द के रूप से उनका अर्थ वा प्रयोग उदा प्रकट नहीं होता, क्योंकि वह संस्कृत के समान पृथक्वा कर्नांतर हील भाषा नहीं है । हिंदी में कभी कभी बिना कर्नांतर के, एक ही शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न शब्द-भेदों में होता है जैसे, वे लड़के साय खेलते हैं । ( क्रिया विशेषण ) । लड़का बार के साय गया । ( संबंध-सूचक ) । विनष्टि में कोई साय नहीं देता । ( संज्ञा ) । इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हिंदी में संस्कृत के समान केवल रूप के आधार पर शब्द-भेद मानने से उनका ठीक-ठीक नियम नहीं हो सकता । हिंदी के कोई-कोई वैवाकरण शब्दों के केवल पूर्व भेद मानते हैं—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अल्प्य । वे ज्ञान अर्थों के भेद नहीं मानते और इनमें भी विस्मयादि-बोधक को शामिल नहीं करते । वा ज्ञान शब्दों के केवल तीन भेद ( संज्ञा, क्रिया और अल्प्य ) मानते हैं इनमें से कोई-कोई भेदों के उपभेद मानकर शब्द भेदों की संख्या तीन से अधिक कर देते हैं । किसी-किसी के मत में उपसर्ग और प्रत्यय भी शब्द हैं और वे इनकी गणना अल्प्यों में करते हैं । इस प्रकार शब्द भेदों की संख्या में बहुत मतभेद है ।

अँगरेजी में श्री ( जिसके अनुसार हिंदी में आठ शब्द भेद मानने की भाषा पड़ी है ) इनके विषय में वैवाकरण एक-मत नहीं । उन लोगों में किसी ने दो, किसी ने चार, किसी ने आठ और किसी ने सौ तक भेद माने हैं । इस मतभेद का कारण यह है कि ये वर्गीकरण पृथक्वा वैज्ञानिक आधार

\*विभक्ति ( प्रत्यय ) लगने से पूर्व संज्ञा, सर्वनाम वा विशेषण का सूचक्य ।



( ६०—हिंदी व्याकरण की कई पुस्तकों में वे तब मेरु केवल संज्ञाओं के माने गये हैं और उनमें उपरगं मुक्त संज्ञाओं के उदाहरण नहीं दिये गये हैं । हिंदी में यौगिक शब्द उपसर्ग और प्रत्यय दोनों के योग से बनते हैं और उनमें संज्ञाओं के सिवा दूसरे शब्द-मेरु भी आते हैं ( ११८ वॉ ग्रंथ ) ।

इस विषय का सविस्तार विवेचन शब्द-साधक के म्युल्यपि प्रकरण में किया जायगा । ( दूसरे भाग के धारम में )



# पहला खंड ।

## विकारी शब्द ।

पहला अध्याय ।

### संज्ञा ।

१०—संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे प्रकृत किंवा कल्पित सृष्टि की किसी वस्तु का नाम सूचित हो। जैसे—हर, चाकरा गंगा, देवता, अक्षर, बह आदि इत्यादि ।

(क) इस लक्ष्य में 'वस्तु' शब्द का उपयोग अत्यंत व्यापक अर्थ में किया गया है। वह केवल प्राणी और पदार्थ ही का वाचक नहीं है किन्तु उनके बर्णों का भी वाचक है। साधारण भाषा में 'वस्तु' शब्द का उपयोग इस अर्थ में नहीं होता; परंतु शास्त्रीय ग्रंथों में व्यवहृत शब्दों का अर्थ कुछ बड़ा-बड़ाकर विरिक्त कर लेना चाहिए जिससे उसमें कोई संदेह न रहे ।

[टी०—व्याकरणों में किये हुए सब लक्षण तत्क-संमत रीति से किये हुए नहीं जान पड़ते इसलिए यहाँ तत्क-संमत लक्षणों के विषय में संक्षेपतः कुछ कहने की आवश्यकता है। किसी भी रर का लक्षण कहने में दो बातें बतानी पड़ती हैं—(१) कित्त जाति में उर पद का समावेश होता है वह जाति; और (२) लक्ष्य पद का असाधारण धर्म, अर्थात् लक्ष्य पद क अर्थ का उर जाति की अन्य उपजातियों क अर्थ से अलग करनेवाला धर्म। किसी शब्द का अर्थ समझने क कर उपाय हो सकते हैं पर उर लक्षणो लक्षण नहीं कर सकते। कित्त लक्षण में लक्ष्य रर स्पष्ट अथवा गुप्त रीति से प्राण है वह शुद्ध लक्षण नहीं है। इती प्रकार एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द के द्वारा बताना (अर्थात् उरका पयायवापी शब्द कहना) भी उर शब्द का लक्षण नहीं। यदि हम संज्ञा का व्यापक लक्षण कहना चाहें तो हमें उरकी जाति और असाधारण धर्म बताना चाहिये। कित्त अधिक व्यापक अर्थ में

संज्ञा का समावेश होता है वही उलझी जाति है, और उस जाति की वृत्ति उपजातियों से संज्ञा के अर्थ में आ भिन्नता है वही उलझा असाधारण धर्म है। संज्ञा का समावेश विकारी शब्दों में है इसीलिए 'विकारी शब्द' संज्ञा की जाति है और 'प्रकृत किंवा कश्चित् सृष्टि की किंवा वस्तु का नाम सूचित करना' उलझा असाधारण धर्म है जो विकारी शब्द की उलझातिवों, अर्थात् धर्मनाम, विशेषण, आदि में नहीं पाया जाता। इसलिये ऊपर कही हुई संज्ञा की परिभाषा, न्याय-दृष्टि से स्वीकरणीय है। लक्षण में अस्वाप्ति और अति-स्वाप्ति दोष न होने चाहिए। जब लक्षण पद के असाधारण धर्म के बदले किसी ऐसे धर्म का उल्लेख किया जाता है जो उलझी जाति के सब व्यक्तियों में नहीं पाया जाता, तब लक्षण में अस्वाप्ति-दोष होता है, जैसे यदि मनुष्य के लक्षण में यह कहा जाय कि "मनुष्य वह विवेकी प्राणी है जो स्वच्छ माया बोझता है" तो इस लक्षण में अस्वाप्ति दोष है, क्योंकि स्वच्छ माया बोझने का धर्म रूग्ण मनुष्यों में नहीं पाया जाता। इसके विरुद्ध, जब लक्षण पद का धर्म उलझी जाति से भिन्न जातिवों के व्यक्तियों में भी बतलता होता है तब लक्षण में अति-स्वाप्ति दोष होता है जैसे वन का लक्षण करने में यह कहना अति-स्वाप्ति-दोष है कि 'वन रवण का वह भाग है जो लपन वृक्षों से ढँका रहता' है, क्योंकि लपन वृक्षों से ढँके रहने का धर्म पर्वत और बर्षाघ में भी पाया जाता है।

हिन्दी व्याकरणों में दिये गये, संज्ञा के लक्षणों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

- ( १ ) संज्ञा पदार्थ के नाम को कहते हैं। ( मा०—उ०—बो )।
- ( २ ) संज्ञा वस्तु के नाम को कहते हैं। ( मा -मा० )।
- ( ३ ) पदार्थ मात्र का संज्ञा कहते हैं। ( मा -उ०—दी )।
- ( ४ ) वस्तु क नाम-मात्र को संज्ञा कहते हैं। ( हि -मा० व्या० )।

ये लक्षण देखने में सरल जान पड़ते हैं और छोटे-छोटे विद्यापिठों के बोध क लिए ठक-समत लक्षणों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हैं, परंतु कभीक काल या निर्दोष लक्षण नहीं है। इनसे केवल यही जाना जाता है कि 'संज्ञा' का पर्यायवाची शब्द 'नाम' है अथवा 'नाम' का पर्यायवाची शब्द 'संज्ञा' है। इसके विना इन लक्षणों में कश्चित् सृष्टि का कोई उल्लेख नहीं है। यैतल पसीली, शुक्रवहारी, हितोरदेश, आदि कश्चित् विषयों का

पुस्तकों में तथा कविता नाटकों और उपन्यासों में बिना छद्म का बयान रहता है उस छद्म के प्राणियों, पदार्थों और घटकों के नाम भी व्याकरण के संज्ञा-वर्गों में आ सकते हैं। इस दृष्टि से ऊपर लिखे लक्षणों में सम्पत्ति दोष भी है। ]

( ब ) 'संज्ञा' शब्द का उपयोग वस्तु के लिए नहीं होता किन्तु वस्तु के नाम के लिए होता है। जिस अणुका वह वह वस्तुका इपी है वह अणुका संज्ञा नहीं है; किन्तु पदार्थ है। पर 'अणुका' शब्द लिखके द्वारा हम उस पदार्थ का नाम सूचित करते हैं, संज्ञा है।

१८-संज्ञा दो प्रकार की होती है—(१) पदार्थवाचक, (२) भाववाचक।

१८—जिस संज्ञा से किसी पदार्थ या पदार्थों के समूह का बोध होता है उसे पदार्थवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे, राम, राजा बोधा, कायक, काली, सभा, ग्रीक इत्यादि।

[ सूचना—इन लक्षणों में 'पदार्थ' शब्द का प्रयोग वह और वेतन दोनों प्रकार के पदार्थों के लिए किया गया है। ]

१९—पदार्थवाचक संज्ञा के दो भेद हैं—(१) व्यक्तिवाचक।  
(२) वाचिवाचक।

१९—जिस संज्ञा से किसी एक ही पदार्थ या पदार्थों के एक ही समूह का बोध होता है उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, राम, काली, गंगा, महामंडक, हितकारिणी इत्यादि।

'राम' कहने से केवल एक ही व्यक्ति ( अर्थात् मनुष्य ) का बोध होता है; प्रत्येक मनुष्य को 'राम' नहीं कह सकते। यदि हम 'राम' को देवता मानें तो भी 'राम' एक ही देवता का नाम है। उसी प्रकार 'काली' कहने से इस नाम के एक ही अणु का बोध होता है। यदि 'काली' किसी स्त्री का नाम हो तो भी हम नाम से बंध एक ही स्त्री का बोध होगा। व्यक्तिवाचक संज्ञा चाहे जिस प्राणी या पदार्थ का नाम हो, वह उस एक ही प्राणी या पदार्थ को जोड़कर दूसरे व्यक्ति का नाम नहीं हो सकती। बहियों में 'गंगा' एक ही व्यक्ति ( अर्थात् नदी ) का नाम है। वह नाम किसी दूसरी नदी का नहीं हो

है उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, बंबाई, अठराई सुगापा, नजरा, मिठास, समझ, आस इत्यादि ।

प्रत्येक पदार्थ में कोई न कोई धर्म होता ही है । पानी में शीतलता, धाम्य में उष्णता, सोने में भारीपन, मनुष्य में विवेक और पशु में अविवेक रहता है । जब हम कहते हैं कि अस्तुक पदार्थ पानी है तब हमारे मन में उसके एक वा अधिक धर्मों की भावना रहती है और उन्हीं धर्मों की भावना से हम उस पदार्थ को पानी के बराबे कोई दूसरा पदार्थ नहीं समझते । पदार्थ मातों द्वारा विशेष धर्मों के मेल से बनी हुई एक मूर्ति है । प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक पदार्थ के सभी धर्मों का ज्ञान होना कठिन है, परंतु जिस पदार्थ को वह जानता है उसके एक न एक धर्म का परिचय उसे आकर्य रहता है । कोई-कोई धर्म एक से अधिक पदार्थों में भी पाये जाते हैं; जैसे, बंबाई, चौड़ाई, सुगाई, नजन, आकर इत्यादि ।

पदार्थ का धर्म पदार्थ से अलग नहीं रह सकता; अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि यह घोड़ा है और वह उसका बल या रूप है । तो भी हम अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा परस्पर संबंध रखतेवाली भावनाओं की अलग कर सकते हैं । हम घोड़े के और और धर्मों की भावना न करके केवल उसके बल की भावना मन में ला सकते हैं और आकर्यकता होने पर इस भावना को किसी दूसरे प्राणी (जैसे हाथी) के बल की भावना के साथ मिला सकते हैं ।

जिस प्रकार जातिवाचक संज्ञायें अर्थवान् होती हैं उसी प्रकार भाववाचक संज्ञायें भी अर्थवान् होती हैं क्योंकि उनके समान हमसे भी धर्म का बोध होता है । व्यक्तिवाचक संज्ञा के समान भाववाचक संज्ञा से भी किसी एक ही भाव का बोध होता है ।

‘धर्म’, ‘गुण’ और ‘भाव’ प्रायः पर्यायवाचक शब्द हैं । ‘भाव’ शब्द का उपबीष (आकर्य) के नीचे किये धर्मों में होता है—(क) धर्म का गुण के अर्थ में; जैसे, ठंडाई, शीतलता धीरज, मिठास, बल, बुद्धि, श्रेय इत्यादि । (ख) अवस्था—नीह, रोय, जजैबा, सैयेरा, पीदा, परिहता, सफाई इत्यादि । (ग) व्यापार—बढ़ाई, बहाव, दान, भजन, बीजबाज, बीद, पढ़ना इत्यादि ।

१०७—भाववाचक संज्ञायें बहुधा तीन प्रकार के शब्दों से बनी जाती हैं—

- ( क ) जातिवाचक संज्ञा से—जैसे बुझारा ब्रह्मचर्यम निवृत्ता दास्य,  
पंडितार्हं राज्य, नीम इत्यादि ।
- ( ख ) विशेष्य से—जैसे, गरमी, सरदी कठोरता, मिठास, पद्म्यम, चतुर्हर्ष,  
धर्म इत्यादि ।
- ( ग ) क्रिया से—जैसे बबराहट, सजावट, चढ़ाई, बहाव मार हीन,  
बहम, इत्यादि ।

१०५—अब व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों  
का बोध करावे के लिए अथवा किसी व्यक्ति का असाधारण धर्म सूचित करने  
के लिए किया जाता है तब व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक हो जाती है; जैसे  
“कतु राक्षस राक्षस्यका केतै” । ( राम० ) । “राम नीम है” । “पयोरा  
इमार धर की कहनी है” । “कश्चिपुग के नीम” ।

पहले उदाहरण में पहला 'राक्षस' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा है और दूसरा  
'राक्षस' शब्द जातिवाचक संज्ञा है । दोसर उदाहरण में 'कहनी' संज्ञा जाति  
वाचक है; क्योंकि उससे किष्पु की धाँ का बोध नहीं होता, किन्तु कहनी के  
समान एक गुणवती धाँ का बोध होता है । इसी प्रकार 'राम' धाँ और 'नीम'  
भी जातिवाचक संज्ञाएँ हैं । "गुप्तों की शक्ति जयि होने पर यह स्वतंत्र हो  
गया था" । ( सर० )—इस वाक्य में "गुप्तों" शब्द से अनेक व्यक्तियों का  
बाध होने पर भी वह नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा है क्योंकि इससे किसी व्यक्ति के  
विशेष धर्म का बोध नहीं होता किन्तु गुप्त व्यक्तियों के एक विशेष समूह का  
बाध होगा है ।

१०६—कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के  
समान होता है; जैसे पुरी=अगवाप, देवी=दुर्गा, साह=बछदेव, संवत्=विजयि  
संबत् इत्यादि । इसी धाँ में वे शब्द शामिल हैं जो मुख्य नामों के बदले  
उपनाम के रूप में आते हैं; जैसे, गितारे=हिंदू=रामा शिबमनाथ, भारतेंदु=  
बाप हरिचंद्र, गुप्ताइबी=गोस्वामी कुत्रपोक्ष्य इण्डिय=दक्षिणी हिन्दुस्तान,  
इत्यादि ।

बहुत सी योग्य संज्ञाएँ, जैसे, पयोरा, हनुमान हिमाक्षय गोनाड,  
इत्यादि सूत्र में जातिवाचक संज्ञाएँ हैं; परंतु धर इत्यादि प्रयोग जातिवाचक  
धर्म में नहीं, किन्तु व्यक्तिवाचक धर्म में होता है ।

है उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे, बंबाई, चतुराई, हुश्या, मजता, मिटास, समझ, चाख इत्यादि।

प्रत्येक पदार्थ में कोई न कोई धर्म होता ही है। पानी में शीतलता, धातु में उष्णता, सोने में भारीपन, मनुष्य में विवेक और पशु में अविवेक रहता है। जब हम कहते हैं कि अमुक पदार्थ पानी है तब हमारे मन में उसके एक वा अधिक धर्मों की भावना रहती है और उन्हीं धर्मों की भावना से हम उस पदार्थ को पानी के बखे कोई दूसरा पदार्थ नहीं समझते। पदार्थ मानों कुछ विशेष धर्मों के मेल से बनी हुई एक मूर्ति है। प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक पदार्थ के सभी धर्मों का ज्ञान होना कठिन है, परंतु जिस पदार्थ को वह जानता है उसके एक न एक धर्म का परिचय उसे अक्षरम रहता है। कोई-कोई धर्म एक से अधिक पदार्थों में भी पाये जाते हैं; जैसे, बंबाई, चौराई, हुश्याई, मजत, चाखर इत्यादि।

पदार्थ का धर्म पदार्थ से अलग नहीं रह सकता; अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि यह बोधा है और वह बसका बख या रूप है। तो ही हम आपसी व्यवसा-शक्ति के द्वारा परस्पर संबंध रखनेवाली भावनाओं की अलग कर सकते हैं। हम बोधे के और और धर्मों की भावना न करके केवल उसके बख की भावना मन में जा सकते हैं और आवरणकता होने पर इस भावना को किसी दूसरे प्राणी (जैसे हाथी) के बख की भावना के साथ मिला सकते हैं।

जिस प्रकार वाचिवाचक संज्ञाएँ अर्थवान् होती हैं उसी प्रकार भाववाचक संज्ञाएँ भी अर्थवान् होती हैं क्योंकि इनके समान इनसे भी धर्म का बोध होता है। अविवाचक संज्ञा के समान भाववाचक संज्ञा से भी किसी एक ही भाव का बोध होता है।

‘धर्म’, ‘गुण’ और ‘भाव’ प्रायः पर्यायवाचक शब्द हैं। ‘भाव’ शब्द का उपयोग (व्याकरण के) नीचे लिखे अर्थों में होता है—(क) धर्म का गुण के अर्थ में; जैसे, ठंडाई, शीतलता, शीतल, मिटास, बख, बुद्धि, श्रेय इत्यादि। (ख) अवस्था—नींद, रोग, बनेका, चैपेरा, पीका, दरिद्रता, सफाई इत्यादि। (ग) व्यापार—बहाई, बहाव, दान, मजत, बोलचाल, दीप, बड़का इत्यादि।

१०४—भाववाचक संज्ञाएँ बहुधा तीन प्रकार के शब्दों से बनाई जाती हैं—

- ( क ) आतिवाचक संज्ञा से—जैसे बुढ़ापा, बड़कपन, मित्रता, शासत्व, पंडिताई, राज्य, मीम इत्यादि ।
- ( ख ) विरोध से—जैसे, गरमी, सरपी, कठोरता, मिठास बड़प्पन, चतुराई, धैर्य इत्यादि ।
- ( ग ) क्रिया से—जैसे, बबराहद, सजाबद चहाई, बहाम मार सौफ चकम, इत्यादि ।

१०५—जब व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का बोध कराने के लिए अथवा किसी व्यक्ति का असाधारण धर्म सूचित करने के लिए किया जाता है तब व्यक्तिवाचक संज्ञा आतिवाचक हो जाती है; जैसे “कहु राख्य राख्यजग केते” । ( राम० ) । “राम तीन है” । “पत्नीरा हमार घर की कस्मी है” । कबियुग के मीम ।

पहले उदाहरण में पहला ‘राख्य कस्म व्यक्तिवाचक संज्ञा है और दूसरा ‘राख्य कस्म आतिवाचक संज्ञा है । तीसरे उदाहरण में ‘कस्मी’ संज्ञा आतिवाचक है; क्योंकि इससे विप्लव की स्त्री का बोध नहीं होता, किंतु कस्मी के समान एक गुणवती स्त्री का बोध होता है । इसी प्रकार ‘राम’ और ‘मीम’ भी आतिवाचक संज्ञाएँ हैं । “गुप्तों की शक्ति बनीय होने पर यह स्वर्ण हो गया था” । ( सर० )—इस वाक्य में “गुप्तों” कस्म से अनेक व्यक्तियों का बोध होने पर भी यह नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा है क्योंकि इससे किसी व्यक्ति के विरोध धर्म का बोध नहीं होता किंतु इस व्यक्तियों के एक विरोध समूह का बोध होता है ।

१०६—कुछ आतिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के समान होता है; जैसे, पुरी=जगन्नाथ, देवी=दुर्गा, ब्रह्म=ब्रह्मदेव, संबत्=विष्णु संवत् इत्यादि । इसी धर्म में वे शब्द शामिल हैं जो मुख्य नामों के बहुते उपनाम के रूप में आते हैं; जैसे, सितारे=हिंदू=राजा सिध्दप्रसाद, मारतेंदु=बाबू हरिचंद्र, गुसाईंजी=गोस्वामी तुलसीदास दक्षिण=दक्षिणी हिंदुस्तान, इत्यादि ।

पहुत सी बीगस्म संज्ञाएँ, जैसे, गयौर, हनुमान, विमाख्य, गोपाख, इत्यादि मूल में आतिवाचक संज्ञाएँ हैं; परंतु जब इनका प्रयोग आतिवाचक धर्म में नहीं, किंतु व्यक्तिवाचक धर्म में होता है ।



१००—कमी-कमी भाववाचक संज्ञा का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता है; जैसे, "उसके धागे सब रूपवती किरायी निरादर हैं"। ( शकु० )। इस वाक्य में "निरादर" कर्म्य से "निरादर-बोध्य स्त्री" का बोध होता है। "ये सब कैसे अपने पहिरावै हैं"। ( मर० )। यहाँ "पहिरावै" का अर्थ 'पहिनने के लिये' से है।

### संज्ञा के स्थान में आनेवाला शब्द ।

१०१—सर्वनाम का उपयोग संज्ञा के स्थान में होता है; जैसे मैं (सारथी) रास खींचता हूँ। ( शकु० )। यह ( शकुंतला ) वन में पकी मिछी थी। ( शकु० )।

१०२—विशेष्य कमी-कमी संज्ञा के स्थान में आता है; जैसे, "रुखके बड़ों का वह संकल्प है"। ( शकु० ) "छोटे बड़े न ही सके" ( सत )।

१०३—कोई कोई क्रियाविशेष्य संज्ञाओं के समान उपयोग में आते हैं; जैसे, "जिसका भीतर-बाहुर एकसा हो"। ( सत्य० )। "हाँ में हँ मिथाना"। "यहाँ की भूमि अच्छी है"। ( भाषा० )।

१०४—कमी-कमी विस्मयादि-बोधक शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त होता है; जैसे, "वहाँ हाय-हाय मची है।" "उनकी बकी बाह-बाह हुरै।"

१०५—कोई भी शब्द वा अक्षर केवल उसी शब्द वा अक्षर के अर्थ में संज्ञा के समान उपयोग में जा सकता है; जैसे 'मैं' सर्वनाम है। मुझारे छेठ में कई पार "फिर" आया है। "का" में "आ" की मात्रा मिछी है। "ब" संयुक्त अक्षर है। ( अ०—द०—३ )

[ टी०—लंछा के मेरों के विषय में हिंदी-वैयाकरणों का एकमत नहीं है। अधिकांश हिंदी-वैयाकरणों में लंछा के पाँच भेद माने गये हैं—जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, गुणवाचक, भाववाचक और सबनाम। ये भेद कुछ तो संस्कृत व्याकरण के अनुसार और कुछ अंगरेजी व्याकरण के अनुसार हैं, तथा कुछ रूप के अनुसार और कुछ प्रयोग के अनुसार हैं। संस्कृत के 'प्रातिपदिक' नामक शब्द भेद में लंछा, गुणवाचक ( विशेष्य ) और सबनाम का समावेश होता है। क्योंकि उक्त भाषा में इन तीनों शब्द-भेद

का अन्तर्गत प्रायः एक ही से प्रत्ययों के प्रयोग द्वारा होता है। कदाचित् इसी आधार पर हिन्दी-ब्रह्मण्य तीन शब्द-भेदों को संज्ञा मानते हैं। दूसरा कारण यह जान पड़ता है कि संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण, इन तीनों ही से वस्तुओं का प्रत्यक्ष वा परोक्ष बोध होता है। सर्वनाम और विशेषण को संज्ञा के अंतर्गत मानना चाहिये अथवा उसके मिस्र अलग-अलग वर्गों में रखना चाहिये, इस विषय का विवेचन आगे चलकर सर्वनाम और विशेषण-संबंधी अध्यायों में किया जाएगा। यहाँ केवल संज्ञा के उपभेदों पर विचार किया जाता है।

संज्ञा के आतिशायक, व्यक्तिवाचक भाववाचक उपभेद संस्कृत व्याकरण में नहीं है। ये उपभेद अँगरेजी-व्याकरण में, दो अलग-अलग आधारों पर अर्थ के अनुसार किये गये हैं। पहले आधार में इस बात का विचार किया गया है कि सर्वपूर्ण संज्ञाओं से या तो वस्तुओं का बोध होता है या धर्मों का, और इस दृष्टि से संज्ञाओं के दो भेद माने गये हैं—(१) पदार्थवाचक, (२) भाववाचक। दूसरे आधार में केवल पदार्थ वाचक संज्ञाओं के अर्थ का विचार किया गया है कि उनमें या तो व्यक्ति (अकेले पदार्थ) का बोध होता है या अति अनेक पदार्थों का और इस दृष्टि से पदापवाचक संज्ञाओं के दो भेद किये गये हैं—(१) व्यक्तिवाचक, (२) आतिशायक। दोनों आधारों को मिलाकर संज्ञा के तीन भेद होते हैं—(१) व्यक्तिवाचक, (२) आतिशायक और (३) भाववाचक। (सर्वनाम और विशेषण को छोड़कर) संज्ञाओं के ये तीन भेद हिन्दी के कई व्याकरणों में पाये जाते हैं, परंतु उनमें इस वर्गीकरण के किसी भी आधार का उल्लेख नहीं मिलता। हिन्दी के सबसे पुराने (आदम साहब के लिखे हुए एक छोटे से) व्याकरण में संज्ञा का एक और भेद 'क्रियावाचक' के नाम से दिया गया है। हमने क्रियावाचक संज्ञा को भाववाचक संज्ञा के अंतर्गत माना है, क्योंकि भाव वाचक के अन्तर्गत् क्रियावाचक संज्ञा भी आ जाती है। छापा-भास्कर में यह संज्ञा "क्रिया का साधारण रूप" वा "क्रियार्थक संज्ञा" कही गई है। उसके यह भी लिखा है कि यह वास्तु से बनती है। (अ०-१८८-अ)। यह भेद मुरलधर के अनुसार है और यदि इस प्रकार एक ही समय एक से अधिक आधारों पर वर्गीकरण किया जाय तो कई संकीर्ण विभाग हो जायेंगे।

यहाँ अब मुख्य विचार यह है कि जब संज्ञा के ऊपर कहे हुए तीन भेद संस्कृत में नहीं हैं तब उन्हें हिन्दी में मानने की क्या आवश्यकता है ?

सर्वाय में अर्घ्य के अनुसार शब्दों के भेद करना लक्षणा का विषय है, इसलिए व्याकरण में इन में ही जो केवल उनकी आवश्यकता होने पर मानना चाहिए। हिंदी में इन में ही का काम कर्नाठ और म्युलति में पढ़ा है, इसलिए वे भेद संस्कृत में होने पर भी हिंदी में आवश्यक हैं। संस्कृत में भी परोक्ष रूप से भाषाशास्त्र संज्ञा मानी गई है। केशवराममठ-कृत "हिंदी व्याकरण" में संज्ञा के भेदों में ( संस्कृत की भाँति पर ) भाषाशास्त्र संज्ञा का नाम नहीं है, पर लिंग-निर्णय में यह नाम आया है। अब व्याकरण में संज्ञा के इस भेद का काम पढ़ता है तब इसको स्वीकार करने में क्या हानि है ?

किसी किसी हिंदी-व्याकरण में संज्ञा के समुदायशास्त्र और इत्यशास्त्र नाम के औरों को भेद माने गये हैं, पर अँगरेजी के समान हिंदी में इनकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके विवा समुदायशास्त्र का समावेश व्यक्तिशास्त्र तथा वातिशास्त्र में और इत्यशास्त्र का समावेश वातिशास्त्र में हो जाता है।

### दूसरा अध्याय।

#### सर्वनाम।

११३—सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञा से बंधने में आता है, जैसे मैं ( बोधनेवाका ए ) ( सुनने-वाका ), वह ( विकृतवर्ती वस्तु ), वह ( दूरवर्ती वस्तु ) इत्यादि।

[ टी०—हिंदी के प्रायः सभी व्याकरण सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं। संस्कृत में "अर्घ्य" ( प्रातिपदिक ) के समान बिन नामों ( संज्ञाओं ) का कर्नाठ होता है उनका एक अलग वर्ग मानकर उसका नाम 'अर्घ्यनाम' रक्खा गया है। 'अर्घ्यनाम' शब्द एक और अर्घ्य में भी आ सकता है। वह वह है कि हम ( वह ) नामों ( संज्ञाओं ) के बंधने

७ जो पदार्थ केवल डेर के रूप में नाया या तोना जाता है उसे द्रव्य कहते हैं जैसे, अनाज, दूध, पी, शरट, मोना इत्यादि।

में का शब्द आता है उसे लघनाम कहते हैं। हिंदी में 'लघनाम' शब्द से यही ( निहत्ता ) अर्थ लिया जाता है और इसी के अनुसार वैवाचक्य सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं। वचन में लघनाम एक प्रकार का नाम अर्थात् संज्ञा ही है; जिस प्रकार संज्ञाओं के उपभेद व्यक्तिवाचक व्यक्तिवाचक और भाववाचक हैं उसी प्रकार लघनाम भी एक उपभेद ही लक्ष्य है। पर लघनाम में एक विशेष विमर्शयुक्तता है। जो संज्ञा में नहीं पाई जाती। संज्ञा से सदा उठी वस्तु का बोध होता है चित्तका वह ( संज्ञा ) नाम है परंतु लघनाम से, पूर्वापर संबंध के अनुसार, किसी भी वस्तु का बोध हो सकता है। 'लक्षक' शब्द से लक्षके ही का बोध होता है, पर, लक्षक, आदि का बोध नहीं हो सकता, परंतु 'वह' कहने से पूरुकार संबंध के अनुसार, लक्षक, पर, लक्षक, हाथी, घोड़ा आदि किसी भी वस्तु का बोध हो सकता है। "मैं" बोलनेवाले का नाम के बदले आता है इसलिए जब बोलने वाला है तब "मैं" का अर्थ मोहन है परंतु जब बोलने वाला चरहा है ( बैठा बहुवा कथा-कहानियों में होता है तब ) "मैं" का अर्थ चरहा होता है लघनाम की इसी विमर्शयुक्तता के कारण उसे हिंदी में एक अज्ञात शब्द-भेद मानते हैं। "अथात्त्वदीनिका" में भी लघनाम संज्ञा से भिन्न माना गया है परंतु उसमें सर्वनाम का जो लक्षण दिया गया है वह निर्दोष नहीं है। "नाम का एक बार कहकर फिर उसकी बयान को शब्द आता है उसे सर्वनाम कहते हैं।" यह लक्षण "मैं", "तू", "वही" आदि सर्वनामों में परित नहीं होता इसलिए इनमें अस्म्यसि दोष है, और यही यही वह संज्ञाओं में भी परित हो सकता है इसलिए इसमें अतिस्म्यसि दोष भी है। एक ही संज्ञा का उपयोग बार बार करने से भाषा की हीनता कथित होती है; इसलिए एक संज्ञा के बदले उसी अर्थ की दूसरी संज्ञा का उपयोग करने की आज्ञा है। यह बात हृद के विचार से कविता में बहुधा होती है, जैसे 'मनुष्य' के बदले 'मानव', 'नर' आदि शब्द मिले जाते हैं। सर्वनाम के पूर्वोक्त लक्षण के अनुसार इन सब पर्यायवाची शब्दों को भी लघनाम कहना पड़ेगा। यद्यपि लघनाम के कारण संज्ञा को बार बार नहीं बुरावना पड़ेगा, तथापि लघनाम का यह उपयोग ठीकका असाधारण बर्न नहीं है।

माधवचंद्रोदय में "लघनाम" के लिए "संज्ञाप्रतिनिधि" शब्द का उपयोग किया गया है और संज्ञा प्रतिनिधि के कह मेरों में एक का नाम "लघनाम"

पर्याय में अर्थ के अगुत्तर शब्दों के भेद करना लक्ष्याक्ष का विषय है, इसलिए व्याकरण में इन भेदों को केवल उनही आवश्यकता होने पर मानना चाहिए। हिंदी में इन भेदों का काम कर्पांतर और व्युत्पत्ति में पड़ता है, इसलिए ये भेद संस्कृत में होने पर भी हिंदी में आवश्यक हैं। संस्कृत में भी परोक्ष रूप से भाववाचक संज्ञा मानी गई है। केदारामह-कृत "हिंदी-व्याकरण" में संज्ञा के भेदों में (संस्कृत की प्वाह पर) भाववाचक संज्ञा का नाम नहीं है, पर लिंग-निरूपण में यह नाम आया है। अब व्याकरण में संज्ञा के इस भेद का काम पड़ता है तब इत्को स्वीकार करने में क्या हानि है ?

किसी-किसी हिंदी-व्याकरण में संज्ञा के समुदायवाचक और इभ्यवाचक नाम के औरतही भेद माने गये हैं, पर अँगरेजी के समान हिंदी में इनकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके ठिका समुदायवाचक का समावेश अस्तिवाचक तथा नातिवाचक में और इभ्यवाचक का समावेश नातिवाचक में हो जाता है।

### दूसरा अध्याय।

#### सर्वनाम।

११३—सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञा से बहसे में आता है, जैसे मैं (बोझनेवाला तू) (मुझनेवाला), यह (विकृत्यती बस्तु), वह (दूरवर्ती बस्तु) इत्यादि।

[ टी०—हिंदी के प्रायः सभी व्याकरण सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं। संस्कृत में "सर्व" (प्रातिपदिक) के समान त्रिन नामों (संज्ञाओं) का कर्पांतर होता है उनका एक अलग बग मानकर उसका नाम 'सर्वनाम' रक्खा गया है। 'सर्वनाम' शब्द एक और अर्थ में भी आ सकता है। वह वह है कि सर्व (सर्व) नामों (संज्ञाओं) के इत्को

को पदाय केवल डेर के रूप में नापा या तोसा जाता है उभे द्रव्य कहते हैं जैसे, अनाब, दूध, पी, शक्कर, गोना इत्यादि।

में जो शब्द आता है उसे सर्वनाम कहते हैं। हिंदी में 'सबनाम' शब्द से यही (निष्ठा) अर्थ लिया जाता है और इसी के अनुसार वैपाकरस सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं। यथार्थ में सर्वनाम एक प्रकार का नाम अर्थात् संज्ञा ही है। जिस प्रकार संज्ञाओं के उपमेय व्यक्तिवाचक वातिवाचक और भाववाचक हैं उसी प्रकार सबनाम भी एक उपमेय ही सकता है। पर सबनाम में एक विशेष बिलक्षणता है। जो संज्ञा में नहीं पाई जाती। संज्ञा से सदा उसी वस्तु का बोध होता है जिसका वह (संज्ञा) नाम है परंतु सबनाम से, पूर्वापर संबंध के अनुसार, किसी भी वस्तु का बोध हो सकता है। 'सबका' शब्द से सबके ही का बोध होता है, पर, सबका, आदि का बोध नहीं हो सकता, परंतु 'वह' कहने से पूर्वापर संबंध के अनुसार, सबका, पर, सबका, हाथी, घोड़ा, आदि किसी भी वस्तु का बोध हो सकता है। "मैं" बोलनेवाले के नाम के बदले आता है इसलिए जब बोलने वाला है तब "मैं" का अर्थ मोहन है परंतु जब बोलने वाला सरहा है (कैला बहुवा कया-कहानियों में होता है तब) "मैं" का अर्थ सरहा होता है सबनाम की इसी बिलक्षणता के कारण उसे हिंदी में एक अलग शब्द-भेद मानते हैं। "अपाठस्वदीपिका" में भी सबनाम संज्ञा से भिन्न माना गया है; परंतु उसमें सर्वनाम का जो अर्थ दिया गया है वह निर्दोष नहीं है। "नाम को एक बार कहकर फिर उसकी जगह जो शब्द आता है उसे सर्वनाम कहते हैं।" यह अर्थ "मैं", "तू", "तूने" आदि सर्वनामों में पठित नहीं होता इसलिए इनमें अस्मिन्नि दोष है और नहीं नहीं वह संज्ञाओं में भी पठित हो सकता है इसलिए इसमें अस्मिन्नि दोष भी है। एक ही संज्ञा का उपयोग बार बार करने से भाषा की हीनता उचित होती है; इसलिए एक संज्ञा के बदले उसी अर्थ की दूसरी संज्ञा का उपयोग करने की आज्ञा है। यह बात लुंढ के विचार से कविता में बहुवा होती है; श्लेष 'ममुष्ण' के बदले 'मानव', 'मर' आदि शब्द लिखे जाते हैं। सर्वनाम के पूर्वोक्त अर्थ के अनुसार इन सब पर्यायवाची शब्दों को भी सबनाम कहना पड़ेगा। अतः सर्वनाम के कारण संज्ञा को बार बार नहीं पुनरावृत्ति पड़ता, तथापि सर्वनाम का वह उपयोग उसका असाधारण अर्थ नहीं है।

महाशब्दकोश में "सबनाम" के लिए "संज्ञाप्रतिनिधि" शब्द का उपयोग किया गया है और संज्ञा प्रतिनिधि के कई भेदों में एक का नाम "सब

माम" रक्खा गया है। सर्वनाम के मेरों की सीमाता इस व्याख्यान के अंत में की जायगी परंतु "संबन्धप्रतिनिधि" शब्द के विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि हिंदी में "सर्वनाम" शब्द इतना रुढ़ हो गया है कि उसे बदलने से भेद शाम नहीं।

११७—हिंदी में सब निश्चय ११ सर्वनाम हैं—मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या।

११५—प्रयोग के अनुसार सर्वनामों के छः भेद हैं—

- ( १ ) पुरुषवाचक—मैं, तू, आप ( आदरसूचक ) ।
- ( २ ) निश्चयवाचक—आप ।
- ( ३ ) निश्चयवाचक—यह, वह, सो ।
- ( ४ ) सर्वधवाचक—जो ।
- ( ५ ) प्रश्नवाचक—कौन, क्या ।
- ( ६ ) अभिप्रेतवाचक—कोई, कुछ ।

११६—वचन अथवा लेशक की दृष्टि से सर्वनाम सृष्टि के तीन भाग किये जाते हैं—पहला, स्वयं वचन या लेशक, दूसरा श्रोता किंवा पाठक, और तीसरा, क्या विषय अर्थात् वचन और श्रोता को जोड़कर और सब। सृष्टि के इन तीनों रूपों को व्याकरण में पुरुष कहते हैं और वे क्रमशः उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अधमपुरुष कहाते हैं। इन तीन पुरुषों में उत्तम और मध्यम पुरुष ही प्रथम हैं, क्योंकि इनका अर्थ निश्चित रहता है। अधमपुरुष का अर्थ अभिप्रेत होने के कारण उसमें बाकी की सृष्टि के अर्थ का समावेश होता है। उत्तमपुरुष "मैं" और मध्यमपुरुष "तू" को जोड़कर दोप सर्वनाम आर सप्त संज्ञाएँ अधमपुरुष में आती हैं। इस अभिप्रेत वस्तुसमूह को संज्ञेय में व्यक्त करने के लिए वह सर्वनाम की अधमपुरुष के उदाहरण के लिए ले लेते हैं।

सर्वनामों के तीनों पुरुषों के उदाहरण ये हैं—उत्तमपुरुष—मैं, मध्यम पुरुष—तू, आप ( आदरसूचक ), अधमपुरुष—यह, वह, आप ( आदरसूचक ), सो जो, कौन, क्या, कोई, कुछ। ( सप्त संज्ञाएँ अधमपुरुष हैं। ) सब-पुरुष-वाचक—आप ( निश्चयवाचक ) ।

[ ६०—(१) माया भास्कर और दूसरे हिंदी व्याकरण में “आप” शब्द “आदर-शुद्ध” नाम से एक अलग बर्ग में गिना गया है, परंतु म्युसफि के अनुसार, ( सं०—आत्मन्, प्रा०—इत् ) “आप”, यथाय मे, निबन्धात्मक है और आदर-शुद्धता उतका एक विशेष प्रयोग है। आदरशुद्ध “आप” शब्द और अन्यपुरुष सभनामों के लिए आता है। इसलिए उनकी गिनती पुरुषवाचक सभनामों में ही होनी चाहिए। निबन्धात्मक “आप” अलग अलग स्थानों में अलग अलग पुरुषों के बदले आ सकता है। इसलिए ऊपर सभनामों के वर्गीकरण में वही निबन्धात्मक “आप” “उर्ध्व पुरुष वाचक” कहा गया है। निबन्धात्मक “आप” के समानाधिक “स्वयं” और “स्वतः” है, इनका प्रयोग बहुधा क्रिया विशेषण के समान होता है ( सं०—१२५ सू )।

(२) “मैं”, “तू” और “आप” ( म० पु० ) को छोड़कर सभनामों के जो और मेर हैं वे सब अन्यपुरुष सभनाम के ही मेर हैं। मैं, तू और आप ( म० पु० ) सभनामों के दूसरे मेरों में नहीं आते, इसलिए ये ही तीन सभनाम विशेषण पुरुषवाचक हैं। जैसे तो प्रायः सभी सभनाम पुरुषवाचक कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनके व्याकरण के पुरुषों का बोध होता है, परंतु दूसरे सभनामों में उच्च और मध्यम पुरुष नहीं होते, इसलिए उच्च और मध्यम पुरुष ही प्रधान पुरुषवाचक हैं और बाकी सब सभनाम अग्रधान पुरुषवाचक हैं। सभनामों का अर्थ और प्रयोग का विचार करने में सुमीठे के लिए कहीं-कहीं उनके रूपान्तरों ( लिंग, बचन, वारक ) का ( जो दूसरे प्रकार का विषय है ) उल्लेख करना आवश्यक है।

११०—मैं—इ० पु० ( पुरुषवाचक )।

( अ ) जब बह या शेरुड शेरुड अपने ही संबंध में कुछ विधान करता है तब वह इस सभनाम का प्रयोग करता है। जैसे भाषा-रूप करव मैं सोरूं। ( राम )। जो मैं ही इच्छाकर्य नहीं तो फिर और और ही सकता है। ( गुरु )। “यह किसी मुझे सिखी है।”

( आ ) अपने से बने लोगों के साथ बातने में अथवा देवता से प्रायश्च करने में, जैसे, “साधो”—अब मैंने भी उपासन क बिन्द ( चिह्न देखे )। ( गुरु० )। “हरि—पिता मैं साधन हैं।” ( सत्य० )।

( इ ) जो अपने लिये बहुधा “मैं” का ही प्रयोग करती है; जैसे, शर्तवदा—मैं सारी बधा करूं। ( गुरु० )। रा०—घरी ! आब मैंने येमे सुरे सुर



सपने देखे हैं कि जब से सारे उठी हुई कब्रों का रूप रहा है। ( सत्य० ) ।  
( अ० ११८ अ ) । ११८—हम—उ० पु० ( बहुवचन ) ।

इस बहुवचन का अर्थ संज्ञा के बहुवचन से मिला है। 'बढ़के' कर्म एक से अधिक बड़कों का सूचक है; परंतु 'हम' कर्म एक से अधिक 'मैं' ( बोधनेवालों ) का सूचक नहीं है, क्योंकि एकसाथ गाने या प्रार्थना करने के सिवा ( अथवा सबकी धार से किये हुए खेल में इस्ताहर करने के सिवा ) एक से अधिक लोग मिलकर प्रयास कभी नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में "हम" का अर्थ यही है कि बहुत अपने साथियों की ओर से प्रतिबिम्बि होकर अपने तथा अपने साथियों के विचार एकसाथ प्रकट करता है।

- ( अ ) संपादक और प्रबंधक लोग अपने अपने बहुधा उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग करते हैं; जैसे, "हमने एक ही बात को दो-दो तीन-तीन तरह से लिखा है।" ( स्वा० ) "हम पहले भाग के धारम में लिख आए हैं।" ( इति ) ।
- ( आ ) बड़े-बड़े अधिकारी और राजा-महाराजा; जैसे, इसलिये अब हम दरतदार बैठे हैं।" ( इति० ) "बा—यही तो हम भी करते हैं।" ( सत्य० ) । "दुर्लभ—तुम्हारे देखने ही से हमारा सन्मर हो गया।" ( शकु० ) ।
- ( इ ) अपने कुछ न देखा अथवा अनुप्य-जाति के संबंध में; जैसे "हम लोग पाकर भी उसे अपयोग में लाते नहीं।"  
( भारत० ) "हम बनवासियों ने ऐसे भूषण आगे कभी न देखे थे।" ( शकु० ) । "हवा के बिना हम पक्ष धर भी नहीं की सकते।"
- ( ई ) कमी-कमी अस्मिता अथवा श्रेय में; जैसे, "वि—हम आपी वरिष्ठा छोड़े क्या करें।" ( सत्य० ) । "माहव्य—इस भृगुपाशील राजा की मित्रता से हम तो बड़े दुखी हैं।" ( शकु० ) ।

[ ल०—हिंदी में "मैं" और "हम" के प्रयोग का बहुतता अंतर प्रायुक्तिक है। देवार्थी लोग बहुधा 'हम' ही प्रयोग करते हैं, 'मैं' नहीं बोलते। प्रेमसागर और रामचरितमानस में 'हम' के सब प्रयोग नहीं मिलते। अंग

देखी में "मैं" के बदले "हम" का उपयोग करना भूल लमझा जाता जाता है; वस्तु हिंदी में बहुधा "मैं" के बदले "हम" आता है।

"मैं" और "हम" के प्रयोग में इतनी अस्थिरता है कि एक बार बिलके लिसे "मैं" आता है उसीके लिये उसी क्षण में फिर "हम" का उपयोग होता है। जैसे, "मा०—राम राम ! मन्ना, आपके आने से हम कहीं बौधव ! मैं तो जाने ही को था कि इतनी में आप आ गए।" ( सत्य० )। "दुष्पंत—अच्छा, हमारा संदेशा यथाय मुगता हीबो। मैं उपलब्धों की रक्षा को आता हूँ।" ( शकु० )—यह न होना चाहिए।]

( ७ ) कभी, कभी एक ही वाक्य में "मैं" और "हम" एक ही पुरुष के लिये प्रयोग: व्यक्ति और प्रतिविधि के अर्थ में आते हैं; जैसे, कुंभधिक—मुझे क्या दीप है, यह तो हमारा कुंभधर्म है।" ( शकु० ) "मैं चाहता हूँ कि आपो की ऐसी सूरत न हो और हम सब एकचित्त होकर रहें।" ( परी० )।

( ८ ) कभी अपने ही लिये 'हम' का उपयोग बहुधा कम करती है। ( सं०—११० ह ) पर कहींकित "हम" के साथ कभी-कभी पुष्पिग किया आती है जैसे, "चौतमी—ओ, अब निबधक बात-बीत करो; हम आते हैं। ( शकु० )। "राजी—महाराज, अब हम महल में आते हैं। ( कर्पूर )।

( ९ ) साहु-संत अपने लिये 'मैं' वा 'हम' का प्रयोग न करके अपने लिये बहुधा "अपने राम" बोलते हैं; जैसे—अब अपने राम जानेबाबे हैं।

( १० ) 'हम' से बहुधा का बीच कराने के लिये उसके साथ बहुधा 'लोग' शब्द लगा देते हैं जैसे, ह०—आर्य, हम लोग तो जमिय हैं, हम ही बात कर रहे जायें ? ( सत्य० )।

१११—ह—मन्वमपुदप ( एकवचन )। ( मान्य—सैं )।

"हूँ" शब्द से निराहार वा हलकापन प्रकट होता है; इसलिये हिंदी में बहुधा एक व्यक्ति के लिये भी "हम" का प्रयोग करती हैं। "हूँ" का प्रयोग बहुधा बीजे लिये अर्थों में होता है—

( अ ) देवता के लिए जैसे “देव, दू दयालु, दीन ही दू दानी, हीं मिळारी ।” ( विषय ) । दीपवधु ( ए ) मुझ रूपते हुए की बधा । ( गुटका० ) ।

( ब ) छोटे बच्चे अपना खेले के लिये ( प्यार में ), जैसे,—एक तपस्विनी—  
“बरे हठीके शाबक, दू इस बन के पशुओं को क्यों सताता है ?”  
( शकु ) । “उ०—तो दू बक आगे आगे भीड़ हटाता बक ।”  
( सत्व० ) ।

( इ ) परम मित्र के लिये, जैसे, “अमसूया-सखी तू क्या कहती है ?”  
( शकु० ) । “दुर्घ्यात-सखा, तुमसे मी ली माता कहकर बोली है ।”

[ ए०—छोटी अक्षरमा के भाई-बहिन आपस में “तू” का प्रयोग करते हैं । कहीं-कहीं छोटे बच्चे प्यार में माँ से “तू” करते हैं । ]

( ई ) अवस्था और अधिकार में अपने से ऊँचे के लिए ( परिचय ), जैसे,  
“रानी-माहिली, यह रक्षा-बंधन तू सम्हाल के अपने पास रख ।”  
( सत्व० ) । “दुर्घ्यात-( शारपाह से ) पर्वतायन, तू अपने काम में असाधधानी मत करियो ।” ( शकु० ) ।

( उ ) तिरस्कार और श्रेय में किसीसे, जैसे, “बरासंध कीकृष्णचंद्र से अति अमिमान कर कहने आगा, बरे—दू भरे सौंदी से भाग जा, मैं तुम्हें क्या माऊँ !” ( प्रेम० ) । वि०—“बोह, अभी तैने मुझे पहचान कि नहीं ?” ( सत्व ) ।

११०—तुम—मध्यमप्रकार ( बहुवचन ) ।

यद्यपि ‘हम’ के समान ‘तुम’ बहुवचन है, तथापि सिद्धाचार के अनुसारे से इसका प्रयोग एकही अनुप्य से बोझवे में होता है । बहुवचन के लिये ‘तुम’ के साथ बहुधा ‘तुम’ शब्द आता है ; जैसे, “मित्र, तुम बड़े विद्वान ही ।” ( परी० ) “तुम लोग अभी तक कहाँ थे ?”

( अ ) तिरस्कार और श्रेय को छोड़कर शेष अर्थों में “तू” के सबसे बहुधा “तुम” का उपयोग होता है ; जैसे, “दुर्घ्यात—दे रैबतक तुम सेवापति को बुझाओ ।” ( शकु० ) । “आद्यतीव तुम अक्षर दात्री ।” ( राम० ) । “उ०—पुत्री, करो तुम और और सेवा करोगी ।” ( सत्व० ) ।

( घा ) 'हम' के साथ 'तुम' के बदले 'तू' आता है जैसे, "होगों  
 पादे—तो तू हमारा मित्र है । हम-तुम साथ ही साथ हाठ को बलें ।"  
 ( गङ्ग ) ।

( इ ) आदर के लिए 'तुम' के बदले 'भाय' आता है । ( सं०—१९१ )

१११—सह—अन्वयपुरुष ( एकवचन ) ।

( बह, जो, कोई, कीम, इत्यादि सब सर्वनाम ( और सब संज्ञार्थ )  
 अन्वयपुरुष हैं । यहाँ अन्वयपुरुष के उदाहरण के लिए केवल 'बह' दिया  
 गया है । )

हिंदी में आदर के लिये बहुधा बहुवचन सर्वनामों का प्रयोग किया जाता  
 है । आदर का विचार होकर 'बह का प्रयोग भीके लिये अर्थों में होता है—

( अ ) किसी एक प्राणी, पदार्थ वा धर्म के विषय में बोझने के लिये, जैसे,  
 "ना०—विस्तरिह हरिचंद्र महाशय हैं उसके आशय बहुत उदार  
 हैं ।" ( सत्य ) । "जैसी दुर्बला उसकी हुई यह सबको विदित  
 है ।" ( गुरुका० ) ।

( घा ) बड़े बुरे के आश्रमी के विषय में ठिरस्कार दिखाने के लिये, जैसे,  
 "बह ( श्रीकृष्ण ) तो गैवार थाक है ।" ( प्रेम० ) । "इ०—नामा  
 हरिचंद्र का प्रसंग बिकला या सो उन्होंने उसकी बरी स्तुति की ।"  
 ( सत्य० ) ।

( इ ) आदर और बहुल के लिए ( सं०—१९१ ) ।

१११—सह—अन्वयपुरुष ( बहुवचन ) ।

कोई-कोई इसे "बह" बिलते हैं । कथायद्-उद् में इसका रूप "बे"  
 लिखा है जिससे यह अनुमान नहीं होता कि इसका प्रयोग उद् की नकल  
 है । पुराणों में भी बहुधा "बे" पाया जाता है । इसलिए बहुवचन का शब्द  
 रूप "बे" है, "बह" नहीं ।

( अ ) एक से अधिक प्राणियों, पदार्थों वा धर्मों के विषय में बोझने के लिये  
 "बे" ( वा "बह" ) आता है, जैसे, "बहकी तो रतुंरिपों के भी  
 होती हैं, पर के बिलते बहपि नहीं ।" ( गुरुका० ) । "देखी बातें

ये हैं ।" ( स्वा० ) । "बहु सौदागर की सब बूझाव को अपने घर ले जाया चाहते हैं ।" ( परी० ) ।

( भा ) एक ही व्यक्ति के विषय में आवर प्रकट करने के लिये, जैसे, "वे ( काशिदत्त ) असामान्य वैवाचक थे ।" ( रघु० ) । "ज्या अच्छा होता जो यह इस काम को कर चाहे ।" ( रघु० ), जो यहाँ मुक्ति के पीछे हुईं सो उनसे किसने कहें ? ( रघु० ) ।

[ छ — ऐतिहासिक पुरुषों के प्रति आदर प्रकट करने के संबंध में हिंदी में बड़ी गड़बड़ है । भीषरम्पवा श्रेय में कई कवियों के उद्धृत चरित दिये गये हैं, उनमें कबीर के लिए एकवचन का और देव के लिए बहुवचन का प्रयोग किया गया है । राजा शिवप्रसाद ने इतिहास तिमिरनाशक में राम, संकराचार्य और डॉ. साहू के लिए बहुवचन प्रयोग किया है और कुछ अक्षर, भूतनाथ और पुषिष्ठिर के लिए एकवचन किया है । इन उदाहरणों से कोई निश्चित निबन्ध नहीं बनाया जा सकता । तथापि यह बात जान पड़ती है कि आदर के लिए पात्र की जाति, गुण, पद और शील का विचार अक्षर किया जाता है । ऐतिहासिक पुरुषों के प्रति आदरपूर्ण पदों की अपेक्षा अधिक आदर दिखाया जाता है, और यह आदर-वृद्धि विदेशी ऐतिहासिक पुरुषों के लिये भी कई अंशों में पाई जाती है । आदर का प्रथम छोड़कर, ऐतिहासिक पुरुषों के लिये एकवचन ही का प्रयोग करना चाहिए । ]

१२१—आप ( 'तुम' का 'वे' के बराबर—मध्यम वा अन्यपुरुष ( बहुवचन ) ।

यह पुरुषवाचक "आप" प्रयोग में विचित्राचक "आप" ( अं०—१२५ ) से भिन्न है । इसका प्रयोग मध्यम और अन्यपुरुष बहुवचन में आदर के लिए होता है० । प्राचीन कविता में आदर-सूचक "आप" का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है ।

( अ ) अपने से बड़े इरजेवाले मनुष्य के लिये "तुम" के बराबर "आप" का प्रयोग शिष्ट और आक्षेपक समझा जाता है; जैसे, "स०—अप्रा, आपने हस्तों

० संस्कृत में आदर-सूचक "आप" के अर्थ में "महान्" शब्द आता है और उसका प्रयोग केवल अन्यपुरुष एकवचन में होता है; जैसे, "महान् अपि अस्ति" ( आप भी जानते हैं ) ।

सीति का भी कुछ उपास किया है ?" ( अत्य० ) "तपस्वी—हे ब्रह्मचर्यापक, आपको बही उचित है ।" ( शकु० ) "आये आपु, मधीकरी ।" ( संत० ) ( धा ) बराबरवाले धीर अपने से हृदय छोड़े दरजे के मनुष्य के लिए "दुम" के बड़े बहुधा "आप" कहने की प्रथा है; जैसे, "ई०—महा आप उदार वा महाराज किसे करते हैं ?" ( सत्य० ) । "जब आप पूरी बात ही न सुनें तो मैं क्या बचाव हूँ" । ( परी० ) ।

( ६ ) आदर के साथ बहुत्व के बोध के लिए 'आप' के साथ बहुधा 'योग' कहा देते हैं, जैसे "ह०—आप लोग मेरे सिर-धौकों पर हैं ।" ( सत्य० ) । "हस विषय में आप लोगों की क्या राय है ?"

( ६ ) "आप" शब्द की अपेक्षा अधिक आदर सूचित करने के लिए बड़े पदाधिकारियों के प्रति श्रीमातृ, महाराज सरभार, हुजूर आदि शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे, "सार०—मैं राख खीचता हूँ; महाराज कहत हों ।" ( शकु० । ) "मुझे श्रीमातृ के दर्शन की चाहता थी सो आज पूरी हुई ।" वो हुजूर की राख सो मेरी राख ।'

छिनों के प्रति घटिराज आदर प्रदर्शित करने के लिये "श्रीमती", "देवी" आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे "तब से श्रीमती के रिषा-जन्म में विष्णु पढ़ने लगा ।" ( हि० अ० )

( ६ )—वहाँ "आप" का प्रयोग होना चाहिए वहाँ "दुम" या "हुजूर" कहना और वहाँ "दुम" कहना चाहिए वहाँ "आप" या "हूँ" कहना अनुचित है; क्योंकि इच्छे मोता का अपमान होता है । एक ही प्रसंग में "आप" और "दुम", "महाराज" और "आप" कहना असंगत है, जैसे, चित्त बाट की विता महाराज को है सो कयी न हुइ होगी क्योंकि तपोवन क विष्णु तौ बेबल आपके अनुप की टंकार ही से मिट जाते हैं ।" ( शकु० ) ।

"आपने बड़े प्यार से कहा कि आ ५०, वहीसे वही पाना पी के उठने मुझे बिदेसी जान दुम्हारे हाथ से बजा न दिया ।" ( तथा )

( ७ ) आदर की पराधम्य सूचित करने के लिये बच्चा या लड़का अपने लिये दास, सेवक, किदवी (कचहरी की भाषा में), कमठरीन (उहूँ) आदि शब्दों में से किसी एक का प्रयोग करता है; जैसे, "छि०—कहिए वह

वास भापके कौन काम आ सकता है ?" मुझ० )। "हृद्य से फिदवी की यह अर्थ है ।"

( क ) मध्यमपुरुष "आप" के साथ अल्पपुरुष बहुवचन किया जाता है, परंतु कहीं-कहीं परिचय बराबरी अथवा कछुता के विचार से मध्यमपुरुष बहुवचन किया का भी प्रयोग होता है। जैसे, "ह०—आप मोर खोरी ?" ( सत्य० )। "येसे समय में आप व दोगे तो श्रीर भीन देगा ?" ( परी० )। "हो० आइए—आप अगलों की रीति पर चलते हो ।" ( शकु० )। यह प्रयोग शिष्ट नहीं है ।

( ख ) अल्पपुरुष में आदर क विष् "हे" के बदले कभी-कभी "आप आता है । अल्पपुरुष "आप" के साथ किया सदा अल्पपुरुष बहुवचन में है । उदा०— "जीमती का गठ मास ईश्वर में देहात हो गया । आप कई वर्षों से बीमार हैं ।" ( बी० ) )

१२४—अप्रथम पुण्यवाचक सर्वनामों के नीचे किये पाँच भेद हैं ।

- ( १ ) निजवाचक—आप ।
- ( २ ) निरवयवाचक—यह, वह, सी ।
- ( ३ ) अविरवयवाचक—कोई, कुछ ।
- ( ४ ) सर्वववाचक—जो ।
- ( ५ ) प्रथमवाचक—कौन क्या ।

१२५—आप ( निजवाचक ) ।

प्रयोग में निजवाचक "आप" पुण्यवाचक ( आदरसूचक ) 'आप' से निज है । पुण्यवाचक 'आप' एक का वाचक होकर भी किय बहुवचन में आता है; पर निजवाचक "आप पुकड़ी रूप से दोनों वचनों में आता है । पुण्यवाचक "आप" केवल मध्यम श्रीर अल्पपुरुष में आता है; परंतु निजवाचक "आप" का प्रयोग तीनों में होता है । आदर सूचक "आप" वाक्य में अस्मै आता है; निजवाचक "आप" दूसरे सर्वनामों के संबंध से आता है । "आप" के दोनों प्रयोगों में कर्णोत्तर का भी भेद है । ( अ — ३२४—३२५ ) ।

निजवाचक "आप" का प्रयोग नीचे किये अर्थों में होता है—

( अ ) किसी संज्ञा या सर्वनाम के अन्वयार्थ के विष्, जैसे मैं आप नहीं आया हूँ ।" ( परी० )। "कमते कभी हम आप योगी ।" ( भारत )

- ( ४ ) दूसरे व्यक्ति के निराकरण के लिए; जैसे,—“भीड़प्यारी के प्राण्य को बिना किमा और आप बनने का विचार करने को।” (प्रेम०)।  
“बह अपने को सुधार रहा है।”
- ( ५ ) व्यवहार के अर्थ में “आप” के साथ कभी-कभी “ही” बोध देते हैं; जैसे, “नटी—मैं तो आपही आती थी।” ( सत्य० )। “दिल आप आपही चढ़ि गयक।” ( राम० )। “बह अपने रात्र के संपूर्ण गुण आपने ही में मरे हुए अनुमान करने लगता है।” ( सर० )।
- ( ६ ) कभी-कभी “आप” के साथ उल्लेख कम “अपना” बोध देते हैं; जैसे, “किसी दिव में न आप आपने को मूख धारें।” ( शकु० )। “बया बह अपने-आपको मूख गये।”
- ( ७ ) “आप” शब्द कभी-कभी वाचक में धकेला जाता है और वाच्यपुरुष का वाचक होता है; जैसे, “आप कुछ अपाजन किया ही नहीं, जो या बह वास हो गया।” ( सत्य० )। “होम करन आगे मुनि मरते। आप रहे मक की रखवारी।” ( राम )।
- ( ८ ) सर्व-साधारण के अर्थ में भी “आप” आता है; जैसे आप सब तो बग भवा।” (कहर०)। आपने से बने का भाव करना उचित है।”
- ( ९ ) “आप” के बहके वा उसके साथ बहुधा “तुद” (तू), “स्वत” वा “स्वत” (संस्कृत) का प्रयोग होता है। स्वयं, स्वता और तुद हिंदी में आन्वय हैं और इतका प्रयोग बहुधा क्लियाधिकरण के समान होता है। आहाररूपक “आप” के साथ निरुक्ति के विचार के लिए स्वयं से किसी एक का प्रयोग करना आवश्यक है; जैसे, “आप तुद यह बात समझ सकते हैं।” “हम जान अपने आप को भी हैं स्वयं मूखे हुए।” ( मारु० ) “मुस्ताव स्वता बहों गये थे।” (दिल०)। “हर धर्मही तुद अपने ही को प्रबलित रीतिरिधों का कारण बतलाये।” ( स्व० )।
- ( १० ) कभी-कभी “आप” के साथ मित्र (विशेष्य) संज्ञा के समान आता है; पर इसका प्रयोग केवल संबंध-कारक में होता है। जैसे “हम तुम्हें एक अपने मित्र के काम में भेजा चाहते हैं।” (सुधा०)।
- ( ११ ) “आप” शब्द से बना “आपस” “परस्पर” के अर्थ में आता है। इसका प्रयोग केवल संबंध शब्द और अधिकांश आरक में होता है।



जैसे, "एक दूसरे की राय आपस में नहीं मिलती।" ( स्वा० ) ।  
 "आपस की पूढ तुरी होती है।"

- ( जो ) "आपही", "अपने आप", "आपसे आप" और "आपही आप" का अर्थ "मन से" वा "स्वभाव से" होता है और इसका प्रयोग क्रियाविशेषण वाक्यांशों के समान होता है; जैसे, "ये मामकी संज्ञ आपही-आप कर बनाने लगे।" ( स्वा० ) । "ई०—(आपही-आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं।" ( सत्य० ) । "मेरा दिव्य आपसे-आप उमड़ा आता है" ( परी० ) ।

१२६—जिस सर्वनाम से वचन के पास अपना दूर की किसी वस्तु का बोध होता है उसे निरन्तरवाचक सर्वनाम कहते हैं। निरन्तरवाचक सर्वनाम तीन हैं—यह, वह, तो ।

१२७—यह—एक वाक्य ।

इसका प्रयोग नीचे दिये स्थानों में होता है—

- ( अ ) पास की किसी वस्तु के विषय में बोलने के लिए; जैसे, "यह किमका पराक्रमी वाक्य है ?" ( शकु० ) । "यह कोई क्या नियम नहीं है।" ( स्वा० ) ।
- ( आ ) पहले कही हुई संज्ञा या संज्ञा-वाक्यांशों के बदले, जैसे, "मावकी-जता तो मेरी बहिन है, इसे क्यों न सींचती ?" ( शकु० ) । "महा, सत्य० बर्न पाकना क्या हैसी खेज है ? यह व्याप ऐसे महात्माओं ही का काम है।" ( सत्य० ) ।
- ( इ ) पहले कहे हुए वाक्य के स्थान में; जैसे, "सिंह को मार मथि छे कोई वस्तु एक अति बराबरी कीही गुण्य में गवा; यह सय हम अपनी भाँकों देक आवे।" ( प्रेम० ) । "मुझको आपके कहने का कमी कुछ रज नहीं होता। इसके सिवाय मुझे इस अवसर पर आपकी कुछ सेवा करनी चाहिय थी" ( परी० ) ।
- ( ई ) पीछे आनेवाले वाक्य के स्थान में; जैसे, "उन्होंने जब यह चाहा कि अधिकारियों को प्रज्ञा ही नियत किया कर।" ( स्वा० ) । "मुझ इसछे बड़ा आनंद है कि भारतेंदुजी की सबसे पहले कही हुई यह पुस्तक आज पूरी हो गई।" ( रघु० ) ।

[ ६०—ऊपर के दृतर वाक्य में जो 'बह' शब्द आया है, वह वहाँ सर्वनाम नहीं, किंतु विशेषण है क्योंकि वह पुस्तक' संज्ञा की विशेषता बताता है। सर्वनामों के विशेषण-मूल प्रयोगों का विचार धामे ( तीसरे अध्याय में ) किया जायगा ]

( ४ ) कमी-कमी संज्ञा वा संज्ञावाचक कहकर दुरंत ही उसके बरखे विरचन के अर्थ में "यह" का प्रयोग होता है। जैसे, "राम, यह प्यक्तिवाचक संज्ञा है।" अधिकार पाकर कह देना, यह बड़ों को सोमा नहीं देता। ( सत्य० )। "शास्त्रों की बात में कविता का दखल समझना यह भी अर्थ के विरुद्ध है।" ( इति० )।

[ ६०—इस प्रकार की ( मराठी-प्रभावित ) रचना का प्रकार यह रहा है। ]

( ५ ) कमी-कमी "यह" क्रियाविशेषण के समाव आता है और उस का अर्थ "कमी" वा "अध" होता है जैसे 'जीजिबे महाराज, यह मैं बडा।" ( सुभा० ) यह तो आप सुझाये अंगित करते हैं।" ( बरि० )।

( ६ ) आदर और बहुत्व के लिए ( अ०—१२८ )।

'ये' 'यह' का बहुवचन है। कोई-कई बोलक बहुवचन में भी 'यह' लिखते हैं। ( अ०—१२९ )। "ये" ( और कमी-कमी "यह" ) का प्रयोग आदर के लिए भी होता है; जैसे "यह भी तो उसी का गुप्त गाते हैं।" ( सत्य० )। "यह तेरे लप के कल करायि नहीं; इनको तो इस पैर पर तेरे आईकार के जगाया है।" ( गद्य० "ये" के ही हैं जिनसे ईश और वाक्य व्यवहार उत्पन्न हुए।" ( शकु० )।

( ७ ) "ये" के बरखे आदर के लिए 'आप' का प्रयोग केवल बोलने में होता है और इसके लिए आदर-वाच की और हाव बनाकर संकेत करते हैं।

१२१—यह ( एकवचन ) ये ( बहुवचन )।

हिंदी में कोई विशेष अल्पपुरुष सर्वनाम नहीं है। उसके बरखे दूरदर्शी विरचनवाचक "बह" आता है। इस सर्वनाम के प्रयोग अल्पपुरुष के विशेषण

में बसा दिए गये हैं। ( अ०—१११-११२ )। इससे दूर की वस्तु का बोध होता है।

( अ ) “बह” और “वे” तथा “बहु” और “वे” के प्रयोग में वाक्यात्मिका स्थिरता नहीं पाई जाती। एक बार आदर का बहुत्व के लिए किसी एक शब्द का प्रयोग करके ठीक-ठीक बोध फिर उसी शब्द में वस शब्द का दूसरा रूप करते हैं, जैसे “यह टिखी-बह की तरह इतने हाग क्यों से भाये ? ये हाग से तुर्बचन है जो तेरे मुख से निकला किये है। वह सब हाक हाक कर मेरे हाग से बगे है।” ( गुडका० ) “ये सब बातें हरिश्चन्द्र में सदा हैं।” “भरे यह कीन वैचता बड़े प्रसन्न होकर हमतान पर एकत्र हो रहे हैं।” ( सत्य० )।

[ ६०—हमारी समझ में पहला रूप केवल आदर के लिए और दूसरा रूप बहुत्व के लिए जाना ठीक है ]

( आ ) पहले कही हुई वस्तुओं में से एककी के लिये “बह” और टिखी के लिये “बह” आता है, जैसे “महात्मा और गुरात्मा में इतना ही भेद है कि इनके मन, बचन और कर्म एक रहते हैं इनके मित्र मित्र।” ( सत्य० )।

कबक कबक हैं श्रीगुनी मादकता अधिकाय।

यह जाये बीरात है यह पाये बीरात प्र—( सत० )

( इ ) जिस वस्तु के संबंध में एक बार “बह” आता है उसी के लिए कभी-कभी ठीक-ठीक बोध असाधनाधी से दूर ही “बह” आते हैं, जैसे “यथा, महाराज, जब यह ऐसे जानी है तो उनकी जगती कैसे स्थिर है ?” ( सत्य० )। “जब मैं इन देवों के पास से आया था तब तो उनमें कक-भूख लच भी नहीं था।” ( गुडका० )

[ ६०—सबनाम के प्रयोग में ऐसी अस्थिरता से आद्य समझने में तिनारं होती है और यह प्रयोग दूषित भी है। ]

( ई ) “यह” के समाप ( अ०—१२० क ) “बह” भी कभी-कभी किया विशेष्य की भाँति प्रयुक्त होता है और उस समय बसक्य अर्थ “बह” का ‘इतना’ होता है, जैसे, “बीर बह जा रहा है।” लोगों के चौर को यह पारा कि बेचारा अधमरा हो गया।

१३०—सो—( दोनों बचन )।

बह सर्वनाम पुरुषा संबंधवाचक सर्वनाम "जो" के साथ आता है । ( सं०—१३० ) ; और इसका अर्थ संज्ञा के बचन के अनुसार "बह" वा "वे" होता है; जैसे जिस बात की बिना महाराज की है सो ( बह ) कमी न हुई हीमी "जिन चीजों को व सींच चुकी है सो ( वे ) तो इसी प्रीप्स मत में चूबेंगे ।" ( शकु० ) । ' भाप जो व की सो पोरा है ।" ( मुद्रा० ) ।

( अ ) "बह" "वे" के समाज "सो" सबग वाक्य में नहीं आता और व उसका प्रयोग "जो" के पहले होता है; परंतु कविता में बहुधा इन नियमों का उल्लंघन हो जाता है; जैसे—

"सो ताकी सागर बहाँ जाकी प्यास बुझ्य" ( सत० )

"सो सुधि मबड मूप ठर सोचू ।" ( राम० ) ।

( आ ) "सो कमी-कमी समुदाय-बोधक व समाज उपयोग में आता है और उसका अर्थ "इसलिये" वा "उप" होता है; जैसे, "लैते भी कमी बसका नाम नहीं लिखा; सो क्या व भी उसे मेरी ही धाँति भूख गाथा ।" ( शकु० ) । "मकबकेतु हम लोगो से बचने के लिये उधठ हो रहा है; सो यह बड़ाई के उद्योग का समर्थ है ।" ( मुद्रा० ) ।

१३१—जिस अर्थनाम से किसी विशेष वस्तु का बोध नहीं होता उसे अतिव्यपवाचक सर्वनाम कहते हैं । अतिव्यपवाचक सर्वनाम दो हैं—कोई, हुए । "कोई" और "हुए" में साधारण अंतर यह है कि "कोई" पुरुष के लिये और "हुए" वचार्थ वा बर्न के लिये आता है ।

१३२—कोई—( दोनों वचन ) ।

इसका प्रयोग एकवचन में बहुधा नीचे लिखे अर्थों में होता है—

( अ ) किसी अज्ञात पुरुष वा वही अंतु के लिये; जैसे, "पेसा व हो कि कोई था बाब ।" ( सत्य० ) "दरबाने पर कोई खड़ा है ।" बाकी में कोई बीछता है ।"

( आ ) बहुत से शाय पुरुषों में किसी अनिश्चित पुरुष के लिये; जैसे, "दे रे ! कोई नहीं ।" ( शकु० ) ।

"शुबदिन मई बई कोड कोई ।

तेहि समाज बस कदहि व कोई ॥"—( राम० ) ।

- ( इ ) विशेषवाचक वाक्य में “कोई” का अर्थ “सब” होता है; जैसे “वहाँ पर सिखने से कोई बड़ा नहीं होता।” ( सत्य० ) “ए किसीको मत सता।”
- ( ई ) “कोई” के साथ “सब” और “हर” ( विशेषण ) आते हैं। “सब कोई” का अर्थ “सब लोग” और “हर कोई” का अर्थ “हर आदमी” होता है। वहाँ—“सबकोठ बहुत राम सुदि साधु।” ( राम० )। यह काम हर कोई नहीं कर सकता।”
- ( उ ) अधिक आभिरुचय में “कोई” के साथ “एक” जोड़ देते हैं; जैसे, “कोई एक यह बात कहता था।”
- ( ऋ ) किसी श्राव्य पुरुष की ओर दूसरे अश्राव्य पुरुष का बोध करावे के लिये “कोई” के साथ “और” या “दूसरा” लगा देते हैं; जैसे, “वह भेद कोई और न जाने।” “कोई दूसरा होता तो मैं उसे न छोड़ता।”
- ( ए ) धातु और बहुवचन के लिये भी “कोई” आता है। पिछले अर्थ में बहुधा “कोई” की विशेषता होती है; जैसे, “मेरे पर कोई आये है।” “कोई-कोई पोप के अनुशासितों ही को नहीं देखा सकते।” ( स्वा० )। “किसी-किसी की राय में विदेशी शब्दों का उपयोग मूर्खता है।” ( सर० )।
- ( ५ ) अवधारण के लिये “कोई-कोई” के बीच में “न” लगा दिया जाता है; जैसे “वह काम कोई न कोई अवसर करेगा।”
- ( ६ ) कोई-कोई। इस दुहरे शब्दों से विभिन्नता सूचित होती है; जैसे, “कोई कहती थी यह उषका है, कोई कहती थी एक पक्का है।” ( गुरु० ) “कोई ऊँच कहता है, कोई ऊँच।” इसी अर्थ में “एक-एक” आता है; जैसे—

इक प्रविशहि इक निर्गमहि, भीर मृप दरबार।” ( राम० )।

- ( ७ ) संख्यावाचक विशेषण के पहले “कोई” परिमाण-वाचक क्रियाविशेषण के समान आता है और इसका अर्थ “अप-अप” होता है; जैसे “हममें कोई १०० रुई है।” ( सर० )।

१३३—कुछ—( एकवचन )।

दूसरे सर्वनामों के समान "कुछ" का कर्नांतर नहीं होता । इसका प्रयोग बहुधा विशेषण के मन्तव्य होता है । जब इसका प्रयोग संज्ञा के बन्ध में होता है तब यह नीचे लिखे धर्मों में आता है—

- ( अ ) किसी प्रज्ञात पदार्थ वा वर्ण के लिये, जैसे, "मेरे मन में आती है कि हमने कुछ पढ़ें ।" ( शकु० ) । "बी में कुछ मिठा है ।"
- ( आ ) छोटे वस्तु वा पदार्थ के लिये, "शैल पानी में कुछ है ।"
- ( इ ) कभी-कभी कुछ परिभाष्यवाचक क्रियाविशेषण के समान आता है । इस अर्थ में कभी-कभी उसकी विसृष्टि भी होती है । उदा०—"मेरे शरीर का ताप कुछ बढ़ा कि नहीं ?" ( शकु० ) । "उत्तरे उसने कुछ बिबाह करवाया की ?" ( स्वा० ) । "कबकी कुछ बोटी है ।" "दोनों की भावति कुछ-न-कुछ मिचती है ।"
- ( ई ) आरभ्य आरब्ध वा तिरस्कार के अर्थ में भी "कुछ" क्रियाविशेषण होता है, जैसे, "हिंदी कुछ संस्कृत तो है नहीं ।" ( सर० ) "हम लोग कुछ बचते नहीं हैं ।" "मेरा हाक कुछ न पयो ।"
- ( उ ) अन्वयार्थ के लिये "कुछ न कुछ" आता है, जैसे, "आर्यभट्टि ने दिशाओं के नाम कुछ-न-कुछ रक्त किया होया ।" ( सर० ) ।
- ( ए ) किसी ज्ञात पदार्थ वा वर्ण को छोड़कर दूसरे अज्ञात पदार्थ वा वर्ण का बोध कराव के लिये "कुछ" के साथ "और" आता है, जैसे "मेरे मन कुछ और ही है ।" ( शकु० ) ।
- ( अ ) मिचता या विपरीतता सूचित करने के लिये "कुछ वा कुछ" आता है, जैसे "आपने कुछ का कुछ समझ लिया ।" "बिन्दे ये कुछ के कुछ हो गये ।" ( इति ) ।
- ( क ) "कुछ" के साथ "सब" और "बहुत" आते हैं । "सब कुछ" का अर्थ "सब पदार्थ वा वर्ण है और "बहुत कुछ" का अर्थ "बहुत से पदार्थ वा वर्ण" अथवा "अधिकता से" है । उदा०—"हम समझी सब कुछ हैं ।" ( सत्य० ) । "हृदय बहुत कुछ शीतता है ।" "वो भी बहुत कुछ हो रहेगा ।" ( सत्य० ) ।

- ( ए ) कुल कुल । ये दूहरे शब्द विभिन्नता सूचित करते हैं; जैसे “एक कुल क्यता है और दूसरा कुल ।” ( इति० ) । “कुल ठेरा गुण बागता है, कुल मेरे से लोग जानते हैं ।” ( सुभा० ) ।
- ( ऐ ) “कुल-कुल” कमी-कमी समुच्चय-शोचक के समाप्त आकर जो वाक्यों को जोड़ते हैं; जैसे, “बापे की मूर्खें कुल प्रेस की असाहयानी से और कुल खेक्यों के आबस से होती हैं ।” ( सर० ) । “कुल तुम समके, कुल हम समके ।” ( कथा० ) “कुल हम ज्ञे, कुल वह ज्ञे ।”
- ( औ ) “कुल-कुल” से कमी-कमी “अपोग्यता” का अर्थ पाया जाता है; जैसे, “कुल तुमने कमाया कुल तुम्हारा भाई कमावेगा ।”

१३४—जो ( दोनों बचच ) ।

हिंदी में संबंधवाचक सर्वनाम एक ही है; इसलिये व्याकरण के अनुसार इसका बचच नहीं बनाया जा सकता । भाषामास्त्र को छोड़कर प्रायः सभी व्याकरणों में संबंधवाचक सर्वनाम का बचच नहीं दिया गया । भाषा मास्त्र में जो बचच है वह भी स्पष्ट नहीं है । बचच के अभाव में यहाँ इस सर्वनाम के केवल विशेष प्रयोग किये जाते हैं ।

- ( अ ) “जो” के साथ “सो” या “वह” का विलय संबंध रहता है । “सो” या “वह” विरचयवाचक सर्वनाम है; परंतु संबंधवाचक सर्वनाम के साथ आने पर इसे नित्य-संबंधी सर्वनाम कहते हैं । जिस वाक्य में संबंधवाचक सर्वनाम आता है उसका संबंध एक दूसरे वाक्य से रहता है जिसमें नित्य-संबंधी सर्वनाम आता है; जैसे, “जो बोले सो भी को बाप ।” ( कथा० ) ( “जो इतिरिचय ने किया वह तो घय कोई भी भारतवासी न करेगा ।” ( सत्य० ) ।
- ( इ ) संबंधवाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम एक ही संज्ञा के बरखे आते हैं । जब इस संज्ञा का प्रयोग होता है तब यह पदुपा पदके वाक्य में आती है और संबंध-वाचक सर्वनाम दूसरे वाक्य में आता

● “संबंधवाचक लक्षनाम ठीक कहते हैं जो कहीं दूर लडा से कुछ बचन मिश्रता है ।”

है; जैसे "यह मित्रा उन कल्याणकों के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती जो अपने ज्ञान की विधि करते हैं।" ( हि० प्र० ) "यह भारी कौन है जिसका रूप वहाँ में लटक रहा है।" ( शकु० )।

( ६ ) जिस संज्ञा के बड़े संबंधवाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम आते हैं उसके अर्थ की स्पष्टता के लिए बहुधा दोनों सर्वनामों में से किसी एक का प्रयोग विशेषण के समान करके उसके परभाव पूर्वक संज्ञा को आते हैं; "क्या आप फिर उस परदे को बाधा चाहते हैं जो सत्य के मेरे सामने से हटाया ?" ( गुरु० )। "धीरुष्य न उन कर्मियों को गिना जो उसने खोली थी।" ( प्रेम० ) "जिस हरिश्चंद्र ने उद्य से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म घोषा उसका धर्म प्राप्त गज करने के बाले मठ सुनायो।" ( सत्य० )।

( ६ ) नित्य-संबंधी "सो" की अपेक्षा "बहु" का प्रचार अधिक है। कभी कभी उसके बड़े "यह" "ये" "सब" और "कौन" आते हैं; जैसे "जिस शकुंतला ने गुम्हार बिना सींचे कभी बह भी नहीं पिया उसको तुम पति के बर बाने की आशा हो।" ( शकु० )। "संसार में ऐसी कोई चीज न थी जो उस राजा के लिए अक्षम्य होती।" ( शकु० )। "बह कौनसा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य इन्कार के कोप से छुटकारा पाव ?" ( गुरु० )। "सब लोग जो यह समझा देख रहे थे प्रचारक करने लगे।"

( ७ ) कभी-कभी संबंधवाचक सर्वनाम अनेकानेक बड़े शब्दों में आता है और उसकी संज्ञा दूसर शब्दों में बहुधा "ये" या "बहु" के साथ आती है; जैसे, "जिसने कभी कोई पापकर्म नहीं किया था ऐसी राजा यह ने यह उत्तर दिया।" ( शकु० )। "प्रभु जो शब्द सो वर में पावा।" ( राम० )।

( ८ ) "सो" कभी कभी एक शब्द के बड़े ( बहुधा उसके पक्ष) समुच्चय बोधक के समान आता है; जैसे, "या देग देग कहीं का जिससे सब एक संग रोम-कुण्ड से कुटी में पहुँचे।" ( शकु० )। "सोई के बड़े उसमें साधा काम में आये जिसमें मगवान भी उसे देखकर प्रसन्न हो जायें।" ( गुरु० )।



- ( ग ) आदर और श्रद्धा के लिये भी "जो" आता है; जैसे, "यह चारों कब्रिस्तानों की बाबू गोपालचन्द्र के बनाये हैं जो कब्रिस्तान में अपना नाम गिरिधरदास रखते थे ।" ( सत्य० ) । "यहाँ तो ये ही बड़े हैं जो दूसरे को शोष कराना पड़े हैं ।" ( लज्ज० ) ।
- ( घ ) "जो" के साथ कमी-कमी आगे या पीछे आरसी का संबंध-वाचक सर्वनाम "कि" आता है ( पर अब उसका प्रचार घट रहा है ) जैसे, "किसी समय राजा हरिश्चन्द्र बड़ा पानी हो गया है कि जिसकी कीर्ति संसार में अब तक फल रही है ।" ( प्रेम० ) । "श्रीमद् बीम से समय के कैरदार इन्हें भेजते पढ़ कि जिससे वे लड़के लड़के हो गए ।" ( इति० ) । अशोक ने उन बुद्धिमानों और धार्मिकों को पूर्ण सहायता पहुँचाई जो कि युद्ध में भाग्यवान् हुए थे । "अर्थात् उसी प्रकार गढ़ हो गया जिस प्रकार कि एक पतिगा बच जाता है" ( विद्वान० )
- ( ङ ) समूह के अर्थ में संबंधवाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम से बहुधा दोनों की अर्थवा एक द्विक्रिया होती है; जैसे "जो हरिश्चन्द्र ने जो-जो कड़ी सो क्रिया लुप्त करि करि उपाह ।" ( सुदृष्टी० ) । "कन्या के विवाह में हमें जो-जो बल चाहिए सो-सो सब इकट्ठी करो ।"
- ( च ) कमी-कमी संबंधवाचक वा नित्य-संबंधी सर्वनाम का शोष होता है; जैसे, "दुष्ठा सो दुष्ठा ।" ( लज्ज० ) "जो पापी पीता है चापकी घसीस देता है ।" ( गुणक ) । कमी-कमी दूसरे वाक्य ही का शोष होता है; जैसे, "जो आता ।" "जो ही ।"
- [ ६०—यह प्रयोग कमी-कमी संबोधक क्रियाविशेषणों के साथ भी होता है । अ—२११ ( २ ) [ १ ]
- ( छी ) "जो" कमी-कमी समुच्चयवाचक के समान आता है; और उसका अर्थ "बहु" वा "कि" होता है; जैसे "जब दुष्ठा जो सब की कदार्ह में हारें ।" ( प्रेम० ) । "हर किसी की सामर्थ नहीं जो उसका सामना कर ।" ( तथा ) । "जो सब पृथ्वी तो हतनी भी बहुत हुई ।" ( गुणक० ) ।
- ( जी ) "जो" के साथ अविरतवाचक सर्वनाम भी जोड़े जाते हैं । "कोई"

धीर "कुङ्कु" के अर्थों में जो अंतर है वही "जो कोई" धीर "जो कुङ्कु" अर्थों में भी है; जैसे जो कोई नख को घर में छुलने देगा, जब से काम चोपाए।" ( गुरु० ) । "महाशय जो कुङ्कु कही बहुत समझ-बूझकर कहिये।" ( शकु० ) ।

१३५—परम करने के विपु विषय सर्वनामों का उपयोग होता है उन्हें प्रशंसनात्मक सर्वनाम करते हैं । ये दो हैं—कौन और क्या ।

१३६—"कौन" धीर "क्या" के प्रयोगों में साधारण अंतर वही है जो "कोई" धीर "कुङ्कु" के प्रयोगों में है । ( धी०—१३२-१३३ । ) "कौन" प्राणियों के विषये और विशेषकर मनुष्यों के विषये धीर "क्या" कुछ प्राणी पदार्थ का बर्णन के विषये आता है; जैसे "हे महाशय, आप कौन हैं ?" ( गुरु० ) "बह आशीर्वाद किसने दिया था ?" ( शकु० ) । "तुम क्या कर सकते हो ?" "क्या समझते हो ?" ( सत्य० ) "क्या है ?" "क्या हुआ ?"

१३७—"कौन" का प्रयोग नीचे विषयों में होता है—

( अ ) निर्धारण के अर्थ में "कौन" प्राणी पदार्थ धीर बर्णन तीनों के विपु आता है; जैसे—

"ह०—तो हम एक विषय पर चिन्ते ।"

"य०—बह कौन ?" ( सत्य० ) ।

"इसमें पाप कौन है दुष्ट कौन है ।" ( गुरु० ) । "बह कौन है जो मेरे अन्धकार का नहीं हौरता ?" ( शकु० ) ।

इसो अर्थ में "कौन" के साथ बहुधा "सा" प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे, "मेरे प्यान में वही आता कि महाशय शकुंतला कौमसी है ।" ( शकु० ) । "तुम्हारा बर कौमसा है ?"

( ब ) तिरस्कार के विषये; जैसे, "रोझनेवाली तुम कौम ही ।" ( शकु० ) ।

"कौम जाने ?" स्वर्ग कौम बने, आपने अपने सत्यबद्ध से क्या पद पाया ।"

( ग ) आश्चर्य अथवा दुःख में जैसे "इसमें अंधे की बात कौमसी है ।" "अरे ! हमारा बात का यह अन्ध कौम देता है ?" ( सत्य० ) "अरे ! आप मुझ किसने लूट किया ?" ( सत्य० ) ।

( ई ) “कौन” कभी-कभी “कब” के अर्थ में क्रियाविशेषण होता है, जैसे,  
“आपकी ससंग कौन दुर्घम है।” ( सख )।

( उ ) बस्तुओं की मिष्टता, असंख्यता और तत्संबंधी आश्चर्य दिखाने के लिये “कौन” की शक्ति होती है, जैसे, “समा में कौन-कौन घावे थे ?” में किस-किसको बुकार्क !” “एते पुत्रवर्ज्य कौन-कौनसे किये हैं ?” ( गुण्य० )।

१२८—“क्या” नीचे दिये अर्थों में आता है—

( अ ) किसी वस्तु का अर्थ या भाव के लिये, जैसे, “अनुप्य क्या है ?”  
“धरमा क्या है ?” अर्थ क्या है ?”

[ ए०—इसी अर्थ में कौन का रूप “किसे” या “किसको” “कहना” क्रिया के साथ आता है जैसे, “बड़ी किसे कहत है” ]

( आ ) किसी वस्तु के लिये तिरस्कार या अनादर सूचित करने में, जैसे,  
“क्या हुआ जो सबकी खपाई में हारे ?” ( प्रेम० )। “भखा हम हास लेके क्या करेंगे ?” ( सख० )। “यज्ञ तो क्या इस काम में तन भी अगाना चाहिए ?” क्या जाने।”

( इ ) आश्चर्य में, जैसे “क्या क्या देखती है कि बहूंदोर बिजली चमकने लगी ?” ( प्रेम० ) “क्या हुआ।” “बाह ! क्या कहना है ?”

[ ए०—इसी अर्थ में “क्या” वस्तु का क्रियाविशेषण के समान आता है जैसे, “बौद्ध बोधे क्या है, उड़ आय है” ( शकु० )। “क्या अफ़्की बात है ?” “बह आदमा क्या राखत है ?” ]

( ई ) धमकी में, जैसे “तुम बह क्या करत हो ?” “तुम बहों क्या दिते हो ?”

( उ ) किसी वस्तु की दशा बताने में, जैसे, “हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे धमी।” ( मारु० )।

( ए ) कभी-कभी “क्या” का प्रयोग विस्मयादि-बोधक के समान होता है—

( १ ) प्रश्न करने के लिये, जैसे, “क्या गाड़ी खरी गई ?”

( २ ) आश्चर्य सूचित करने के लिये, जैसे, “क्या तुमकी बिह दिघाई नहीं दिते ?” ( शकु० )।

( क ) अराज्यता के क्षय में भी "क्या" द्विपाविशेषण होता है। जैसे  
हिंसक जीव मुझे क्या मारेंगे ? ( १५० ) । "इसके मारने से परलोक  
क्या बिगड़ेगा ?" ( गुरबा० ) ।

( ख ) निरक्षय कराने में भी "क्या" द्विपाविशेषण के समान आता है। जैसे  
"सरोजिनी—मौ ! मैं यह क्या बर्ती हूँ ?" ( सरा० । "शिपाही बर्त  
क्या जा रहा है ?" इन वाक्यों में "क्या" का अर्थ "कारण" वा  
"विस्मय" ।

( ग ) बहुवचन वा अक्षरवचन में "क्या" की श्रितिकि होती है। जैसे "बिच  
देनेवाले लोगों ने क्या-क्या किया ?" ( मुद्रा० ) । "मैं ।  
क्या कहूँ ?"

( घ ) क्या-क्या । इस दुहरणों का प्रयोग समुच्चयबोधक के अन्त  
होता है। जैसे "क्या मनुष्य और क्या जीवजन्तु मने अन्त  
सात जन्म इन्हीं का मजा करने में रीबापा ।" ( गुरबा० )  
( घ०—१३४ ) ।

१३६—दुर्गांतर सूचित करने के लिये "क्या से क्या वाक्यांत आता है।  
जैसे "हम आज क्या से क्या हुए ?" ( भारत० ) ।

१३७—पुरुषवाचक निजवाचक और निरक्षयवाचक सर्वनामों में अन्त  
पारय के लिये 'ही' 'हीं' वा "इ" प्रत्यय आते हैं। जैसे मैं=मैंही तू=तूही  
हम=हमी तुम=तुम्हीं आप=आपहा वह=वही सो=सोही, यह=यही  
वे=वेही ये=येही । ( क ) अनिरक्षय-वाचक सर्वनामों में "यों" सम्बन्ध जोड़ा  
जाता है। जैसे "कोई मा" "कुछ भी ।"

[ टी०—हिंदी के निरक्षय-व्याकरणों में उक्तनामों की संख्या और  
वर्गीकरण के संबंध में बहुत कुछ मतभेद है। हिंदी के जो व्याकरण  
( एडरिंगटन, केनाग, प्रीतम आदि ) अंगरेज विद्वानों ने लिखे हैं और  
बिनकी उदाहरण प्रायः तथा हिंदी व्याकरणों में पाई जाती है उनका उल्लेख  
करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। क्योंकि बिनकी यह उदाहरण है जैसे  
केवल वही लोग प्रमाय माने जा सकते हैं बिनकी वह उदाहरण है जैसे  
उन्होंने अपनी मजा का व्याकरण बिदेसियों ही उदाहरण से सीखा था  
लिखा ही । इसके विवा यह व्याकरण हिंदी में लिखा गया है। ]

केवल हिंदी में लिखे हुए व्याकरणों पर विचार करना चाहिए, यद्यपि उनमें भी कुछ ऐसे हैं जिनके लेखकों की मातृ-भाषा हिंदी नहीं है। पहले हम इन व्याकरणों में ही हुई सबनामों की संख्या का विचार करेंगे।

सर्वनामों की संख्या “भाषा-प्रमाकर” में आठ, “हिंदी व्याकरण” में सात और “हिंदी बाल-शोध व्याकरण” में चौदह है। ये तीनों व्याकरण औरों से पीछे के हैं। इसलिये हमें समाशोधना के निमित्त इन्हीं की बातों पर विचार करना है। अधिक पुस्तकों के गुण-शोध दिखाने के लिए हम पुस्तक में स्थान की संकीर्णता है।

( १ ) भाषा-प्रमाकर—मैं, तू, वह, जा, सो, कोई, कौन।

( २ ) हिंदी-व्याकरण—मैं, तू, आप, वह, वह, जो, कौन।

( ३ ) हिंदी-बाल-शोध व्याकरण—मैं, तू, वह, जो, सो, कौन, क्या, वह, कोई सब, कुछ, एक, वृत्त, दोनों, एक वृत्त, कर एक, आप।

“भाषा-प्रमाकर” में “क्या”, “कुछ” और “आप” अलग अलग सर्वनाम नहीं माने गये हैं, यद्यपि सर्वनामों के ब्युत्पन्न में इनका अर्थ दिया गया है। इसमें भी “आप” का कबल आदर-व्यक्त प्रयोग बताया गया है। फिर आगे अर्थों में “क्या” और “कुछ” का उल्लेख किया गया है; परंतु वहाँ भी इनके संबंध में कोई बात रखता से नहीं लिखी गई। ऐसी व्यवस्था में समाशोधना करना हुआ है।

“हिंदी-व्याकरण” में “जो”, “कोई”, “क्या” और “कुछ” सब नाम नहीं माने गये हैं। पर लेखक ने पुस्तक में सर्वनाम का जो लक्षण दिया है उसमें इन शब्दों का अंतर्भाव होता है; और उन्होंने स्वयं एक स्थान में ( पृ० ८१ ) “कोई” को सर्वनाम के समान लिखा है फिर न जाने क्यों यह शब्द भी सर्वनामों की सूची में नहीं रखा गया? “क्या” और “कुछ” के विषय में अर्थ होने का उल्लेख है, पर “जो” और “कोई” के विषय में किसी को भी संदेह नहीं हो सकता क्योंकि इनके रूपांतर और प्रयोग “वह”, “जा”, “कौन” के समान पर होते हैं। बात यह है कि मराठी में “जो” शब्द प्रत्ययवाचक और अनिश्चयवाचक दोनों होने का कारण लेखक ने “कोई” को “कौन” के अंतर्गत माना है परंतु हिंदी में

“हीन” और “ओह” के रूप और प्रयोग अलग-अलग हैं। लेखक ने कोई १२० धर्मपंथों की सूची में “कुद्”, “क्या” और “ओ” लिखे हैं, पर इन बहुत से शब्दों में केवल दो या तीन के प्रयोग बताये गये हैं, और उनमें भी “कुद्”, “क्या” और “ओ” का नाम तक नहीं है बिना किसी वर्गीकरण के ( चाहे वह पूरापूरा न्याय-संमत न ही ) केवल बरामाबा के क्रम से १५० धर्मपंथों की सूची दे देते से उसका स्मरण कैसे रह सकता है और उनके प्रयोग का क्या ज्ञान हा सकता है ? यदि किसी शब्द का केवल “धर्मपंथ करने से ज्ञान बल सकता है तो फिर विचार्य शब्दों के को भेद संज्ञा जयनाम, विशेषण और क्रिया लेखक ने माने हैं, उनकी भी क्या जाब रसकता है।

“हिंदी-बाल शोध व्याकरण” में लवनामी की संख्या सबसे अधिक है। लेखक ने “ओह” और “कुद्” के साथ “सब” को अनिश्चयवाचक लवनाम माना है, और “एक”, “दूसरा”, “दोनों”, “एक-दूसरा” “कर एक” आदि को निश्चयवाचक लवनामों में लिखा है। ये सब शब्द बयाप में विशेषण हैं क्योंकि इनका रूप और प्रयोग विशेषणी के समान होते हैं। “एक लड़का”, “दस लड़के”, और “सब लड़के”, इन वाक्यांशों में संज्ञा के अर्थ के संबंध से “एक”, “दस” और “सब” का प्रयोग व्याकरण में एक ही बा है—अर्थात् तीनों शब्द “लड़का” संज्ञा की स्थापति प्रभावित करते हैं। इसलिए यदि “दस” विशेषण है तो “सब” भी विशेषण है। हाँ, कमी-कमी विशेषण के लोभ जाने पर ऊपर लिखे शब्दों का प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है; पर प्रयोग की भिन्नता और भी कई शब्द-भेदों में पाए जाती है। हमने इन सब शब्दों को विशेषण मानकर एक अलग हा बग में रक्खा है। बिन शब्दों को बाल-शोध-व्याकरण के कता में निश्चयवाचक लवनाम माना है वे लवनाम मान जाने पर भी निश्चयवाचक नहीं हैं। उदाहरण के लिए “एक” और “दूसरा” शब्द लीजिये। इनका प्रयोग “ओह” के समान होता है जो अनिश्चयवाचक है सब वह अवश्य निश्चयवाचक विशेषण ( या लवनाम ) होता है, परंतु समालोचित पुस्तक में इन लवनामों के प्रयोगों के उदाहरण नहीं हैं इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि लेखक ने कित्त अर्थ में इन्हें निश्चयवाचक माना है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ऊपर कही हुए तीनों पुस्तकों में जो कर शब्द लवनामों की सूची में दिये गये हैं अथवा छोड़ दिये गये हैं उनका

सिद्ध कोई प्रबल कारण नहीं है। अब सर्वनामों के बर्गीकरण का कुछ विचार करना चाहिए।

“माया प्रभाकर” और “हिंदी वाक्य-बोध-व्याकरण” में सर्वनामों के पाँच पाँच भेद माने गये हैं, पर दोनों में निष्पत्तिका सर्वनाम न अलग माना गया है और न किसी भेद के अंतर्गत लिखा गया है। यद्यपि सर्वनामों के विशेषण में इसका कुछ उल्लेख हुआ है, पर वहाँ भी “आदर-सूचक” के अर्थ पुरुष का प्रयोग नहीं बताया गया। हम इस अध्याय में बता चुके हैं कि हिंदी में “आप” एक अलग सर्वनाम है जो मूल में निष्पत्तिका है और उसका एक प्रयोग आदर के लिए होता है दोनों पुस्तकों में “तो” सर्वपत्तिका लिखा गया है पर यह सर्वनाम “वह” का पर्यायवाची होने के कारण यथाय में निश्चयवाचक है और कभी कभी यह सर्वपत्तिका “जो” क विना भी आता है।

“हिंदी-व्याकरण” में संस्कृत की बेल्लादेची सर्वनामों के भेद ही नहीं किये गये हैं, पर एक-दो स्थानों में (पृ० १०—११) “मिथ सूचक आप” शब्द का उपयोग हुआ है जिससे सर्वनामों क किसी न-किसी बर्गीकरण की आवश्यकता जान पड़ती है। न जाने लेखक ने इसका बर्गीकरण क्यों अभावश्यक समझा ? ]

१११—“यह”, “वह”, “तो”, “जो”, और “कौन” के रूप “इस” “उस” “तिस”, “त्रिस” और “इति” के अंत्य “स” के स्थान में “तवा” आदेश करने से परिमाण-वाचक विशेषण और “इ” को “ए” तथा “उस” को “वै” करके “सा” आदेश करने से गुणवाचक विशेषण बनते हैं। दूसरे सार्वभौमिक विशेषणों के समान ये शब्द भी प्रयोग में कभी सर्वनाम और कभी विशेषण होते हैं। कभी कभी ये क्रिया-विशेषण भी होते हैं। इनके प्रयोग आगे विशेषण के अध्याय में दिए जायेंगे।

नीचे के काल में इनकी व्युत्पत्ति समझाई जाती है—

सर्वनाम	रूप	परिमाणवाचक विशेषण	गुणवाचक विशेषण
यह	इस	इति	एसा
वह	उस	उतवा	वैसा
तो	तिस	तितवा	तैसा
जो	त्रिस	त्रितवा	त्रैसा
कौन	किय	कितवा	कैसा

## सर्वनामों की व्युत्पत्ति ।

१०१—हिंदी के सब सर्वनाम प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं, जैसे,

संस्कृत	प्राकृत	हिंदी
अहम्	अम्ह	मैं हम
त्वम्	तुम्ह	तू, तुम
एवम्	एवम्	वह वे
सः	सौं	सो वह वे
मां	मो	मो
का	को	कौन
किम्	किम्	क्या
कोऽपि	कोवि	कोई
आत्मन्	आप्प	आप
किञ्चिद्	किञ्चि	कुछ

## तोसरा अभाव

## विशेषण

१०२—जिस विकारी शब्द से संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहते हैं, जैसे, बड़ा, काला इत्यादि शरी एव, दो, छय । विशेषण के द्वारा जिस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहते हैं, जैसे, 'काला बोधा वास्वांत में 'बोधा' संज्ञा 'काला' विशेषण का विशेषण है। 'बड़ा घर' में 'घर' विशेषण है।

[ दि०—“हिदा-व्याकरण” में संज्ञा के तीन भेद किये गये हैं—

नाम, लवनाम और विशेषण । वृद्धे व्याकरणों में भी विशेषण संज्ञा का एक उपभेद माना गया है । इसलिये यहाँ यह प्रश्न है कि विशेषण एक प्रकार की संज्ञा है अथवा एक अलग शब्द भेद है । इस संज्ञा का समाधान यह है कि लवनाम के समान विशेषण भी एक प्रकार की संज्ञा ही है क्योंकि विशेषण भी वस्तु का अर्थवत् नाम है । पर इसको अलग शब्द-भेद मानने का यह कारण है कि इसका उपयोग संज्ञा के बिना नहीं हो सकता और



## ( १ ) सार्वनामिक विशेषण ।

१४८—पुरुषवाचक और विद्यवाचक सर्वनामों को जोड़कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। जब वे शब्द अकेले आते हैं तब सर्वनाम होते हैं और जब इसके साथ संज्ञा आती है तब वे विशेषण होते हैं, जैसे, “बीऊर आया है। यह बाहर गया है।” इस वाक्य में ‘बह’ सर्वनाम है क्योंकि बह “बीऊर” संज्ञा में बदले आया है “यह बीऊर नहीं आया”—यहाँ “बह” विशेषण है, क्योंकि “बह” “बीऊर” संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करता है; अर्थात् उसका निरन्तर बताता है इसी तरह “किसी को पुछाओ” और “किसी माह्वय को तुलाओ”—इन वाक्यों में “किसी” क्रमशः सर्वनाम और विशेषण है।

१४९—पुरुषवाचक और विद्यवाचक सर्वनाम ( मैं, तू, आप ) संज्ञा के साथ आकर उसकी व्याप्ति मर्यादित नहीं करते; जैसे, “मैं मोहनदास इकार करता हूँ।” इस वाक्य में “मैं” शब्द विशेषण के समान “मोहनदास” संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित नहीं करता किन्तु यहाँ “मोहनदास” शब्द “मैं” के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये आया है। कोई-कोई यहाँ “मैं” को विशेषण कहेंगे, परंतु यहाँ मुख्य विद्याम ‘मैं’ के विषय में है और किया भी उसी के अनुसार है। जो विशेषण विशेष्य के साथ आता है उस विशेषण के विषय में शेषान नहीं किया जा सकता। इसलिए यहाँ “मैं” और “मोहनदास” समावाधिकरण शब्द हैं; विशेषण और विशेष्य नहीं है। इसी तरह “बड़का आप आया था”—इस वाक्य में “आप” शब्द विशेषण नहीं है; किन्तु “बड़का” संज्ञा का समावाधिकरण शब्द है।

१५०—सार्वनामिक विशेषण व्युत्पत्ति के अनुसार दो प्रकार के होते हैं—

( १ ) मूल सर्वनाम जो बिना किसी अर्थांतर के संज्ञा के साथ आते हैं, जैसे, यह घर, यह बच्चा, कोई बीऊर हुए काम दत्तादि। ( अं - १४ )।

( २ ) सौमिक सर्वनाम ( अं०—१४१ ), जो मूल सर्वनामों में प्रत्यय गाने से बनते हैं और संज्ञा के साथ आते हैं, जैसे—जमा आदमी, कितार, उतना नाम, कितना देण देता भेय इत्यादि।

१५१—मूळ सार्वनामिक विशेषणों का धर्म बहुधा सार्वनामों ही के समान होता है; परंतु कहीं-कहीं उनमें कुछ विशेषता पाई जाती है।

( अ ) “बहू” “एक” के साथ आकर अनिश्चयवाचक होता है; जैसे “बहू एक मनिहारिन का रार्ही थी।” (साय०)।

[ घ —गाय में ‘सो’ का प्रयोग बहुधा विशेषण क समान नहीं होता। ]

( ब ) “कीर्ण” धीर “कोई” प्राची पदार्थ वा वर्म के नाम के साथ आते हैं; जैसे, कीर्ण मनुष्य ? कीर्ण जानवर ? कीर्ण कपड़ा ? कीर्ण बात ? कोई मनुष्य । कोई जानवर । कोई कपड़ा । कोई बात । इत्यादि।

( इ ) धारण्य में “क्या” प्राची पदार्थ वा वर्मोंके नाम के साथ आता है; जैसे “तुम भी क्या धारणी हो ?” यह क्या कहनी है ?” क्या घात है ?” इत्यादि।

( ई ) प्रश्न में “क्या” बहुधा भाववाचक संज्ञाओं क साथ आता है; जैसे क्या काम ? क्या नाम ? क्या रङ्ग ? क्या सहायता ? इत्यादि।

( उ ) “कुछ” संख्या परिमाण धीर अनिश्चय का बोधक है। संख्या धीर परिमाण क प्रयोग आगे तिले जायेंगे ( अ०—१८४-१८५)। अनिश्चय धर्म में “कुछ” “कहा” क समान बहुधा भाववाचक संज्ञाओं के साथ आता है; जैसे, कुछ बात, कुछ घर कुछ विचार, कुछ उपाय इत्यादि।

१५२—वीरिक सार्वनामिक विशेषणों के साथ जब विशेष्य नहीं रहता तब उनका प्रयोग प्रायः संज्ञाओं से समान होता है; “जैसा करोग वैसा पावोगे।” “जैसे को तैसा मिछे।” “इतने” से काम न हागा।

( अ ) “वैसा” धीर “इतना” का प्रयोग कभी-कभी “यह” से समान वाक्य क बहसे में हाता है; जैसे, “वैसा कय हो सकता है कि मुझे भी होय जाये ?” (पुस्तक०) “वैसा क्यों कहते हो कि मैं यहाँ नहीं जा सकता ?” “बह इतना बन सकता है कि पुरी मिछ जाय।”

( ब ) “वैसा वैसा” तिरस्कार के धर्म में आता है; जैसे “मैं देखे-देखे का कुछ नहीं समझता।” “राजा विर्धाय कुछ वैसा वैसा न था।” (रघु०)। “देसी-देसी कोई चीज नहीं खावी चाहिये।”

गुण—महा, बुरा, उचित, अनुचित सब छूट, पापी, दानी ग्वाभी, दुष्ट, सीधा, शीत इत्यादि ।

१५८—गुणवाचक विशेष्यों के साथ हीनता के अर्थ में “सा” प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे “बड़ासा पेड़” “ऊँचीसी दीवार” “यह बौरी खोटीसी दिखती है ।” “उसका सिर कुछ मारीसा हो गया ।”

[ सूचना—सा=प्राकृत, धरिणो, संकृत, सहरवः । ]

१५९—“नाम” ( वा “नामक” ), “संबंधी” और “रूपी” संज्ञाओं के साथ मिलकर विशेष्य होते हैं; जैसे “बाहुक-नाम सारथी” “परतप नामक राजा,” “घर संबंधी कम,” “तृप्ता रूपी बही” इत्यादि ।

१६०—“सरीखा” संज्ञा और सर्वनाम के साथ संबंध-सूचक होकर आता है, जैसे, “हरिश्चंद्र सरीखा दानी,” “मुझ सरीखे लोग” । इसका प्रयोग कुछ कम हो गया है ।

१६१—“समान” ( सट्ठ ) और “दुख्य” ( धरावर ) का प्रयोग कभी कभी संबंध-सूचक के समान होता है । जैसे, “उसका जन पक्ष के समान पड़ा था ।” ( रघु ) । “लक्ष्म धादनी के धरावर दीक्षा ।”

( या ) “धाव्य” ( धावक ) संबंध-सूचक के समान आकर भी बहुधा विशेष्य ही रहता है; जैसे “मेरे योग्य काम-काज जित्पिता ।”

१६२—गुणवाचक विशेष्य के पक्षों बहुधा संज्ञा का संबंध-कारक आता है; जैसे, “घर मगड़ा”=घर का मगड़ा, “जंगली जानवर”=जंगल का जानवर । “बनारसी सार्थी”=बनारस की सार्थी ।

१६३—जब गुणवाचक विशेष्यों का विशेष्य लुप्त रहता है तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान आता है ( अं०—१५९ ); जैसे, “घड़ों में सब कहा है ।” ( सत्य० ) । “दीनों को मत सताओ ।” “सहज में,” “टंटे में” ।

( अ ) कभी-कभी विशेष्य अकेला आता है और उसका लुप्त विशेष्य अनुमान से समझ लिया जाता है; जैसे—“महाराज जी ने छटिया पर खड़ी ताबी ।” “बापुर बरोही पर बफी कड़ी पीठी ।” ( डेठ० ) ।

"जिसके समझ न एक भी बिजली सिर्क्यर की जाती।"  
( भारत० ) ।

### ( ३ ) संख्यावाचक विशेषण ।

१६४—संख्यावाचक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं—( १ ) निश्चित संख्यावाचक, ( २ ) अनिश्चित संख्यावाचक और ( ३ ) परिमाण बोधक ।

#### ( १ ) निश्चित संख्यावाचक विशेषण

१६५—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों से वस्तुओं की निश्चित संख्या का बोध होता है। जैसे एक बच्चा, पच्चीस रुपये, दसवाँ भाग, सूया मोस, पाँचों इन्जिन, दूर भावनी इत्यादि ।

१६६—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के चार भेद हैं—( १ ) एक वाचक, ( २ ) अन्वयाचक, ( ३ ) आनुसिवाचक ( ४ ) समुदायवाचक, और ( ५ ) अर्थ-बोधक ।

१६७—एकवाचक विशेषणों के दो भेद हैं—

( अ ) पूर्वाङ्ग-बोधक; जैसे, एक, दो बार सी, हजार ।

( आ ) अपूर्वाङ्ग-बोधक; जैसे, पाव भावा बीब छका ।

( अ ) अपूर्वाङ्ग-बोधक ।

१६८—पूर्वाङ्ग-बोधक विशेषण दो प्रकार से लिखे जाते हैं—( १ ) शब्दों में, ( २ ) अक्षरों में । बड़ी-बड़ी संख्याएँ अक्षरों में लिखी जाती हैं, परंतु छोटी छोटी संख्याएँ और अनिश्चित बड़ी संख्याएँ बहुधा शब्दों में लिखी जाती हैं । किन्ति और संख्याओं के अक्षरों में ही लिखते हैं । उदा—“सन् १९०० तक छोटे भर छोटे की दस छोटे चोरी मिछली थी । सन् १९०० में चकोर ली घरम बार ताते भर छोटे की चौदह छोटे मिछले छगो ।” ( इति० ) । “सात वर्ष के अंदर १९ करोड़ रुपये सात पंगी बहायों और धुः बंगी क्यूर्स के बनाने में और चर्च किये जायेंगे ।” ( सर० ) ।

मुख—मखा, बुरा, कबित, अनुचित सब सूट, पापी, दानी, म्वाबी, दुष्ट, सीमा, शांत इत्यादि ।

१५८—मुखवाचक विशेष्यों के साथ हीमता के अर्थ में “सा” प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे “बढ़ासा पेड़” “ऊँचीसी दीवार” “बढ़ चोरी छोटीसी दिक्कती है ।” “उसका सिर कुछ मारीखा हो गया ।”

[ ध्वना—सा=प्राकृत, हरिओ, संस्कृत, उदरमः । ]

१५९—“धाम” ( वा “नामक” ), “संबंधी” और “रूपी” संज्ञाओं के साथ मिलकर विशेष्य होते हैं, जैसे “बाहुक-नाम सारथी,” “परंतप-नामक राजा” “घर संबंधी काम,” “लुप्ता रूपी पत्नी,” इत्यादि ।

१६०—“सरीखा” संज्ञा और संबंधनाम के साथ संबंध-सूचक होकर आता है जैसे, “हरिश्चंद्र सरीखा दानी,” “सुन्द सरीखे लोग” । इसका प्रयोग कुछ कम हो गया है ।

१६१—“समान” ( सत्य ) और “सुख” ( बराबर ) का प्रयोग कभी-कभी संबंध-सूचक के समान होता है । जैसे, “उसका धन धरे के समान बढ़ा था ।” ( रघु ) । “उसका आदमी के बराबर बीषा ।”

( या ) “योग्य” ( आयक ) संज्ञा-सूचक के समान आकर भी बहुधा विशेष्य ही रहता है, जैसे “मेरा योग्य काम आज भित्तिपणा ।”

१६२—मुखवाचक विशेष्य के अर्थसे बहुधा संज्ञा का संबंध-कारक आता है, जैसे, “घरू मगादा”=घर का मगादा, “अंगही जानवर”=अंगल का जानवर । “बनारसी सार्थी”=बनारस की सार्थी ।

१६३—जब मुखवाचक विशेष्यों का विशेष्य छुप्त रहता है तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है ( अ०—१५९ ) ; जैसे, “यहाँ से सब कहा है ।” ( सत्य० ) । “दीनों को मत सताओ ।” “सहज में,” “इंहे में” ।

( घ ) कभी कभी विशेष्य छड़ता आता है और उसका छुप्त विशेष्य अनुमान से समझ लिया जाता है, जैसे—“महाराज की ये छटिया पर हाँपी जाती ।” “बापुरे पटोही पर पढ़ी कड़ी बीठी ।” ( देव ) ।

“त्रिस्तोत्रे समस्त एव एक मी विद्ययी सिर्वाङ्ग की बन्नी ।”  
( भारत० ) ।

( ३ ) सुख्यावाचक विशेषण ।

१९४—संख्यावाचक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं—( १ ) निश्चित संख्यावाचक ( २ ) अनिश्चित संख्यावाचक और ( ३ ) परिमाण बोधक ।

( १ ) निश्चित संख्यावाचक विशेषण

१९५—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों से बलुओं की निश्चित संख्या का बोध होता है; जैसे, एक सप्तम्य पञ्चीस रुपये, दसवाँ भाग, घूना मोर पाँचों इत्रियों, हर आदमी इत्यादि ।

१९६—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के पाँच भेद हैं—( १ ) गण वाचक, ( २ ) क्रमवाचक ( ३ ) सावृत्तिवाचक, ( ४ ) समुदायवाचक, और ( ५ ) प्रत्येक-बोधक ।

१९७—गणवाचक विशेषणों के दो भेद हैं—

( अ ) पूर्णांक-बोधक, जैसे, एक दो, चार, साँ हजार ।

( आ ) अपूर्णांक-बोधक, जैसे पाक आधा पाँच, सवा ।

( अ ) अपूर्णांक-बोधक ।

१९८—पूर्णांक-बोधक विशेषण दो प्रकार से विभक्त होते हैं—( १ ) एक में ( २ ) अंकों में । बड़ी-बड़ी संख्याएँ अंकों में लिखी जाती हैं; परंतु बड़े-बड़े छोटी संख्याएँ धार अनिश्चित बड़ी संख्याएँ बहुधा शब्दों में लिखी जाती हैं । तबि और संवत् को अंकों में ही लिखते हैं । उदा०—“सन् १६० एक हजार भर सोने की दस लाख चाँदी मिलती थी । सन् १७०० में एक ही हजार चार छोटे भर सोन की चौदह लाख मिलन लगा ।” ( इति ) । “सन् १९०० के अंदर १९ करोड़ रुपये सारत वर्गा जहाजों और ३ करोड़ रुपये के जहाजों में और अर्ध क्रिये जायेंगे ।” ( सर० ) ।

१६६—द्व्यांश-वोधक विशेषणों के नाम और अंक नीचे दिये जाते हैं—

एक	१	इम्बीस	२६	इक्यावन	५१	बिहतर	७६
दो	२	सत्ताईस	२७	बावन	५२	सठहतर	७७
तीन	३	अठ्ठाईस	२८	तिरपन	५३	अठहतर	७८
चार	४	ईतीस	२९	बीवन	५४	इन्नासी	७९
पाँच	५	तीस	३०	पचपन	५५	अस्सी	८०
छः	६	इकतीस	३१	षुपन	५६	इक्कासी	८१
सात	७	बचीस	३२	सत्तावन	५७	बयासी	८२
आठ	८	सेंतीस	३३	अठ्ठावन	५८	तिरासी	८३
नी	९	बीतीस	३४	उनसठ	५९	थीरासी	८४
दस	१०	पैंतीस	३५	साठ	६०	पचासी	८५
ग्यारह	११	बचीस	३६	इकसठ	६१	षिपासी	८६
बारह	१२	सेंतीस	३७	बासठ	६२	सत्तासी	८७
तेरह	१३	अठ्तीस	३८	तिरसठ	६३	अठ्ठासी	८८
बीस	१४	ईताबीस	३९	चीसठ	६४	नवासी	८९
पंद्रह	१५	चाबीस	४०	पैंसठ	६५	नव्वे	९०
सोळा	१६	इक्काबीस	४१	षुषठ	६६	इक्यानवे	९१
सत्रह	१७	बयाबीस	४२	सप्तसठ	६७	बानवे	९२
अठारह	१८	सेंताबीस	४३	अष्टसठ	६८	तिरानवे	९३
उन्नीस	१९	बीबाबीस	४४	उनहतर	६९	थीरानवे	९४
बीस	२०	पैंताबीस	४५	सत्तर	७०	पंधानवे	९५
इक्कीस	२१	बियाबीस	४६	इकहतर	७१	बियानवे	९६
बाईस	२२	सेंताबीस	४७	बहतर	७२	सत्तानवे	९७
तेईस	२३	अष्टताबीस	४८	तिहतर	७३	अठ्ठानवे	९८
बीबीस	२४	उनचास	४९	थीहतर	७४	बिघानवे	९९
पचीस	२५	पचास	५०	पचहतर	७५	सौ	१००

१००—दहाई की संख्याओं में एक से छेहर आठ तक अंकों

का उच्चारण दृष्टाद्यो के पहले होता है; जैसे "बी-वह" बी-बीस  
"वे-तीस" "वे-ठातीस" इत्यादि।

(क) दृष्टाद् की संख्या सूचित करने में दृष्टार् बीर दृष्टार् के अंकों का  
उच्चारण हुए बदल जाता है; जैसे—

एक=इक ।	दस=रह ।
दो=दा व ।	बीस=इस ।
तीन=ते तिर ति ।	तीस=तीस ।
चार=चा ची ।	चातीस=ठातीस
पाँच=पँह, पच ।	पचास=चम पन ।
षे=पँच ।	साठ=सठ ।
सप्त=सो, सु ।	सत्तर=इत्तर ।
सात=सत, सँ सव ।	अस्सी=असी ।
आठ=अठ अद ।	नव=नवे ।

१०१—बीस से लेकर अस्सी तक प्रत्येक दृष्टाद् के पहले की संख्या  
सूचित करने के लिए उस दृष्टार् के नाम के पहले "इक" शब्द का अपयोग  
जाता है; जैसे "इतीस" "इतीस" "इससठ" इत्यादि। यह शब्द संस्कृत  
के "इक" शब्द का अपभ्रंश है। "नवासी" और "निधानवे" में क्रमशः  
और "नव" "निधा" जोड़े जाते हैं। संस्कृत में इन संख्याओं के रूप "नवा  
टीति" और "नवमवति" है।

१०२—सौ के ऊपर की संख्या बताने के लिये एक से अधिक शब्दों का  
अपयोग किया जाता है; जैसे १२५="एक सौ पचास" २७५="दो सौ  
पचहत्तर" इत्यादि।

(घ) सौ और दो सौ के बीच की संख्याएँ प्रकट करने के लिए कभी जोड़ी  
संख्या को पहले कह कर फिर दही संख्या बोलते हैं। दृष्टाद् के साथ  
"घोटर" (सँ —उत्तर=अधिक) और दृष्टाद् के साथ "का" जोड़ा  
जाता है; जैसे "घटीतर सौ"=१०८—"चातीस सौ"=१३० इत्यादि।  
इनका प्रयोग बहुधा गणित और पहाड़ों में होता है।

१०३—सीधे लिखे संख्याओं के लिए अलग अलग नाम हैं—



१० ० = हजार ( सं० सहस्र ) ।

१०० हजार = शतक ।

१०० लाख = करोड़ ।

१०० करोड़ = अर्ब ।

१०० अर्ब = प्यर्ब ।

( अ ) अर्ब से उत्तरोत्तर सौ सौ गुनी संख्याओं के छिण क्रमका नीच पद्य शब्द आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है । इन संख्याओं से बहुधा असम्बन्धता का योग होता है ।

( आ ) अपूर्वाङ्ग-बोधक विशेषण ।

१०३—अपूर्वाङ्ग-बोधक विशेषण से पूर्व-संख्या क किसी भाग का बोध होता है; जैसे, पाच=पीचाई भाग, पीन=तीन भाग, सत्ता=एक पूर्वाङ्ग और बीचाई भाग, अडाई=दो पूर्वाङ्ग और आधा इत्यादि ।

( अ ) दूसरे पूर्वाङ्ग-बोधक शब्द अंश ( सं० ) भाग वा हिस्सा ( का ) शब्द के उपयोग से सूचित होते हैं; जैसे, तृतीयांश दो तिसरा हिस्सा वा तिसरा भाग और पंचमांश ( पाँच भागों में से दो भाग ) इत्यादि । तीसरे हिस्से को "तिहाई" और चौथे हिस्से को "बीचाई" भी कहते हैं ।

१०५—अपूर्वाङ्ग-बोधक विशेषणों के नाम और अंक नीचे दिये जाते हैं—

पाच=१, ३

आधा=०, २

पीन=०, ३

अडाई वा डाई=२०, २३

सत्ता=१, १५

दो=१०, १५

पीने दो=१०, १३

साढ़े तीन=३०, ३३

( अ ) एक से अधिक संख्याओं के मात्र पाच और तीन सूचित करने के लिए पूर्वाङ्गबोधक शब्द के पहले क्रमका "सत्ता" ( सं० सत्ता ) और "पीने" ( सं० पाचोन ) शब्दों का उपयोग किया जाता है; जैसे "सत्ता दो"=२०, "पीने तीन"=३५

( घ ) तीन धीर उसके ऊपर की संख्याओं में धावे की अधिकता सूचित करने के लिये "सादे" ( सं०-सार्ध ) का उपयोग होता है। जैसे, सादे धार"=४३; "सादे दस"=१०३, इत्यादि।

[ सू०—"वौने" और "बाड़े" शब्द कभी प्रयुक्त नहीं आते। "सवा प्रकेशा १३ के लिए आता है। ]

१०६—सी, हजार, लाख, इत्यादि संख्याओं में भी अपूर्वांक बोधक शब्द बोधे जाते हैं, जैसे "सवा सी"=१२३, बाईं सी=२५०, "सादे तीस हजार"=३५०० "पैंचि पॉच लाख"=४७५०००, इत्यादि।

१०७—अपूर्वांक-बोधक शब्द मात्र तीस-बाचक संख्याओं के साथ भी आते हैं जैसे, 'सवासेर" "डेद गज" "पीचे तीस बोस" इत्यादि।

१०८—कभी कभी अपूर्वांकबोधक संज्ञा धारों के हिसाब से भी सूचित की जाती है, जैसे "इस साख चौदह आने फसल हुई है।" "इस व्यापार में मेरा धार आने हिस्सा है।" इत्यादि।

१०९—गणनाबोधक विशेषणों के प्रयोग में भी कुछ विशेषताएँ हैं—

( अ ) पूर्वांक-बोधक विशेषण के साथ "एक" बगाने से 'अगमग का अर्थ पाया जाता है, जैसे "दस-एक आदमी" "बाहीस-एक गाँव" इत्यादि।

"सी-एक" का अर्थ "सी के अगमग" है, परंतु "एक-सी एक" का अर्थ "ती धीर एक" है।

अभिरचय अथवा अनादर के अर्थ में 'दो' बोधा जाता है जैसे, दोटोरीटियों, पचासठो आदमी।

[ व कविता में "एक" के बदले बहुधा 'क' बोधा जाता है जैसे, चली हूँ सातक हाथ, "दिल हूँक लें। ( सत० )। ]

( घ ) एक के अभिरचय के लिये उसके साथ धार या धाय बगारत है, जैसे एक-आद टोपी, एक धाय कविता।

एक धीर धार ( धाय ) में बहुधा संधि भी हो जाती है, जैसे, एकाद, एकाव।

( इ ) अनिश्चय के लिए काह भी दो पूर्वाङ्ग-बोधक विशेषण साथ साथ आते हैं, जैसे, “दो-चार दिन में”, “दस-बीस रुपये” “सौ-दो-सौ आदमी” इत्यादि ।

“दो-दो” “आधा-तीन” आदि भी बोलते हैं । “बत्तीस बीस” कहने से कुछ कमी समझी जाती है, जैसे, “बीसवीं अब ठीक-ठीक है ” “तीस-पाँच” का अर्थ “अधार्ह” है और “तीन-ठेरह” का अर्थ “तिर-तिर” है ।

( ई ) “बीस”, “पचास”, “सठ”, “हजार” “लाख” और “करोड़” में धो बोझने से अनिश्चय का बोध होता है ।

जैसे “बीसों आदमी” “पचासों बर,” “सैकड़ों रुपये” “हजारों बरस” “करोड़ों पंडित” इत्यादि ।

[ सू०—एक लेखक हिंदी “करोड़” शब्द के साथ “घों” के बदले फारसी का “हा” प्रत्यय जोड़कर “करोड़हा” लिखते हैं जो असुद्ध है । ]

१८०—क्रमवाचक विशेषण से किसी वस्तु की क्रमानुसार गणना का बोध होता है; जैसे, पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा इत्यादि ।

( अ ) क्रम-वाचक विशेषण पूर्वाङ्गबोधक विशेषणों से बनते हैं । पहले चार क्रम-वाचक विशेषण निम्न-रहित हैं; जैसे—

एक=पहला	तीन=तीसरा
दो=दूसरा	चार=चौथा

( आ ) पाँच से छेठर पागै के शब्दों में ‘वाँ’ जोड़ने से क्रमवाचक विशेषण बनते हैं, जैसे—

पाँच=पाँचवाँ	दस=दसवाँ
छः=( छठवाँ ) छठा	पंद्रह=पंद्रहवाँ
आठ=आठवाँ	पचास=पचासवाँ

( इ ) सौ से ऊपर की संख्याओं में विशेष शब्द क संत में वाँ आते हैं; जैसे, एक सौ तीसरा, दो सौ आठवाँ इत्यादि ।

( ई ) कमी-कमी संशुद्ध क्रम-वाचक विशेषणों का भी उपयोग होता है; जैसे प्रथम (पहला), द्वितीय (दूसरा), तृतीय (तीसरा) चतुर्थ (चौथा)

पंचम ( पञ्चमो ), षष्ठ ( षष्ठ ), सप्तम ( सप्तमो ) । “षष्ठम”  
 अष्टम है ।

( उ ) त्रिपिचो के नामों में हिंदी शब्दों के सिवा कमी-कमी संस्कृत शब्दों  
 का भी उपयोग होता है; जैसे द्विती-तृती ( दोन ) तीस, चौथा  
 पंचि षष्ठ, इत्यादि । संस्कृत द्वितीया तृतीया चतुर्थी, पंचमी  
 षष्ठी, इत्यादि ।

१८१—आह्वतिवाचक विरोध से आता जाता है कि उसके विरोध  
 का वाच्य पदार्थ के गुण है; जैसे दुग्ना, त्रीगुना, चतुगुना सौगुना इत्यादि ।

( घ ) र्पाक-बोधक विरोध के भागे “गुना” शब्द आगने से आह्वति  
 वाचक विरोध बनते हैं । “गुना” शब्द आगने के पहले ही से छेकर  
 आठ तक संख्याओं के शब्दों में आप स्वर का कुछ विचार होता  
 है; जैसे

दो=दुग्ना वा द्वा  
 तीस=त्रिगुना  
 चार=चौगुना  
 पंच=पचगुना

षु=षुगुना  
 सात=सतगुना  
 आठ=अष्टगुना  
 बी=बीगुना

( ङ ) पाठ वा प्रश्न के अर्थ में ‘हरा’ बोधा जाता है; जैसे इकरा  
 दुहरा, तिहरा चौहरा इत्यादि ।

इ ) कमी-कमी संस्कृत के आह्वति-वाचक विरोधों का भी उपयोग होता  
 है; जैसे त्रिगुण्य, त्रिगुण्य, चतुर्गुण्य इत्यादि ।

ई ) पदाओं में आह्वति-वाचक और अर्थात्-संख्या-बोधक विरोधों के रूपों  
 में कुछ अंतर हो जाता है, जैसे—

दून—दूने, दूनी ।  
 त्रिगुना—त्रिपा, त्रिरिक ।

तथा—तथाम ।  
 वेद—वेदइ ।  
 अकार अथाम ।

चौगुना—चौक ।  
 पंचगुना—पंचे ।

द्वगुना—द्वक ।  
 सतगुना—सत्ते ।

अठगुना—अष्टौ ।

नौगुना—नवौं, नवै ।

दसगुना—दशम ।

[ मू०—इन शब्दों का उच्चारण भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है । ]

१८२—समुदाय वाचक विशेषणों से किसी पूर्णांक-बोधक संख्या के समुदाय का बोध होता है; जैसे दोसौ हाथ, चारों पाँच, आठों बरके, आठ्ठीसों चोर इत्यादि ।

( अ ) पूर्णांक-वाचक विशेषणों के आगे 'बो' बोधने से समुदायवाचक विशेषण बनते हैं; जैसे चार—चारों; दस—दसों, सोलह—सोलहों, इत्यादि । 'बो' का रूप 'बयों' होता है ।

( आ ) "दो" से "दोनों" बनता है । 'एक' का समुदायवाचक रूप "अकेला" है । "दोनों" का प्रयोग बहुधा सर्वनाम के समान होता है; जैसे, "दुविधा में दोनों गये, माया मिछी न राम ।" "अकेला" कभी-कभी क्रिया-विशेषण के समान आता है; जैसे, "विपिन अकेला फिरतु केदि हेतु ।" ( राम० ) ।

[ सूचना—"बो" प्रत्यय अनिश्चय में भी आता है ( अ०—१७६—ई ) । ]

( इ ) कभी-कभी अवधारण के लिए समुदायवाचक विशेषण की द्विपक्षि भी होती है; जैसे, "पाँचों के पाँचों आदमी बसे गये ।" "दोनों के दोनों बरके मूर्त निकले ।"

( ई ) समुदाय के अर्थ में कुछ संज्ञाएँ भी आती हैं; जैसे

जोड़ा जोड़ी=दो

दहाड़=दस

कोड़ी बीसा बीसी=बीस ।

बत्तीसी=पचोस ।

बहरम=बह ।

गँदा=चार या पाँच ।

गाही=पाँच ।

बाईसा=पचासी ।

संख्या=संज्ञा ।

द्वैत ( दो )=दो ।

( ४ ) सुगम ( जो ) पंचक ( पाँच ) घटक ( भाग ) आदि । संछुत समुदाय-वाचक संशार्प भी प्रचार में हैं ।

१८१—प्रत्येक-बोधक विशेषण में कई बस्तुओं में से प्रत्येक का बोध होता है। जैसे “हर घड़ी”, हर-एक आदमी, “प्रति-जन्म” “प्रत्येक वाक्य”, “हर आठवें दिन”, इत्यादि ।

“हर” उन्मु शब्द है । ‘हर’ क बच्चे कमी-कमी उन्मु “घड़ी” आता है; जैसे, कौमल की निरुद्ध ।—)

( ५ ) गणना-वाचक विशेषणों की द्विरक्ति से भी यही अर्थ निकलता है। जैसे एक-एक बच्चे को आधा-आधा फल मिला ।” “दो दो-दो बटे के बाद दो आये ।”

( ६ ) अपूर्वाक-बोधक विशेषणों में मुख्य शब्द की द्विरक्ति होती है। जैसे, सया-सया गत्र’, “दार्-दार् सी बपये” “र्यावे दो-दो मत्र” “सांये पार्थ-पार्थ हजार” इत्यादि ।

## ( २ ) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण ।

१८२—जिस संख्यावाचक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता उस अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं, जैसे एक बूझा ( अल्प अरि ) सब ( सर्व ) सऊव समस्त कुत्र ) बहुत ( अनेक कई ) आदि ( उपादा ) कम, कुत्र आदि ( इत्यादि अरि ) अमुक, ( अज्ञान ) है ।

अनिश्चित संख्या के अर्थ में इत्यत्र प्रयोग बहुवचन में होता है । अरि अरि विशेषणों के समान ये विशेषण भी ( जिना विशेषण के ) संज्ञा के समान उपबोध में आते हैं; अरि इनमें से फार् अरि परिमाय-बोधक विशेषण भी होते हैं ।

( १ ) “एक” पूर्वाक-वाचक विशेषण है; परंतु इसका प्रयोग बहुवचन विशेषण के अर्थ होता है ।

( २ ) “एक” से कमी कमी “अरि” का अर्थ पाया जाता है; जैसे “एक दिन देखा हुआ ।” हमने एक बात सुनी है ।”

- ( आ ) जब “एक” संज्ञा के समान आता है तब उसका प्रयोग कभी-कभी बहुवचन के अर्थ में होता है; और दूसरे वाक्य में उसकी द्विक्रि भी होती है; जैसे “एक रोता है और एक हँसता है।” “इक प्रविष्टाहि इक निर्गमहि।” ( राम० )।
- ( इ ) “एक” कभी-कभी ‘केवल’ के अर्थ में लिंगा-विशेष्य होता है; जैसे “एक आधा सेर आटा चाहिए”। एक तुम्हारे ही हुए से हम हुयी हैं।
- ( ई ) “एक” के साथ “स” प्रत्यय डवाने से “समान” का अर्थ पाया जाता है; जैसे, दोनों बच्चे एकसा है।
- ( उ ) अभिप्रेय के अर्थ में “एक” कुछ सर्वनामों और विशेषणों में बोका जाता है; जैसे, कोई-एक, इस-एक, कई-एक, कितने-एक इत्यादि।
- ( ए ) “एक—एक” कभी-कभी “बहु—बहु” के अर्थ में निरवयव-वाचक के समान आता है; जैसे,

“पुत्रि बंधी शरद सुर-सरिता।

पुगाव पुनीत मनोहर चरिता ॥

मन्मथ पान पाप हर एका।

कहत-सुवत इक हर अविनेक ॥”—( राम० )।

( २ ) ‘दूसरा’ ‘दो’ का क्रम वाचक विशेष्य है। वह ‘प्रकृत प्राची या परार्थ से मित्र’ के अर्थ में आता है; जैसे, ‘यह दूसरी बात है।’ ‘हार दूसरे हीनता उचित न तुलसी शेर। ( तु० स० )। दूसरा के पर्यायवाची ‘अन्य’ और ‘द्वितीय’ हैं; जैसे अन्य परार्थ, और आति।

( अ ) कभी-कभी ‘दूसरा’ ‘एक’ के साथ विभिन्नता ( तुलना ) के अर्थ में ( संज्ञा के समान ) आता है; जैसे ‘एक जलता मांस भारे तुम्हारे के मुँह में रख देता है और दूसरा उसी को फिर घट से खा जाता है।’ ( सत्व० )।

( आ ) ‘एक—एक’ के समान ‘एक—दूसरा’ अथवा ‘पहला—दूसरा’ पदों के कहीं कहीं दो वस्तुओं का क्रमानुसार निरवयव सूचित करता है; जैसे प्रतिष्ठा के लिए दो विद्यार्थी हैं, एक लड़का और दूसरी लड़की। पहली कक्षा में हँसी कराती है परंतु दूसरी का लड़का बाहर होता है।

- ( ६ ) 'एक—दूसरा' वीगिक शब्द है और इसका प्रयोग 'धारस के धर्म' में होता है। यह बहुधा सर्वनाम के समान ( संज्ञा के बरबे में ) आता है, जैसे बड़के एक दूसरे से कहते हैं।
- ( ७ ) 'और' कभी कभी 'अधिक संख्या' के अर्थ में भी आता है, जैसे, 'मैं और धाम हूँगा।'
- ( ८ ) "और का और" विशेष्य-वाक्यांश है और उसका अर्थ 'मिश्र' होता है जैसे, "उसने और का और काम कर दिया।"
- ( ९ ) "और" समुच्चय-बोधक भी होता है; जैसे, "हवा बची और पानी गिरा।" ( अ०—२७४ )।
- ( १० ) "कोई" "कुछ", 'और और 'क्या' के साथ भी 'और' आता है; जैसे, 'असब और कोई और है। 'मैं कुछ और बूँगा।' तुम्हारे साथ और कीब है। मरने के सिवा और क्या होगा।

( १ ) "सब" पूरी संख्या सूचित करता है, परंतु अभिनिश्चय रूप से। "सब" में पाँच भी शामिल है और पचास भी। इसका प्रयोग बहुधा बहु वचन संज्ञा के साथ होता है, जैसे "सब बड़के।" सब कपड़े। 'सब भीड़। 'सब प्रकार।

( २ ) संज्ञा-रूप में इसका प्रयोग 'संपूर्ण प्राणी वा पदार्थ' के अर्थ में आता है, जैसे सब पही बात कहते हैं। 'सब के हाता राम। 'धारमा सब में ज्वात है। 'मैं सब जानता हूँ।

( ३ ) 'सब के साथ' 'कोई' और 'कुछ' आते हैं। 'सब कोई' और 'सब कुछ' के अर्थ का अंतर 'कोई' और 'कुछ' ( सर्वनामों ) के ही समान है; जैसे, सब कीई अपनी बहार्त जाहते हैं। ( अ० ) 'हम सम सने सब हूय हैं। ( सत्य० )।

( ४ ) 'सब का सब' विशेष्य वाक्यांश है। और इसका प्रयोग 'समस्तता' के अर्थ में होता है, जैसे, सब के सब बड़के और आये।

( ५ ) 'सब के पर्यायवाची' सर्व, सकल 'समस्त' और बहु 'कुत्र' हैं। इन शब्दों का उपयोग बहुधा विशेष्य ही के समान होता है।



( ४ ) 'बहुत 'घोड़ा' का उदाहरण है। 'जैसे मुसलमान थे बहुत और हिंदू थे घोड़े।' ( सर० )।

( ५ ) 'बहुत' के साथ 'से' और 'सारे' जोड़ने से कुछ अधिक संख्या का बोध होता है; जैसे, बहुत से लोग ऐसा समझते हैं। 'बहुत-सारे बच्चे।' यह पिछला प्रयोग प्रांतीय है।

( ६ ) 'बहुत' के साथ 'कुछ' भी आता है। 'बहुत कुछ का अर्थ प्रायः बहुत से' के समान होता है; जैसे बहुत कुछ आदमी घाये थे।'

( ७ ) 'अनेक ( अन्+एक ) एक' का उदाहरण है। इसका प्रयोग कम अभिविधत संख्या के लिए होता है। 'अनेक 'कच्चे' प्रायः समानार्थी हैं। उदा०—'अनेक जन्म', 'कई रंग' इत्यादि। 'अनेक' में विविधता के अर्थ में बहुधा 'घों' जोड़ देते हैं; जैसे, 'अनेकों रोग', 'अनेकों मनुष्य' इत्यादि।

( ८ ) 'कई' के साथ बहुधा 'एक' आता है। 'कई एक का अर्थ प्रायः 'कई प्रकार का' है और उसका पर्यायवाची 'माना' है; जैसे, 'कई-एक भाइय', 'माना कुछ' इत्यादि।

( ९ ) 'अधिक' और 'ज्यादा' तुलना में आते हैं; जैसे 'अधिक रपना', 'ज्यादा दिन' इत्यादि।

( १० ) 'कम' 'ज्यादा' का उदाहरण है और इसी के समान तुलना में आता है; जैसे, 'इस वह कपड़ा कम दामों में बेचते हैं।

( ११ ) 'कुछ' अनिश्चयवाचक सर्वनाम होने के सिवा ( अ०—१३३, १५१—३ ) संख्या का भी धोतक है। यह 'बहुत' का उदाहरण है; जैसे, 'कुछ लोग', 'कुछ फल' 'कुछ ठारे' इत्यादि।

( १२ ) आदि का अर्थ 'आर' ऐसे ही दूसर हैं। इसका प्रयोग संज्ञा और विशेषण दोनों के समान होता है; जैसे, 'आप मरी ईषी और मानुषी आदि सभी आपत्तियों का कारण बननाछे हैं। ( १५० )। 'विद्याभ्यासिता, इपकारप्रियता, आदि कुछ जिसमें सहज हो, ( सत्त्व० )। इस पुष्टि से इसको टोपी, स्माछ, धड़ी, धड़ी, आदि का बहुधा अर्थ हो जाता था। ( परी० )। 'आदि' के पर्यायवाचक 'इत्यादि' और 'वगैरह' हैं। 'वगैरह' उर्दू

( भारती ) शब्द है। हिंदी में इसका प्रयोग कम होता है। इत्यादि का प्रयोग बहुधा किसी विषय के कुछ उदाहरणों के परत्वात् होता है; जैसे, क्या हुआ, क्या देखा इत्यादि। ( भाष्य-सार० )। पठन, मनन, घोषणा, इत्यादि सब शब्द वही गवाही देते हैं। ( इति० )।

६ — 'आदि', 'इत्यादि' और 'वगैरह' शब्दों का उपयोग बार बार करने से लेखक श्री असावधानी और अर्थ का अनिश्चय सूचित होता है। एक उदाहरण के परत्वात् आदि, और एक से अधिक के बाद इत्यादि शाना पारिप, जैसे, वर आदि श्री स्वतत्त्वा; करने, मनन, इत्यादि का प्रबंध।

( १ ) 'अमुक' का प्रयोग 'कोई-एक ( अं-१३९-३ ) के अर्थ में होता है; जैसे 'आरमी यह नहीं कहते कि अमुक बात अमुक राय या अमुक संमति विशेष है।' ( स्वा० )। 'अमुक' का पर्यायवाची 'अध्याना ( अर्थ-अर्थ )' है।

( २ ) 'कै' का अर्थ परत्वाचक विशेषण कितने के समान है। इसका प्रयोग संज्ञा की तरह कचित् होता है; कै कहने कै धाम इत्यादि।

### ( ३ ) परिमाय-बोधक विशेषण

१८३—परिमाय-बोधक विशेषणों में किसी वस्तु की माप या सीमा का बोध होता है; जैसे और, सब सारा, समूचा अधिक ( ज्यादा ), बहुत बहुतेरा कुछ ( अल्प, किंचित् अरु ) कम थोड़ा, पूरा, अपूर्ण अपेक्ष इत्यादि।

( अ ) इन शब्दों से लेखक अनिश्चित परिमाय का बोध होता है; जैसे 'और ही जाओ 'सब धाम 'सारा कुटुंब', 'बहुतेरा काम 'थोड़ी बात इत्यादि।

( आ ) ये विशेषण एक वचन संज्ञा के साथ परिमाय-बोधक और बहुवचन संज्ञा के साथ अनिश्चित संख्यावाचक होते हैं जैसे

परिमाय-बोधक

बहुत कुछ

सब जंगल

अनिश्चित संख्यावाचक

बहुत धारमी

सब पेड़

परिमात्र बोधक	अनिश्चित संख्यावाचक
सारा देश	सारे देश
बहुतेरा काम	बहुतेरा कपड़ा
पूरा धान	पूरे ढुन्ने

'अल्प', 'किंचित' और 'बुरा' केवल परिमात्रवाचक हैं ।

- ( इ ) निश्चित परिमात्र बताने के लिए संख्यावाचक विशेष्य के साथ परिमात्र-बोधक संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है; जैसे 'दो सैर धी,' 'चार गज मकमल 'दस हाथ जगह' इत्यादि ।
- ( ई ) परिमात्र-बोधक संज्ञाओं में 'धो' बोधने से कपड़ा प्रयोग अनिश्चित परिमात्र-बोधक विशेष्यो के समान होता है; जैसे, 'दो हाथ धी,' 'सब धी,' 'गादियों का' इत्यादि ।
- ( ठ ) एक परिमात्र सूचित करने के लिए परिमात्र-बोधक संज्ञा के साथ 'भर' प्रत्यय जोड़ देते हैं, जैसे,

एक गज कपड़ा = गज भर कपड़ा ।

एक तीस्ता सोना-ढोखे भर सोना ।

एक हाथ जगह = हाथ भर जगह ।

- ( ड ) कोई-कोई परिमात्रबोधक विशेष्य एक दूसरे से मिलकर आते हैं जैसे, बहुत-सा-काम 'बहुत-कुछ धारा 'धोका-बहुत काम' 'काम-उपार्वा कामद्वी'

- ( ढ ) 'बहुत', 'धोका', 'बुरा', 'अधिक' ( ज्यादा ) के साथ विशेष्य के अर्थ में 'सा, प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे, 'बहुतसा काम', 'धोकीसी' विषा 'जरासी बात' 'अधिकसा बक ।

- ( ए ) कोई-कोई परिमात्रवाचक विशेष्य क्रियाविशेष्य भी होते हैं, 'बक से हमर्यही को बहुत कामधारा । ( गुरुका० ) । 'बह बात तो कुछ ऐसी बनी न थी । ( शकु० ) । 'जिनको और सार पक्षियों की धरेया पर ही अधिक प्यार है । ( रतु० ) "बकीर और सीपी करो । 'बह सोना धोका लोटा है । जोड़े' का अर्थ भावः नहीं के बराबर होता है, जैसे, हम कहते 'धोड़े' हैं ।

## संख्या वाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति ।

१८१—हिंदी के सब संख्यावाचक विशेष्य माकृत के द्वारा संस्कृत से निकल हैं जैसे,

सं०	प्रा	दि	। सं	प्रा०	दि०
एक	एक	एक	विशति	बीसह	बीस
द्वि	दुप	दो	विशत्	तीसघा	तीस
त्रि	तिराय	तीन	। चत्वारिंशत्	चत्वारिंश	चालीस
चतुर	चत्तारि	चार	पञ्च शत्	पचग्याहा	पचास
पञ्चम्	पञ्च	पाँच	षष्टि	षष्टि	षाट
षट्	षट्	छः	सप्तति	सत्तरी	उत्तर
सप्तम्	सप्त	साठ	अष्टाति	आसीह	अस्सी
अष्टम्	अष्ट	आठ	नवति	नउए	नम्ब
नवम्	नव	नौ	शत	सह	सो
दशम्	दश	दस	शतस	सहस	सहस
सप्तम	पठमो	पहला	चतुस	चतस्ये	चौबा
द्वितीय	दुसरा	दूसरा	पञ्चम	पंचमो	पाँचवाँ
तृतीय	तसरा	तीसरा	षट्	षटो	छठा

[ टी०—हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में विशेषणों के मेर और उभमेर नहीं किये गए । इसका कारण कदाचित् बर्गीकरण के व्यापकतावा कारण का अभाव हो । विशेषणों के बर्गीकरण का करण हम इस अध्याय के चारम में ( सं०—१४७—ए ) लिख आये हैं । इनका बर्गीकरण केवल “भाषावल्ल दंपिच” में पाया जाता है, इसलिये हम अपने किये हुए मेरों का मिलाना इहाँ पुस्तक में दिये गए मेरों से करते हैं । इस पुस्तक में “संख्या विशेषण” का चौथे मेर किये गए हैं—( १ ) संख्यावाचक ( २ ) समूहवाचक ( ३ ) क्रमवाचक ( ४ ) आह्वितवाचक और ( ५ ) संख्यावाचक । इनमें “संख्या विशेषण” और “संख्यावाचक” एक ही अर्थ के दो नाम हैं का क्रमशा जाति और उत्तरी उत्पत्ति भी दिये गये हैं । इसमें मामों की गणना के विषय

[ दो०—क्रिया के वा लक्षण हिंदी व्याकरणों में दिये गये हैं उनमें से प्रायः सभी लक्षणों में क्रिया के अर्थ का विचार किया गया है, जैसे—'क्रिया काम को कहते हैं।' अर्थात् 'बिना शब्द से करने अवकाश होने का अर्थ किसी बात, पुरुष और वचन के साथ पाया जाय।' (भाषा प्रमाकर) व्याकरण में शब्दों के लक्षण और वर्गीकरण के लिए उनके रूप और प्रयोग के साथ कभी कभी अर्थ का भी विचार किया जाता है परंतु केवल अर्थ के अनुसार लक्षण करने से विवेचन में गड़बड़ होती है। यदि क्रिया के लक्षण में केवल 'करना' या 'होना' का विचार किया जाय तो 'जाना', 'जाता हुआ' 'जाने वाला' आदि शब्दों को भी 'क्रिया' कहना पड़ेगा। भाषा-प्रमाकर में दिये हुए लक्षण में जो काल, पुरुष और वचन की विशेषता बताई गई है वह क्रिया का अभावपर्यय धर्म नहीं है और वह लक्षण एक प्रकार का वर्णन है।

क्रिया का जो लक्षण यहाँ लिखा गया है उस पर भी यह ध्यायेन हो सकता है कि कोई-कोई क्रियाएँ अकेली विधान नहीं कर सकती—जैसे, 'राजा दयालु है।' 'पत्नी बीससे बनाते हैं।' इन उदाहरणों में 'है' और 'बनाते हैं' क्रियाएँ अकेली विधान नहीं कर सकती। इनके साथ क्रमशः 'दयालु' और 'बीससे' शब्द रखने की आवश्यकता हुई है। इस ध्यायेन का उत्तर यह है कि इन वाक्यों में 'है' और 'बनाते हैं' विधान करने वाले मुख्य शब्द हैं और उनका बिना काम नहीं चल सकता; चाहे उनके साथ कोई शब्द रहे या न रहे। क्रिया के साथ किसी दूसरे शब्द का रहना या न रहना उसके अर्थ की विशेषता है। ]

१८३—घात मुख्य दो प्रकार के होते हैं—( १ ) सकर्मक और ( २ ) अकर्मक ।

१२०—जिस वात से सूचित होनेवाले व्यापार का फल कर्ता से निकलकर किसी दूसरी वस्तु पर पड़ता है उसे सकर्मक घात कहते हैं। जैसे 'सिपाही घोर को पकड़ता है।' 'बीर पिट्टी खाया।' पहले वाक्य में 'पकड़ता है, क्रिया के व्यापार का फल सिपाही कर्ता से निकलकर 'घोर' पर पड़ता है, इसलिये 'पकड़ता है' क्रिया ( अथवा 'पकड़' घात ) सकर्मक है, दूसरे वाक्य में 'खाया' क्रिया ( अथवा 'खा' घात ) सकर्मक है; क्योंकि इसका फल 'बीर' कर्ता से निकलकर 'पिट्टी' कर्म पर पड़ता है।

( ४ ) कर्ता का अर्थ 'करनेवाला'। क्रिया के व्यापार का करनेवाला ( प्राणी या पदार्थ ) 'कर्ता' कहलाता है। जिस शब्द से इस करनेवाले का

बोध होता है उसे भी ( व्याकरण में ) 'कर्ता' कहते हैं पर पदार्थ में शब्द कर्ता नहीं हो सकता । शब्द का कर्ता-कारक भवना कर्तृपद् कहना चाहिए । जिस क्रियाओं में स्थिति वा विकार का बोध होता है उनका कर्ता बहु पदार्थ है जिसकी स्थिति वा विकार के विषय में विचार किया जाता है। लुप्त चतुर है । मंत्री राजा हो गया

( घा ) घात से सूचित होनेवाले व्यापार का कस कर्ता से निकलकर क्रिया वस्तु पर पड़ता है उसे कर्म कहते हैं, जैसे, 'सिपाही खोर को बक दता है ।' 'बक' चिट्ठी काया । पहले वाक्य में 'पकड़ता है' क्रिया का कस कर्ता से निकल कर खोर पर पड़ता है; इसलिये 'खोर कर्म है । दूसरे वाक्य में 'काया' क्रिया का कस चिट्ठी पर पड़ता है; इसलिये 'चिट्ठी' कर्म है । 'सकर्मक' का अर्थ है 'कर्म के सहित और कर्म के साथ आने ही से 'सकर्मक' कहलाती है ।

१६१—जिस घात से सूचित होनेवाला व्यापार और उसका कस कर्ता ही वा वही उसे अकर्मक घात कहते हैं; जैसे, 'गाड़ी चली ।' अकर्मक स्रोता है । पहले वाक्य में 'चली' क्रिया का व्यापार और उसका कस 'गाड़ी कर्ता ही पर पड़ता है। इसलिये 'चली' क्रिया अकर्मक है । दूसरे वाक्य में 'चोटा' है क्रिया भी अकर्मक है, क्योंकि उसका व्यापार और कस 'कड़का' कर्ता ही पर पड़ता है । 'अकर्मक' शब्द का अर्थ 'कर्म-रहित और कर्म के न होने से क्रिया 'अकर्मक' कहाती है ।

( ङ ) 'अकर्मक अर्थ को सुचार रहा है'—इस वाक्य में वयपि क्रिया के व्यापार का कस कर्ता ही पर पड़ता है तथापि 'सुचार रहा है' क्रिया सकर्मक है; क्योंकि इस क्रिया के कर्ता और कर्म एक ही व्यक्ति के वाचक होने पर भी अलग अलग शब्द हैं । इस वाक्य में 'अकर्मक' कर्ता और 'अर्थ को' कर्म है, वयपि ये दोनों शब्द एक ही व्यक्ति के वाचक हैं ।

१६२—घोड़ घोड़ वातु यवोग के अनुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों होते हैं; जैसे सुजवाना, मरना अजाना, भूखना, बिसबा, बहकना, रेंडना, कलकाना, पबाराणा इत्यादि । उदा०—'मर हाव सुजवाने हैं ।' ( घ ) । ( शब्द० ) । 'असका यदन सुजसाकर उसकी सेवा करने में उसने घोड़

कसर नहीं थी। (स०) (सु०)। 'लेख-तमाशे की चीजें देखकर भीले यासे आदमियों का भी लल्लुचाता है।' (अ०)। (परी०)। 'बाहूट अपने असबाब की खरीदारी के लिये मन्मनमोहन को लल्लुचाता है।' (स)। तथा बूँद सूँद करके ताजाब भरता है।' (अ०)। (कहा०)। 'प्यारी मे आँलें भरके कहा। (स०)। (शकु०)। इनको उभय-विध धातु कहते हैं।

१११—उक्त सकर्मक क्रिया के व्यापार का फल किसी विशेष पदार्थ पर न पड़ कर सभी पदार्थों पर पड़ता है। तब उसका कर्म प्रकट करने की आवश्यकता नहीं होती, जैसे, 'इंकार की कृपा से बहारा लुमता है और गुँगा खोजता है।' 'इस पाठशाळा में कितने बच्चे पढ़ते हैं ?'

११२—कुछ अकर्मक धातु ऐसे हैं जिनका आशय कर्म-कमी अथवा कर्त्ता से पूर्वतया प्रकट नहीं होता। कर्त्ता के विषय में पूर्व विधान होने के लिए इन धातुओं के साथ कोई संज्ञा या विशेषण आता है। इन क्रियाओं को अपूर्ण अकर्मक क्रिया कहते हैं और का उद्देश्य इनका आशय पूरा करके के लिए आते हैं उन्हें पूर्ति कहते हैं। 'होना' 'रहना' 'बनना' 'दिखाना' 'निकलना' 'ठहरना' इत्यादि अपूर्ण अकर्मक क्रियाएँ हैं। उदा०—'राजका चतुर है।' 'साधु खोर निकला।' 'बीमार पीमार रहा।' 'घाप मेर मित्र ठहरे।' 'यह मनुष्य विदग्धी दिखता है।' इन वाक्यों में 'चतुर' 'खोर', 'बीमार' आदि शब्द पूर्ति हैं।

- ( अ ) पदार्थों के स्वाभाविक धर्म और प्रकृति के विषयों को प्रकट करके के लिए बहुधा 'है' या 'होता है' क्रिया के साथ संज्ञा या विशेषण का उपयोग किया जाता है; जैसे, 'सोना भारी धातु है।' 'पीसा चौपाया है।' 'बोरी सफेद होती है।' इत्यादि के साथ पड़े होते हैं।
- ( आ ) अपूर्ण क्रियाओं से साधारण धर्म में पूरा आशय भी पाया जाता है; जैसे 'इंकार है', 'सपरा हुआ', 'सूरज निकला', 'गाड़ी दिखाई देनी है' इत्यादि।
- ( इ ) सकर्मक क्रियाएँ भी एक प्रकार की अपूर्ण क्रियाएँ हैं। क्योंकि उनमें कर्म के बिना पूरा आशय नहीं पाया जाता। तथापि अपूर्ण अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं में यह अंतर है कि अपूर्ण अकर्मक क्रिया की पूर्ति से उसके कर्त्ता ही की स्थिति या विचार सूचित होता है और

सकर्मक क्रिया की पूर्ति ( कर्म ) कर्ता से मिला होती है; जैसे 'मंजी राजा बन गया' 'मंजी से राजा को बुझाया। सकर्मक क्रिया की पूर्ति ( कर्म ) की बहुधा पूरक करते हैं।

१११—देखा, बलवाना कहना सुनाया और इन्हीं अर्थों के दूसरे कई सकर्मक धातुओं के साथ ही हो कर कर्म करते हैं। एक कर्म से बहुधा परार्थ का बोध होता है और उसे मुख्य कर्म कहते हैं; और दूसरा कर्म को बहुधा प्राथिवाचक होता है, गौण कर्म कहलाता है, जैसे, 'गुरु के शिष्य को ( गौण कर्म ) पोषी ( मुख्य कर्म ) ही। 'मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ।' इत्यादि।

( अ ) गौण कर्म कमी-कमी हुए रहता है; जैसे राजा ने दान दिया।  
'स्थित किया सुनाते हैं।

११२—कमी-कमी करना, बनाना, समझना, पाना, मानना आदि सकर्मक धातुओं का अभाव कर्म के रहते भी पूरा नहीं होता, इसलिए उनके साथ कोई संज्ञा या विशेषण पूर्ति के रूप में आता है; जैसे, 'अहमपाठ' के गंगा पर की अचना बीयास बचाया। 'मैंने जोर की स्थापु समझा। हम क्रियाओं को अपूर्ण सकर्मक क्रियाएँ कहते हैं और इसकी 'पूर्ति कर्म-पूर्ति कहलाती है। इससे मिला असकर्मक अपूर्ण क्रिया की पूर्ति को उद्देश्य-पूर्ति कहते हैं।

( अ ) साधारण अर्थ में सकर्मक अपूर्ण क्रियाओं को भी पूर्ति की आवश्यकता नहीं होती; जैसे, 'हुन्दार बना बनाता है। 'बर्फ के पाठ समझते हैं।

११३—किसी-किसी असकर्मक और किसी-किसी सकर्मक धातु के साथ उनी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा कर्म के समान प्रयुक्त होती है; जैसे, 'अपना अपनी बाल बचता है।' 'जिपाही कई लड़ाइयों बना।' 'अधिकारी खेला रहा है।' 'पत्नी अनोकी योही बोलते हैं।' 'किसान ने चार को बड़ी मार मारी। इस कर्म को सञ्जातीय कर्म और क्रिया को सञ्जातीय क्रिया कहते हैं।

### बौगिक धातु।

११४—धुत्पत्ति के अनुसार धातुओं के दो भेद होते हैं—, १ ) मूळ धातु और ( २ ) बौगिक धातु।



११४—मूल-धातु वे हैं जो किसी दूसरे शब्द से न बने हों, जैसे, करना, बैठना, खडना, खेना ।

१००—जो धातु किसी दूसरे शब्द से बचाये जाते हैं वे धौगिक धातु कहते हैं; जैसे, 'बडना से 'बडाना', 'रंग' से 'रंगना', 'खिडना' से 'खिडनाया' इत्यादि ।

( घ ) संयुक्त धातु धौगिक धातुओं का एक भेद है ।

( ए०—जो धातु हिंदी में मूल धातु माने जाते हैं उनमें बहुत से प्राकृत के द्वारा संस्कृत धातुओं से बने हैं जैसे, सं —क, प्रा०—कर, हि०—कर । सं०—मू, प्रा०—हो, हि०—हो । संस्कृत अथवा प्राकृत के धातु चाहे धौगिक हो चाहे मूल, परंतु उनके निकले हुए हिंदी धातु मूल ही माने जाते हैं क्योंकि व्याकरण में, दूसरी भाषा से आए हुए शब्दों की मूल स्मृतति का विचार नहीं किया जाता । यह विषय विशेष कर है । हिंदी ही के शब्दों से अथवा हिंदी प्रत्ययों के योग से जो धातु बनते हैं उन्हीं को, हिंदी में, धौगिक मानते हैं । )

१०१—धौगिक धातु तीन प्रकार से बचते हैं—( १ ) धातु में प्रत्यय जोड़ने से सफ़र्मक तथा प्रेरणार्थक धातु बनते हैं, ( २ ) दूसरे शब्द-श्रेणों में प्रत्यय जोड़ने से नाम-धातु बचते हैं और ( ३ ) एक धातु में एक वा दो धातु जोड़ने से संयुक्त धातु बचते हैं ।

( ए —यदि धौगिक धातुओं का विवेचन स्मृतति का विषय है तथापि सुभीते के लिए हम प्रेरणार्थक धातुओं का और नाम-धातुओं का विचार ही अथवाच में, और संयुक्त धातुओं का विचार क्रिया के रूपांतर प्रकरण में करेंगे ।

### ( १ ) प्रेरणार्थक धातु

१०२—मूल धातु के त्रिभुज रूप से क्रिया के रूपांतर में कर्ता पर किसी की प्रेरणा समझी जाती है अथ प्रेरणार्थक धातु कहते हैं; जैसे, बाप लड़के से खिडूँ लिये जाता है । इस बावय में मूल धातु "खिड" का त्रिभुज रूप "खिडूँ" है जिससे जाना जाता है कि कबका खिडने का पापार बाप की प्रेरणामे करता है; हमधिप् 'खिडूँ' प्रेरणार्थक धातु है और

“बाप” प्रेरककर्ता तथा ‘बड़का’ प्रेरितकर्ता है। “मासिक बीकर से गाड़ों बलवाता है।’ इस वाक्य में “बलवाता है” प्रेरणार्थक क्रिया “मासिक” प्रेरक कर्ता और “बीकर” प्रेरित कर्ता है।

१३—आना, जाना, सकना, होना, दबना, पाना आदि घातुओं से ध्वन्य प्रकार के वातु नहीं बनते। शेष सब वातुओं से दो दो प्रकार के प्रेरणार्थक वातु बनते हैं जिसका पहला रूप बहुधा सकर्मक क्रिया ही के अर्थ में आता है और दूसरे रूप से परार्थ प्रेरणा सम्बन्धी आती है, जैसे गिरता है।’ ‘अरोगर बर गिराता है।’ ‘कारीगर बीकर से घर गिरवाता है।’ ‘बोग क्या सुनते हैं।’ ‘पंडित लोगों को क्या सुनाते हैं।’ ‘पंडित शिष्य से थोटाओं को क्या सुनवाते हैं।’

(घ) सब प्रेरणार्थक क्रियाएँ अकर्मक होती हैं; जैसे, ‘दही बिल्ली बूँतों से काग फटाती है।’ ‘बड़के ने रुपया सिलवाया।’ पीना, खाना देखना सम्बन्धा, देना सुनना आदि क्रियाओं के धातों प्रेरणार्थक रूप शिकर्मक होते हैं; जैसे ‘प्यासे को पानी पिलाओ।’ ‘बाप ने बड़के को कहानी सुनाई।’ ‘बच्चे को रोटी खिलायाओ।’

१४—प्रेरणार्थक क्रियाओं के बनाने के नियम नीचे दिये जाते हैं—

१—मूल वातु के अंत में आ बोलने से पहला प्रेरणार्थक धातु ‘आ बोलने से बूँतरा प्रेरणार्थक रूप बनता है, जैसे

मू० आ०	प० प्रे०	दू० प्रे
उठ-आ	उठा-आ	उठवा-आ
धीर-आ	धीरा-आ	धीरवा-आ
गिर-आ	गिरा-आ	गिरवा-आ
बल-आ	बला-आ	बलवा-आ
पड़-आ	पड़ा-आ	पड़वा-आ
देख-आ	देखा-आ	देखावा-आ
सुन-आ	सुना-आ	सुनवा-आ

(घ) दो धातुओं के वातु में ‘दे’ वा ‘धी’ को जोड़कर आदि का ध्वन्य हीन स्वर स्वर दूसर हो जाता है; जैसे,

मू. बा०	प० प्रे०	दू० प्रे०
घोड़ना	उड़ाना	उड़वाना
जागना	जगाना	जगवाना
जीतना	जिताना	जितवाना
डूबना	डूबाना	डूबवाना
बोझना	भ्रष्टाना	भ्रष्टवाना
भीगना	भिगाना	भिगवाना
खेरना	खिंटाना	खिंटवाना

( १ ) 'डूबना' का रूप 'डूबोना' और 'भीगना' का रूप 'भिगोना' भी होता है ।

( २ ) प्रेरणार्थक रूपों में बोझना का अर्थ बढ़ जाता है ।

( या ) तीस अक्षर के पाठ में पहले प्रेरणार्थक के दूसरे अक्षर का 'अ' अनुस्वरित रहता है, जैसे,

मू. बा०	प० प्रे०	दू० प्रे०
जमकना	जमकना	जमकना-ना
पिघलना	पिघलना	पिघलना-ना
बढ़ना	बढ़ना	बढ़ना-ना
समकना	समकना	समकना-ना

२—प्राचीनी पाठ के अंत में 'का' और 'कवा' आते हैं और दो स्वर का ह्रस्व कर देते हैं, जैसे

बाबा	बिबाना	बिबवाना
दुबा	दुबाना	दुबवाना
दिना	दिबाना	दिबवाना
पीना	पुबाना	पुबवाना
पीना	पिबाना	पिबवाना
सीना	सिबाना	सिबवाना
खोना	मुखाना	मुखवाना
जीना	जिबाना	जिबवाना

(घ) 'आवा' में धाप स्वर 'इ' हो जाता है। इसका एक प्रेरणार्थक 'आवाना' भी है। 'खिखाना' अपने अर्थ के अनुसार 'खिखना' (फुलना) का भी सङ्गर्भक रूप हो सकता है।

(घा) कुछ सङ्गर्भक वागुचों से केवल दूसरे प्रेरणार्थक रूप (१—घ नियम के अनुसार) बनते हैं, जैसे, गाना-गवाना खेवा-खिवाना, खोना खोघाना बोधा-बोधाना खेवा-खिवाना इत्यादि।

१—कुछ वागुचों के प्रेरणार्थक रूप 'आ' धमका 'आ' लगाने से बनते हैं, परंतु दूसरे प्रेरणार्थक में ईवा लगाया जाता है, जैसे—

कटना	कटाना वा कटवाना	कटवाना
दिखना	दिखाना वा दिखवाना	दिखवाना
सीखना	सिखाना वा सिखवाना	सिखवाना
सूझना	सुझाना वा सुझवाना	सुझवाना
बिठना	बिठाना वा बिठवाना	बिठवाना

(घ) 'कटना' के पहले प्रेरणार्थक रूप अपूर्ण अक्षरक भी होते हैं, जैसे 'ऐसे ही सज्जन प्रयत्नर कहलाते हैं। 'बिमिक्ति, सहित शब्द यह कहाता है।'

(घा) 'कटवाना' के अनुसृत्य पर दिखाना वा दिखवाना को कुछ अक्षरक अक्षरक क्रिया के समान उपयोग में आते हैं, जैसे, बिना तुम्हारे पर्हाँ व कोई रसक अपना दिखलाता।" (क० क०)। यह प्रयोग अशुभ है।

(इ) 'कटवाना' का रूप 'कटववाना' भी होता है।

(ई) 'बिठना' के कई प्रेरणार्थक रूप होते हैं, जैसे बिठाना, बिठवाना बिठववाना, बिठवाना।

२०५—कुछ वागुचों से बने हुए दोनो प्रेरणार्थक रूप पृथकीं होते हैं, जैसे

काटना	कटाना वा कटवाना
सुझना	सुझाना वा सुझवाना
गढ़ना	गढ़ाना वा गढ़वाना
देना	दिखाना वा दिखवाना
बैठना	बैठाना वा बैठवाना

रखना—रखाना वा रखवाना

सिखना—सिखाना वा सिखवाना

१०६—कई कोई धातु स्वल्प में प्रेरणार्थक है, पर पधार्थ में वे मूल अकर्मक ( वा सकर्मक ) हैं; जैसे, कुम्हखाना, पहराना, मचखाना, इठखाना इत्यादि ।

( क ) कुछ प्रेरणार्थक धातुओं के मूल रूप बचर में नहीं हैं; जैसे, बताना ( वा बतखाना ) पुस्तखाना, रीखाना इत्यादि ।

१०७—अकर्मक धातुओं से नीचे दिये नियमों के अनुसार सकर्मक धातु बनते हैं—

१—धातु के आद्य स्वर को दीर्घ करके से; जैसे

कटना—काटना

पिसना—पीसना

इयना—बाधना

सुटना—सूटना

बैधना—बाँधना

मरना—मारना

पिटना—पीटना

पटना—पाटना

( ब ) 'सिखना' का सकर्मक रूप 'सीख' होता है ।

१—शीघ्र अक्षरों के धातु में दूसरे अक्षर का स्वर दीर्घ होता है;

निकलना—निकलना

उकलना—उकलना

सम्हलना—सम्हालना

बिगलना—बिगलना

२—किसी किसी धातु के आद्य इ वा उ को गुण करने से; जैसे

फिरना—फेरना

सुलना—खोलना

दिपना—देखना

सुलना—पीलना

दिपना—देखना

मुपना—मोड़ना

३—कई धातुओं के अन्त के स्थान में इ हो जाता है; जैसे,

सुटना—खींचना

सूटना—तोड़ना

सूटना—घोड़ना

फटना—फाड़ना

फूटना—फोड़ना

( घा ) 'बिड़ना' का सकर्मक रूप 'बैधना' और 'रहना' का 'रखना' होता है ।

१०८—कुछ धातुओं का सकर्मक और पहला प्रत्ययार्थक रूप अज्ञात भ्रमण होता है और दोनों में अर्थ का अंतर रहता है; जैसे, 'गङ्गा' का सकर्मक रूप 'गाङ्गा' और पहला प्रत्ययार्थक 'गङ्गा' है। 'गङ्गा' का अर्थ 'घरती के भीतर रहना' है गाङ्गा का एक अर्थ 'धुमाना' भी है। ऐसे ही 'दाङ्गा' और 'दङ्गा' में अंतर है।

( २ ) नाम धातु ।

१०९—धातु की जोड़ बूझने शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से जो धातु बनाये जाते हैं उन्हें नाम-धातु कहते हैं। वे संज्ञा व विशेषण के अंत में 'ना' जोड़ने से बनते हैं।

( अ ) संस्कृत शब्दों से से, जैसे,

उच्चार—उच्चारण स्वीकार—स्वीकारण ( व्यापार में 'सकारण' ),  
विकार—विकारण, अनुराग—अनुरागण इत्यादि। इस प्रकार के शब्द  
कभी-कभी कविता में आते हैं और वे शिष्ट-संमति से ही बनाये जाते हैं।

( आ ) धरती, धरती शब्दों से, जैसे—

गुम्बर=गुम्बरा

बदल=बदलना

सर्ब=सर्वनाम

धर्मा=धर्माना

धरती=धरतीना

दाग=दागना

धातुमा=धातुमाना

इस प्रकार के शब्द अनुकरण से नये नहीं बनाये जा सकते।

( इ ) हिंदी शब्दों से ( शब्द के अंत में 'धा' करके और भाष 'धा' को  
इस कर के ) जैसे,

धुल=धुलाना

बिहना=बिहाना

धरना=धरना

बाड़ी=बाड़ियाना

धात=धातियाना, धताना।

हाय=हायियाना।

पानी=पानियाना।

रिस=रिसाना।

बिहग=बिहगाना।

इस प्रकार के शब्दों का प्रचार अधिक नहीं है। इनके बदले बहुधा  
अनुकृतिनामों का उद्बोध होता है, जैसे—धुलाना—धुल देना धतियाना—  
धात करना धतियाना—धतग करना इत्यादि।

२१०—किसी पदार्थ की ध्वनि के अनुकरण पर जो धातु बनाये जाते हैं उन्हें अनुकरण-धातु कहते हैं। ये धातु ध्वनि-सूचक शब्द के अंत में 'वा' करके 'वा' जोड़ने से बनते हैं। जैसे,

बड़बड़—बड़बड़वाना

खरखर—खरखराना

मचमच—मचमचाना

मममम—ममममाना।

( घ ) नाम धातु और अनुकरण-धातु एकसंज्ञक और एकसंज्ञक दोनों होते हैं। ये धातु मिश्र-संज्ञक के बिना नहीं बनाये जाते।

### ( ३ ) सयुक्त धातु

( ६०—संयुक्त धातु कुछ कृतों ( धातु से बने हुए शब्दों ) की सहायता से बनाये जाते हैं, इसलिए इनका विवेचन क्रिया के स्मांतप्रकरण में किया जायगा। )

( ६१—हिंदी व्याकरणों में प्रेरणात्मक धातुओं के संबंध में बड़ी गड़बड़ है। 'हिंदी-व्याकरण' में स्वतंत्र धातुओं से एकसंज्ञक बनाने का जो सर्वव्यापी नियम दिया है उसमें कई अपवाद हैं; जैसे 'बोलाना', 'सीमाना', 'रेंवाना', 'लिखाना' इत्यादि। लेखक ने इनका विचार ही नहीं किया। फिर उसमें केवल 'धुटना', 'चलना' और 'दवाना' से दो दो एकसंज्ञक रूप माने गये हैं, पर हिंदी में इस प्रकार के धातु अनेक हैं, जैसे, करना, सुलना, गड़मा लुटना, पिठना इत्यादि। यद्यपि इन धातुओं के दो-दो एकसंज्ञक रूप कहे जाते हैं, पर पदार्थ में एक रूप एकसंज्ञक और दूसरा प्रेरणात्मक है, जैसे, सुलना, घालना, सुलाना, कटना—कटना, कटाना, पिठना—पिठाना इत्यादि। 'भाषा-भारत' में इन दुहरे रूपों का नाम तक नहीं है। 'वाचस्पत्य-व्याकरण' में कई एक प्रेरणात्मक क्रियाओं को भी रूप दिये गये हैं वे हिंदी में प्रचलित नहीं हैं जैसे, धोलाना ( सुलाना ) 'बोलवाना' ( सुलवाना ), 'पैठलाना' ( पिठवाना ), इत्यादि। 'भाषा-ब्रह्मदेव' में प्रेरणात्मक धातुओं को विकसक लिखा है पर उनका जो एक उदाहरण दिया गया है उसमें लेखक ने पद धातु नहीं समझाई और न उसमें एक से अधिक कर्म ही पाये जाते हैं, जैसे, 'देवदत्त यज्ज्वल से पीयी लिखाया है।' )

# दूसरा खंड

## अव्यय ।

पहला अध्याय ।

### क्रिया-विशेषण

१।१—जिस अव्यय से क्रिया को कोई विशेषण माना जाता है उसे क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, यहाँ वहाँ, कबरा, और अभी, बहुत, कम इत्यादि ।

( २.—“विशेषण” शब्द के स्थान, काल, स्थिति और परिमाण का अभिप्राय है । )

( १ ) क्रिया-विशेषण को अव्यय ( ध्वनिवादी ) कहने में ही संशय ही सक्ती है—( क ) कुछ विमल्लभ्यत शब्दों का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है, जैसे “यहाँ में”, “यहाँ पर”, “यहाँ से”, “यहाँ को” इत्यादि । ( ख ) कई एक क्रियाविशेषणों में विभक्तियों के द्वारा रूपान्तर होता है; जैसे, “यहाँ का”, “यहाँ से”, “यहाँ को”, “यहाँ से” इत्यादि ।

हमें तो पहली शंका का उत्तर यह है कि यदि कुछ विमल्लभ्यत शब्दों का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है तो इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि क्रिया-विशेषण अव्यय नहीं होते । फिर विमल्लभ्यत शब्दों के प्रागे कोई दूसरा विकार भी नहीं होता; इससे हमको भी अव्यय मानने में कोई बाधा नहीं है । संस्कृत में भी कुछ विमल्लभ्यत शब्द ( जैसे, मात्स्य, सुपुत्र, बहाय ) क्रिया-विशेषण के समान उपयोग में आते हैं और अव्यय माने जाते हैं । हिन्दी में भी कई एक शब्द ( जैसे, यहाँ, यहाँ से, यहाँ को, यहाँ पर ) जिन्हें क्रिया-विशेषण और अव्यय मानने में किसी को शंका नहीं होती, बचपन में विमल्लभ्यत संज्ञाएँ हैं; परंतु उनके प्रत्ययों का खोप हो गया है । दूसरी शंका का समाधान यह है कि जिस क्रिया-विशेषणों में विभक्ति का प्रयोग होता है



बचकी संख्या बहुत बड़ी है। उनमें से कुछ तो सर्वनामों से बने हैं और कुछ संज्ञार्थ हैं जो अधिकारण की विभक्ति का बोध हो जाने से क्रिया-विशेषण के समास उपयोग में आती हैं। फिर उनमें भी केवल संमदाब, अपादान, संबंध और अधिकारण की एकलक्षक विभक्तियों का ही योग होता है; जैसे, इतर से, उधर को, इधर का, यहाँ पर इत्यादि। इसलिये इन उदाहरणों को अपवाद मानकर क्रिया-विशेषणों को धर्म्य मानने में कोई दोष नहीं है।

( १ ) जिस प्रकार क्रिया की विशेषता बतानेवाले शब्दों को क्रिया विशेषण कहते हैं उसी प्रकार विशेषण और क्रिया-विशेषण की विशेषता बतानेवाले शब्दों को भी क्रिया-विशेषण कहते हैं। ये शब्द बहुधा परिमाण वाचक क्रिया-विशेषण हैं और कभी-कभी क्रिया की भी विशेषता बतलाते हैं। क्रिया-विशेषण के लक्षण में विशेषण और दूसरे क्रिया-विशेषण की विशेषता बताने का उल्लेख इसलिये नहीं किया गया कि यह बात सब क्रिया-विशेषणों में नहीं पाई जाती और परिमाणवाचक क्रिया-विशेषणों की संख्या दूसरे क्रिया विशेषणों की अपेक्षा बहुत कम है। कहीं-कहीं रीतिवाचक क्रिया-विशेषण भी विशेषण और दूसरे क्रिया-विशेषण की विशेषता बतलाते हैं; परंतु वे परोक्ष रूप से परिमाणवाचक ही हैं, जैसे, 'ऐसा सुंदर वाक्य'—'इतना सुंदर वाक्य। 'गाड़ी ऐसे धीरे चलती है'—'गाड़ी इतने धीरे चलती है।

११२—क्रिया-विशेषणों का वर्गीकरण तीन आधारों पर हो सकता है—

( १ ) प्रयोग, ( २ ) रूप और ( ३ ) धर्म।

[ टी०—क्रिया-विशेषणों का ठीक ठीक विवेचन करने के लिये उनका वर्गीकरण एक से अधिक आधारों पर करना आवश्यक है; क्योंकि हिंदी में बहुत से क्रिया-विशेषण यौगिक हैं और केवल रूप से उनकी पहचान नहीं हो सकती; जैसे, अच्छा, मन से, इतना, केवल, नीरे इत्यादि। फिर हर एक शब्द कभी क्रिया-विशेषण और कभी दूसरे प्रकार के होते हैं जैसे, 'आगे हमने जान लिया।' ( शकु० )। 'मानियों के आगे प्राण और धन तो खोई बस्तु ही नहीं है।' ( लक्ष्० ) 'राजा ने ब्राह्मण को आगे से लिया।' इन उदाहरणों में आगे शब्द क्रमशः क्रिया-विशेषण, संबंधवाचक और संज्ञा है। ]

११३—प्रयोग के अनुसार क्रिया-विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—( १ ) साधारण, ( २ ) संबोधक और ( ३ ) अनुबन्ध,

( १ ) जिन क्रिया-विरोधों का प्रयोग किसी वाक्य में स्वतंत्र होता है उन्हें साधारण क्रिया-विरोध कहते हैं; जैसे 'हाथ ! अब मैं क्या करूँ !' 'येरा जल्दी आओ।' 'घरे ! वह साँप कहाँ गया ?' ( सत्य ) ।

( २ ) जिनका संबंध किसी उपवाक्य के साथ रहता है उन्हें संयोजक क्रिया विरोध कहते हैं; जैसे 'जब रोहितारव ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी।' ( सत्य ) । 'जहाँ धमी समुद्र है वहाँ पर किसी समय जंगल था।' ( सत्य ) ।

[ सू०—संयोजक क्रिया-विरोध—जब, वहाँ, जैसे वहाँ, बिना संबंध वाक्य लवनाम "का" से बनते हैं और उहाँ क अनुसार दो उपवाक्यों को मिलाते हैं। सं—११४ ) । ]

( ३ ) अनुबन्ध क्रिया विरोध व हैं जिनका प्रयोग अवधारण के लिए किसी भी शब्द-भङ्ग के साथ हो सकता है; जैसे, यह तो किसी ने घोषा ही दिया है। ( शुभा ) । मैंने उसे देखा तक नहीं। आपके भाने मर की सेरी है। अब मैं भी तुम्हारी सखी का वृषांत चमता हूँ। ( शुभ० )

११४—इस के अनुसार क्रिया-विरोध तीन प्रकार के होते हैं—( १ ) मूल, ( २ ) वौगिक और ( ३ ) स्थायी ।

११५—जो क्रिया-विरोध किसी दूसरे शब्द से नहीं बनते वे मूल क्रिया विरोध कहलाते हैं, जैसे, ठीक दूर आबावक, फिर, नहीं इत्यादि ।

११६—जो क्रिया-विरोध दूसरे शब्दों में प्रत्यय वा शब्द जोड़ने से बनते हैं उन्हें वौगिक क्रिया विरोध कहते हैं। वे नीचे लिखे शब्द-भेदों से बनते हैं—

( अ ) संज्ञा से; जैसे सचेरे, कामरा, भागे, राठ को, प्रेमपूर्वक, रिज मर, राठ-तक इत्यादि ।

( आ ) सर्वनाम से; जैसे यहाँ, वहाँ अब, जब, जिससे, इसविज, तिम पर इत्यादि ।

( इ ) विरोध से; जैसे बरि, तुम्हारे मूल मे इतने में, सहज में, पहले दूसरे, देते, हैने, इत्यादि ।

२१०—कार्य के अनुसार क्रियाविशेषणों के नीचे दिये चार भेद होते हैं—

( १ ) संख्यावाचक, ( २ ) कालवाचक, ( ३ ) परिमाणवाचक और  
( ४ ) रीतिवाचक ।

२११—स्थानवाचक क्रियाविशेषण के दो भेद हैं— १ ) स्थितिवाचक  
और ( २ ) विद्यमानवाचक ।

( १ ) स्थितिवाचक—

वहाँ, वहाँ वहाँ, कहीं तहाँ, जागे, पीछे, ऊपर, नीचे, तबे सामने  
नाब, बाहर, भीतर पास ( निकट, समीप ), सर्वत्र, भ्रम्यत्र इत्यादि ।

( २ ) दिशावाचक—इधर, उधर, कियर, कियर, तिधर, दूर, परे  
मकग, बाएँ, धारपार, इस तरफ, उस जगह, धारों और इत्यादि ।

२१२—कालवाचक क्रियाविशेषण तीन प्रकार के होते हैं—( १ ) समय  
वाचक, ( २ ) अवधिवाचक, ( ३ ) पीनःपुन्यवाचक ।

( १ ) समयवाचक—

आज, कल, परसों, तरसों, बरसों, अब, जब कब, तब, कभी कभी,  
केर, तुरंत, सबेरे, पहिले पीछे, प्रथम विहान, आखिर, इतने में इत्यादि ।

( २ ) अवधिवाचक—

आजकल, मित्य, धदा सतत ( कबिता में ), निरंतर, अब तक कभी  
कभी, अब भी, जगात्तार, दिन भर, कब कब इतनी देर इत्यादि ।

( ३ ) पीनः पुन्यवाचक—

बार-बार ( बारंबार ), बहुधा ( अकसर ), प्रतिदिन ( हररोज ) पकी-बकी,  
हुं बार, पहिले—फिर, एक—दूसरे—तीसरे—इत्यादि, हरबार, हरदक  
त्यादि ।

२१३—परिमाणवाचक क्रियाविशेषणों से अनिश्चित संख्या या परिमाण  
त बोध होता है । इनके ये भेद हैं—

( अ ) अधिकताबोधक—बहुत, अति, महा, भारी, बहुतायत से, विकसुत्र  
सर्बथा, निरा, एव, पूर्वतया, विपद, अत्यंत अतिशय इत्यादि ।

- ( घ ) ग्युनताबोधक—कुम्भ, जगमग, घोड़ा, टुक प्रायः, बरा, किबिद्व  
इत्यादि ।
- ( ङ ) पर्यासिवाचक—बेबख, बस काफ़ी पयेष्ट चाहे बराबर डीक प्रस्त,  
इति इत्यादि ।
- ( ई ) गुणता-वाचक—अधिक, कम, इतना, उतना, जितना कितना बड़कर,  
घोर इत्यादि ।
- ( उ ) अपेक्षावाचक—घोड़ा-घोड़ा कम कम से बारी-बारी से, तिक्त-तिक्त  
एक-एक-करके पचाक्रम, इत्यादि ।

११४—रीतिवाचक क्रिया-विशेषणों की संख्या गुणवाचक विशेषणों के  
समान धर्मत है । क्रियाविशेषणों के स्थापसंमत वर्गीकरण में कठिनाई होने  
के कारण इस वर्ग में उन सब क्रिया-विशेषणों का समावेश किया जाता है  
जिनका अंतर्भाव पहले कहे हुए वर्गों में नहीं हुआ है । रीतिवाचक क्रिया  
विशेषणों की कुछ कुछ अपूर्णता है—

- ( अ ) प्रकार—दौरे, कैते, कैते, कैते-कैते भावों पचा-तथा धीरे, अचानक,  
सहसा अनायास, हृया, सहज आजाय, संत, संतर्भित बोरी, हाँछे  
पैदक, कैते-कैते, स्वर्ण, स्वतः परस्पर, आपही आप, एक-साथ, एका  
एक, मन से, ध्याम-पूर्वक, सदेह, सुखेन, रीत्यनुसार क्योंकि पचा  
शक्ति, ईसकर च्याच्य, तदातक करते उच्यते, येन-केन-प्रकारेण  
अकस्मात्, किबहुता, प्रत्युत ।

( घ ) निरूपण—अवरण, सही, सचमुच, विःसर्दिह बेरक, बकर, अचबणा,  
मुप्प-करके, विशेष-करके, पचाब में बस्तुतः, हर असक ।

- ( इ ) अधिकरण—कदाचित् ( शयद् ), बहुत करके, पचासंभव ।
- ( ई ) स्वीकार—हाँ, जी, डीक, सच ।
- ( उ ) कारण—इसकिय, क्यों, काहे को ।
- ( ऊ ) निश्चय—न, नहीं, मत ।
- ( ऋ ) अवधारण—तो, ही, मी, माय, मर, तक, सा ।

११५—वीगिद—क्रियाविशेषण पूर्व शब्द में बीच बिचे शब्द अथवा

अन्वय ओहने से बनते हैं—

## संस्कृत क्रियाविशेषण ।

पूर्वक—व्याज-पूर्वक, प्रेम-पूर्वक इत्यादि ।

वत्—विधि-वत्, भय-वत् ।

इव ( वा )—सुखेन, वैभवेन प्रकारेण, मनसा-वाचा-कर्मणा ।

पा—कृपा, विशेषतया ।

अनुसार—रीत्यनुसार, शक्त्यानुसार ।

त—स्वभावता, वस्तुतः, स्वता ।

दा—सर्वादा, सदा, यदा, कदा ।

धा—बहुधा, शतधा, बबधा ।

शा—कमशा, अक्षरशा ।

व—एकत्र, सर्वत्र, अत्र्यत्र ।

या—सर्वादा, अत्र्यदा ।

वत्—पूर्ववत्, तद्वत् ।

चित्—कदाचित्, किञ्चित्, क्वचित् ।

मात्र—एव मात्र, नाम-मात्र, क्षेत्र-मात्र ।

## ( २ ) हिंदी क्रियाविशेषण

ता, ते—दीवता, करता बोधता, चकते, खाते, मारते ।

आ, ए—बैठा, भागा, बिष्ट, बरफ, बैठे, बने ।

को—इधर को, दिन को, रात को, घंठ को ।

से—धर्म से, मन से, प्रेम से, इधर से, तब से ।

में—संक्षेप में, इच्छे में, घंठ में ।

का—सबेरे का, कम का ।

तक—आज तक, यहाँ तक, रात तक घर तक ।

कर, कराये—ईदकर, उठकर, देखकर के, धर्म कराये, मठि कराये, पर्वोकर ।

भर—रातभर, पक्षभर, दिनभर ।

( घ ) नीचे दिये प्रत्ययों और शब्दों से सार्वनामिक क्रिया-पिठैचब बनते हैं—

- ए—येमे, कैमे, जेसे, बैसे, घोड़े ।  
हाँ—पहाँ, बहाँ, कहाँ, जहाँ ठहाँ ।  
धर—हधर, उधर, जिधर, तिधर ।  
यों—यों, ल्यों, क्यों, क्यों ।  
किए—इसकिए, जिसकिए, किसकिए ।  
क—कब, तब कब, जब ।

### ( ३ ) उर्दू क्रियाविशेषण ।

धब—डुबान, फँरण, मसखान इत्यादि ।

१२१—सामासिक क्रियाविशेषण अर्थात् अभ्ययीमाव समासों का कुछ विचार व्युत्पत्ति-श्रवण में किया जायगा । वहाँ उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

### ( १ ) संस्कृत अभ्ययीमाव समास

- प्रति—प्रतिदिन, प्रतिपक्ष, प्रत्यक्ष ।  
यथा—यथाशक्ति, यथाक्रम यथासंभव ।  
वि—विश्वविद्वि विर्मय विनांक ।  
यावत्—यावज्जीवन ।  
आ—आत्म्य आमारण्य ।  
सम्—समक्ष संसुक्त ।  
स—सदेह, सपरिवार ।  
अ अन्—अकारण्य अन्वापास ।  
वि—स्वयं विशेष ।

### ( २ ) हिंदी अभ्ययीमाव समास ।

- अब—अनद्वाने अबपुछे ।  
वि—निषेधक, निवृत्त ।

### ( ३ ) उर्दू अभ्ययीमाव समास ।

- हर—हररोज, हरसाध, हरवक्त ।  
दर—दरअसब दरदकीकत ।

ब—बर्जिस, बहस्तर ।

बे—बेकार, बेफायदा, बेशक, बेतरह, बेहद ।

### ( ४ ) मिथित अव्ययीभाव समास ।

हर—हरबनी हरदिव, हरबगह ।

बे—बेकाम, बेसुर ।

२२०—कुछ क्रियाविशेषणों के विशेष अर्थों और प्रयोगों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

अथ, अभी—यद्यपि इनका अर्थ वर्तमान काल का है, तो भी ये 'तब' और 'तभी' के समान बहुधा भूत और भविष्यत् कालों में भी आते हैं जैसे, 'अब एक बर्ग भजना शुरू।' 'बे अब वहाँ न जायेंगे।' अभी तो भी नहीं पत्नी थी कि सेवा ने अगर पैर लिपा। 'हम अभी जायेंगे।'

परसों, कल—इनका प्रयोग भूत और भविष्यत् कालों में होता है। इसकी पहचान क्रिया के रूप से होती है; जैसे, 'अबकल कल आया, और परसों आया।'

आगे, पीछे पास, दूर—ये और इनके समासार्थी स्थानवाचक क्रिया विशेषण कावचाचक भी हैं; जैसे, 'आगे राम बहुत पुनि पाछे।' (राम०)। (स्वाम०)। आगे पीछे सब चल बसेंगे। (बहा०)। (काब०)। गाँव पास है या दूर?' (स्वाम०)। 'दिवाली पास आ गई।' 'दिवाली का समय अभी दूर है। (काब०)। 'आगे' का कावचाचक अर्थ कभी-कभी 'पीछे' के साथ बदल जाता है; जैसे 'मे सब बाँटें जान पड़ेंगी आगे।' (सर०)। (पीछे)।

तब, फिर—इनका प्रयोग बहुधा भूत और भविष्यत् कालों में होता है। भाषा-रचना में 'तब' की द्विरुक्ति मिथाने के लिए उसके बहने बहुधा 'फिर' की योजना करते हैं; जैसे, तब (मिने) समझ कि इसके भीतर और अनाग बंद है। फिर जो कुछ हुआ सा थाप जागते ही है। (विश्व०)। कभी-कभी 'तब' और 'फिर' एक ही अर्थ में साथ साथ आते हैं; जैसे 'तब फिर थाप क्या करेंगे?'

कहीं-कहीं 'तप का प्रयोग पूर्व-आधिक हृदय ( सं ३८० ) के पर्याय यौही कर दिया जाता है; जैसे 'सबेरे स्थान थीर पूज्य करके तब योजन करना चाडिप ।

कमी—इससे अनिश्चित अर्थ का बोध होता है जने, 'इससे कमी मिथना । 'कमी थीर 'कदापि का प्रयोग बहुधा निषेधवाचक शब्दों के साथ होता है; जैसे 'ऐसा काम कमी मत करना । 'मैं वहाँ कदापि न जाऊँगा । दो वा अचिह्न वाक्यों में 'कमी में क्रमागत काल का बोध होता है; जैसे, 'कमी नाब यात्री पर, कमी गाड़ी नाब पर ।' 'कमी मुही-भर बना कमी वह भी मना । कमी का प्रयोग आश्चर्य वा तिरस्कार में मा होता है; जैसे, 'तुमने कमी कलकटा देखा था ।

कहाँ—दो अलग-अलग वाक्यों में 'कहाँ' से बड़ा अंतर सूचित होता है; जैसे, 'कहाँ कुँमब कहीं सिनु अयारा । ( राम० ) । 'कहाँ रामा मोय कहीं मंगा ठेकी ।

कहीं—अनिश्चित स्थान के अर्थ के सिवा यह 'अत्यंत' थीर 'कदाचित्' के अर्थ में भी आता है; जैसे, 'पर मुझसे वह कहीं सुप्री है । ( हिरी प्रथ ) । सप्री ने ब्याह की बात कहीं हँसी से न कहीं हो ।' ( शकु० ) । अलग अलग वाक्यों में 'कहीं' से विरोध सूचित होता है जैसे, 'कहीं पूष 'कहीं क्षया । कहीं शीर आया बना है, कहीं बिलकुल बना है ! ( मलय० ) । आश्चर्य में 'कहीं का प्रयोग 'कभी के समान होता है 'कहीं हुने तिर हैं । 'पत्पर मी कहीं पसीबता है ।

परै - इसका प्रयोग बहुधा तिरस्कार में होता है ! ' जैसे परे हो !' पर हर !'

इधर-उधर ( यहाँ ) वहाँ—इस दुहरे क्रियाविशेष्यों से विचित्रता का बोध होता है; जैसे 'इधर तो तपस्वियों का काम, उधर वहाँ की आशा । ( शकु० ) । 'मुठ-समह इत बचन ठत, संकट परेड नररा । ( राम० ) । 'तुम यहाँ पह मी बरते हो, यहाँ वह मी बरते हो ।

यौही-वेसे ही, जैसे ही—इसका अर्थ अन्वय अथवा 'संतर्भव' है, जैसे यह पुस्तक तुम्हे मुझे ही मिला । 'अवश्य' यौही फिर करता है । 'वह वेसे ही रोता है ।



ब—बन्धिस, बदस्तूर ।

बे—बैकार, बेफायदा, बेतरु, बेतरह बेहद ।

( ४ ) मिश्रित अल्पयीमाव समास ।

हर—हरषणी हरदिन, हरजगद ।

ब—बैक्यम, बेसुर ।

२२०—कुछ क्रियाविशेषणों के विशेष अर्थों और प्रयोगों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

अब, अभी—यद्यपि इनका अर्थ वर्तमान काळ का है, तो भी वे 'तब' और 'तभी' के समान बहुधा मूल और अधिकृत काळों में भी आते हैं, जैसे, 'अब एक नई घटना हुई।' 'बे अब बहॉन जायेंगे।' 'अभी पी पी नहीं खड़ी थी कि सेना में नगर घेर लिया।' 'हम अभी जायेंगे।'

परसों, कल—इसका प्रयोग मूल और अधिकृत दोनों में होता है। इसकी पहचान क्रिया के रूप से होती है; जैसे, 'अबका कल आया, और परसों जाबया।'

आगे, पीछे पास, दूर—ये और इनके समानार्थी स्थानवाचक क्रिया विशेषण काळवाचक भी हैं। जैसे, 'आगे राम अनुज पुनि पाछे।' (राम०)। (स्थान०)। 'आगे पीछे सब बह बसिंगे।' (कहा०)। (अब०)। 'गर्ब पास है या मूर ?' (स्थान०)। 'दिवाली पास था गर्द।' 'विवाह का समय अभी दूर है।' (अब०)। 'आगे का काळवाचक अर्थ कभी-कभी 'पीछे के साथ बदल जाता है; जैसे 'बे सब बातें जान पड़ेंगी आगे।' (सर)। (पीछे)।

तब, फिर—इसका प्रयोग बहुधा मूल और अधिकृत काळों में होता है। भाषा-रचना में तब की द्विवचि मिटाने के लिए उसके बदले बहुधा 'फिर' की बीजता करते हैं; जैसे, तब (मि) समझा कि हमने नीतर कोई असागा बंद है। फिर जो कुछ हुआ सो आप जानते ही हैं। (निबिध)। कभी-कभी तब और फिर एक ही अर्थ में साथ साथ आते हैं; जैसे 'तब फिर आप जाना करेंगे ?'

कहीं कहीं 'सप का प्रयोग पूर्व-अधिक हृदय ( अ० ३८० ) के परचाट बौही कर दिया जाता है; जैसे 'सपेरे स्नान और पूजन करके तब भोजन करना चाहिये ।'

कमी—इससे अनिश्चित काल का बोध होता है; जैसे, 'इससे कमी मिथ्या । कमी' और 'कदापि का प्रयोग बहुधा निषेधात्मक शब्दों के साथ होता है; जैसे 'ऐसा काम कमी मत करना ।' 'मैं बहाँ कदापि न जाऊँगा ।' दो वा अधिका शब्दों में 'कमी' में अमागत काल का बोध होता है; जैसे, 'कमी भाष गाड़ी पर, कमी गाड़ी भाष पर । 'कमी मुहो-मर बना कमी बह भी मगा । 'कमी का प्रयोग आश्चर्य का तिरस्कार में भी होता है; जैसे 'तुमने कमी कलकटा देखा था ।'

कहाँ—दो अक्षर-अक्षर शब्दों में 'कहाँ' से बड़ा अंतर सूचित होता है; जैसे, 'कहाँ कुंमव कहीं सिनु अपारा । ( राम ) । 'कहाँ रामा भोज कहीं यंगा लेखी ।'

कहीं—अनिश्चित स्थान के अर्थ के सिवा यह 'अत्यंत और 'कदाचित् के अर्थ में भी आता है; जैसे, 'पर मुझसे बड़ कहीं सुयी है । ( हिंदी प्र० ) । सखी मे क्याह की घात कहीं हँसी से न कहीं हो ।' ( शकु० ) । अक्षर अक्षर शब्दों में 'कहीं' से विरोध सूचित होता है जैसे, 'कहीं पूर 'कहीं दया । कहीं शरीर आचा बडा है, कहीं विठकुच कडा है ! ( सत्य० ) । आश्चर्य में 'कहीं का प्रयोग 'कमी के समान होता है 'कहीं हूने तारे हैं । 'पापर भी कहीं पसीबता है !'

परे—इसका प्रयोग बहुधा तिरस्कार में होता है । 'जैसे परे हो !' 'पर इत !'

इधर-उधर ( यहाँ ) यहाँ—इस दुहरे क्रियाविरोधों से विविधता का बोध होता है; जैसे 'इधर तो लपटियों का काम, उधर बर्षों की आशा । ( शकु० ) । 'मुठ-सनेह इत बचन छत, संकट परेठ नीरा । ( राम० ) । 'तुम यहाँ यह भी करते हो, यहाँ बह भी करते हो ।'

यौही-ऐसे ही, जैसे ही—इसका अर्थ अस्मरण अथवा 'संतर्पित है, जैसे यह पुस्तक तुम्हें मुझे ही मिली । 'उपरा यौही भिना करता है । 'बह ऐसे ही रोता है ।'

जब तक—यह बहुधा निरपेक्षवाचक वाक्य में आता है; जैसे, 'जब तक मैं न आऊँ तुम यहीं रहना ।'

तब तक—इसका अर्थ भी कभी कभी 'इतने में' होता है, जैसे, 'ये कुछ तो ये ही, तब तक एक नया धाब धार हुआ ।' ( शकु० ) ।

जहाँ—इसका अर्थ कभी कभी 'जब' होता है, जैसे, 'जहाँ अत इला अक्षर की बरनी । जो कही सबै सचेतन करनी ।' ( राम० )

जहाँ तक—इसका अर्थ बहुधा परिमाणवाचक होता है; जैसे, 'जहाँ तक हो सके, देवी पधियाँ सीधी कर दी जायें ।'

'जहाँ तक' और 'कहाँ तक' भी परिसामवाचक होता है; जैसे, 'कहाँ, 'कहाँ तक पर्यन्त उसकी अगुछ क्या का भाव । ( एकान्त० ) । 'एक साध व्यापार में रोया पया यहाँ तक कि उनका घर द्वार सप जाटा रहा ।' 'यहाँ तक' बहुधा 'कि' के साथ ही आता है ।

कय का—इसका अर्थ 'बहुत समय से' है । इसका क्रिय और अक्षर कर्ता के अनुसार बदलता है; जैसे, 'मैं कय की दुखर रही है ।' ( साव० ) । 'कय को डेरत दीन रति । ( संत० ) ।

फर्योकर—इसका अर्थ 'कैसे' होता है, जैसे, 'बह काम फर्योकर होया ? 'ये गड़े फर्योकर पड़ गये ?' ( गुरुवा० ) ।

इसलिये—यह कभी क्रियाविशेषण और कभी समुच्चयवाचक होता है; जैसे, 'बह इसलिये कहाता है कि प्रहब जगा है ।' ( मि० वि० ) । 'दुर्बला में है, इसलिये मैं तुम्हें दान दिया चाहता हूँ । ( सं०-बो० ) ।

न, नहीं मत—'न' स्वतंत्र शब्द है, इसलिये वह शब्द और प्रत्यय के बीच में नहीं आ सकता । 'इरोपाजम' नामक कविता में कवि ने सामान्य अक्षिप्य के प्रत्यय के पहले 'न' जगा दिया है; जैसे 'जाबो न ये अक्षर जो मय में हमारा । यह प्रयोग बुधित है । जिस क्रियाओं के साथ 'न' और 'नहीं' दोनों आ सकते हैं, वहाँ 'न' से केवल निरपेक्ष और 'नहीं' से निरपेक्ष का निरवयव सूचित होता है; जैसे, 'बह न आया', 'बह नहीं आया ।' 'मैं न आऊँगा, 'मैं नहीं आऊँगा । 'न' प्रत्ययवाचक अव्यय भी है; जैसे, 'तब अयोग न ?' ( साव० ) । 'न' कभी कभी निरवयव के अर्थ में आता है । जैसे, 'मैं तुम्हें

अमी देखता हूँ न । ( साथ० ) । न—न समुच्चयबोधक होते हैं; जैसे, 'न उन्हें नींद आती थी न मूख प्यास आती थी ।' ( प्रेम ) । प्रश्न के उत्तर में 'नहीं' आता है; जैसे, तुमने उसे दया दिया था ? नहीं । कविता में बहुधा 'नहीं' के बदले 'न' का प्रयोग कर देते हैं; पर यह मूख है; जैसे, छिन्ना मुझे न आता है । ( सर ) । 'मत' का उपयोग विवेचनार्थक भाषा में होता है जैसे, "अब मत बड़ो" ( र्थ०—१०० ) । पुरानी कविता में बहुधा "मत के बदले 'न' आता है, जैसे, दीरघ सर्ति न खेदि युक्, सुख साहदि न मूख । ( सर ) ।

कोवल—यह अर्थ के अनुसार कमी विरोध, कमी विधाविरोध और कमी समुच्चयबोधक होता है; जैसे, 'रामसिंह कोवल प्रेम पिपारा । ( राम० ) । 'बड़का कोवल विचजाता है । 'कोवल एक तुम्हारी आशा प्राणों को अरकाती है ।—( क० क० ) ।

बहुधा प्राय—ये शब्द सर्वव्यापक विधानों को परिमित करने के लिए आते हैं । 'बहुधा से कितनी परिमित होती है उसकी अपेक्षा "प्रायः" से कम होती है; जैसे वे सब बहुधा बहवान शब्दों से सब तरह धिरे रहते थे । ( स्वा० ) । 'इसमें प्रायः सब श्लोक बंधकीशिक से बहुधा किये गये हैं ।' ( साथ० ) ।

तो—इससे निरवयव और आग्रह सूचित होता है । यह किसी भी शब्द भेद के साथ आ सकता है; जैसे, तुम बहो गये तो ये । 'किताब तुम्हारे पास तो थी । इसके साथ 'नहीं' और 'भी' आते हैं; और ये संयुक्त शब्द ( 'बहो तो, 'तो भी ) समुच्चय बोधक होते हैं । ( र्थ — २७४-७५ ) 'यदि' के साथ दूसरे वाक्य में आकर 'तो' समुच्चय बोधक होता है; यदि ईद न जगे तो यह इका बहुत दूर चली जाती है ।

ही—यह भी "तो" के समान किसी भी शब्द-भेद के साथ आकर निरवयव सूचित करता है । कहीं कहीं यह पहले शब्द के साथ संयोग के द्वारा मिल जाता है; जैसे, अर+ही=अमी, कर+ही=कमी, तुम+ही=तुम्ही, सब+ही=सभी, किस+ही=किसी उदा०—'एक ही दिन 'दिन ही में,' 'दिन में ही' 'पास ही 'आ ही गया' आता ही था । न तो और ही समाज शब्दों के बीच भी आते हैं, जैसे 'एक म एक' 'कोई न कोई,' 'कमी न कमी,' बात ही बात में, 'पास ही पास, 'आते ही आते' अर्थात् गया तो गया ही

गया, 'वाग तो वाग पर ये गने क्योंकर पढ़ गये ?' ( गुट० ) । 'ही' समास्य भविष्यत् ऊस के प्रत्यय के पढ़ने की जगह दिया जाता है, जैसे, "इस अथवा धर्म तो प्रायः रहे तक बिघाड़ि-ही-गे ।" ( बी० ) ।

मात्र, भर, तक—ये शब्द कमी-कमी संज्ञाओं के साथ प्रत्ययों के रूप में आकर उन्हें क्रियाविशेषण वाक्यांश बना देते हैं । ( अ०—२२५ ) । इस प्रयोग के कारण कोई कोई इनकी गिनती संबंधसूचकों में करते हैं । कमी-कमी इनका प्रयोग दूसरे ही अर्थों में होता है—

( अ ) 'मात्र' संज्ञा और विशेषण के साथ 'ही' ( केवल ) का अर्थ में आता है, जैसे, 'एक खज्जा मात्र बची है । ( सत्य ) । 'राम मात्र कबु नाम हमारा । ( राम० ) । 'एक साधक मात्र आपका शरीर ही सब अच्युत है ।' ( १५० ) । कमी-कमी 'मात्र' का अर्थ सब होता है, शिबजी में साधक मात्र को बंध दिया है । ( सत्य ) । 'हिंदी-भाषा-भाषी मात्र उसके चिर-कृतज्ञ भी रहेंगे । ( विमर्श )

( आ ) 'भर' परिमाणवाचक संज्ञाओं के साथ आकर विशेषण होता है, जैसे, 'मेर-भर बी, 'सुदही भर अनाज, 'अधर भर लून इत्यादि । कमी कमी यह 'मात्र' के समान 'सब' के अर्थ में होता है, जैसे, 'मेरी अमकदार भर में जहाँ जहाँ तक है । ( गुट० ) । 'कोई बगने राज्य भर में भूटा न सोता ।' ( तथा ) । कहीं कहीं इसका अर्थ 'केवल' होता है, जैसे 'मेर पास कपड़ा भर है । 'इतना भर में उसे फिर देखेगा । 'भीकर अटक के साथ भर रहा है ।

( इ ) 'तक' अविच्छेदा के अर्थ में आता है, जैसे, 'कितनी ही पुस्तकों का अनुवाद तो अंगरेजी तक में हो गया है । 'दंग-दूरा में कमिश्नर तक अपनी भाषा में पुस्तक-रचना करते हैं । ( सर० ) । इस अर्थ में यह प्रत्यय बहुधा 'भी' ( समुदाय बोधक ) का पर्यायवाचक होता है । कमी-कमी यह 'सीमा' के अर्थ में आता है, जैसे, 'इस काम के इन रूप तक मिल सकते हैं ।' 'शास्त्र से और कुछ तक यह बात आते हैं । 'बंबई तक के साँदागर यहाँ आते हैं । निपचाईक वाक्यों में 'तक' का अर्थ बहुधा 'ही' आता है, जैसे, 'मैंने उसे देगा तक नहीं है । 'य जग हिंदी में फिरती तक नहीं बिलत ।

मी—यह शब्द अर्थ में 'ही' के बिल्कुल है और 'तक' के समान अधिकता के अर्थ में आता है, जैसे, 'यह भी देना, वह भी देना।' ( कथा० )। दो बारों या शब्दों के बीच में और रहने पर इससे अवधारण का बोध होता है, जैसे, 'मैंने उसे देना और बुझाया भी।' कहीं-कहीं 'भी' अवधारण-पोषक होता है, जैसे, इस काम को कीइ मी कर सकता है कमो-कमो इससे अन्वय का संदेह सूचित होता है, जैसे 'तुम नहीं गये भी थे। पर्यर भी क्यों पराजिता है।' कहीं-कहीं इससे आग्रह का बोध होता है, जैसे, 'उठ' मी। 'तुम नहीं जाओगी मी।'

सा—पूर्वोक्त अर्थों के समान यह शब्द भी कभी प्रत्यय, कभी संबन्ध सूचक और कभी क्रियाविशेषक होकर आता है। यह किसी भी विकारी शब्द के साथ आया जाता है, जैसे, कुत्रसा शरीर, सुम्नसा बुधिया, क्वत्तसा मनुष्य, शिपों का सा बोध, अयना सा कुटिल हृदय, सुगसा चंचल। गुण वाचक विशेषणों के साथ यह होबता सूचित करता है, जैसे, क्वत्तसा कपडा, क्वत्तमी शीतल अण्डासा नीकर इत्यादि। परिमाणवाचक विशेषणों के साथ यह अवधारण-पोषक होता है, जैसे, बहुतसा धन पाई स करई जतासी बात इत्यादि। इस प्रत्यय का रूप ( सा-स-सो ) विशेष्य के द्विगुणानुसार बदलता है। कमो-कमो वह संज्ञा के साथ केवल होबता सूचित करता है, जैसे, 'बन में दिया सी पाई जाती है।' ( शकु )। 'एक ठीठ सो उतरी चली जाती है।' ( गुरुद )। 'अत्र-क्य इतने अधिक उड़ते हैं कि पुराँ सा दिखाई देता है।'

अथ, इति—ये अर्थों का क्रमण पुस्तक वा उसके लिये अथवा कथा के आरंभ और अंत में आते हैं। जैसे, 'अथ कथा आरंभ।' ( प्रम० )। 'इति प्रस्तावना।' ( सत्य० ) अथ का प्रयोग आठकत्र चर रहा है, परंतु पुस्तकों के अंत में बहुधा 'इति', ( अथवा संपूर्ण 'समाप्त व संसृत ममात्मन् ) 'इत्यादि' शब्द में 'इति' और 'आदि' का संयोग है। इति कमो-कमो संज्ञा के समान आता है और उसके साथ बहुधा 'यो सोऽनं ईं जिये 'इय अम फी इतिधी हो गइ। राम चरित माकम में एक जगह 'इति प्य प्रयोग 'संसृत की याद पर हस्तशब्द सनुबधपोषक के समान हुआ है, जैसे, 'सोहमरिम इति पृथ अर्थात्।'

११८—अथ इत्युक्त आर द्विक्रम क्रियाविशेषणों के अर्थों आर प्रयोगों के विषय में लिखा जाता है।

कमी-कमी—बीच बीच में—कुछ कुछ दिनों में, जैसे, 'कमी-कमी इस दुखिया की भी कुछ मित्र मन में आता' । ( सर० ) ।

कच-कच—इनके प्रयोग से 'बहुत कम' की भाँति पाई जाती है, जैसे 'आप' मेरे यहाँ कच-कच आते हैं ?'

अच-अच—तब तब—जिध जिस समय—उस समय ।

अच-तच—एक न एक दिन जैसे, 'अच तच बीर विभासा ।' (सत०) ।

अच-तच—इसका प्रयोग बहुधा संज्ञा वा विशेषण के समास होता है । जैसे, अच तच करमाव्यवस्था । अच तच होवा=भरनहार होवा ।

कमी भी—इससे 'कमी' की अपेक्षा अधिक निरवयव पाया जाता है । जैसे, 'यह कम आप कमी भी कर सकते हैं ।'

कमी-न-कमी, कमी तो, कमी भी, प्रायः पर्यायवाचक हैं ।

जैसे-जैसे—तैसे-तैसे, ज्यों-ज्यों—त्यों-त्यों—ये अचरोपर बढ़ती बढ़ती सूचित करते हैं, जैसे 'ज्यों ज्यों मीठी कामरी त्यों त्यों भारी होय ।'

ज्यों का त्यों—एवं इत्यादि में इस वाक्यांश का प्रयोग बहुधा विशेषण के समास होता है वरि 'अ' प्रत्यय विग्रहणानुसार बढ़ता है। जैसे 'जिहा कमी तक ज्यों का त्यों आया है ।'

जहाँ का तहाँ—एवं स्थान में, जैसे 'पुस्तक जहाँ की तहाँ रखी है ।' इसमें विशेष्य के अनुसार विकार होता है ।

जहाँ तहाँ—सर्वत्र 'जहाँ तहाँ में देवीं दोड भाई ।' ( राम० )

जैसे-तैसे, ज्यों त्यों करके—किसी व किसी प्रकार से उदा०—'जैसे-तैसे यह काम पूरा हुआ ।' 'ज्यों त्यों करके रात बयो ।' इसी अर्थ में 'कैसा भी करके' वरि संस्कृत 'दिग डेग प्रकारेण' आते हैं ।

घैसे तो—'इसरे विचार से' अथवा 'स्वभाव से' उदा०—'घैसे तो सभी मनुष्य भाई-भाई हैं ।' 'घैसे तो राजा भी प्रजा का शिपक है ।' 'सूर्य-काल' मन्दि का स्वभाव है कि घैसे तो पुने में टही आगती है ।' ( शकु० ) ।

आपही, आपही आप, अपने-आप आपसे आप—इसका अर्थ 'मय से' वा 'अपने ही मुख से' होता है । ( अ० १२५ अ० ) ।

होते-होते—कम कम से, जैसे 'यह काम होसे होसे होगा ।'

बैठे-बैठे—बिना परिश्रम के; जैसे बच्चा बैठ बैठे जाता है ।

खड़े-खड़े—तुरन्त; जैसे 'यह कपया लड़े लड़े पसल हो सकता है ।'

काल पाकर—कुछ समय में; जैसे, 'बढ़ काल पाके भयुक्त ही गया ।'

( इति ) ।

फ्यों नहीं—इस वाक्यांश का प्रयोग 'हाँ' के अर्थ में होता है; परंतु इससे कुछ विरहकार पाया जाता है । उदा०—'क्या तुम नहीं आओगे ?' फ्यों नहीं ।'

सब पूछिये तो—यह एक वाक्य ही क्रियाविशेषण के समान आता है । इसका अर्थ है 'सबमुक्त' । उदा० 'सब पूछिये तो मुझ वह स्थान कहाँ दिखाई पड़ा ।

[ टी०—वहसे कहा जा चुका है कि क्रियाविशेषणों का स्वाय-संमत वर्गीकरण करना कठिन है, क्योंकि कई शब्दी ( जैसे, ही, तों, केवल, हाँ, नहीं इत्यादि के विषय में निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वे क्रियाविशेषण ही हैं । वहसे इस बात का भी उल्लेख हो चुका है कि और और वैवाक्य अर्थ के भेद नहीं मानते परंतु उन्हें भी कई एक शब्दों का प्रयोग का अर्थ अलग-अलग बताने की आवश्यकता होती है । क्रिया विशेषणों का यथास्थान व्यवस्थित विवेचन करने के लिए हमने उनका वर्गीकरण तीन प्रकार से किया है । कुछ क्रियाविशेषण वाक्य में संबन्धता पूर्वक आते हैं और कुछ दूसरे वाक्य का शब्द की अपेक्षा रखते हैं । इसलिये प्रयोग के अनुसार उनका वर्गीकरण करने की आवश्यकता हुई । प्रयोग के अनुसार जो तीन भेद किये गये हैं उनमें से अनुबद्ध क्रियाविशेषणों के संबंध में यह शंका हो सकती है कि जब इनमें से कुछ शब्द एक बार ( यौगिक क्रियाविशेषणों में ) प्रत्यक्ष माने गये हैं तब फिर उनका अलग से क्रिया विशेषण मानने का क्या कारण है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इन शब्दों का प्रयोग दो प्रकार से होता है । एक तो वे शब्द बहुधा लडा के साथ आकर क्रिया का दूसरे शब्द से उनका संबंध छोड़ते हैं जैसे, रात भर, चय मात्र, नगर तक इत्यादि और दूसरे वे क्रिया वा विशेषण अथवा क्रिया-विशेषण के साथ आकर उली की विशेषता बताते हैं, जैसे, एकमात्र उपाय, बढ़ ही मुँह, आओ तों, आते ही, लड़का जलता तक नहीं इत्यादि । इस



दूसरे प्रयोग के कारण वे शब्द क्रियाविशेषण माने गये हैं। यह दूसरा प्रयोग आगे, पीछे, साथ, ऊपर, पहले, इत्यादि कालवाचक और स्थानवाचक क्रिया विशेषणों में भी पाया जाता है जिसके कारण इनकी गणना सर्वत्र लक्षकों में भी होती है। जैसे 'पर के आगे' समय के पहले, पिता के साथ इत्यादि। कोई, कोई इन शब्दों का एक अलग सेट ('अवधारणशेषक' के नामसे) मानते हैं, और कोई काह इनको केवल सर्वत्र-लक्षकों में गिनते हैं। हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में इन शब्दों का व्यवस्थित विवेचन ही नहीं किया गया है।

रूप के अनुसार क्रियाविशेषणों का वर्गीकरण करने की आवश्यकता इसलिए है कि हिंदी में भौगिक क्रियाविशेषणों की संख्या अधिक है या बहुधा संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण या क्रियाविशेषणों के अंत में विभक्तियों के लगाने से बनते हैं, जैसे, इतने में, सहज में, मन से, रात को, यहाँ पर, बिठने इत्यादि। यहाँ अब यह प्रश्न हो सकता है कि पर में, बंगल से, फिटने में, पेड़ पर आदि विभक्त्यंत शब्दों को भी क्रियाविशेषण क्यों न कहें? इसका उत्तर यह है कि यदि क्रियाविशेषण में विभक्ति का योग होने से उसके प्रयोग में कुछ अंतर नहीं पड़ता तो उसे क्रियाविशेषण मानने में कोई बाधा नहीं है। उदाहरणार्थ, 'यहाँ' क्रियाविशेषण है; और विभक्ति के योग से इसका रूप 'यहाँ से' अथवा 'यहाँ पर' होता है। व दोनों विभक्त्यंत क्रियाविशेषण किसी भी क्रिया की विशेषता बताते हैं; इसलिए हमें क्रियाविशेषण ही मानना उचित है। इसमें विभक्ति का योग होने पर भी इनका प्रयोग कथा या कर्म-कारक में नहीं होता बिल्कुल कारण इनकी गणना संज्ञा या सर्वनाम में नहीं हो सकती। भौगिक क्रिया विशेषण दूसरे शब्दों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं जैसे, स्थानपूरक, क्रमशः नाम मात्र, संघेयतः, इसलिए बिन विभक्तियों से इन प्रत्ययों का अर्थ पाया जाता है ठीकी विभक्तियों के योग से बने हुए शब्दों को क्रियाविशेषण मानना चाहिये, आरी का नहीं जैसे स्थान से, क्रम से, नाम के लिए, संघेय में, इत्यादि। फिर कई एक विभक्त्यंत शब्द क्रियाविशेषणों के वर्णवाचक भी होते हैं; जैसे, निदान-अंत में, क्यों-कारणों का, फाइल, देख-करके ही, उभर-उभार का इत्यादि। इस प्रकार के विभक्त्यंत शब्द भी क्रियाविशेषण माने जा सकते हैं। इन विभक्त्यंत शब्दों का क्रियाविशेषण न कहकर कारक कहने में भी कोई हानि नहीं है। पर 'बंगल' में पर को केवल वाक्य-न्यूनकरण

की दृष्टि से क्रियाविशेषण के समान, विशेषबद्ध कर सकते थे, तो भी व्याकरण की दृष्टि से वह क्रियाविशेष नहीं है, क्योंकि वह किसी मूल क्रिया-विशेषण का अर्थ व्यक्त नहीं करता। विभक्त्यर्थ वा संबंध सूत्रकाय शब्दों को आह-बोह व्याकरण क्रियाविशेषण बाधबाध करते हैं।

हिंदी में वह एक संज्ञक और कुछ ठंडू विभक्त्यर्थ शब्द भी क्रिया-विशेषण के समान प्रयोग में आते हैं, जैसे, सुखेन, इत्यादि, विशेषतया, इत्यादि, अथवा इत्यादि। इन शब्दों को क्रिया विशेषण ही मानना चाहिये क्योंकि इनको विभक्तियों हिंदी में अपविरत होने के कारण हिंदी व्याकरण से इन शब्दों की भ्रूराधि नहीं हो सकती। हिंदी में जो सामासिक क्रियाविशेषण आते हैं उनके अर्थ होने में कोई संदेह नहीं है, क्योंकि उनके पर्याय विभक्ति का बोग नहीं होता और उनका प्रयोग भी बहुधा क्रियाविशेषण के समान होता है, जैसे, यथाशक्ति, यथाशक्त, निःसंशय निवृत्त, दरद्वीकृत परीपर, हापीहाप इत्यादि।

क्रियाविशेषणों का तीव्र बर्णन अथ क अनुसार किया गया है। क्रिया के संबंध से काल और स्थान की सूचना बड़े ही महत्व की होती है। किसी भी घटना का क्या काल और स्थान के ज्ञान के बिना समझ ही रहता है। फिर बिना प्रकार विशेषणों के दो भेद—गुणवाचक और संख्या वाचक—मानने की आवश्यकता पड़ती है उन्ही प्रकार क्रिया के विशेषणों के भी ये दो भेद मानना आवश्यक है, क्योंकि व्यवहार में गुण और संख्या का अंतर बड़े माना जाता है। इस तरह अथ के अनुसार क्रियाविशेषणों के चार भेद—कालवाचक, स्थानवाचक, परिमाणवाचक और रीतिवाचक माने गये हैं। परिमाणवाचक क्रियाविशेषण बहुधा विशेषण और दूसरे क्रिया विशेषणों की विशेषता बतलाते हैं बिना क्रियाविशेषण के लक्षण में विशेषण और क्रियाविशेषण की विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक समझा जाता है। कालवाचक, स्थानवाचक और परिमाणवाचक और शब्दों की संख्या रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की अपेक्षा बहुत थोड़ा है, इसलिए उनको छोड़ दोष शब्द बिना अधिक लक्ष विचार क पहले बग में हम दिने का सकते हैं। इन चारों के उपभेद भी अथ की सूत्रकाय बताने क लिये यथाशक्त बताने गये हैं।

अंत में 'हो', 'नहीं' और 'न्या' क संबंध में कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। इनका प्रयोग करने क संबंध में किया जाता है। प्रत्य

करने के लिए 'क्या', स्वीकार के लिए 'हाँ' और निषेध के लिए 'नहीं' आता है, जैसे, 'क्या तुम बाहर चलीगो ?' 'हाँ' या 'नहीं' । इन शब्दों को कोई कोई विस्मयादिबोधक अल्प्य मानते हैं, परंतु इनमें इन दोनों शब्द-मेदों के लक्षण पूरे पूरे पड़ित नहीं होते । 'नहीं' का प्रयोग विषेय के साथ क्रियाविशेषण के समान होता है, और 'हाँ' शब्द 'सब' 'ठीक' और 'अबखल' क पर्याय में आता है, इसलिए इन दोनों ( हाँ और नहीं ) को हमने क्रियाविशेषणों के बग में रखा है । 'क्या' संबोधन क अर्थ में आता है, इसलिए इसकी गयाना विस्मयादिबोधकों में भी गई है । ] ( १०-७-४६ )

दूसरा अध्याय ।

### संबंध-सूचक

२२३— जो अल्प्य संज्ञा ( अथवा संज्ञा के समाव उपबोग में आनवाले शब्द ) के पशुपा पीछे आकर उसका संबंध याक्य के किमी दूसरे शब्द के साथ मिस्रता है उसे संबंधसूचक कहते हैं, जैसे, 'धन के बिना किमी का काम नहीं चलता । 'नीकर गाँव लक गया', रात भर जागना अच्छा नहीं होता ।' इन याक्यों में 'बिना', 'तक' 'भर' संबंधसूचक हैं । 'बिना' शब्द 'यक' संज्ञा का संबंध 'चलता' क्रिया से मिस्रता है । 'तक' 'गाँव' का संबंध 'गया' से मिस्रता है, और 'भर' रात' का संबंध 'जागना', क्रियार्थक संज्ञा के साथ जोड़ता है ।

[ १०—विभक्तियों और थोड़े स अल्प्यों की छोड़ हिंदी में मूल संबंध सूचक कोई नहीं है जिससे कोई-कोई विधाकरण (हिंदी में) यह शब्द-मेद ही नहीं मानते । 'संबंधसूचक' शब्दमेद क विषय में इस अध्याय क अंत में विचार किया जायगा । वहीं कहना इतना लिखा जाता है कि किन अल्प्यों की सुझीते क लिए संबंधसूचक मानते हैं उनमें से अधिकांश संज्ञाएँ हैं या अरनी विभक्तियों का कोप हा जाने से अल्प्य के समान प्रयोग में आती हैं । ]

२२०—कोई-कोई काव्याचक और स्थावराचक अल्प्य क्रियाविशेषण भी होते हैं और संबंधसूचक भी । जब वे स्वतंत्र रूप से क्रिया की विशेषता बताते

है तब उन्हें क्रियाविशेष्य कहते हैं; परंतु जब उनका प्रयोग संज्ञा के साथ होता है तब वे संबंध-सूचक कहाते हैं, जैसे—

नीकर यहाँ रहता है । ( क्रियाविशेष्य ) ।

नीकर माखिण के यहाँ रहता है । ( संबंधसूचक ) ।

बढ़ काम पहलू करना चाहिए । ( क्रि वि० ) ।

पह काम जामे से पहले करना चाहिए । ( सं० सू० ) ।

२३१—प्रयोग के अनुसार संबंधसूचक दो प्रकार के होते हैं—( १ ) संबन्ध ( २ ) अनुबन्ध ।

२३२—( क ) संबन्ध संबंधसूचक संज्ञाओं की विभक्तियों के पीछे आते हैं, जैसे, बन के बिना, नर की नाद, पूजा से पहले इत्यादि ।

( सू०—संबन्धसूचक शब्दों के पूर्व विभक्तियों के आने का कारण यह काम पड़ता है कि संस्कृत में भी कुछ शब्दों की अलग अलग विभक्तियों के पीछे आते हैं, जैसे, दौन प्रति ( दौन क प्रति ), दल-बलेन-दकात् बिना ( दल के बिना ), रामेय सह ( राम के साथ ), इदमस्योरि ( इद के अन्त ), इत्यादि । इन अलग-अलग विभक्तियों के बदले हिन्दी में बहुधा संबन्धकारक की 'विभक्तियाँ' आती हैं, पर कहीं-कहीं करण और अनादान कारकों की विभक्तियाँ भी आती हैं । )

( घ ) अनुबन्ध संबंधसूचक संज्ञा के विहित रूप ( घं —२०४ ) के साथ आते हैं, जैसे किनारे तक, सखियों सहित, कटोर भर, पुत्रों समेत, छाड़के सरीका इत्यादि ।

( ग ) ने, को, से, का-व-की, में ( कारक-विद्य ) भी अनुबन्ध संबंधसूचक हैं; परंतु नीचे दिये कारणों से उन्हें संबंधसूचकों में नहीं मानते—

( घ ) इनमें से प्रायः सभी संस्कृत के विभक्ति-प्रत्ययों के अनर्थात् हैं । इस विषय हिन्दी में भी ये प्रत्यय माने जाते हैं ।

( भा ) ये स्वतंत्र शब्द न होने के कारण अर्थहीन हैं; परंतु दूसरे संबंधवाचक बहुधा स्वतंत्र शब्द होने के कारण सार्थक हैं ।

( इ ) इनको संबन्धसूचक मानने से संज्ञाओं की प्रचलित कारक-रचना की रीति में हेरफेर करना पड़ेगा जिससे विवेचन में शब्दबन्धा उत्पन्न होगी ।

२३३—संबन्ध संबंधसूचकों के पहले-पहुँचा 'के' विभक्ति आती है; जैसे, घम के बिप, मूख के मारे, स्वामी के बिद्वज, उसके पास इत्यादि ।

( अ ) नीचे दिये अर्थों के पहले ( स्त्रीलिंग के कारण ) 'की' आती है—  
अपना, और, सगाह नाई, खातिर, तरह-तरफ; मारफ्त, पहीसत इत्यादि ।

( ए०—अब 'ओर' ( 'तरफ' ) के साथ संवशावाचक विशेषण आता है तब 'की' के बरसे 'के' का प्रयोग होता है, जैसे, 'नगर क वारा ओर ( तरफ ) ।'

( आ ) आकारांत संबंधसूचकों का रूप विशेष के लिंग और बचन के अनुसार बदलता है और उनके पहले यथायोग्य का के, की अपवा विहित रूप आता है; जैसे, मवाह उन्हें ताबाब का जैसा रूप ब देता है ।'  
( सर० ) 'बिबली की सी बमक । 'सिंह के से पुत्र । ( भारत० ) ।  
'हरिचंद्र पेसा पति ।' ( सत्य० ) । भोज सरीखे राजा । ( इति० ) ।

२३४—आगे, पीछे तबे, बिना आदि कई-यूक संबंधसूचक कभी कभी दिया विभक्ति के आते हैं; जैसे, पाँच तबे, पीछे पीछे कुछ दिन आगे, शकुंतला बिना, ( शकु ) ।

( अ ) कबिता में पहुँचा पूर्वोक्त विभक्तियों का खोप होता है; जैसे, मातु समीप कहत लकुबाही । ( राम ) । समा-मध्य, ( क० क ) । पिता-पास, ( सर ) । पैर, संमुखा ( भारत ) ।

( आ ) हा, पुता ओर जाता क पहले जब विभक्ति नहीं आती तब उनके अर्थ में पहुँचा अंतर पद आता है जैसे, रामचंद्र 'से' पुत्र आर राम चंद्र के से पुत्र । पहले वारपांश में से 'रामचंद्र आर 'पुत्र का अर्थ सूचित करता है। पर दूसर वारपांश में उसन दोनों का मिश्रार्थ सूचित होता है ।

[ ए०—इन तादरदवानक संबंधसूचकों का विशेष विचार हता अर्थान्त के अंत में किया जायगा । ]

२३५—'पर और 'रहित के पहले 'से' आता है । 'पदके' 'पीछे' 'आगे,' और 'बाहर' के साथ 'से' विशेष में आया जाता है । जैसे, समय

से ( वा समग्र के ) पहले, सेना के—( वा सेना से ) पीछे जाति से वा जाति के ) बाहर, इत्यादि ।

२३६—'मारे', 'बिना' और 'सिवा कमी-कमी संज्ञा के, पहले आते हैं जैसे मारे मूछ के, सिवा पत्तों के, बिना हवा के इत्यादि । 'बिना', 'अनु-सार' और 'पीछे बहुधा भूत-वासिक कृदंत के विहित रूप के भागे, ( बिना विभक्ति के ) आते हैं, जैसे, 'भास्य का जल दिये बिना । ( सत्य० ) । 'जीसे सिखे अनुसार' । 'रीसनी हुए पीछे । ( परी० ) ।

[ ६०—संबन्धवाचक का संज्ञा के पहले लिखना ठीक रचना की रीति है बिना अनुसरण को-अह ठीक प्रेमी करते हैं जैसे, यह काम लाभ होतिवारी के को । हिंदी में यह रचना कम होती है । ]

२३७—'योग्य' ( वाचक ) और 'व्युत्थित' बहुधा विचार्यक संज्ञा के विहित रूप के साथ आते हैं, जैसे, 'आ पदार्थ देखने योग्य है । ( सङ्ग० ) । 'बाद रखने लायक ।' ( सर० ) । 'किससे व्युत्थित ।' ( इति० ) ।

[ ६०—'इत' 'उत', 'किस' और 'कितने' साथ 'लिए' का प्रयोग संज्ञा के समान होता है जैसे, इतलिए, कितनिए आदि । ये संयुक्त शब्द बहुधा त्रिवाचिरोपख वा समुच्चयवाचक के समान आते हैं । ऐसा ही प्रयोग ठीक 'जास्ते' का होता है । ]

२३८—घर्ष के अनुसार संबन्धवाचकों का वर्गीकरण करम की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसमें कोई व्याकरण-संबंधी नियम सिद्ध नहीं होता । बड़ा संबन्ध स्मरण की सहायता के लिए इनका वर्गीकरण दिया जाता है—

### कालवाचक ।

आगे, पीछे, बाद, पहले, पूर्व, अर्न्तर, बरबात, उपरांत आगमन ।

### स्थानवाचक ।

आगे, पीछे, ऊपर नीचे ठीके सामने क्यक, पास, निकट, समीप, अग्रशीक ( अग्रिम ), बाह्य, बीच, बाहर, परे, दूर, भीतर ।

### दिशावाचक ।

घोर, तरफ, पार, आरपार, आरपार, प्रति ।

साधनवाचक ।

द्वारा, अरिषे, हाथ, मारफत, बज, करके बबानी, सहारे ।

हेतुवाचक ।

बिपु, निमित्त, वास्ते, हेतु, हित ( कविता में ) खातिर, कारण  
सबब, मारे ।

विषयवाचक ।

बाबत, निस्वत, विषय, नाम ( नामक ), खेले, जान, भरोसे, मजे ।

व्यतिरेकवाचक ।

सिधा ( सिधाब ), अबाबा, बिबा, बीर, अतिरिक्त, रबिठ

विनिमयवाचक ।

पछटे, बइसे, अपइ, एपब ।

सादृश्यवाचक ।

समान, सम, ( कविता में ), छरइ, मीति, नाई, बाराबर, तुल्य, योग्य,  
आयक, सट्ट, अनुसार, अनुकूप, अनुकूल, बेग्रा-बेबी, सरीखा, सा, ऐसा  
बीसा, बगूबिब, मुवाबिक ।

विरोधवाचक ।

बिरुद, बिबाक उअरा, बिपरीत ।

सहचारवाचक ।

संग, साथ, समेत, सहित, पूरुंक, अपीन, स्वापीन, पय ।

सग्रहवाचक ।

सक, बी, पबंत, हुवा, भर, मात्र ।

तुलनावाचक ।

अपेपा, यनिस्वत, आगे, सामने ।

( १०—ऊपर की सूची में बिन शब्दों को कालवाचक संबंधसूचक लिखा है वे किसी किसी प्रयोग में स्थानवाचक अथवा दिशावाचक भी होत हैं। इसी प्रकार नीचे भी कई एक संबंधसूचक शब्दों के अनुसार एक से अधिक शर्तों में आ सकते हैं। )

२३३—ध्रुवपति के अनुसार संबंधसूचक का प्रकार के हैं—( १ ) मूल शर्त ( २ ) पौगंडिक ।

हिंदी में मूल संबंधसूचक बहुत कम हैं; जैसे, बिना, पर्यंत, बाईं, पूर्वक इत्यादि ।

पौगंडिक संबंधसूचक तुमर शब्दमनों से घने हैं; जैसे,

( १ ) संज्ञा से—पछटे, बांसे छोरे, अयेजा, बांम, खेले, बिपय, मारपठ इत्यादि ।

( २ ) विशेषण से—तुम्ह, ममाक उकड्य, अकानी, सरीला, योग्य बीसा, पेसा इत्यादि ।

( ३ ) क्रियाविशेषण से—ऊपर, नीचेर पहाँ बाहर पास परे, पीछे इत्यादि ।

( ४ ) क्रिया से—बिप, मार, करके, बांम ।

( १०—अभ्यय के रूप में 'लिये' का बहुधा 'लिए' लिखते हैं । )

२३४—हिंदी में कई-एक संबंधसूचक उन्नी भाषा से शर्त कई—एक संस्कृत से आये हैं। इनमें से बहुत से शब्द हिंदी के संबंधसूचकों के पर्यायवाची हैं। कितने-एक संस्कृत संबंधसूचकों का विचार हिंदी के गण-काल से आरंभ हुआ है। तीनों भाषाओं के कई-एक पर्यायवाची संबंधसूचकों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

हिंदी	उर्दू	संस्कृत
सामने	खबर	समक्ष संमुख
पास	नजदीक	निकट, समीप
नीचे	सबक, बर्दीखत	न्योरा
पीछे	बाद	पश्चात्, अर्धतर, उपरीत



तक	ता ( कबचित् )	पर्यंत
से	यनिस्वत	अपेक्षा
बाहूँ	तरह	भाँति
ठकता	शिखाफ	विद्वज्, विपरीत
सिए	वाम्ने, प्रातिर	विभिन्न, इष्ट
से	सरिसे	द्वारा
मन्ने	याघत निस्वत	विपव
×	बगर	दिना
पबदे	बदले, एपम	×
×	सिबा अबाबा	अतिरिक्त

२७१—नीचे और कुछ संबंधसूचक अव्ययों के अर्थ और प्रयोग छिगे जात हैं—

आगे, पीछे, सीतर, भर, तक और इनके पर्यायवाची शब्द अर्थ के अनुसार कभी काश्चिदाद्यक और कभी स्यान्वाद्यक होते हैं, जैसे, घर के आगे, विवाह क आगे, दिन भर, गाँव भर इत्यादि । ( अ०—२२० ) ।

आगे, पीछे, पहले, प्रदे, ऊपर, नीचे और इनमें से किसी किसी के पर्यायवाची शब्दों के पूर्व अथ से' विभक्ति आती है तब इनसे तुलना का बोध होता है, जैसे, 'कतुचा धरहे से आगे निकल गया' । 'गाड़ी समय से पहलं आई ।' 'यह जाति में मुझ से नीचे है ।'

आगे—यह संबंधसूचक नीचे छिटे अर्थों में भी आता है—

( अ ) तुलना में—इसके आगे सब ची मिराहर है । ( शकु ) ।

( आ ) विचार में—भावियों के आगे प्राय धार पम तो छोड़ें कस्तु ही नहीं है । ( सत्य० ) ।

( ई ) विषयानुगतता में—बाकी के आगे विराम नहीं उभता । ( कदा० ) ।

( सू०—प्रायः एन्ही अर्थों में 'सामने अथ प्रयोग होता है ।

पीछे—इससे प्रवेष्टता या भी बोध होता है, जैसे, घान पीछे एक एववा मिला ।

ऊपर नीचे—इसमें पर की मुझई-बहाई भी सूचित होती है; सपके ऊपर एक सरदार रहता है और उसके नीचे कई अमादार काम करते हैं ।

निकट—इसका प्रयोग विचार के अर्थ में भी होता है, जैसे, 'उसके निकट मृत और मरिच्यत दोनों वर्तमान से हैं ( गुरुभा० )'

पास—इससे अधिकार भी सूचित होता है, जैसे, 'मेरे पास एक बही है।'

यहाँ—द्वितीयाच्चे बहुवा इसे 'हाँ' लिखते हैं जैसे, तुम्हारे यहाँ कुछ रकम जमा की गई है। ( परी )। राजा शिवप्रसाद इसे 'यहाँ' लिखते हैं, 'जैसे और भी हिंदुओं को अपने यहाँ बुलाता है।' ( इति० ) 'परीचा-गुरु' में भी कई जगह 'यहाँ' आया है। वह शब्द यमार्थ में 'यहाँ' ( त्रिप्राविशेषण ) है। परंतु बोलने में कदाचित् कहीं-कहीं 'हाँ' हो जाता है। 'यहाँ' का अर्थ 'पास' के समान अधिकार का भी है। कभी-कभी 'पास' और 'यहाँ' का बोध हो जाता है और केवल 'के ( संबंध-कारक ) से इनका अर्थ सूचित होता है, जैसे, 'इस महाजन के बहुत मन है।' उसके एक बचका है।' मेरे कोर् बहिन न हुई।' ( गुरुभा० )।

सिबा—कोर्-कोर् इसे अयत्नसक्य में 'सिबाब' लिखते हैं। प्याट्स साहब के 'हिंदुस्तानी व्याकरण' में दोनों रूप दिये गये हैं। साधारण अर्थ के सिबा इसका प्रयोग कई-कई जगहों अर्थों की पूर्ति के लिए भी होता है; जैसे, 'इन घातों की बहाई बंशाबन्दी की करार इससे बखूबी माहूम हो जाती है। सिबाय इसके जो कभी कोर् प्रथम लिखा भी गया, ( ती ) द्वाये की सिबा माहूम न होने के कारण वह काफ पाके अस्पष्ट हो गया। ( इति० )। विशेषवाचक भास्य में इसका अर्थ 'सोचकर' या 'बिना' होता है, जैसे, 'उसके सिबाय और कोर् भी यहाँ नहीं आया।' ( गुरुभा० )

साथ—वह कभी-कभी 'सिबा' के अर्थ में आता है; जैसे, 'इन बातों से सूचित होता है कि अविद्यात ईसवी सन् के तीसरे शतक के पहले के यहीं। इसके साथ ही वह भी सूचित होता है कि वे ईसवी सन् के पाँचवें शतक के बाद के भी नहीं।' ( १३० )।

अनुसार, अनुसृत, अनुकूल,—ये शब्द स्वरादि होने के का 'पूर्ववर्ती संसृत शब्दों के साथ संबंध के विषयों से मिश्र जाते हैं और इन पूर्व 'के' का बोध हो जाता है जैसे, आतानुसार, इत्यानुसार कर्मानुसृत। इस प्रकार के शब्दों को संयुक्त संबंधसूचक मानना चाहिए और इसके पूर्व समाप्त के

किंग के अनुभार संबंध कारक की विभक्ति जगामी चाहिए, जैसे, 'सभा के अनुसार।' (भाषा-सार०) कोई-कोई श्रेयक कीकिंग संज्ञा के पूर्व 'की' लिखते हैं; जैसे, आपकी आज्ञानुसार यह बर माँगता हूँ।' (सत्य०) अनुकूल और अनुकूल प्रायः समवाची हैं।

सद्यः, समान, तुल्य, योग्य—ये शब्द विशेषण हैं और संबंधसूचक के समान आकर भी संज्ञा, की विशेषता बतलाते हैं। जैसे, 'तुम्हें योग्य सिर पर तूय क्यों रक्खा है।' (सत्य०)। 'यह रेखा उस रेखा के तुल्य है।' 'मेरी दया ऐसी ही तुम्हें के सद्यः हो रही है।' (शु०)।

सरीखा—इसके किंग और पञ्च विशेष्य के अनुसार बहवत हैं और इन्हें पूर्व बहुवा विभक्ति नहीं आती, जैसे, मुझ सरीखे लोग।' (सत्य०)। यह 'सद्यः' आदि का पर्यायवाची है और पूर्व शब्द के साथ मिलकर विशेष्य का काम देता है। (घं०—१९०)।

ऐसा, जैसा, सा—ये 'सरीखा' के पर्यायवाची हैं। आजकल 'सरीखा' का पहले 'जैसा' का प्रचार बढ़ रहा है। 'सरीखा' के समान 'जैसा', 'ऐसा' और 'सा' का रूप विशेष्य के किंग और पञ्च के अनुसार बहव जाता है। इसका प्रयोग भी विशेष्य और संबंध सूचक, दोनों के समान होता है।

ऐसा—इसका प्रयोग बहुवा संज्ञा के विकृत रूप के साथ होता है। (घं० २३९ का)। 'ऐसा' का प्रचार पहले की अपेक्षा कुछ कम है। भारतेंदु जी के समय की पुस्तकों में इसके बड़ाहण मिलते हैं जैसे, 'आचार्य जी पागल ऐसे हो गये हैं।' (सरो०)। 'किरीच करके आप ऐसे।' (सत्य)। 'आरमीर ऐसे पक-चाह हुआके का।' (इति०)। कोई-कोई इसका एक प्रांतिक रूप 'जैसा' लिखते हैं, जैसे, 'अधिक जैसी घाब-बात बीम निश्चय।' (प्राच्यि०)।

जैसा—इसका प्रचार आज कुछ के प्रयोग में अधिकता से होता है। यह विभक्ति-रहित और विभक्ति-रहित दोनों प्रयोगों में आता है, जैसे, 'पहले शतरू में आधिवास के प्रयोग की जैसी परिमात्रित संस्कृत का प्रचार ही था।' (शु०)। 'बीजगणित जैसे निश्चय बिषय को समझने की बड़ा की गई है।' (पर)। इस दोनों प्रयोगों में यह धतर है कि पहले वाक्य में 'जैसी' 'प्रयोग' और 'संस्कृत का संबंध सूचित नहीं करता, किन्तु 'की' के

परचात् लुप्त 'संस्कृत' शब्द का संबंध दूसरे 'संस्कृत' शब्द से सूचित करता है। दूसर वाक्य में 'बीज-गणित' का संबंध 'विषय' के साथ सूचित होता है, इसलिये वहाँ संबंधकारक की आवश्यकता नहीं है। इसी कारण भागे विये हुए पदाहरण में भी 'के' नहीं आया है—'शिवकुमार शास्त्री जैसे हुए पर महामहोपाध्याय।' ( शिब० )।

सा—इस शब्द का कुछ विचार क्रियाविशेष्य के अर्थात् में किया गया है। ( अ०—१२० )। इसका प्रयोग 'बैसा' के समान हो प्रकार से होता है और दोनों प्रयोगों में बैसा ही अर्थ-भेद पाया जाता है। जैसे, 'बीज पहाड़ सा धीर बल हाथी का सा है।' ( शकु० ) इस वाक्य में बीज को पहाड़ की उपमा ही गई है, इसलिये 'सा' के पहले 'का' नहीं आया, परंतु दूसरा 'सा' अपने पूर्व लुप्त 'बल' का संबंध पहले कहे हुए 'बल' से मिळता है, इसलिये इस 'सा' के पहले 'का' जाने की आवश्यकता हुई है। 'हाथी सा बल' कहना असंगत होता। मुद्राराक्षस में 'मेरे से लोग' आया है, परंतु इसमें समता कहनेबाध से की गई है न कि उसकी संबंधिची किमी वस्तु से, इसलिये शब्द प्रयोग 'मुझसे लोग' होना चाहिये। कोर्-कोर् इसे केवल प्रत्यय मानते हैं, परंतु प्रत्यय का प्रयोग विभक्ति के परचात् नहीं होता। जब यह संज्ञा या सर्वनाम के साथ विभक्ति के बिना आता है तब इस प्रत्यय कह सकते हैं और सांत शब्द को विशेष्य मान सकते हैं, जैसे फूँकता शरीर, अनेकी से धंग पर इत्यादि।

भर, तक, मात्र—इनका भी विचार क्रियाविशेष्य के अर्थात् में हो चुका है। जब इनका प्रयोग संबंधसूचक के समान होता है तब ये बहुधा काव्यवाचक स्थानवाचक, वा परिमाणवाचक शब्दों के साथ आकर उनका संबंध क्रिया से वा दूसरे शब्दों से मिळते हैं और इनके परे कारक की विभक्ति नहीं आती; जैसे, 'बह' रात भर जागता है।' लक्ष्य नगर तक गया।' 'इसमें ठिठ मात्र सतिह नहीं है।' 'तक' के अर्थ में कभी-कभी संस्कृत का 'पर्यंत' शब्द आता है; जैसे उसने समुद्र पर्यंत राज्य बढ़ाया।' 'भर' और 'तक' के योग से संज्ञा का विकृत रूप आता है; पर 'मात्र' के साथ उसका मूल रूप ही प्रयुक्त होता है; जैसे, 'सौमासेभर।' ( इति० )। समुद्र के तटों तक।' ( रघु० )। एक पुस्तक का नाम 'क्योरा-भर पत्र' है; पर 'क्योरा-भर' शब्द अष्टुज है। यह 'क्योरे-भर' होना चाहिये। 'मात्र' शब्द का प्रयोग केवल कुछ संस्कृत शब्दों के साथ ( संबंधसूचक के समान ) होता;

जैसे, 'बच मात्र पहाँ छहरो,' पञ्ज-मात्र, इत्यादि । 'मर' और 'मात्र' बहुधा बहुवचन संज्ञा के साथ नहीं आते । जब 'तक' 'मर' और 'मात्र' का प्रयोग क्रिया विशेष्य के समास होता है तब इनके परभाव विभक्तिर्वां आती हैं । जैसे, 'उसके रात्र मर में ।' ( गुणक० ) 'बोरे बड़े चारों तक के नाम आप चिठियाँ भेजते हैं । ( शिब ) । 'अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम ।' ( मा० बुध ) ।

बिना—यह कभी कभी कर्तृत्व धर्म्य के साथ आकर क्रिया-विशेष्य होता है; जैसे, "बिना किसी कार्य का कारण जाने हुए । ( सर० ) । बिना प्रतिम परिव्याम सोसे हुए । ( इति ) कभी कभी यह संबंध-धरक की विशेषता बताता है जैसे, 'आपके वियोग की खबर इस देश में बिना मेघ की बर्षा की भाँति अचानक आ गिरी । ( शिब० ) । इन प्रयोगों में 'बिना' बहुधा संबंधी शब्द के पहले आता है ।

उल्टा—यह शब्द वचार्थ में विशेष्य है पर कभी-कभी इसका प्रयोग 'का' विभक्ति के आगे संबंध-सूचक के समान होता है, जैसे, 'उप का उल्टा पीछे है ।' विशेष के अर्थ में बहुधा 'बिदक,' 'विप्राक' आदि आते हैं ।

कर, करके—यह संबंधसूचक बहुधा द्वारा 'समान' वा 'नामक' के अर्थ में आता है; जैसे, 'मम बचन, कर्म, करके यदि किसी जीव की हिसा न करे ।' 'अग जय बाध ममुख करि जाना । ( रामा० ) । संसार के स्वामी, ( भगवान् ) की मनुष्य करके जाना ।' ( पीपूष ) 'तुम हरि को पुत्र कर मत मानो । ( मेन० ) । पवित्रतमी शाही करके प्रसिय है । 'बधरा कति हम जान्यो पारी ।' ( बज० ) ।

अपेक्षा अनिश्चय—यहका शब्द संस्कृत संज्ञा है और दूसरा शब्द उर्दू संज्ञा 'निश्चय' से ब उपसर्ग छगान से बना है । एक तुलना के पूर्व 'को' और दूसरे के पूर्व 'के' आता है । इसका प्रयोग तुलना में होता है और दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची हैं । जिस वस्तु की हीनता बतायी ही उसके बावजूद शब्द के आगे "अपेक्षा" या "अनिश्चय" आगते हैं; जैसे, "उमकी अपेक्षा और प्रकार के मनुष्य कम हैं ।" ( जीविष्य० ) । "आर्यों के अनिश्चय जमा जमी समस्य जाति के आग रहत थे ।" ( इति० ) "प्राचा-गुह" में "अनिश्चय के बद्ध "निश्चय" आया है; जैसे, "उमकी निश्चय उदारता की ज्यादा कर करते हैं ।' वचार्थ में "निश्चय" "विषय" के अर्थ में आता है; जैसे, "चंद

की निस्वयत्ता आपकी क्या शय है। कभी-कभी "अपेक्षा" का भी अर्थ "निस्वयत्ता" के समान "विषय" होता है, जैसे, 'सब अपेक्षाओं की अपेक्षा ऐसा ही क्या करना चाहिए।' (जीविका)।

सौं—कोई-कोई इसे "तक" के अर्थ में शय में भी लिखते हैं, परंतु यह स्पष्ट प्रयोग नहीं है। पुरानी कविता में "ही" "समान" के अर्थ में भी आया है, जैसे, "जायत क्यूं ननु-नम विधि तुर्बोधन सौं साध।" (सत०)।

[ टी०—पहले कहा गया है कि हिंदी क कवियों का वैवाचिक अर्थों के भेद नहीं मानते। अर्थों के और-और भेद ता उनके अर्थ और प्रयोग के कारण बहुत करके विभिन्न है। यदि उनके मते या न माने परंतु संबंध शब्द को एक अलग शब्द भेद मानने में कई बाधाएँ हैं। हिंदी में कई एक संज्ञाओं, विशेष्यों और क्रियाविशेष्यों को केवल संबंधकारक अथवा कभी कभी कृत्रिमकारक के विभक्ति के पर्याय माने ही के कारण संबंधशब्द मानते हैं; परंतु इनका एक अलग बरा ब मानकर एक विशेष प्रयोग मानने से भी काम चल सकता है, जैसा कि संकृत में उपरि, विना, पूरक, पुरा, अपेक्षादि अर्थों के संबंध में होता है जैसे, "गृहस्योपरि," "रामेण विना।" दूसरी ओरिनाई यह है कि जिस अर्थ में कोई-कोई संबंधशब्द आते हैं उसी अर्थ में कारक प्रत्यय अर्थात् विभक्तियों भी आती हैं जैसे, पर में, पर के भीतर, उपरि, उपरि के ऊपर, वेद पर, वेद के ऊपर। तब हम विभक्तियों की भी संबंधशब्द क्यों न मानें? इनके विना एक और अर्थ मान यह है कि कई एक शब्दों—जैसे, तक, भा, मुँदा, उरि, पूरक, मात्र, सा, आदि—के विषय में निरर्थकपूरक यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रत्यय हैं अथवा संबंधशब्द। हिंदी की वर्तमान शिलायट से इनका निरर्थक करना और भी कठिन है। उदाहरणार्थ, कोई "तक" को पूरक शब्द से मिलाकर आर कई अलग लिखते हैं। ऐसी अवस्था में संबंधशब्द का निर्दोष लक्षण बताना शक्य नहीं है।

संबंधशब्द के पर्याय विभक्ति का लोप हो जाता है और विभक्ति क पर्याय कोई कृत्रिम प्रत्यय नहीं आता इसलिए को शब्द विभक्ति के पर्याय आते हैं उनके प्रत्यय नहीं कर सकते और बिन शब्दों के पर्याय विभक्ति आती है वे संबंधशब्द नहीं बने जा सकते। उदाहरणार्थ, "शर्मा का सा बल" में "सा" प्रत्यय नहीं, किंतु संबंधशब्द है और "संतार मर के प्रत्य

गिरि" में "भर" संबंधसूचक नहीं, किंतु प्रत्यय अथवा क्रियाविशेषण है। इस दृष्टि से केवल ठग्री का संबंधसूचक मानना चाहिये किन्तु परचात् कर्म विभक्ति नहीं आती और किन्तुका प्रयोग संज्ञा के बिना कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार के शब्द केवल "नाई," "प्रति" "पूर्वत," "पूर्वक," "सहित" और "रहित" हैं। इनमें से अंत के पौष शब्दों के पूर्व कभी-कभी संबंध कारक की विभक्ति नहीं आती। उस समय इन्हें प्रत्यय कह सकते हैं। तब केवल एक "नाई" शब्द ही संबंधसूचक कहा जा सकता है पर वह भी प्रायः अप्रचलित है। फिर तब, भर, मात्र और तुदा के परचात् कभी-कभी विभक्तियाँ आती हैं इसलिए और और शब्द भेदों के समान य कहना स्थानीय रूप से संबंधसूचक हो सकते हैं। ये शब्द कभी संबंधसूचक कभी प्रत्यय और कभी दूसरे शब्द भेद भी होते हैं। ( इनके भिन्न-भिन्न प्रयोगों का उल्लेख क्रियाविशेषण के अध्याय में तथा इसी अध्याय में किया जा चुका है। ) इससे जाना जाता है कि हिंदी में मूल संबंध सूचकों की संख्या नहीं कबराबर है, परन्तु भिन्न भिन्न शब्दों के प्रयोग संबंधसूचक के समान होते हैं, इसलिए इसकी एक अलग शब्द-भेद मानन की आवश्यकता है। भाषा में बहुधा कोई भी आवश्यकता के अनुसार संबंधसूचक बना लिया जाता है तब उसके बदले दूसरा शब्द उपयोग में आने लगता है। हिंदी के 'अतिरिक्त,' 'अपेक्षा,' 'विषय,' 'विरुद्ध' आदि संबंधसूचक पुरानी पुस्तकों में नहीं मिलते और पुरानी पुस्तकों के 'तई,' 'पुट,' 'लौ,' 'संतौ,' आदि आशङ्क्य अप्रचलित हैं। )

[ २०—संबंधसूचकों और विभक्तियों का विशद अंतर कारक प्रकरण में बताया जायगा। ]

तैसरा अध्याय ।

समुच्चय-शोधक ।

१६६—जो अध्याय ( क्रिया की विशेषता न बताकर ) एक वाक्य का संबंध नमूने वाक्य से मिलाता है उसे समुच्चय-शोधक कहते हैं। तीन धीर, यदि, तो, क्योंकि इसदिष्ट ।

'इहा कही और पायी गिता—वहाँ 'और' समुच्चय-बाधक है, क्योंकि वह पूर्व वाक्य का सर्वत्र उत्तर वाक्य से मिटाता है। कमी, कमी समुच्चय बोधक से जोड़े जानबाध वाक्य पृथक्पृथक् स्पष्ट नहीं रहते, जैसे 'कृप्य और बछाराम गये।' इस प्रकार के वाक्य देखने में एकही से जान पड़ते हैं परंतु दोनों वाक्यों में क्रिया एक ही होने के कारण संक्षेप के लिए उभका प्रयोग केवल एक ही बार किया गया है। ये दोनों वाक्य स्पष्ट रूप से पों लिखे जायेंगे—'कृप्य गये और बछाराम गये।' इसलिये यहाँ 'और' दो वाक्यों को मिटाता है। 'यदि सूर्य न हो तो कुछ भी न हो।' (इति०)। इस उदाहरण में 'यदि' और 'तो' वाक्यों को जोड़ते हैं।

( घ ) कमी-कमी बोध कोड़े समुच्चय-बोधक वाक्य में शब्दों का भी जाड़ते हैं, जैसे 'दो और दो बार होते हैं।' यहाँ 'दो बार होते हैं' और 'दो बार होने हैं', ऐसा अर्थ नहीं हो सकता, अर्थात् 'और' समुच्चय-बाधक दो संबंधित वाक्यों को नहीं मिटाता, किन्तु दो शब्दों को मिटाता है। तथापि ऐसा प्रयोग सब समुच्चय-बोधकों में नहीं पाया जाता, और 'क्योंकि', 'बदि', 'तो', 'तथापि' 'तोमी' आदि कई समुच्चय-बोधक कवक वाक्यों हा को जोड़ते हैं।

( टी०—समुच्चय वाक्य का लक्षण मिश्र-मिश्र व्याकरणों में मिश्र मिश्र प्रकार का पाया जाता है। यहाँ हम केवल हि० वा वा० व्याकरण' में दिए गए लक्षण पर विचार करते हैं। वह लक्षण यह है—'वा शब्द वा पदों वाक्यों क अर्थों क मध्य में आकर प्रत्येक पद वा वाक्यांश क मिश्र-मिश्र क्रिया-सहित अन्वय का संयोग वा विभाग करते हैं उनका समुच्चय वाक्य अभ्यस्य करते हैं, जैसे—'राम और लक्ष्मण आय।' इस लक्षण में सबसे पहला दोष यह है कि इसको मूला स्पष्ट नहीं है। इसमें शब्दों की योजना से यह नहीं जान पड़ता कि मिश्र मिश्र' शब्द 'क्रिया' का विशेषण है अथवा 'अन्वय' का। फिर समुच्चय-बोधक लक्ष्य दो वाक्यों के मध्य ही में नहीं आता, बरन् कमी कमी प्रत्येक जुड़े हुए वाक्य के आदि में भी आता है जैसे, 'यदि सूर्य न हो तो कुछ भी न हो।' इसके सिवा पदों वा वाक्यांशों को इस तरह से इस लक्षण में भरसकता सम्बन्ध और शब्द जाल का दोष पाया जाता है। लेखक ने यह लक्षण 'भाषा-भारत' से लिया था तथा लेकर उसमें इधर उधर कुछ टांगिदक परिवर्तन कर दिया है, परंतु मूल क दोष



झैठे के छैठे बने रहे । 'म्रावा-म्रावाकर' में भी 'मावा-म्रावाकर' ही लक्ष्य दिया गया है और उसमें भी प्रायः ये ही दोष हैं ।

हमार किसे हुए समुच्चय-बोधक के लक्ष्य में जो वाक्यांश—'क्रिया की विशेषता न बतलाकर'—आया है उसका कारण यह है कि वाक्यों का जिस प्रकार समुच्चय-बोधक बोलते हैं उसी प्रकार उन्हें दूसरे शब्द भी बोलते हैं । संबंधवाचक और निस्व संबंधी उचनानामों के द्वारा भी जो वाक्य बोल्ये जाते हैं, जैसे, 'जो गरबते हैं वह बरतते नहीं ।' (कहा ।) इस उदाहरण में 'जो' और 'वह' जो वाक्यों का संबंध मिलाते हैं । इसी तरह 'जैठा ठैठा' 'बितना-उठना' संबंध-वाचक विशेषण तथा 'मव-तव', आदि संबंधवाचक क्रिया-विशेषण भी एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलात हैं । इस पुस्तक में दिए हुए समुच्चय-बोधक के लक्ष्य से इन तीनों प्रकार के शब्दों का निराकरण हाता है । संबंध-वाचक उचनानाम और विशेषण जो समुच्चय-वाचक इसलिये नहीं कहते कि वे अस्म्यव नहीं हैं, और संबंध-वाचक क्रिया विशेषण जो समुच्चय-बोधक में मानने का कारण यह है कि उसका मुख्य धर्म क्रिया की विशेषता बताना है । इन तीनों प्रकार के शब्दों पर समुच्चय-बोधक की अतिव्याप्ति बचाने के लिए ही उक्त लक्ष्य में 'अस्म्यव' शब्द और 'क्रिया की विशेषता न बतलाकर' वाक्यांश लाया गया है । )

१४३—समुच्चय-बोधक अस्म्यवों के मुख्य ही भेद हैं—(१) समानाधिकरण (२) व्यधिकरण ।

१४४—जिन अस्म्यवों के द्वारा मुख्य वाक्य जोड़े जाते हैं उन्हें समानाधिकरण समुच्चयबोधक कहते हैं । इनके चार उपभेद हैं—( अ ) संयोजक—और, व, तथा, एवं भी । इनके द्वारा जो वा अधिक मुख्य वाक्यों का संग्रह होता है, जैसे, 'दिवली के पंजे होते हैं और उनमें नय होते हैं ।

घ—वह उर्ध्व शब्द 'और' का पर्यायवाचक है । इसका प्रयोग बहुधा ग्राह्य होता नहीं करते, क्योंकि वाक्यों के बीच में इसका उच्चारण कठिनार्थ म होता है । उर्ध्व-भेदी राजा साहब म भी इसका प्रयोग नहीं किया है । इस 'व' में चार संस्कृत 'व' में जिसका अर्थ 'व' का उभयता है, बहुधा गड़बड़ चार भ्रम भी हो जाता है । अधिकांश में इसका प्रयोग उर्ध्व सामासिक शब्दों में होता है; परंतु अबमें भी यह उच्चारण की सुगमता के लिये संधि के अनुसार एवं शब्द में लिखा दिया जाता है; जंगे नामो-निशान धावाइवा,

आर्त्तो भाव । इस प्रकार के शब्दों को भी श्लोक, हिंदी समास के अनुसार, बहुधा 'भाव-इवा', 'भाव-माध', 'भाव-निशान', इत्यादि श्लोक और श्लोक हैं, जैसे, 'तुलपरस्ती ( मूर्तिपूजा ) का नाम-निशान न बाकी रहने दिया' । ( इति० ) ।

तथा—यह संस्कृत संबंधवाचक क्रिया विशेषण 'यथा' ( जैसे ) का कल्पसंबंधी है और इसका अर्थ 'जैसे' है । इस अर्थ में इसका प्रयोग कभी कभी कविता में होता है, जैसे, 'रह गई अति विस्मित सी तथा । कवित्व संबंध बात मुगी यथा' । यथ में इसका प्रयोग बहुधा 'और' के अर्थ में होता है, जैसे, 'पहले पहल वहाँ भी अनेक मूर तथा भयानक उपचार किये जाते थे । ( सर० ) इसका अधिकतर प्रयोग 'और' शब्द की द्विक्रिा का विचारण करने के लिए होता है, जैसे, 'इस बात की पुष्टि में शैली महाराज ने शत्रुबन्ध क देरहवें सर्ग का एक पद्य और शत्रुबन्ध तथा कुमार संभव में व्यवहृत 'संवात' शब्द भी दिया है ( रघु ) ।

और—इस शब्द के सर्वनाम, विशेषण और क्रिया-विशेषण होने के के उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं । ( अंक-१८२, १८६, २२३ इ० ) समुच्चय श्लोक होम पर इसका प्रयोग साधारण अर्थ के सिवा नीचे कुछ विशेष अर्थों में भी होता है ( प्याट्स-कृत 'हिंदुस्तानी व्याकरण —

( अ ) दो क्रियाओं की समकालीन घटना; जैसे, 'तुम उठ और पढ़नी चाह' ।

( घा ) दो विषयों का कल्प-संबंध; जैसे, 'मैं हूँ और तुम हो' ( = मैं तुम्हारा साथ न छोड़ूँगा ) ।

( इ ) प्रमत्त का तिरस्कार; जैसे 'कि मैं हूँ और तुम हो' ( = मैं तुम्हो खूब समझूँगा ) ।

शब्दों के बीच में बहुधा 'और' का श्लेष हो जाता है; जैसे, 'मह-सुर की पहचान' मुझ मुझ का इनबाबा' 'बसो, दूना' मेरे हाथ-पाँव नहीं चकते । बचार्थ में ये सब उदाहरण हूँ समास के हैं ।

एवं—'तथा' के समान इसका भी अर्थ 'जैसे' या 'ऐसे' होता है परंतु उद्य हिंदी में यह केवल 'और' के पर्याय में आता है; जैसे 'योग उपमायें देखकर विस्मित एवं मुग्ध हो जाते हैं' । ( सर ) ।

( आ ) विभाजक-या, वा अथवा, किंवा, कि, या-या, चाहे-चाह, क्या-क्या, न-न, य कि नहीं तो ।

इन अल्पों से ही या अधिक शब्दों वा शब्दों में से किसी एक-का प्रत्यक्ष अथवा दोनों का त्याग होता है ।

या, वा, अथवा, किंवा—ये चारों शब्द प्रायः पर्यायवाची हैं । इनमें से 'वा' अब्द और शेष तीन संस्कृत हैं । 'अथवा' और 'किंवा' में दूसरे अल्पों के साथ वा 'वा' मिला है । पहले तीन शब्दों का एक-साथ प्रयोग द्विरुक्ति के क निवारण क लिए होता है; जैसे, पुस्तक की अथवा किसी मंत्रालय या प्रयोगशाला की एक से अधिक पुस्तकों की प्रशंसा में किसने एक प्रस्ताव पास कर दिया ( सर० ) । 'या और 'वा' कभी कभी पर्यायवाची शब्दों को मिलाते हैं जैसे, धर्मनिष्ठा वा धार्मिक विश्वास । ( स्वा० ) इस प्रकार के शब्द कभी-कभी अंग्रेजों में ही रख दिये जाते हैं; जैसे, सुति ( बेद ) में । ( रतु ) खेखक-गण कभी-कभी मूल से या' क बदले 'और' तथा 'और' के बदले 'या' लिख देते हैं; जैसे मुझे जलाये और गाँव भी जाते थे और कभी जलाके गाँवते थे । ( इति० ) यहाँ दोनों धार' के स्थान में 'या' 'वा' और 'अथवा' में से कोई भी दो अलग-अलग शब्द होन चाहिये । किंवा का प्रयोग बहुधा कविता में होता है; जैसे सूप अतिमान मोह बस किंवा । ( राम० ) । 'ये हैं मरक के हूत किंवा सुत हैं अधिराज क । ( भारत ) ।

कि—यह ( विभाजक ) कि' अक्षरवाचक धार एकवचनवाचक 'कि' से मिला है । ( अं २३५ आ० इं ) । इसका अर्थ 'वा' के समान है परंतु इसका प्रयोग बहुधा कविता ही में होता है; जैसे 'परिहास भवन कि पैरहि माया । ( राम० ) कन्नड के हृद पर दीप-शिक्षा सोती है कि श्याम घन संदह में क्षमिनी की धारा है' । ( क० क० ) 'कि कभी-कभी दो शब्दों को भी मिलाता है, जैसे, 'अथपि कृपय कि अल्पवी ही हैं धत्री-माती यहाँ ( मारु० ) । परंतु ऐसा प्रयोग क्वचित् हाता है ।

या—या ये शब्द जादे स घात हैं और अनेके 'या' की अथवा विभाग का अधिक निरपेक्ष सूचित करते हैं; जैसे 'या तो इस पेड़ में चोंनी घगाकर मर जाईंगी या गंगा में डूर पडूंगी । ( मत्स्य० ) । कभी-कभी कहीं-कहीं के समान इनसे 'महत् अंतर' सूचित होता है, जैसे, 'या वह रीतक भी या

सुनसान हो गया ।' कविता में 'या या' के अर्थ में 'कि कि' आते हैं, जैसे, 'की तनु मान कि केवळ माना' । ( राम ) ।

कान्ची हिंदी में पहले 'या' के बदले आया बिलते हैं जैसे, 'आया मर्द या पीरत' । 'आया मी उद् शब्द है ।

याया इसी अर्थ में 'बाहे-बाहे' आते हैं जैसे 'बाहे सुमंद को राई करे रवि राई को बाहे सुमेक बनाई ।' ( पद्या० ) । ये शब्द 'बाहना' क्रिया से बने हुए अव्यय हैं ।

क्या—क्या—य प्रत्ययवाचक सर्वनाम समुच्चय-बोधक के समान उपयोग में आते हैं । जोड़ उन्हें संयोजक और कोई विभाजक मानते हैं । इनके प्रयोग में यह विशेषता है कि ये वाक्य दो वा अधिक शब्दों का विभाग बताकर उन सबका इकट्ठा उल्लेख करते हैं जैसे 'क्या मनुष्य और क्या जीवजंतु मैंने अपना सारा शस्त्र इन्हींका भ्रष्टाकरण में देबाया ।' ( गुरदा० ) । 'क्या की क्या उपप, सब ही के मन में आपस्य द्वाय रहा था । ( मेम ) ।

न—न—ये बुद्ध क्रियाविशेष्य समुच्चय-बोधक होकर आते हैं । इनसे दो वा अधिक शब्दों में से प्रत्येक का स्वाग सूचित होता है जैसे 'म उन्में नींद आती थी न मूल प्यास लगती थी । ( मेम० ) । कमी-कमी इसमें अराक्यता का याव होता है, जैसे न के अपने प्रबंधों से छुड़ी पावेंगे न कहीं आवेंगे । ( सत्य० ) । 'न ना मन लेख हागा न राधा नाचेंगा' । ( कहा० ) । कमी-कमी इनका प्रयोग कार्य-कारण सूचित करने में होता है जैसे 'म गुम आत न यह उपद्रव दफा होता' ।

न कि—यह 'न' और 'कि' से मिलकर बना है । इससे बहुधा दो बातों में सूसरी का निषेध सूचित होता है जैसे, 'भैरवज लोग व्यापार के बिना आये ये न कि देश जीतने के दिन ।

नहीं तो—यह भी संयुक्त क्रियाविशेष्य है, और समुच्चय-बोधक के समान उपयोग में आता है । इससे किसी बात के स्वाग का कल सूचित होता है जैसे, 'इससे मुँह पर धूँवर का दाक किया है । नहीं तो राजा की आँसों अब उस पर झर सकती थी । ( गुरदा० ) ।

( इ ) विशेषदर्शक—पर, परंतु किंतु लेकिन मगर बरन, बहिः । ये अव्यय दो वाक्यों में स पहले का निषेध वा परिमिति सूचित करते हैं ।

पर—'पर' रेट हिंदी शब्द है 'परंतु' तथा 'किंतु' संस्कृत शब्द हैं और 'हेकिन' तथा 'मगर' उद् है। 'पर' 'परंतु' और 'हेकिन' पर्यायवाची हैं। 'मगर' भी इसका पर्यायवाची है परंतु इसका प्रयोग हिंदी में क्वचिद् होता है। 'मैनमायर' में कबल 'पर' का प्रयोग पाया जाता है जैसे 'दूध-सच की ता मगवान् जान पर नो मन में एक बात कद् है।'

किंतु, वरज—ये शब्द भी प्रायः पर्यायवाची हैं और इसका प्रयोग बहुधा निषेधवाचक वाक्यों के परवत् होता है, जैसे 'कामवालों के प्रदल होन से काइसी दुराचार नहीं करते किंतु अंतःकार्य के निर्वह हो जान से देया करते हैं।' (स्था०)। 'नै कबल सीरा नहीं हैं; किंतु माया का कवि नी हैं' (मुद्रा)। 'इस संदिह का इतने काह बोधन पर कवीचित समभाव करवा कवि है, वरज कवे-कवे विशाहीं की मति में हममें विस्व है। (इति)। 'वरज' बहुधा एक बात को दुब-दुबकर दूसरी कवे प्रधानता देने का छिप सी जाता है; जैसे पारस देरवाले की कार्य ये वरज इसी कारण उस दुर की कव में इराज कइत हैं। (इति०)। 'वरज' का पर्यायवाची 'वरज' (संस्कृत) और 'बहिष्' (उद्) है।

( ई ) परिपामदर्शक—इसविद्, सी कइ, घनम्ब ।

इस अर्थों से यह जाना जाता है कि इसके अर्थ के वाक्य का अर्थ विच्छेद वाक्य के अर्थ का कइ है जैसे 'अध मोर होने लगा था, इसलिए दोनों जन अपनी-अपनी हींते से उडे। (देव)। इस अहाहारण में "दोना जन अपनी-अपनी हींते से उडे" यह वाक्य परिपाम भूषित करता है और 'अध मोर होने लगा था' यह कारण बतजाता है; इस कारण 'इसविद् परिपाम दर्शक समुच्चय-बोधक है। यह शब्द मूळ समुच्चय-वाचक तथा कमी कमो विपक्षितौष्य के अनाथ उपयोग में आता है। अं—

२३०—(म्)। इसविद् के अर्थ कमी कमी 'हमने हम वाले का "हम" 'य' में आता है।

) 'इसविद्' का और अर्थ जाय जिक्रे आदेग। (२)  
एक "गीतिप" ही जाता है।)

के पर्यायवाचक हैं और

सो—यह निरुपपत्तक सर्वनाम ( अ०—१३० ) 'इसलिए' के अर्थ में आता है, परंतु कभी-कभी इनका अर्थ 'तब' वा 'परंतु' भी होता है। जैसे, 'मैं घर से बहुत दूर निकल गया था; सो मैं बड़े जेद से नीचे उतरा'। 'कम से कम पत्तोदा की कच्चा के प्रायः किये थे, सो वह असुर था।' ( गुरुका० )।

[ सू० चामूनी हिंदी में 'इसलिए' के बदले 'लिहाजा' लिखा आता है। ]

[ टी०—समानाधिकरण समुच्चय-बोधक अर्थों से मिले हुए साधारण वाक्यों को कोई-कोई सेलक अलग अलग लिखते हैं, जैसे, 'भारतवासियों को अपनी दशा की परवा नहीं है। पर आपकी इज्जत का उन्हें बड़ा खयाल है।' (दिब०)। 'तब समय किये को पढ़ाने की बहुरत न समझी गई होगी, पर अब तो है। अतएव पढ़ाना चाहिये।' ( सर ) इस प्रकार की रचना अनुपपत्तीय नहीं है। ]

२४५—जिन अर्थों के पाग से एक वाक्य में एक वा अधिक आधित वाक्य बोधे जाते हैं उन्हें अर्थिकरण समुच्चयबोधक कहते हैं। इनके चार उपमेय हैं—

( अ ) कारण-बाधक—क्योंकि, जोकि इसलिए, कि।

इन अर्थों से आरंभ होनेवाले वाक्य पूर्ववाक्य का समर्थन करते हैं—पहले पूर्व वाक्य के अर्थ का कारण उत्तर वाक्य के अर्थ से सूचित होता है। जैसे 'इस बाधिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता।' ( रत्ना० )। इस उदाहरण में उत्तर वाक्य पूर्व वाक्य का कारण सूचित करता है। यदि इस वाक्य को उल्टाकर ऐसा कहें कि 'मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता इसलिए ( अतः, अतएव ) इस बाधिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था' तो पूर्व वाक्य से कारण और उत्तर वाक्य से अर्थ परियाम सूचित होता है, और 'इसलिए' शब्द परियाम-बोधक है।

[ टी०—यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब 'इसलिए' को समानाधिकरण समुच्चय-बोधक मानते हैं, तब 'क्योंकि' को इस वर्ग में क्यों नहीं गिनते? इस विषय में वैपाकरणी का एकमत नहीं है। चाहे-कोई दोनों अर्थों को समानाधिकरण कोई-कोई उन्हें अर्थिकरण समुच्चय-बोधक मानते

हैं। इसके विरुद्ध किसी-किसी क मठ का स्वीकरण अगले उदाहरण से होगा—'गम हवा ऊपर उठती है, क्योंकि वह साधारण हवा से हलकी होती है।' इस वाक्य में बच्चा का मुख्य अभिप्राय यह बात कहना है कि 'गम हवा ऊपर उठती है,' इसलिए वह दूसरी बात का उल्लेख केवल पहली बात के समर्थन में करता है। यदि इसी बात को बौं कहें कि 'गम हवा साधारण हवा से हलकी होती है; इसलिए वह ऊपर उठती है'—तो ध्यान पड़ेगा कि यहाँ बच्चा का अभिप्राय दोनों बातों प्रधानता-पूर्वक कहाने का है। इसके लिए वह दोनों वाक्यों को इस तरह ही कह सकता है कि 'गम हवा साधारण हवा से हलकी होती है और वह ऊपर उठती है।' इस दृष्टि से 'क्योंकि' व्यक्ति करण समुच्चय बोधक है; अर्थात् उल्लेख होनेवाला वाक्य अभिप्रेत होता है और 'इसलिए' समानाधिकरण समुच्चय-बोधक है—अर्थात् वह मुख्य वाक्यों को मिटाता है। ]

'क्योंकि' के बदले कभी कभी 'कारण' शब्द आता है वह समुच्चय बोधक का काम देता है। 'क्योंकि' समुच्चयबोधक वाक्यांश है।

कभी-कभी कारण के अर्थ में परिमाण-बोधक 'इसलिए' आता है और तब उसके साथ बहुधा 'कि' रहता है, जैसे,

'दुर्लभ—क्यों माहम्मद, तुम छात्री से क्यों दुरा कहा चाहते हो ?

माहम्मद—इसलिए कि मेरा धर्म ही ऐसा है और यह सीधी बर्तनी है। ( शकु )।

कभी-कभी पूर्व वाक्य में 'इसलिए' क्रियाविशेषण के समान आता है और उत्तर वाक्य 'कि' समुच्चय-बोधक से प्रारंभ होता है; जैसे, 'क्योंकि बात केवल इसीलिए मान्य नहीं है कि वह बहुत कम से मानी जाती है।' ( सर० )। ( मीन ) 'इसलिए रोम या कि इस धर्म में बड़ी शक्ति है।' ( शकु० )। 'कुछा' इसलिए कि वह पत्थरों से बना हुआ था, अपनी जगह पर शिपर की भाँई कहा रहा।' ( पापासार० )।

जोकि—यह उद् 'क्योंकि' के बदले कानूनी भाषा में कारण सूचित करने के लिए आता है; जैसे 'जोकि वह अमर क्रीन मस्खदत है इसलिए नीचे लिखे मुताबिक हुकम होता है।' ( एकर )।

इस उदाहरण में पूर्व वाक्य आश्रित है, क्योंकि उसके साथ कारणवाचक समुच्चय-बोधक आता है। दूसरे स्वार्थों में पूर्ववाक्य के साथ बहुधा कारण

वाचक ध्वन्य नहीं आता; और वहाँ वह वाक्य मुख्य समझ जाता है।  
 हैयाकरवाँ का मत है कि पहले क्रमच और पीछे परिधाम कहने से कारण  
 वाचक वाक्य ध्वनित और परियात्मबोधक वाक्य स्पर्श रहता है।

( छा ) उद्देश्यवाचक—कि, जो, ठाकि, इसलिये कि ।

इन ध्वन्यवाँ क परचाए ध्वनेवाळा वाक्य दूसरे वाक्य का उद्देश्य वा होता  
 सूचित करता है। उद्देश्यवाचक वाक्य बहुधा दूसर ( मुख्य ) वाक्य के  
 परचाए आता है पर कमी-कमी वह उसके पूर्व भी आता है। उदा०—इम  
 तम्हें हुँदावन सेवा चाहते हैं कि तुम उनका समाधान कर आओ' । ( प्रेम० )।  
 क्रिया क्या आप जो देहातियों की प्राथरणा हो' । ( सर० )। 'छोग धक्कर  
 धपवा इक पक्कर करने के लिए वस्तावेवाँ की रकित्तरी करा खेते हैं ताकि  
 उनके धाने में किमी प्रकार का शक न रहे' । ( बी० पु० )। 'मनुष्या मनुषी  
 मारने क खिये हर बड़ी मिहमत करता है इसलिये कि उसके मनुषी का  
 धक्का मोख मिछे । ( जीविका० )।

जब उद्देश्यवाचक वाक्य मुख्य वाचक के पहले आता है तब उसके साथ  
 कोई समुच्चय-बोधक नहीं रहता; परंतु मुख्य वाक्य इसलिये से धारम होता  
 है; जैसे, तपोव्रतवासियों क धारम में बिध न हो, इसलिये तप को नहीं  
 रखिये ] ( शकु० )। कमी-कमी मुख्य वाक्य 'इसलिये' के साथ पहले आता  
 है और उद्देश्यवाचक वाक्य 'कि' से धारम होता है; जैसे, इस बात की चर्चा  
 हमने इसलिये की है कि उमकी रंका दूर हो आप' ।

जो' क पहले कमी-कमी जिसमें वा जिससे आता है; जैसे, बैग-बग  
 चली का जिससे सब एक-संग भेज-कुच्छ से कुटी में पहुँचे ।' ( शकु० )।  
 'बह बिरतार इसलिये किया गया है जिसमें पहलेवाले आसिदास का भाग  
 धक्की तरह समझ जायें । ( रघु )।

[ २ — 'ठाकि' को छोड़कर रोम उद्देश्यवाचक समुच्चयबोधक दूसरे ध्वन्य  
 में भी आता है। जो' और जी' के ध्वन्य ध्वन्य का विचार आगे आगा।  
 कमी-कमी 'वा' और 'कि' पर्यायवाचक होते हैं, जैसे, 'बाबा से समझकर  
 करो वा वे मुझे गालों के संघ पठाय दें ।' ( प्रेम )। इस उदाहरण में  
 'वा' क बदले 'कि' उद्देश्यवाचक का प्रयोग हो सकता है। 'ठाकि' और  
 'कि' तब शक है और 'वा' हिंदी है। 'इसलिये' की स्मृतति पहले सिद्धी  
 का सुधी है। ( धं०—२५४—६ । ]



( ६ ) संकेतवाचक—जो—तो, यदि—तो, यद्यपि—तथापि ( तोमी ), चाहे—परंतु, कि ।

इसमें से 'कि' को काफ़र शेष शब्द, संबंधवाचक और विषयसंबंधी । सर्वनामों के समान, जाड़े से आते हैं । इन शब्दों के द्वारा तुलनेवाले वाक्यों में से एक में 'जो' 'यदि', 'यद्यपि' वा 'चाहे' आता है और दूसरे वाक्य में क्रमशः 'तो' 'तथापि' ( तोमी ) अथवा 'परंतु' आता है । जिस वाक्य में 'जो' 'यदि' 'यद्यपि' वा 'चाहे' का प्रयोग होता है उसे पूर्व वाक्य और दूसरे को उत्तर वाक्य कहते हैं । इस अर्थों को 'संकेतवाचक' कहने का कारण यह है कि पूर्व वाक्य में जिस घटना का वर्णन रहता है उससे उत्तर वाक्य की घटना का संकेत पाया जाता है ।

जो—तो जब जब पूर्व वाक्य में कही हुई शर्त पर उत्तर वाक्य की घटना निर्भर होती है तब इस शब्दों का प्रयोग होता है । इसी अर्थ में 'यदि—तो' आते हैं । 'जो' साधारण भाषा में और 'यदि' शिष्ट अथवा पुस्तकी भाषा में आता है । उदा०—'जो तू अपने मन से सखी है तो पति के घर में दासी होकर भी रहना अच्छा है ।' ( शकु ) । 'यदि ईश्वरके आदेश से यह बड़ी ब्राह्मण हो तो बड़ी अच्छा बात है' । ( सत्य ) । कभी-कभी 'जो' से आर्तक पाया जाता है, जैसे, 'जो मैं राम तो कुछ सहित कहदि दसावन जाय । ( राम ) जो हरिचंद्र को सेजोमठ न किया तो मेरा नाम किरवाभिन्न नहीं । ( सत्य ) । अथपारत में 'तो' के बड़े 'तोमी' आता है, जैसे जो ( कुटुंब ) होता तो भी मैं न देता । ( मुदा ) ।

कभी-कभी कोई बात इतनी स्पष्ट होती है कि उसके साथ किसी शर्त की आवश्यकता नहीं रहती जैसे 'पत्थर पानी में डूब जाता है ।' इस वाक्य को बड़ाकर भी लिखना कि 'यदि पत्थर को पानी में डाले तो वह डूब जाता है' आवश्यक है ।

'जो कभी-कभी' अर्थ के अर्थ में आता है जैसे जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुधि दिखावे क्या होता है । ( शकु ) । 'जो के बड़े कभी-कभी' 'कदाचित्' ( किये विरोध ) आता है, जैसे, 'कदाचित् कोई पूछे तो मेरा नाम घटा देना । कभी-कभी जो के साथ ( 'तो' के बड़े ) 'तो' समुच्चय-

बोधक आता है, जैसे 'जो आपने रुपों के बारे में लिखा सौ अभी उसका बंधोबस्त होना कठिन है ।

'यदि' का संबंध एकमेवही एक प्रकार की वाक्य रचना हिंदी में अंगरेजी के सहवास से प्रचलित हुई है जिसमें पूर्व वाक्य की शर्त का उल्लेख कर तुरंत ही उसका मंडन कर देते हैं परंतु उत्तर वाक्य ज्यों का त्यों रहता है। 'यदि यह बात सत्य हो ( जो निःसंदेह सत्य ही है ) तो हिंदुओं को संसार में सबसे बड़ी जाति मानना ही पड़ेगा । ( भारत० ) । 'यदि' का पर्यायवाची उद्गु शब्द 'अगर' भी हिंदी में प्रचलित है ।

यद्यपि—तथापि ( तो भी ) ये शब्द जिन वाक्यों में आते हैं उनके किरचकारक विचारों में परस्पर विरोध पाया जाता है, जैसे 'यद्यपि यह देश तब तक बंगलों से भरा हुआ था तथापि अयोध्या अपनी बस गई थी । ( इति० ) 'तथापि के बदले बहुधा 'तोभी और कभी-कभी 'परंतु आता है। 'यद्यपि हम बनबासी हैं तोभी लोक के व्यवहारों का भली भाँति आते हैं । ( शकु ) । 'यद्यपि गुरु ने कहा है पर यह तो बड़ा पाप सा है । ( मुद्रा० ) ।

कभी-कभी 'तथापि एक स्वतंत्र वाक्य में आता है, और वहाँ उसके साथ 'यद्यपि' की आवश्यकता नहीं रहती जैसे, 'मेरा भी हाथ ठीक ठेके ही बाव का जैसा है । 'तथापि एक बात अवरप है । ( रतु० ) इसी अर्थ में 'तथापि के बदले 'तिस-परुभी वाक्यों में आता है ।

आहे परंतु—जब 'यद्यपि के अर्थ में कुछ संदेह रहता है तब उसका बदले 'आहे आता है, जैसे 'उसने आगे अपने सपनों की ओर ही देखा हो, परंतु मैंने यही जाना । ( शकु० ) ।

'आहे बहुधा संबंधवाचक सर्वनाम, विशेष्य वा क्रिया-विशेष्य के साथ आकर उनकी विशेषता बतलाता है और प्रयोग के अनुसार बहुधा क्रिया विशेष्य होता है, जैसे 'यहाँ आगे जो कर जो परंतु अराजक में मुन्दारी गौड़ भयभी नहीं बन सकती ।" ( पौ० ) । "मेरे लक्ष्मण में आगे कितनी रानी ( रानियाँ ) हो मुझे दो ही ( बलुर्पे ) संसार में प्यारी होगी ।" ( शकु ) । "यद्यप्य कुचि-विषयक ज्ञान में आगे कितना पारंगत हो जाय,

परंतु ब्रह्मके ज्ञान से विरहीब काम नहीं हो सकता ।" ( सर ) । "चाहे जहाँ से अभी सब वै ।" ( सत्य० ) ।

दुहरे संकेतवाचक समुच्चय अर्थों में से कमी-कमी किसी का बोध ही जाता है ( ) ; जैसे "कोई परीचा खेवा तो माहूम पड़ता ।" ( सत्य ) । ( ) "इस सब बातों से हमारे मनु के सब काम सिख हुए, प्रतीत होते हैं तथापि मेर सब को धैर्य नहीं है ।" ( रचय ) । "यदि कोई धर्म, स्वाय, सत्य, प्रीति, पौरुष का हमसे कम्मा चाहे, ( ) हम बही कहेंगे, "राम, राम, राम ।" ( इति० ) । "वैदिक लोग ( ) कियवा भी बख्ख सिखें तीमी अबके अरर बख्ये नहीं बपते ।" ( मुद्रा० ) ।

कि—जब यह संकेतवाचक होता है तब इसका अर्थ "ज्योंही" होता है, और यह दोनों वाक्यों के बीच में आता है; जैसे, "अनरोवर बख्य कि जमे नीर ने सताया ।" ( सर० ) । "हैम्बा रोहितारर का दूत कंबल काका चाहती है कि रंगभूमि की पूज्वी दिखती है ।" ( सत्य )

कमी-कमी 'कि' के साथ उसका समानार्थी वाक्यांश 'इतने में आता है जैसे, 'मैं तो जाने ही को या कि इतने में आप आ गये ।' ( सत्य ) ।

( ई ) स्वरूपवाचक—कि, जो, अर्थात्, पाने, मार्ग ।

इन अर्थों के द्वारा लुके हुए अर्थों का वाक्यों में से पहले अर्थ का वाक्य का स्वरूप ( स्पष्टीकरण ) पिछले अर्थ का वाक्य से जाना जाता है; इसलिये इन अर्थों को स्वरूपवाचक कहते हैं ।

कि—इसके और और अर्थ तथा अर्थों पहले कहे गये हैं । जब यह अर्थय स्वरूपवाचक होता है तब इससे किसी बात का केवल अर्थ या प्रस्तावना सूचित होती है जैसे "धीरुन्देव मुनि धीरे कि महाराज अर आगे कहा मुनिप ।" ( प्रेम० ) । "मेरे मन में आती है कि इससे कुछ पूर्य ।" ( राड ) । "बात यह है कि ज्यों की सच एक ही नहीं होती ।

जब आश्रित वाक्य मुख्य वाक्य के पहले आता है तब 'कि' का बोध हो जाता है, परंतु मुख्य वाक्य में आश्रित वाक्य का कोई समानार्थिकरथ अर्थ

जाता है। जैसे परमेस्वर एक है यह धर्म की बात है।' 'एबर काहे का बरता है यह बात पढ़तेरों को मालूम नहीं है।'

[ ए०—इस प्रकार की ठलठी रचना का प्रकार हिंदी में बहुत बंगला और मराठी की देखादेखी होने लगा है परंतु वह सार्थक नहीं है। प्राचीन हिंदी कविता में 'कि' का प्रयोग नहीं पाया जाता। काव्य कस के मध्य में भी नहीं करी इसका लोप कर देते हैं। जैसे, 'क्या जाने, किती के मन में क्या मता है।' ]

जो—यह स्वरूपवाचक 'कि' का समावाची है, परंतु उसकी अपेक्षा अब व्यवहार में कम आता है। प्रमत्तागत में इसका प्रयोग कई जगह हुआ है, जैसे, 'यहां बिचारो जो मयुरा और बृहन्नम में अंतर ही क्या है, जिसने नहीं मारी बूढ़ की जो तेरी माँग मीठुप्य को ही। जिस धर्म में मारतेंदुजी ने 'कि' का प्रयोग किया है उसी धर्म में शिरोहीनरी बहुरा 'ओ' कहते हैं; जैसे ऐसा न हो कि कोई भा जाय।' ( सत्य० )। 'देखा न हो जो ईश यह समझे। ( ए०० )।

[ टी — बंगला, उड़िया, मराठी, आदि काव्य-भाषाओं में 'कि' या 'ओ' के संबंध से दो प्रकार की रचनाएँ पाई जाती हैं जो संस्कृत के 'यत्' और 'इति' धर्मों से निकली हैं। संस्कृत से 'यत्' के अनुवाक उनमें 'जे' आता है और 'इति' के अनुवाक बंगला में 'बनिबा', उड़िया में 'बोली', मराठी में 'मरून' और नैसली में ( कैलाश के अनुवाक ) 'मनि' है। इन सब का अर्थ 'करकर' होता है। हिंदी में 'इति' के अनुवाक रचना नहीं होती; परंतु 'यत्' के अनुवाक इसमें 'ओ' ( स्वरुपवाचक ) आता है। इस 'ओ' का प्रयोग बहुत 'कि' लगाने होने के कारण 'ओ' के बदले 'कि' का प्रकार हा गया है और 'यत्' कुछ कुछ रूप रचनी में रह गया। मराठी और गुजराती में 'कि' कमया 'की' और 'क' रूप में आता है। उद्विटी हिंदी में 'इति' के अनुवाक को रचना होती है; उद्यमें 'इति' के लिए 'करके' ( लघुपद-बीचक के लगाने ) आता है, जैसे, 'मैं बाँकेमा करके मीकर मुझे करता बा'— मीकर मुझे करता या कि मैं बाँकेमा। ]

कभी-कभी मुख्य वाक्य में 'देखा' 'इतना', 'यहाँ तक' अथवा कोई विशेषण आता है उसका स्वरुप ( धर्म ) एकर जाने के लिए 'कि' के परचाए

आश्रित वाच्य आता है; जैसे, 'स्वा और देखों में इतनी सर्वा पढ़ती है कि पानी बमकर पत्थर की चट्टान की नाई ही आता है।' ( माप्यसार )। 'बोर ऐसा माना कि उसका पता ही न लगा। 'कैसी सुझाय मरी है कि धरती से ऊपर ही दिखाई देता है।' ( शकु० )। 'कुछ लोगों ने आदमियों के इस विश्वास को यहाँ तक बचेरित कर दिया है कि वे अपने मनोविज्ञानों को तर्कशास्त्र के प्रमाणों से भी अधिक बलवान मानते हैं।' ( स्वा )। 'अच्छ-बुरा प्रबल है कि किसी को एक ही अवस्था में नहीं रहने देता।' ( मुद्रा० )। 'एकदा मुर्ख है जो हमसे ऐसा बात कहता है।' ( मेम० )

( ९ — इस अर्थ में 'कि' ( वा 'का' ) कबल स्वरूपवाचक ही नहीं किन्तु परिष्कारवाचक भी है। समानाधिकरण्य समुच्चय वाचक 'इतलिय' से भिन्न परिष्कार का बोध होता है उसल 'कि' क द्वारा सूचित होने वाला परिष्कार भिन्न है, क्योंकि इसमें परिष्कार के साथ स्वरूप का अर्थ मिला हुआ है। इस अर्थ में कबल एक समुच्चय-वाचक 'कि' आता है इतलिय उतके इत एक अर्थ का विशेषण नहीं कर दिया गया है। )

कभी-कभी 'यहाँ तक' और 'कि' साथ-साथ आते हैं और केवल वाच्यों ही को नहीं, किन्तु शब्दों की भी जोड़ते हैं; जैसे, 'बहुत आदमी उन्हें सच मानने लगते हैं; यहाँ तक कि हथ दिनों में वे सर्वसंमत हो जाते हैं।' ( स्वा० )। 'इस पर तुम्हारे बड़े अर्थ, रक्षितपों यहाँ तक कि अपने बाद कर जाते थे।' ( शिब० )। 'क्या यह भी संभव है कि एक के काम के पद के पद, यहाँ तक कि प्रायः श्लोकार्थ के श्लोकार्थ तत्रत् दूरी के दिमाग से विकस्य पर्वे ? ( रतु )। इन बड़ाहरणों में 'यहाँ तक कि समुच्चय-बोधक वाच्यार्थ है।

अर्थात् यह संस्कृत विमलस्यंत संज्ञा है; पर हिंदी में इसका प्रयोग समुच्चयबोधक के समान होता है। यह अर्थ किसी शब्द वा वाच्य का अर्थ समझने में आता है; जैसे 'आतु के दुकड़े टपे के होने से सिक्क अर्थात् मुद्रा कहाते हैं।' ( जीविभ्र० )। 'वीरम कुछ अपने पोंवों बेवों समेत बीमासे मर अर्थात् परसात मर बनारस में रहा।' ( इति० )। 'इसमें परस्पर सजातीय भाव है, अर्थात् ये एक दूसरी से छुरा नहीं हैं।' ( स्वा० )। कभी-कभी 'अर्थात्' के बदले 'अथवा,' 'वा,' 'या'

आते हैं; और तब यह बताया कठिन हो जाता है कि ये स्वरूपवाचक हैं या विधावाचक; अर्थात् ये एक ही अर्थवाले शब्दों को मिलाते हैं या अलग अलग अर्थवाले शब्दों को जैसे 'बस्ती अर्थात् अवस्थान वा व्यवहार का तो नाम भी सुरिकत्र से मिलता था। ( इति० ) 'तुम्हारी हैसियत वा स्थिति चाहे बेसी हो। ( आदर्श )। किसी और लोगों से सज्जन बुद्धिमान् या अकर्मन्द् होना आवसी क बिद् मुमकिन ही नहीं ' ( स्वा )।

[ १८—किसी शब्द में कठिन शब्द का अर्थ समझने में आकर एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द के द्वारा स्पष्ट करने में विधावाचक तथा स्वरूपवाचक शब्दों के अर्थ के अंतर पर ध्यान भरने से भाषा में सरलता के बन्ने कठिनता या बाधा है और कहीं कहीं अर्थ हीनता भी उत्पन्न होती है।

कम्पनी भाषा में वा नाम क्वचित् करने क लिए 'अपात्' का प्रयोगवाची ठवू ठक' काका काठा है और साधारण बाल भाषा में 'धाने' आता है। ]

मामो—यह 'मावका' किवा के विधि-काल का रूप है; पर कमी कमी इसका प्रयोग 'ऐसा के साथ उपमा ( उल्लेख ) में समुच्चयवाचक के समान होता है; जैसे यह विधि ऐसा सुहावना व्यवहार है मामो आवात् सुंदरता आती सदा ही। ( शकु० )। आगे देखि जाठि रिस घारी। मक्कु रोष तस्-वार उपारी। ( राम० )।

१८१—यह हम 'जो' के एक ऐसे प्रयोग का उदाहरण देते हैं जिसका समावेश पहले कहे हुए समुच्चयवाचकों के किसी वर्ग में नहीं हुआ है। मुझे मरना नहीं जो तैरा पक्ष करूँ।' ( प्रेम० )। इस उदाहरण में 'जो' क संज्ञेयवाचक है क उद्देश्यवाचक क स्वरूपवाचक। यहाँ 'जो' का अर्थ 'जिस विधि' है 'जिसविधि कमी-कमी 'इसविधि' के बर्णन में आता है जैसे 'यहाँ एक समा होनेवाली है, जिसविधि ( इसविधि ) सब लोग इकट्ठे हैं। इस दृष्टि से दूसरा शब्द बरिखाम-दराक मुकद शक्य हो सकता है।

१८२—संस्कृत और उर्दू शब्दों की छोड़कर ( जिसकी व्युत्पत्ति हिंदी व्याकरण की सीमा के बाहर है ) हिंदी के अधिकांश समुच्चय वाचकों की व्युत्पत्ति दूसरे शब्दों से है और कई एक का प्रचार आनुबिक है। 'धीर'

सार्धनामिक विशेषण है। 'जो' परंतु, किंतु आदि शब्दों का प्रयोग रामचरित मानस' श्रीर 'मेमसागर' में नहीं पाया जाता ) ।

[ टी०—संबंध-सूचकों का समान समुच्चयबोधकों का वर्गीकरण भी व्याकरण की दृष्टि से आवश्यक नहीं है। इस वर्गीकरण से केवल उनके मिश्र मिश्र अर्थ का प्रयोग जानने में सहायता मिल सकती है। पर समुच्चय बोधक अर्थों के भी मुख्य बग माने गए हैं उनकी आवश्यकता वाक्य-व्युत्पत्तियों के विचार से होती है, क्योंकि वाक्यव्युत्पत्तियों वाक्य के अर्थों तथा वाक्यों का परस्पर संबंध जानने के लिए बहुत ही आवश्यक है।

समुच्चय-बोधकों का संबंध वाक्य-व्युत्पत्तियों से होने के कारण यहाँ इसके विषय में संक्षेपतः कुछ कहने की आवश्यकता है।

वाक्य बहुधा तीन प्रकार के होते हैं—वाच्य, मिश्र और संयुक्त। इनमें से वाच्य वाक्य इकट्ठे होते हैं, जिनमें वाक्य-संबंधों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यह आवश्यकता केवल मिश्र और संयुक्त वाक्यों में होती है। मिश्र वाक्य में एक मुख्य वाक्य रहता है और उसके साथ एक वा अथवा अधिक आश्रित वाक्य आते हैं। संयुक्त वाक्य के अंतर्गत सब वाक्य मुख्य होते हैं। मुख्य वाक्य अर्थ में एक दूसरे से स्वतंत्र रहता है, परंतु आश्रित वाक्य मुख्य वाक्य के ऊपर अवलंबित रहता है। मुख्य वाक्यों को जोड़नेवाले समुच्चयबोधकों को समानाधिकरण कहते हैं, और मिश्र वाक्य के उपवाक्यों को जोड़नेवाले अल्पव्यधिकरण कहाते हैं।

जिन हिंदी-व्याकरणों में समुच्चय-बोधकों का जेद माने गये हैं। उनमें से प्रायः सभी दो जेद मानते हैं—( १ ) संबोधक और ( २ ) विभाजक। इन दोनों जेदों में आ सकते हैं। इसलिए यहाँ इन जेदों पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

'महादीपिका' में समुच्चय-बोधकों के केवल पाँच जेद माने गये हैं जिनमें और कई अर्थों के ठिका 'इतलिय' का भी प्रहस्य नहीं किया गया। यह अल्पव्य अर्थों के व्याकरण को छोड़ और किसी व्याकरण में नहीं किया बितते अनुमान होता है कि इसके समुच्चयबोधक होने में संदेह है। इस शब्द के विषय में हम पहले लिख चुके हैं कि यह मूल अल्पव्य नहीं है, किंतु संबंध-सूचक संबंधनाम है; परंतु उसका प्रयोग समुच्चयबोधक के समान

होता है और दो-तीन संकृत शब्दों को जोड़ हिंदी में इस शब्द का और कोई अर्थ नहीं है। 'इतलिय', 'अतएव', 'अतः' और (उर्दू) 'लिहाजा' से परियाम का बोध होता है और यह शब्द दूसरे शब्दों से नहीं पाया जाता, इसलिए इन शब्दों के लिए एक अलग में मानने की आवश्यकता है।

हमारे किये हुए वर्गीकरण में यह दोष हो सकता है कि एक ही शब्द कहीं-कहीं एक से अधिक वर्गों में आया है। यह इसलिए हुआ है कि कुछ शब्दों के अर्थ और प्रयोग [भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, परंतु कबल से ही शब्द एक वर्ग में नहीं आये, और भी दूसरे शब्द ठठ वर्ग में आये हैं।]

तीसरा अध्याय ।

### विस्मयादि-बोधक

२४८—जिन शब्दों का संबंध वाक्य से नहीं रहता और जो वाक्य के अर्थ-बोधक भाव सूचित करते हैं उन्हें विस्मयादिबोधक शब्द कहते हैं; जैसे, हाय ! यह मैं क्या करूँ ? (सत्य०) । हूँ ! यह क्या करते हो । (बरी) । इन वाक्यों में 'हाय तुम्हें और मैं' आश्चर्य तथा श्लेष सूचित करता है और जिन वाक्यों में ये शब्द हैं उनसे हमका कोई संबंध नहीं है।

व्याकरण में इन शब्दों का विशेष महत्त्व नहीं, क्योंकि वाक्य का मुख्य काम जो विचार करना है उसमें इनके योग से कोई आवश्यक सहायता नहीं मिलती। इसके सिवा इनका प्रयोग केवल वहीं होता है जहाँ वाक्य के अर्थ की अपेक्षा अधिक तीव्र भाव सूचित करने की आवश्यकता होती है। 'मैं यह क्या करूँ ?' इस वाक्य से शोक पाया जाता है, परंतु यदि शोक की अधिक तीव्रता सूचित करनी हो तो इसके साथ 'हाय' जोड़ देंगे जैसे, 'हाय ! यह मैं क्या करूँ !' विस्मयादि-बोधक शब्दों में अर्थ का अल्पतामात्र नहीं है क्योंकि इनमें से प्रत्येक शब्द से पूरे वाक्य का अर्थ निकलता है; जैसे, पहले



“हाय” के उच्चारण से यह साब जाना जाता है कि “मुझे बड़ा दुःख है।” तथापि जिस प्रकार शरीर या स्वर की चेष्टा से मनुष्य के मनोविकारों का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार विस्मयादि-बोधक अक्षरों से भी इन मनोविकारों का अनुमान होता है। और जिस प्रकार चेष्टा को व्याकरण में व्यक्त भाषा वही मानते उसी प्रकार विस्मयादिबोधकों की गिनती वाक्य के अक्षरों में नहीं होती।

२३३—मित्र-मित्र मनोविकार सूचित करने के लिये मित्र-मित्र विस्मयादि-बोधक उपयोग में आते हैं; जैसे

हृदयबोधक—आहा ! बाह बा ! अय्य अय्य ! हावाश ! अय ! अयति !

शोकबोधक—आह ! ऊह ! हा हा ! हाव ! रहपा रे ! बाप रे ! बाहि बाहि ! राम राम ! हा राम !

आश्चर्यबोधक—बाह ! हैं ! ऐ ! ओही ! बाह बा ! क्या !

अनुमोदनबोधक—ठीक ! बाह ! अय्य ! हावाश ! हॉ हॉ ! ( हृदय-अभिप्राय में ) मछा !

तिरस्कारबोधक—धि ! दट ! अरे ! वूर ! धिक ! चुप !

स्वीकारबोधक—हॉ ! जी हॉ ! अय्य ! जी ! ठीक ! बहुत अय्या !

संबोधनबोधक—धरे ! रे ! ( कोंसे क थिय ), अजी ! जो ! हो ! हो ! क्या ! अहो ! क्यों !

[ २०—आं के लिए “अरे” का रूप “अरी” और “रे” का रूप “री” होता है। आर और बहुत के लिए दोनों लिंगों में “अरो”, “अरी” आते हैं।

“हे”, “हो” आर और बहुत के लिए दोनों लिंगों में आते हैं। “हो” बहुधा लंका क आगे आता है।

“तरु-हरिर्ब्र” में कौलिय लंका के लार्क “रे” आता है; जैसे बाह रे ! महागुणवता ! यह प्रयोग असुद्ध है। ]

२३०—ऊह एक किनारे, संज्ञार्थ विशेष्य और किनाविशेष्य भी विस्मयादि-बोधक हो जाते हैं; जैसे, भगवान ! राम राम ! अय्य ! जी दट ! चुप ! क्यों ! पैर ! अस्तु !

१२१—कमी-कमी पूरा वाक्य अपवा वाक्यांश विस्मयादिबोधक हो जाता है; जैसे, नवा बात है ! बहुत अच्छा ! सर्वनाश हो गया ! घम्य महाराज ! क्यों ब हो ! मगवान न करे; इन वाक्यों और वाक्यांशों से मनोबिकार अचरय सूचित होते हैं, परंतु इन्हें विस्मयादि-बोधक मानना ठीक नहीं है। इन्हें जो वाक्यांश हैं उनके अभ्याहृत शब्दों को ध्यस्त करने से वाक्य सहज ही बन सकते हैं। यदि इस प्रकार के वाक्यों और वाक्यांशों को विस्मयादि-बोधक अभ्यव मानें तो फिर किसी भी मनोबिकारसूचक वाक्य को विस्मयादि-बोधक अभ्यव-मानना होया; जैसे, “अपराधी निर्दोष है, पर उसे फौसी भी हो सकती है।” ( शिब० )।

( क ) कोई-कोई लोग बोलने में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसकी व लो वाक्य में कोई आवश्यकता होती है और व जिसका वाक्य के धर्म से कोई संबंध रहता है; जैसे ‘जो है उसे,’ ‘राम-आसरे’ ‘क्या कहना है,’ ‘क्या नाम करके’ इत्यादि। कविता में सु, सु, हि, घहो, इत्यादि शब्द इसी प्रकार से आते हैं जिसको पाठ्यपूरक कहते हैं। अपवा (‘अपने’) शब्द भी इसी तरह उपयोग में आता है; जैसे, ‘तू पढ़-लिखकर होशपार हो गया अपना कमा-का।’ ( सर० ) ये सब एक प्रकार के ध्यस्त अभ्यव हैं, और इनको अलग कर देने से वाक्यार्थ में कोई बाधा नहीं आती।



# दूसरा भाग

## शब्द साधन

दूसरा परिच्छेद ।

रूपांतर ।

पहला अध्याय ।

### लिंग ।

१५१—अबय अलग अर्थ सूचित करने के लिए शब्दों में जो विचार होते हैं उन्हें रूपांतर कहते हैं । ( अ०—११ ) ।

[ ६०—इस नाम के पहले तीन अध्यायों में लंघा व रूपांतरों का विवेचन किया जायगा । ]

१५२—लंघा में लिंग लयन और कारक के कारण रूपांतर होता है ।

१५३—लंघा के त्रिम रूप से वस्तु की ( पुरुष या स्त्री ) जाति का बोध होता है उसे लिंग कहते हैं । हिंदी में दो लिंग होते हैं—( १ ) पुल्लिङ्ग पुंल्लिङ्ग 'पुलिङ्ग' का पुल्लिङ्ग है पर हिंदी में इसी प्रकार लिङ्गने का प्रचार है । और ( २ ) स्त्रीलिङ्ग ।

[ टी०—सुष्टि की लंपूय वस्तुओं की मुख्य दो जातियाँ—पैतन और बह—हैं । पैतन वस्तुओं ( जीवधारियों ) में पुरुष और स्त्री-जाति का भेद होता है, परंतु बह वस्तुओं में यह भेद नहीं होता । इसलिये लंपूय वस्तुओं की एकत्र तीन जातियाँ होती हैं—पुरुष, स्त्री और बह । इन तीनों जातियों के विचार से व्याकरण में उनका शाब्दिक शब्दों को तीन लिंगों में बाँटते हैं—( १ ) पुल्लिङ्ग ( २ ) स्त्रीलिङ्ग और ( ३ ) नपुंसक-लिंग । अंगरेजी व्याकरण में लिंग का निर्णय बहुधा इसी व्यवस्था के अनुसार होता है । संस्कृत, मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं में भी तीन-तीन लिंग होते हैं, परंतु उनमें कुछ बह वस्तुओं को उनके कुछ विशेष शब्दों के कारण पैतन मान लिया है । जिन

पद्याओं में कठारता, बल, भेद्यता आदि गुण दिखाते हैं। उनमें पुद्वल्य की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को पुल्लिङ्ग, और बिनमें नम्रता, कोमलता, सुन्दरता आदि गुण दिखाए देते हैं, उनमें स्त्रीत्व की कल्पना करके उनका वाचक शब्दों को स्त्रीलिङ्ग कहते हैं। शेष अप्रायिवाचक शब्दों को बहुधा नपुंसक लिङ्ग कहते हैं। हिन्दी में लिङ्ग के विचार से तब बड़ पद्याओं को सचेतन मानते हैं, इसलिए इतमें नपुंसक लिङ्ग नहीं है। वह लिङ्ग न होने के कारण हिन्दी की लिङ्ग व्यवस्था पूर्वोक्त म्भाषाओं की अपेक्षा कुछ सरल है; परंतु बड़ पद्याओं में पुद्वल्य का स्त्रीत्व की कल्पना के लिए कुछ शब्दों के स्त्री और तथा वृत्तरी म्भाषाओं के शब्दों के मूल लिङ्गों को छोड़कर और कोई आधार नहीं है। ]

२५५—किस संज्ञा से ( पदार्थ वा कल्पित ) पुद्वल्य का बोध होता उसे पुल्लिङ्ग कहते हैं; जैसे, बड़का, बैरा, पेड़, नगर इत्यादि। इन उदाहरणों में 'बड़का' और 'बैरा' पदार्थ पुद्वल्य सूचित करते हैं और 'पेड़' तथा 'नगर' से कल्पित पुद्वल्य का बोध होता है, इसलिए ये सब शब्द पुल्लिङ्ग हैं।

२५६—किस संज्ञा से ( पदार्थ वा कल्पित ) स्त्रीत्व का बोध होता है उसे स्त्रीलिङ्ग कहते हैं जैसे, बड़की, गाय कता पुरी इत्यादि। इस उदाहरणों में 'बड़की' और 'गाय' से पदार्थ स्त्रीत्व का और 'कता तथा 'पुरी' से कल्पित स्त्रीत्व का बोध होता है, इसलिए ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

### लिङ्ग निर्णय ।

२५७—हिन्दी में लिङ्ग का पूर्व निर्णय करना कठिन है। इसके लिये मापक और पूरे विषय नहीं बन सकते क्योंकि इनके लिये मापक के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है। तथापि हिन्दी में लिङ्ग-निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है—( १ ) शब्द के धर्म से और ( २ ) उसका रूप से। बहुधा प्रायिवाचक शब्दों का लिङ्ग धर्म के अनुसार और अप्रायिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निर्दिष्ट करते हैं। शेष शब्दों का लिङ्ग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है; और इसके लिए व्याकरण से पूर्व सहजता नहीं देख सकती।

२५८—जिन प्रायिवाचक संज्ञाओं से जोड़े का ज्ञान होता है उनमें पुद्वल्य के लिये पुल्लिङ्ग और स्त्रीत्व के लिये स्त्रीलिङ्ग होती हैं; जैसे,

पुष्प, बोधा, मार इत्यादि पुष्पिण्य हैं; और श्री बोधी, मोरली, इत्यादि श्रीलिङ्ग हैं ।

धर०—'संताप' और 'सखारी' ( पात्री ) श्रीलिङ्ग हैं ।

[ ल०—विष्ट लोगी ने श्री के लिए "धर के लोग"—पुष्पिण्य शब्द—बोला जाता है । संस्कृत में 'धार' ( श्री ) शब्द का प्रयोग पुष्पिण्य, बहुवचन में होता है ।

( क ) धर एक मनुष्येतर प्राणिकवाक्य संज्ञाओं से दोनी शक्तियों का बोध होता है, पर वे व्यवहार के अनुसार नियम पुष्पिण्य वा श्रीलिङ्ग होती हैं, जैसे,

पु०—नया, ठल्लू, अन्ना, मेहिया, पांठा, लटमल, कंबुआ इत्यादि ।

श्री०—बीज, बायल, बरेर, मैना, गिलहरि, बोक, तिलका, मन्ना मदना इत्यादि ।

ल०—इन शब्दों के प्रयोग में लोग इस बात की धिठा नहीं करत कि इनक वाक्य प्राणा पुष्प हैं वा श्री । इस प्रकार क उदाहरणी की एकलिङ्ग कर सकते हैं । कही-कही 'हाया' की शक्ति में बोलते हैं पर यह प्रयोग प्रशस्त है ।

( ल ) प्राणियों के समुदाय वाक्य नाम भी व्यवहार क अनुसार पुष्पिण्य वा श्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे,

पु०—ठमूर, मुद, कुट्टर, लंप, दल, मंडक इत्यादि ।

श्री०—मीड़, बोक, सभा, प्रभा, सरकार, दोसी इत्यादि । ]

११४—हिंदी में अप्राणिकवाक्य शब्दों का शिग जानना विशेष कठिन है; क्योंकि यह बात अविज्ञात व्यवहार क कारण है । अर्थ और रूप दोनों हा साधनों से इस शब्दों का शिग जानने में कठिनाई होती है । नाचि जिले उदाहरणों से यह कठिनाई स्पष्ट जान पड़ेगी ।

( घ ) एक ही अर्थ के कई अलग अलग शब्द अलग-अलग शिग के हैं जैसे,

मेघ ( पु० ), श्रील ( श्री० ), मार्ग ( पु० ), बाट ( श्री० ) ।

( ङ ) एक ही अर्थ के कई एक शब्द अलग-अलग शिगों में आते हैं । जैसे,

बोरी ( पु० ) सरसों ( श्री० ) रोह ( पु० ), रौब ( श्री० ), बाट ( पु० ), छाट ( श्री० ) ।

१११—यह संज्ञाओं के रूप के अनुसार विगमिर्वाच करने के कुछ नियम लिखे जाते हैं। ये नियम भी अपूर्ण हैं, परंतु बहुत ही निरपवाद हैं। हिंदी में संस्कृत और उर्दू शब्द भी आते हैं इसलिए इन भाषाओं के शब्दों का भ्रमण भ्रमण विचार करने में सुभीता होगा—

## १—हिंदी-शब्द ।

### १. पुरिग

- ( अ ) कर्मवाचक संज्ञाओं को क्लेश शेष अकारांत संज्ञाएँ जैसे कपडा, गधा पीसा, पहिया, आटा, कमडा इत्यादि ।
- ( आ ) क्लिप्त भाववाचक संज्ञाओं के अंत में न, भाव पन वा पा होता है— जैसे, भावा, गावा, बहाव, चढ़ाव, बहप्यन, कुहापा इत्यादि ।
- ( इ ) कुर्वत की आकारांत संज्ञाएँ; जैसे, कगान मिठान, खान, पान बहाप कठान इत्यादि ।

### स्त्रीलिग ।

- ( अ ) ईकारांत संज्ञाएँ; जैसे बही, बिहरी, रोटी, खोपी, उदासी इत्यादि ।  
अप०—पानी, धी की मीठी, बही, मही ।  
[ सू०—कहीं-कहीं 'बही को स्त्रीलिग' में बोलते हैं; पर यह भ्रमण है । ]
- ( आ ) कर्मवाचक आकारांत संज्ञाएँ; जैसे फुड़िया, खटिया, बिबिया, मिथिया इत्यादि ।
- ( इ ) लकारांत संज्ञाएँ; जैसे राव, बाव, काव कुत, भीत, पत इत्यादि ।  
अप०—मात खेल, सूत गात वृत्त इत्यादि ।
- ( ई ) लकारांत संज्ञाएँ; बाबू, खू, बाक, गैक, भाबू, ब्याबू, प्याबू इत्यादि ।  
अप०—भाबू, भाबू, रताबू देबू ।
- ( उ ) अनुस्वारांत संज्ञाएँ; जैसे सरसों बोंबों, कबान्द, गी, ली, रूँ, इत्यादि ।  
अप०—बोंबों, रोहूँ ।
- ( ऊ ) सकारांत संज्ञाएँ; जैसे—प्यास, मिथस, बिदास, रास, ( खगान ), बॉस, भाँस इत्यादि ।

अप०—विक्रम, कौंस, रास ( मूल ) ।

( क ) कर्ण की अकारांत संज्ञाएँ, जिनका अर्थात् अर्ध अकारांत हो, अथवा जिनका अर्ध अकारांत हो, जैसे, रहन, सुखन, अठन, उद्यमन पदवाच इत्यादि ।

अप०—अठन और आठ-अठन उभयपक्षिग है ।

( ए ) कर्ण की अकारांत संज्ञाएँ, जैसे, कूट, मार, समक, हीन ईमाक, अमक बाप, पुकार इत्यादि ।

अप०—खेक, बाच मेक, बिगार, बोक, अठार-इत्यादि ।

( ऐ ) जिन भाषणाचक संज्ञाओं के अंत में ट, कट वा इट होता है, जैसे सजाकट, बजाकट, बबराइट, बिबनाइट, मंमट, भाइट इत्यादि ।

( औ ) जिन संज्ञाओं के अंत में क होता है, जैसे ईक मूक राक चौक, कूक, खेक साक, ऐक-नेक, काक ( काका ) इत्यादि ।

अप०—गाक, कम्प ।

## २—संस्कृत-शुद्ध

### पुस्तिका ।

( अ ) जिन संज्ञाओं के अंत में न होता है, जैसे बिन्न, क्षेत्र, पात्र, नेत्र, गौर्य चरित्र रात्र इत्यादि ।

( आ ) नांत संज्ञाएँ, जैसे, पावन पोषक अमन अचन, नवन, गमन, हरण इत्यादि ।

अप०—'पवन' अमनपक्षिग है ।

( इ ) 'अ' प्रत्ययांत संज्ञाएँ, जैसे अन्न, स्वेदक विन्न, सरीस, इत्यादि ।

( ई ) जिन भाषणाचक संज्ञाओं के अंत में थ, त्य व, र्थ होता है, जैसे सतीथ वदुत्य, कू, इत्य, काकथ, गौर्य, मातुर्थ, दीर्थ, इत्यादि ।

( उ ) जिन शब्दों के अंत में 'धार' 'धाय' वा 'धास' हो, जैसे, विधा



विस्तार, संसार, अध्याय, उपाय, समुदाय, उद्गाय, विद्यार, हास, हत्यादि ।

अप०—सहाय ( वसपठिग ), धाय ( लीठिग ) ।

( ङ ) 'ध' प्रत्ययांत संज्ञार्थ, जैसे, धीरे, धीर, मोह, पाक, त्याग, द्योप, स्पर्ध इत्यादि ।

अप०—'अप' लीठिग धीर 'विनप' वसपठिग ।

( च ) 'त' प्रत्ययांत संज्ञार्थ, जैसे, चरित, पथित, गन्धित, मत्, पति, स्वागत इत्यादि ।

( छ ) जिनके अंत में 'क' होता है, जैसे, नक्ष, सुख, दुःख, खेच, मच, शंख इत्यादि ।

### स्त्रीलिङ्ग ।

( अ ) आकारांत संज्ञार्थ, जैसे, जया, माया, कृपा, जम्बा, जमा, शीमा, समा इत्यादि ।

( आ ) आकारांत संज्ञार्थ, जैसे, आर्यमा, वेदना, प्रस्तावना, रचना अरुत इत्यादि ।

( इ ) 'अ' प्रत्ययांत संज्ञार्थ, जैसे, बाहु, रेत, रग्ध, बाहु, बाहु, बाहु अरुत, बाहु, अरुत इत्यादि ।

अप०—बाहु अरुत, ताहु, मेरु, देत, मेतु इत्यादि ।

( ई ) जिनके अंत में 'ठि' वा 'वि' होती है, जैसे, गति, मति, जाति, रीति, हानि, ग्वावि, घोवि, कुवि, अवि, सिवि इत्यादि ।

[ ए०—अंत के तीन शब्द 'ति' प्रत्ययांत हैं, पर बिच के कारण अमक कुछ रूपांतर हो गया है । ]

( उ ) 'ता' प्रत्ययांत आकारांत संज्ञार्थ, जैसे, नक्षता, जम्बता, मुंहरता, प्रमुता, अकता इत्यादि ।

( ए ) हकारांत संज्ञार्थ, जैसे, निधि, विधि ( रीति ), परिधि, राधि, अरि ( आय ), कधि, केधि, रुधि इत्यादि ।

अप० - धारि अरुधि, पाधि, गिरि, आदि, अधि इत्यादि ।

( अ ) 'ह्मा' प्रत्ययान्त शब्द; जैसे, महिमा, गरिमा, काञ्चिमा, काञ्चिमा इत्यादि ।

### ३—उर्दु शब्द

#### पुल्लिग

( अ ) जिनके अंत में 'धाव' होता है; जैसे पुञ्जाव, सुञ्जाव, हिंसाव, जवाव कवाव इत्यादि ।

अप०—धाराव मिहाराव मित्राव कमलाव ताव इत्यादि ।

( आ ) जिनके अंत में धार वा 'धात' होता है; जैसे, बाजार इञ्जार, इतिहास इन्कार, अहसास मकाव सामाव, इम्तिहाज इत्यादि ।

अप०—दूकान सरकार ( शासक-वर्ग ) तकार ।

( इ ) जिनके अंत में 'ह' होता है; हिंदी में 'ह' बहुधा 'वा' होकर धाव स्वर में मिल जाता है; जैसे परदा पुस्ता किस्ता छास्ता, बरमा, तगमा, ( अप० तगमा ) इत्यादि ।

अप०—वृष ।

#### स्त्रीलिङ्ग

( अ ) ईमानत भाववाचक संज्ञार्थ; जैसे धरीबी गरमी, सरही, बीमारी, चाखाकी, ठीपारी, बचाकी इत्यादि ।

( आ ) शब्दार्थ संज्ञार्थ; जैसे, नाकिय, कोठिय, छाण, लकाण, बारिय, माकिय इत्यादि ।

अप०—ताण होय ।

( इ ) शब्दार्थ संज्ञार्थ; जैसे, दीकत, कमरत धराकत, इजामत कीमत मुचाकत इत्यादि ।

अप०—धराकत, इस्तकत, बंदोबस्त दरकत, बक, तकत ।

( ई ) धातुवाचक संज्ञार्थ जैसे हवा, दवा सजा जमा, दुनिर्बा बजा ( अप० बजाय ) इत्यादि ।

अप० 'मजा' उमरवाकिया धीर 'दगा', पुल्लिङ्ग है ।

( ब ) 'तच्छीक' के अक्षर की संज्ञार्थ; जैसे—तसबीर, तामीक, चापीर, तहसीक, तच्छीक इत्यादि ।

( क ) इक्षरांत संज्ञार्थ; जैसे, मुबह, तरह, राह, भाह, सछाह, मुबह इत्यादि ।

अप०—कोई—कोई—संज्ञार्थ दोनों लिंगों में आती हैं । इनके बदाहरण पहले का तुके हैं और बदाहरण पहाँ दिए जाते हैं । इन संज्ञार्थों को समय लिंग कहते हैं—

आय्या, कब्रम राबब, गेद, बास, बबब, बाब-बबप, तमाकू, एरार, पुस्तक, पबब, बबे, बिबप, भास, समाक, सहाय इत्यादि ।

२४२—हिंदी में तीस बीसार्ह शब्द संस्कृत के हैं और तत्सम तथा लघुभ्रम शब्दों में पाये जाते हैं । संस्कृत के पुदिङ्ग वा बहुसक लिंग हिंदी में बहुधा पुदिङ्ग, और लीङ्गि शब्द बहुधा लीङ्गिप होते हैं । तथापि कई एक तत्सम और लघुभ्रम शब्दों का मूल लिंग हिंदी में बदल गया है, जैसे—

### तत्सम शब्द ।

शब्द	सं० लिंग०	हिं० लिंग०
अग्नि ( आग )	पु	ली०
आरमा	पु०	बमब०
आपु	ब०	ली
अप	न	ली०
तारा	ली०	पु
देवता	पु०	पु०
रैह	पु०	ली०
पुस्तक	ब०	उयब०
पबब	पु०	"
बस्त	न	ली०
राशि	पु०	"
व्यक्ति	ली	पु
शपथ	पु०	ली०

## ८ उद्भव शब्द ।

सासम	सं० द्वि०	उत्पन्न	हिं० सि०
धीपथ	पु०	धीपथि	ओ०
धीपथि	त्री०		
शपथ	पु०	मीह	"
बाहु	"	बाँह	"
बिन्दु	"	बूँद	"
तन्तु	"	तॉल	"
आधि	"	आँख	"

[ ६ — इन शब्दों का प्रयोग शास्त्री, पंडित आदि विद्वान् बहुधा संस्कृत के लिखानुसार ही करते हैं । ]

११०—'अरबी अरसी, आदि उर्दू भाषाओं के शब्दों में भी इस हिंदी किंगार के रूप उच्चारण पाये जाते हैं जैसे, अरबी का 'मुहाबत' ( धीकिंग ) हिन्दुस्तानी में 'मुहाबत' ( पुर्विक्क ) हो गया है ।' ( प्यारस हिन्दुस्तानी व्याकरण, पृ० १८ ) ।

११५—अंगरेजी शब्दों के संबंध में किंग निर्धन के द्विप रूप धीर अर्थ शोनों का विचार किया जाता है ।

( घ ) कुछ शब्दों को उसी अर्थ के हिंदी का किंग प्राप्त हुआ है जैसे

अरबी—मसहफ़ी—धी०	अंबर—अंक—पु०
कोर—अंगारका—पु०	कमेटी—समा—धी०
बुर—बुरा—पु०	खेकबर—प्याप्याम—पु०
बन—बॉकब—धी०	बार्ड—बाबान—पु०
दीन—दिना—पु०	धीस—दुबिया—धी०

( ङ ) कई शब्द अकारांत होने के कारण पुर्विक्क धीर अकारांत होने के कारण धीकिंग हुए हैं जैसे

पु०—सोच देखा केमरा इत्यादि ।  
धी०—बिमबी गिबी, शुनिसिरीबटी, लापबेरी, हिन्दी, डिपठबरी  
आदि ।

पदि—पदिहान्      बाहू—बहुधाहान्      पूजे—पुजाहान्  
 अक्षर—अक्षराहान्      पाठक—पठकाहान्      शविषा—शमिषाहान्  
 मिसिर—मिसिराहान्, बाबा—बबाहान्      मुकुष—मुकुषाहान्

( घ ) कई एक लक्ष्यों के अंत में 'घापी' अर्थात् हैं, जैसे—

बात्री—बात्रापी      देवर—देवरापी      सेठ—सेठानी  
 बैठ—बैठानी      मिहतर—मिहतरानी      चाँचरी—चाँचरानी  
 पंडित—पंडितानी      मौकत—मौकतानी

[ सू०—यह प्रत्यय संस्कृत का है । ]

( झ ) आशुक्ल विवाहिता स्त्रियों के नामों के साथ कमी-कमी पुरुषों के ( पुंलिंग ) अर्थात् लगाये जाते हैं, जैसे अमिती रामेशरी मैत्री मेहदू । ( हि० को० ) । कुमारी स्त्रियों के नाम के साथ उपनाम का स्त्रीलिंग रूप जाता है, जैसे, 'कुमारों अत्यवती शास्त्रिणी ।' ( सर० )

१०१—कमी-कमी पदार्थवाचक अक्षरांत या अक्षरांत लक्ष्यों में सूक्ष्मता के अर्थ में 'ई' वा 'इया' प्रत्यय अर्थात् स्त्रीलिंग बनाते हैं, जैसे—

रस्सा—रस्सी      गगरा—गगरी, गगरिया  
 बंटा—बंटी      डिम्बा—डिम्बी, डिम्बिया  
 टोकना—टोकनी      कोड़ा—कोदिना  
 लोटा—लुटिया      लट—लटिया

( ङ ) पूर्वोक्त विधम के विरुद्ध पदार्थवाचक अक्षरांत वा ईक्षरांत लक्ष्यों में विशेष के लिए स्पृष्टता के अर्थ में 'अ' छोड़कर पुंलिंग बनाते हैं, जैसे—

बड़ी—बड़ा      बाक—बाका  
 गठरी—गठरा      बहर—बहरा ( भाषास्तर )  
 बिहरी—बिहड़ा      गुरही—गुरवा

१०२—कोई-कोई पुंलिंग लक्ष्य स्त्रीलिंग लक्ष्यों में प्रत्यय अर्थात् से बनते हैं, जैसे—

मेढ़—मेड़ा      बहिन—बहनोई      राँद—रँदुषा  
 भैस—भैसा      लबड़—लबड़ोई      बीजी—बीजा

१०३—कई एक स्त्री-अत्यपीत ( अर्थात् स्त्रीलिंग ) शब्द अर्थ की दृष्टि से

केवल शिपों के लिए होते हैं इसलिए उनके जोड़े के पुल्लिंग शब्द मापा में प्रचलित नहीं हैं। जैसे, सती, गामिन गर्भवती सीत सुहागिण, अहिवाती, मान इत्यादि। प्रायः इसी प्रकार के शब्द बाह्य लुङिष्ठ, अप्सरा आदि हैं।

२०५—कुछ शब्द क्य में धरस्वर जोड़े के जान पड़ते हैं पर पधार्थ में उनके अर्थ अलग प्रत्यय हैं, जैसे—

सॉद ( बीज ) सॉदबी ( ऊँटनी ), ( ऊँट का बच्चा )।

बाधू ( बौर ), बाकिन, बाकिनी ( लुङिष्ठ )।

मेद ( मेदें की मादा ) मेदि ( एक हिंसक बीबघारी, वृद्ध )।

## २—संस्कृत-शब्द ।

२०६—कुछ पुल्लिंग संज्ञाओं में ई प्रत्यय लगता है—

( अ ) अन्तर्गत संज्ञाओं में, जैसे—

हिं	सं०—मू०	खी०	हिं०	सं०—मू०	खी
राज	राजन्	राज्ञी	विद्वान्	विद्वस्	विद्वयी
युवा	युवन्	युवती	महान्	महत्	महती
भगवान्	भगवत्	भगवती	मान्नी	भाषिन्	भाषिनी
श्रीमान्	श्रीमत्	श्रीमती	हितकारी	हितकारिन्	हितकारिणी

( आ ) आकारांत संज्ञाओं में, जैसे—

बाह्य—बाह्यी	सुंदर—सुंदरी
गुर—गुरी	गीर—गीरी
पंच—पंची	पंचम—पंचमी
कुमार—कुमारी	नद—नदी
बाह—बासी	तक्ष्य—तक्ष्यी

( ई ) आकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ हिंदी में आकारांत हो जाती हैं, अर्थात् वे संस्कृत प्रातिपदकों से नहीं किंतु प्रथमा विभक्ति के एकवचन से भाई हैं जैसे—

हिं०	सं०—मू०	खी	हिं	सं०—मू०	खी०
कत्ता	कत्तुं कत्ती	प्रपकत्ता	प्रपकत्तुं	प्रपकत्ती	
बाता	बातुं बात्री	कवयिता	कवयितुं	कवयित्री	
दाता	दातुं दात्री	कवयिता	कवयितुं	कवयित्री	

[ ६०—बिना पुस्त्रिण शब्द के दो-बो स्त्रीलिङ्ग रूप हैं उनमें बहुवा अर्थ का अंतर पाया जाता है। कारण यह है कि स्त्रीलिङ्ग से केवल स्त्री जाति ही का बोध नहीं होता, वरन् उसके किसी भी लिंग का भी अर्थ सूचित होता है। 'बेसी' कहने से केवल स्त्रीलिङ्ग स्त्री का ही का बोध नहीं होता, वरन् बेटे की स्त्री भी सूचित होती है, चाहे उस स्त्री ने स्त्रीचा न भी ली हो। वहाँ एक ही स्त्रीलिङ्ग शब्द से वे दोनों अर्थ सूचित नहीं होते वहाँ स्त्रीलिङ्ग में बहुवा दो शब्द आते हैं। 'गाली' शब्द से, केवल स्त्री की बहिन का बोध होता है, चाहे स्त्री स्त्री का नहीं, इसलिए इस विस्तृत अर्थ में 'सरहब' शब्द आता है। इसी प्रकार 'माई' शब्द का वृत्त स्त्रीलिङ्ग 'मावब' से जो माई की स्त्री का बोध है। यह शब्द 'संस्कृत' 'मातृ-बावा' से बना है। 'मावब' के दूसरे रूप 'मौबार्' और 'माभी' हैं। 'बेटी' का पति 'बामाद' या 'बैदाई' कहलाता है। ]

२८२—एकलिङ्ग प्रादिवाचक शब्दों में पुलक और स्त्री जाति का भेद करने के लिये उनके पूर्व क्रमशः 'पुलक' और 'स्त्री' तथा मनुष्यैतर प्रादिवाचक शब्दों के पहले 'नर' और 'मादा' लगाते हैं जैसे, पुलक-कृत्त, स्त्री-कृत्त, नर-बीज, मादा-बीज पर-भेषिया, मादा भेषिया इत्यादि। 'मादा' शब्द को कौर्-कौर् मादी बोलते हैं। यह शब्द उद्गु का है।

## दूसरा अध्याय ।

### घचन

२८३—संज्ञा ( और दूसरे विकारी शब्दों ) के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे घचन कहते हैं। हिंदी में दो घचन होते हैं—

( १ ) एकवचन

( २ ) बहुवचन

२८४—संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है उसे एकवचन कहते हैं, जैसे एकका कपड़ा, घोपी, रंग, रूप ।

१८८—संज्ञा के जिस रूप से अधिक बस्तुओं का बाध होता है उसे बहुवचन कहते हैं; जैसे, छदके, कपड़े, टोपियाँ, (गों में, क्कों से इत्यादि)।

( अ ) आदर क क्षिप् भी बहुवचन आता है, जैसे, राजा के बड़े बेटे भाये हैं । 'अयम् अपि सो ब्रह्मचारी है' (शकु०) । 'तुम बच्चे हो । (शिव०) ।

[ टी०—हिंदी के वह एक व्याकरणों में बचन का विचार कारक क साथ किया गया है जिसका कारण यह है कि बहुत से शब्दों में बहु वचन के प्रत्यय विभक्तियों के बिना नहीं समझे जाते । 'मूल रंग तीन हैं—रक्त वाक्य में 'रंग' शब्द बहुवचन है, पर यह बात केवल किया से तथा विशेष-विशेष 'तीन' से जानी जाती है, पर स्वयं 'रंग' शब्द में बहुवचन का कोई चिह्न नहीं है, क्योंकि वह शब्द विभक्ति-रहित है । विभक्ति के योग से 'रंग' शब्द का बहुवचन रूप 'रंगों' होता है, और 'इन रंगों में कौन अच्छा है ? बचन का विचार कारक के साथ करन का वृत्त कारण यह है कि कई शब्दों का विभक्ति-रहित बहुवचन रूप विभक्ति-रहित बहुवचन रूप से भिन्न होता है जैसे, 'ये टोपियाँ उन टोपियों से छोटी हैं ।' इस उदाहरण में विभक्ति-रहित बहुवचन 'टोपियाँ' और विभक्ति-रहित बहुवचन 'टोपियों' रूप एक-दूसरे से भिन्न हैं । इसके सिवा संस्कृत में बचन का विचार विभक्तियों ही के साथ होता है इसलिए हिंदी में भी उही बात का अनुसरण किया जाता है ।

अब यहाँ प्रश्न है कि जब बचन और विभक्तियों एक दूसरे से इस प्रकार मिली हुई हैं तब हिंदी में संस्कृत के अनुसार ही उनका एकत्र विचार क्यों न किया जाय ? इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर यह है कि हिंदी में बचन और विभक्ति का अलग विचार अधिकांश में सुझते की दृष्टि से किया जाता है । संस्कृत में प्रातिपदिक ( संज्ञा का मूल रूप ) प्रथमा विभक्ति के एक-वचन के भिन्न रहता है और इही प्रातिपदिक में एक वचन, द्विवचन० और बहुवचन के प्रत्यय जोड़े जाते हैं परंतु हिंदी ( और मराठी, गुजराती,

० संस्कृत, बँद, अरबी, इजानी, पुरानी लैटिन आदि भाषाओं में तीन वचन होते हैं, ( १ ) एकवचन ( २ ) द्विवचन ( ३ ) बहुवचन । द्विवचन से दो का और बहुवचन से दो से अधिक संज्ञा का बाध होता है ।



अंगरेजी आदि भाषाओं ) । ये लंघा का मूल रूप हो अथवा विभक्ति ( कर्ता-कारक ) में आता है । इसी मूल रूप में प्रत्यय लगाने से प्रथमा का बहुवचन बनता है, जैसे, पोड़ा—पोड़े लड़की लड़कियाँ, आदि । दूसरे विभक्ति-रहित ( कर्ता-कारक ) के बहुवचन का जो रूप होता है वह प्रथमा ( विभक्ति-रहित कर्ता-कारक ) के बहुवचन रूप से मिला रहता है, और ठठ ( रूप ) में इस रूप का कुछ काम नहीं पड़ता जैसे, भाड़े, पोड़ों में, पोड़ों को इत्यादि । इसलिये प्रथमा ( विभक्ति-रहित कर्ता ) के दोनों बचनों का विचार दूसरे कर्तों से अलग ही करना पड़ेगा, धाड़े वह बचन के साथ किया जाय, चाहे कारक के साथ । विभक्ति-रहित बहुवचन का विचार इस अभाव में करने से वह सुभीता होगा कि विभक्तियों के अरथ लंघाओं में जो विचार होते हैं वे कारक के अभाव में रहतवा बताये जा सकेंगे । ]

धृ०—वहाँ विभक्ति-रहित बहुवचन के विषय सुभीते के लिये द्विग के अनुसार अकार-अकार्य दिखे जाते हैं ।

विभक्ति-रहित बहुवचन बनाने के नियम ।

## १—हिंदी और संस्कृत-शब्द ।

( क ) पुंलिंग

२८३—हिंदी आकारांत पुंलिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिये धाँव 'धा' के स्थान में 'धृ' लगाते हैं, जैसे—

छद्म—छद्मके

छोट—छोटे

बपवा—बपवे

बीघा—बीघे

बीबा—बीबे

करवा—करवे

दूबवाळा—दूबवाळे

धर०—( १ ) साधा, भावजा, धतीजा, पैटा, आदि शब्दों को छोड़कर शेष सर्ववचनवाचक, अपभ्रंशवाचक और प्रतिष्ठावाचक आकारांत पुंलिंग शब्दों का रूप दोनों बचनों में एक ही रहता है, जैसे, काका—काका, आभा—आभा, मासत—मासत, बाधा—बाधा, बाबा, बाबा, दादा, दादा, पूंघा ( उपनाम ), धूरमा इत्यादि ।

[ सू०—'बाप-दादा' शब्द का स्मिांतर वैकल्पिक है, जैसे, 'उनके बाप दादे हमारे बापदादे के चाचे हाथ छोड़ के बल्ले फिवा करते थे।' (गुटफ०)। 'बापदादे का कर मदे है वही करना चाहिए।' (ठैठ०)। 'बिनके बाप-दादा मेढ़ की आशाब सुनकर डर बाठ थे।' (गिब०)। मुञ्जिवा, अगुभा और पुरसा शब्दों के भी रूप वैकल्पिक है।

अप०—( २ ) संस्कृत की आकारांत और लकारांत संज्ञार्थ जो हिंदी में आकारांत हो जाती हैं बहुवचन में अविज्ञत रहती हैं जैसे कर्ता, पिता, पोता, राजा, पुत्र आदि, देवता, आमाता।

बीरू-बीरू शब्द "राजा" शब्द का बहुवचन "राजे" विकसित है, जैसे, "तीव प्रथम राजे।" (इंगलैड०)। हिंदी-श्याकारांतों में बहुवचन रूप "राजा" ही प्रायः जाता है और कुछ श्याओं को छोड़ छोड़-बाद में भी सर्वत्र "राजा" ही प्रचलित है। हम वहाँ इस शब्द के शिष्ट प्रयोग के कुछ उदाहरण देते हैं— "सब राजा अपनी अपनी सेना से आन पहुँचे। (मेम०)। हम मुबत हैं कि राजा बहुत शमियों के प्यारे होते हैं।" (रकु०)। "दुप्यर राजा तो बसक बंध में गरी पर बंद चुक।" (इति०)। "सिंहासन क ऊपर उरुनों राजा पीठे हुए हैं। (रघु०)

"बोडा" शब्द का बहुवचन हिंदी-बहुवचन में एक आग "बोदे" आया है बस, "संज्ञो की बहुत से योदे वैकर;" परंतु अन्य शेषकों में बहुवचन में "बोडा" ही लिखा है, जैसे "जितने पाचक योधा रहे थे"। (वेम०)। "बड़े-बड़े योधा सने।" (साधी०)। "महामारत" में भी "बोडा" शब्द बहुवचन में लिखा गया है, जैसे, "अर्जुन ने औरकों के अतगिबत योधा और शैतिक मार गिराये।"

( २०—यदि शैतिक शब्दों का रूप शब्द हिंदी का और आकारांत प्रसिद्ध हो तो उरर शब्द के साथ बहुवचन में उररका भी रूसांतर हाता है जैसे, लड़क्य-बधा—लड़के-बधे, झायाआजा—झायेआने इत्यादि। अप०— "आलाआजा" का बहुवचन "आलाआये" होता है )

अप०—( ३ ) अविज्ञात आकारांत प्रसिद्ध संज्ञार्थ बहुवचन में ( अं०—११० ) अविज्ञत रहती हैं, जैसे सुरामा, उररअया, रामपौडा इत्यादि।

१३०—हिंदी व्याकरांत पुर्विलग शब्दों को छोड़ दोष हिंदी और संस्कृत पुर्विलग शब्द दोनों बचनों में एक-रूप रहते हैं; जैसे—

व्यंजनांत संज्ञार्थ—हिंदी में व्यंजनांत संज्ञार्थ नहीं हैं। संस्कृत की अधिकांश व्यंजनांत संज्ञार्थ हिंदी में व्याकरांत पुर्विलग हो जाती हैं; जैसे, मनस्=मन, वामन्=वाम, कुम्भस्=कुम्भ, पंचिन्=पंच, इत्यादि। जो इन्-गिने संस्कृत व्यंजनांत शब्द ( जैसे, विद्वान्, भगवान् आदि ) जैसे क ऐसे आते हैं उनका भी क्पांतर व्याकरांत पुर्विलग शब्दों के समान होता है।

व्याकरांत संज्ञार्थ—( हिंदी ) घर—घर

( संस्कृत ) वासक—वासक

हकारांत—हिंदी-शब्द नहीं हैं

( संस्कृत ) मुनि—मुनि

ईकारांत—( हिंदी ) भाई—भाई

( संस्कृत ) बही—पत्नी

[ सू०—हिंदी में संस्कृत की हर्षत संज्ञार्थ ईकारांत ( प्रथमा एकवचन ) रूप में आती हैं। जैसे, पञ्चिन्=पंचा, स्वामिन्=स्वामी, सोयिन्=सोयी, इत्यादि। राम० में “करिन्” का रूप “करि” आया है जैसे, “संग हाह करिमी करि लेही”। संस्कृत क मूल हकारांत पुर्विलग शब्द हिंदी में केवला-गिनती के हैं जैसे, सेनाना। ]

ठकारांत—हिंदी शब्द नहीं हैं।

—( संस्कृत ) साधु—साधु

डकारांत—( हिंदी ) बाहू—बाहू

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं।

शकारांत—हिंदी शब्द नहीं हैं।

—संस्कृत-शब्द हिंदी में व्याकरांत हो जाते हैं

और दोनों बचनों में एक-रूप रहते हैं।

अं०—१८३ अय०—१।

एकारांत—( हिंदी ) बीचे—बीचे

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

द्यौकारांत—( हिंदी ) रासी—रासी

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

द्यौकारांत—( हिंदी ) बी—बी

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

सामुस्वार द्यौकारांत—( हिंदी ) ब्यदो—ब्यदो

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

[ ६०—विद्यते चार प्रकार के शब्द हिंदी में बहुत ही कम हैं । ]

### ( छ ) झीलिंग

२११—अकारांत झीलिंग शब्दों का बहुवचन अल्प स्वर के बरबरे पं बनने से बनता है; जैसे—

बहिन—बहिनै

भाँख—भाँखै

गाब—गाबै

राठ—राठै

बाठ—बाठै

बीछ—बीछै

[ ६०—संस्कृत में अकारांत झीलिंग शब्द नहीं हैं पर हिंदी में संस्कृत के जो शब्द से व्यंजनात झीलिंग शब्द आते हैं वे बहुधा अकारांत ही आते हैं जैसे, लमिप्—लमिष, लरित्—लरित, आठित्—आठित, इत्यादि ।

२१२—इकारांत और इकारांत संज्ञाओं में 'इं' को इत्थन करके अल्प स्वर के बरबान् 'ईं' जोड़ते हैं; जैसे—

दोपी—दोपिईं

तिथि—तिथिईं

पाकी—पाकिईं

शक्ति—शक्तिईं

रानी—रानिईं

रीति—रीतिईं

नरी—नरिईं

राशि—राशिईं

[ ६०—( १ ) हिंदी में इकारांत झीलिंग शब्दों संज्ञाओं संज्ञाओं की हैं, और ईकारांत शब्दों संज्ञाओं और हिंदी दोनों की हैं । ]

[ ए०—( २ ) 'परीषान्-गुरु' में ईकारांत संज्ञाओं का बहुवचन 'वं' लगाकर बनाया गया है जैसे, 'दीरिवें' । यह रूप प्राचक्ष्ण अप्रत्यक्षित है ।  
( ३ ) वाच्यारांत ( उजवाचक ) संज्ञाओं के अंत में केवल अनुस्वार लगाया जाता है, जैसे—

अडिया—अडियाँ  
हुडिया—हुडियाँ  
गुडिया—गुडियाँ

दियिया—दियियाँ  
गुदिया—गुदियाँ  
खडिया—खडियाँ

[ ए०—कई लोग इन शब्दों का बहुवचन वे वा ऐँ लगाकर बनाते हैं, जैसे, दियियाऐँ, कुंडलियाऐँ, इत्यादि । रूप असुद्ध है । इनका बहुवचन उन्हीं ईकारांत शब्दों के समान होता है जिनसे वे बने हैं ।

२११—शेष स्त्रीलिंग शब्दों में अंत्य स्वर के परे एँ लगाते हैं और 'ऊ' भी ह्रस्व कर देते हैं, जैसे—

बता—बताएँ  
कपा—कपाएँ  
माता—माताएँ

बसु—बसुएँ  
बहू—बहूएँ  
सू—सूएँ ( सव० )

### गौ— गौएँ

[ ए०—हिंदी में प्रचक्षित आकारांत और उकारांत स्त्रीलिंग शब्द संरक्षित के हैं । संरक्षित की कुछ आकारांत और व्यवनांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ हिंदी में आकारांत हो जाती हैं, जैसे, मातृ—माता, गुरितृ—गुरिता, सीमन्—सीमा, अप्तरत्—अप्तरा इत्यादि । ]

( १ ) आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में विकल्प से 'वं' लगाते हैं, जैसे, शाखा—शाखाएँ, माता—माताएँ, अप्तरा—अप्तराएँ इत्यादि ।

( २ ) सानुस्वार आकारांत और आकारांत संज्ञाएँ बहुवचन में बहुधा अभिभूत रहती हैं; जैसे शीं, बोलों, सरसों, गीं इत्यादि । हिंदी में ये शब्द बहुत कम हैं ।

२१२—कोई कोई केवल आकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं को दाढ़ शप स्त्रीलिंग संज्ञाओं की शीलों बचनों में एम्परी रूप में लिखते हैं; जैसे 'कोई देरों में पत्नी

पस्तु उपजती है। ( अतिवृत्त )। 'धीर-धीर विगोम कृतमे की चिकनी शिखा  
रुपी है। ( उक्त ) 'पाती हैं हुए जहाँ राजकुत्र ही में मारी। ( क )  
'। ये प्रयोग अनुकरणीय नहीं हैं।

## २—उद् शब्द

१४१—हिंदी-भात उद् शब्दों का बहुवचन बनाने के लिये उपमें बहुधा  
हिंदी प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे शाहजादा—शाहजादे बैगन-बेगमें इत्यादि;  
परंतु कानूनी हिंदी के खेलेख उद् शब्दों और कमी-कमी हिंदी शब्दों में भी  
उद् प्रत्यय लगाकर भाषा को विकृत कर देने हैं। उद् भाषा से बहुवचन क  
इष्ट नियम यहाँ सिद्ध जाते हैं—

( १ ) धारसी प्रायिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन बहुधा 'धातु' लगाने से  
बनता है; जैसे, साहब—साहबान माखिब—माखिबान कारतकार—कारत  
कारान इत्यादि।

( २ ) धातु 'ह' के बदले 'ग' धीर ई के बदले इय हो जाता है जैसे  
संदह—संदगान धारिंदह—धारिंदगान परधारी—परधारी  
मुसहरी—मुसहियान इत्यादि।

( ३ ) धारसी अध्यायिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन हा लगा कर का  
है; जैसे धार—धारहा कृचह—कृचहा इत्यादि।

( ४ ) धारसी अध्यायिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन धारसी की कछुप  
बहुधा 'धातु' लगा कर भी बनाते हैं जैसे कगज—कगजठ, दिह (गॉब)-  
दिहाठ, इत्यादि।

( ५ ) धातु 'ह' के बदले 'ज' हो जाता है; जैसे, परधानह—परधानजान  
धामह—धामजान, इत्यादि।

( ६ ) धारसी व्याकरण के अनुसार बहुवचन दो प्रकार का होता है—  
( क ) निवमित ( घ ) अनिपमित।

( क ) निवमित बहुवचन शब्द के धातु में 'धातु' लगाने से बनता है; जैसे,  
ध्यात्र—ध्यात्राठ, इतिधार—इतिधाराठ मद्यम—मद्यमाठ,  
मुकरमा—मुकरमाठ इत्यादि।

( घ ) अनिपमित बहुवचन बनाने के लिये शब्द के धातु में 'धातु' धीर धन में

क्यांतर होता है; जैसे, हुकम—अहकाम, हाकिम—हुकूमत, अकबदा—कबाहद, इत्यादि ।

( ५ ) धरवी अभिव्यक्ति बहुवचन कई 'बचनों' पर बनता है—

( अ ) अफभास; जैसे,

हुकम—अहकाम

अक—अकीकत

हास—अहवाह

तरफ—अतराफ

अकबर—अकबार

तारीफ—अतराफ

( आ ) फुल्ल; जैसे, हक—हुकूम

( इ ) फुमला; जैसे, अमीर—अमरा

( ई ) अकइला; जैसे, बखी—अखिया

( उ ) फुमभास; जैसे, हाकिम—हुकूमत

( ए ) अकइला; जैसे, अजीब—अजाहब

( ओ ) अकइला; जैसे, अकबदा—कबाहद

( प ) अकइला; जैसे, अकबर—अकबार

( पे ) अकइला; जैसे, तारीफ—अतराफ

( ६ ) कमी-कमी एक धरवी एकवचन के दुहरे बहुवचन बनते हैं; जैसे अकबर—अकबारात, हुकम—अहकामात, अक—अकइलात, इत्यादि ।

( ७ ) एक धरवी बहुवचन शब्दों का प्रयोग हिंदी में एकवचन में होता है; जैसे, बारिदात, तहकीकत अकबार, अतराफ, कबाहद तवारीफ ( इतिहास ), अखिया अकीकत ( स्थिति ) अहवाह इत्यादि ।

( ८ ) कई एक उच्च आकारात पुर्विखण शब्द संस्कृत धीर हिंदी शब्दों के समान, बहुवचन में अधिकृत रहते हैं, जैसे, सीदा, दरिया, मियाँ, मीठा वारीगा इत्यादि ।

११६—जिन मनुष्यवाचक पुर्विखण शब्दों के कम दोबों बचनों में एक से होते हैं उनके बहुवचन में बहुवा 'लोग' शब्द का प्रयोग करते हैं जैसे, अकइला लोग आपके समुख खड़े धाते हैं । ( शकु० ) धार्य लोग एम के अपासक थे । ( इति० ) । 'योन्हा लोग बदि चिहवाकर अपनै-अपने स्वामियों का नाम न धताते ।' ( रनु० ) ।

- ( अ ) 'जोग' शब्द मनुष्यवाचक पुर्विभाग संज्ञार्थों के विह्वल बहुवचन के साथ भी आता है। जैसे, 'बड़े, जोग' 'बड़े जोग' बतिये जोग इत्यादि।
- ( भा ) धारलंदुब्धी 'जोग' शब्द का प्रयोग मनुष्येतर प्राणियों के नामों के साथ भी करते हैं जैसे 'पक्षी जोग। ( साम० )। बिईंठी जोग।' ( मुद्रा० )। यह प्रयोग एकदलीय है।

२१०— जोग शब्द के सिवा गद्य, आदि उल, बर्ग आदि समूह-वाचक संज्ञक-शब्द बहुवचन के अर्थ में आते हैं। इन शब्दों का प्रयोग मित्र-मित्र प्रकार का है—

गण्य—यह शब्द बहुधा मनुष्यों, देवताओं और ग्रहों के नामों के साथ आता है, जैसे, देवतागण्य, अम्भरागण्य, वासुदेवगण्य, शिवगण्य, तापगण्य, महगण्य इत्यादि। 'बहिगण्य' भी प्रयोग में आता है। 'समन्वितमानस' में 'इतिगण्य' आता है।

वर्ग, आदि—ये शब्द 'आदि' के बोधक हैं और बहुधा प्राणिवाचक शब्दों के साथ आते हैं; जैसे मनुष्यवर्ग, श्रीवर्ग ( शकु० ), जनवर्ग ( साम० ), पशुवर्ग, वीरवर्ग, वाकवर्ग इत्यादि। इन संज्ञक शब्दों का प्रयोग बहुधा बहुवचन में होता है।

जन—इसका प्रयोग बहुधा मनुष्यवाचक शब्दों के साथ है; जैसे, मन्व-जन, गुणजन, श्रीजन इत्यादि।

- ( घ ) कविता में इन समूहवाचक शब्दों का प्रयोग बहुतायत से होता है और उनमें इनके कई बर्णोपवाची शब्द आते हैं; जैसे, मुनि-वंश, युम-विद्या, जंतु-संज्ञक, धर्म-शोध, इत्यादि। समूहवाचक शब्दों के और उदाहरण—बन्धु, पुत्र, समुदाय, समूह, विद्याय।

२११—संज्ञार्थों के तीन भेदों में से बहुधा आतिवाचक संज्ञार्थ ही बहुवचन में आती हैं; परंतु जब व्यक्तिवाचक धार भाववाचक संज्ञार्थों का प्रयोग आतिवाचक संज्ञा के समान होता है तब उसका भी बहुवचन होता है; जैसे, 'कृष्ण रावय, रावय जय केते। ( साम० )। 'उठती कुरी है भावनाएँ दाब। मम इशाम में।' ( क० क० )। ( पं०—१०२, १०० )।



। ( भा ) यह 'पत' प्रत्ययोंत माधवाचक संज्ञाओं का बहुवचन बनाना होता है। तब उसके आकारोंत मूळ शब्द में 'भा' के स्थान पर 'पु' आदेश कर देते हैं; जैसे, सीधापत-सोपेपत, आदि ।

२२१—बहुधा ब्रह्मवाचक संज्ञाओं का बहुवचन नहीं होता; परंतु जब किसी ब्रह्म की मिश्र-मिश्र जातियाँ सूचित करने की आवश्यकता होती है तब इन संज्ञाओं का प्रयोग बहुवचन में होता है; जैसे, 'आजकल बाजार में कई सैल बिकते हैं ।' 'दोनों सोने खोले हैं ।

१००—पदार्थों की बड़ी संख्या, परिमाण वा मसूह सूचित करने के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग बहुधा एकवचन में होता है; जैसे, 'मेज में केवल लहर का आदमी थाया ।' 'उसके पास बहुत रुपया मिथा ।' 'इस साथ नारंगी बहुत हुई हैं ।

२ १—कई एक शब्द ( बहुत्व की भावना के कारण ) बहुधा बहुवचन ही में आते हैं; जैसे समाचार, प्राथ, काम लोग होश, हिम्मे भाग्य दर्शन ।  
 क्वा०—'रिपु के समाचार । ( राम० ) । 'आधम के दर्शन करके । ( शकु० ) ।  
 मधयकेतु के प्राथ सूच गये । ( सुत्रा० ) । 'धाम के धाम, गुठबिचों के काम ।' ( कदा० ) । 'तेर भाग्य बूझ गए । ( शकु० ) । 'सोग कहते हैं ।

१०२—आदर्श बहुवचन में व्यक्तिवाचक अथवा उपनामवाचक संज्ञाओं के आगे महाराज साहब महारथ, महोदय, बहादुर शाही, स्वामी देवी, इत्यादि लगाते हैं । इन शब्दों का प्रयोग अलग-अलग है—

श्री—यह शब्द, नाम उपनाम यह, उपपद, इत्यादि के साथ आता है और साधारण नीकर से बकर इतना तक के लिए इसका प्रयोग होता है; जैसे गणपसाहजी मिश्रजी, बानूजी, पटवारीजी चौधरीजी, रात्रीजी, सीताजी, गणेशजी । कभी-कभी इसका प्रयोग नाम और उपनाम के बीच में होता है, जैसे, मधुरामसाहजी मिश्र ।

महाराज—इसका प्रयोग साधु माहजब राजा और देवता के लिए होता है । यह शब्द नाम अथवा उपनाम के आगे जोड़ा जाता है और बहुधा 'जी' के परचाह आता है, जैसे, देवदत्त महाराज, पतिवती महाराज रघुवीरसिंह महाराज, ईश महाराज, इत्यादि ।

साहब—यह उद् शब्द बहुधा 'जी' के पर्याय में आता है । इसका प्रयोग नामों के साथ अथवा उपनामों वा पदों के साथ होता है; जैसे, राम-

साह साहय, बकीर-साहय, टावर-साहय रामबहादुरसाहय । इसका प्रयोग बहुधा माहलों के नामों का उपनामों के साथ नहीं होता । छिपों के लिए प्रायः 'छिपिंगा साहय' शब्द आता है; जैसे, मेम साहय, शमी-साहय, हुर्यादि ।

महाशय, महोदय—इन शब्दों का अर्थ प्रायः 'साहय' के समान है । महाशय बहुधा साधारण लोगों के लिए और 'महोदय' एक लोगों के लिए आता है; जैसे किबहय महाशय, सर कैम मेसक महोदय इत्यादि ।

बहादुर—यह एक राज-महाराजाओं तथा बड़े-बड़े हाकिमों के नामों का उपनामों के साथ आता है; जैसे कमलार्जुनसिंह बहादुर महाराज बहादुर, सरदार बहादुर । चोगोजी नामों और पत्तों के साथ 'बहादुर' के पहले साहय आता है; जैसे हैमिदाम साहय बहादुर आठ साहय बहादुर इत्यादि ।

शारदा—यह शब्द संस्कृत के विद्याओं के नामों में लगाया जाता है; जैसे रामनसाद शारदा ।

स्वामी, सरस्वती—य शब्द साधु महात्माओं के नामों के साथ आते हैं; जैसे, तुलसीराम स्वामी दुबार्जुन सरस्वती । 'सरस्वती' शब्द शीर्षक है; तथापि यहाँ उसका प्रयोग पुनरुक्ति में होता है । यह शब्द विद्वत्सम्बन्ध भी है ।

दुर्गा—माहलय और कुलीन सबका पियों के नामों के साथ बहुधा देवी शब्द आता है; जैसे यादवी देवी । किसी-किसी प्रांत में 'दाद' शब्द प्रचलित है; जैसे मनुष्य दाद ।

३०३—आदर के लिए कुछ शब्द नामों और उपनामों के पहले या लगाये जाते हैं; जैसे, श्री, श्रीगुरु, श्रीगुरु, श्रीमान् कामती, तुमारी मान बीच, महत्मा, अक्षयान् । महाराज, स्वामी, महाराय आदि भी कभी-कभी नामों के पहले आते हैं । जाति के अनुसार इन्हों के नामों के पहले पति, बाबू, साहब, काब, संत शब्द लगाये जाते हैं । 'श्रीगुरु' का आगुन का अर्थ श्रीमान् अधिक प्रतिष्ठा का वाचक है ।

[ ६०—इन आदरपूर्ण शब्दों का अर्थ के कई विशेष संबंध नहीं हैं क्योंकि वे स्वतंत्र शब्द हैं और इनके कारण मूल शब्दों में काह अंतर नहीं रहता । तथापि निम्न प्रकार शिवा में 'गुरु', 'का' 'मर' 'मादा'

और बचन में 'लोग', 'गण' 'बति' आदि स्वतंत्र शब्दों को प्रत्यय मान लेते हैं, उसी प्रकार हम आदरसूचक शब्दों को आदरात्म बहुवचन के प्रत्यय मानकर इनका संक्षिप्त विचार किया गया है। इनका विशेष विवेचन साहित्य का विषय है। ]

### तीसरा अध्याय

#### कारक

१०४—संज्ञा ( वा सर्वनाम ) जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकटित होता है उस रूप को कारक कहते हैं। जैसे 'रामचंद्रजी ने जारी जख के समुद्र पर बंदरों से पुक बँधवा दिया है।' ( रघु० )।

इस वाक्य में 'रामचंद्रजी ने,' 'समुद्र पर,' 'बंदरों से' और 'पुक' संज्ञाओं के स्थांतर हैं जिनके द्वारा इस संज्ञाओं का संबंध 'बँधवा दिया' क्रिया के साथ सूचित होता है। 'जख के' 'जख' संज्ञा का स्थांतर है और उससे 'जख' का संबंध 'समुद्र' से जाना जाता है। इसलिये 'रामचंद्रजी ने,' 'समुद्र पर' 'जख के' 'बंदरों से' और 'पुक' संज्ञाओं के कारक कह सकते हैं। कारक सूचित करने के लिये संज्ञा वा सर्वनाम के प्रयोग को प्रत्यय धारण करते हैं उन्हें विभक्तियाँ कहते हैं। विभक्ति के योग्य स भवे ह्य रूप विभक्त्यर्थतः शब्द वा पद कहते हैं।

[ टी०—जिस अर्थ में 'कारक' शब्द का प्रयोग संस्कृत व्याकरणों में होता है उस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यहाँ नहीं हुआ है और न वह अर्थ अधिकतर हिन्दी-व्याकरणों में माना गया है। केवल 'वाचातन्त्रदीपिका' और हिन्दी-व्याकरणों में जिनके लेखक महाराष्ट्र हैं मराठी व्याकरण की रूढ़ि के अनुसार, 'कारक' और 'विभक्ति' शब्दों का प्रयोग प्रायः संस्कृत के अनुसार किया गया है। संस्कृत में क्रिया के साथ ० संज्ञा ( उच्यमान और विद्यमान )

के अन्वय ( संबंध ) की कारक कहते हैं और उनके बिना रूप से यह अन्वय स्थिति होता है उसे विभक्ति कहते हैं। विभक्ति में भी प्रत्यय लगाये जाते हैं वे विभक्ति प्रत्यय कहते हैं। संस्कृत में सात विभक्तियाँ और दस कारक माने जाते हैं। बड़ी विभक्ति को संस्कृत व्याकरण नहीं मानते क्योंकि उसका संबंध क्रिया से नहीं है।

संस्कृत में कारक और विभक्ति को अलग मानने का सबसे बड़ा और मुख्य कारण यह है कि एक ही विभक्ति कई कारकों में पाती है। यह बात हिंदी में भी है जैसे, घर गिरा, कितान घर बनाता है, घर बनाया जाता है, लड़का घर गया। इन वाक्यों में घर शब्द ( संस्कृत व्याकरण के अनुसार ) एक ही रूप ( विभक्ति ) में आकर क्रिया के साथ अलग अलग संबंध ( कारक ) स्थित करता है। इस दृष्टि से कारक और विभक्ति अलग ही अलग अलग हैं और संस्कृत शरीरों का अंतराल और पूरा भाषा में इनका संघ मानना सही और उचित है।

'हिंदी में कारक और विभक्ति को एक मानने की बात कदाचित् रॉय रेबी व्याकरण का पत्र है, क्योंकि सबसे प्रथम हिंदा-व्याकरण वादवी आरम वादक ने लिखा था। इस व्याकरण में 'कारक' शब्द आया है परंतु 'विभक्ति' शब्द का नाम पुस्तक भर में नहीं मिला है। दो एक लेखकों के लिखने पर भी आठवक के हिंदा-व्याकरणों में कारक और विभक्ति का अंतर नहीं माना गया है। हिंदी व्याकरणों के विचार में इन दोनों शब्दों के अर्थ की एकता यहाँ तक सिद्ध हो गई है कि व्यासजी शरीरों संस्कृत के विद्वान् ने भी 'भाषा प्रमाणात्' में विभक्ति के बदले 'अरक' शब्द का प्रयोग किया है। हाल में पं० गोविंदनारायण मिश्र ने अपने 'विभक्ति विचार' में लिखा है कि 'स्वर्गीय पं० रामोदर शास्त्री ने ही संभव है कि, सबसे पहले स्वरचित व्याकरण में कृता कर्म, कर्तृ आदि कारकों के प्रयोगों का परोक्ष उद्देश्य कर प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्ति शब्द का प्रयोग उनके बदले में करने के साथ ही

● यह एक बहुत ही छोटी पुस्तक है और इसके प्रायः प्रत्येक पृष्ठ में भाषा की विदेशी शब्दियों का उदाहरण है। तथापि इसमें व्याकरण के कई सूत्र और उपयोगी नियम दिये गये हैं।

† यह पुस्तक तारापुर के बर्मीदार बाबू रामनरदतिह को मिली हुई है परंतु इसका संशोधन स्वयंकाठा पं० अदिवाहल व्यास ने किया था।

इसका मुक्तिमुक्त प्रतिपादन भी किया था ।' इस तरह से इस बहुत ही पुरानी मूल को सुधारने की ओर आधुनिक लेखकों का ध्यान हुआ है । अब हमें यह देखना चाहिए कि इस मूल को सुधारने से हिंदी व्याकरण को क्या लाभ हो सकता है ।

हिंदी में संज्ञाओं की विभक्तियों ( कर्मों ) की संख्या संस्कृत की अपेक्षा बहुत कम है और विज्ञप्ति से बहुत कई एक संज्ञाओं की विभक्तियों का लोप हो जाता है । संज्ञाओं की अपेक्षा, लघुनामों के रूप हिंदी में कुछ अधिक निश्चित है पर उनमें भी कई शब्दों की प्रथमा, द्वितीया और तृतीया विभक्तियाँ बहुधा दो दो कारकों में आती है । हिंदी संज्ञाओं की एक विभक्ति कर्मी-कर्मी स्वार स्वार कारकों में आती है, जैसे मेरा हाथ तुझका है, उसने मेरा हाथ पकड़ा, नौकर के हाथ थिड़ी पेशी गई, थिड़िया हाथ न आई । व्याकरणों में 'हाथ' संज्ञा ( संस्कृत व्याकरण के अनुसार ) एक ही ( प्रथमा ) विभक्ति में है और वह मन्त्रणः क्त्या, कर्म, करण और अभि करण कारकों में आई है । इनमें से कर्ता की विभक्ति को छोड़ दोष विभक्तियों के अपवादित प्रत्यय क्त्वा वा लोकात् के इच्छानुसार स्वयं भी किये जा सकते हैं, जैसे, ठकने मेरे हाथ को पकड़ा नौकर के हाथ से थिड़ी पेशी गई थिड़िया हाथ में न आई । ऐसी अवस्था में प्रायः एक ही रूप और अर्थ के शब्दों को भी प्रथमा, कर्मी द्वितीया, कर्मी तृतीया और कर्मी उत्तमी विभक्ति में मानना पड़ेगा । केवल रूप के अनुसार विभक्तिक मानने से हिंदी में 'प्रथमा' 'द्वितीया' आदि कश्चित् सामी में भी बड़ी गड़बड़ होगी । संस्कृत में शब्दों के रूप बहुधा निश्चित और स्थिर हैं, इसलिए बिन कारकों से उनमें कारक और विभक्ति का भेद मानना ठपित है, उन्हीं कारकों से हिंदी में वह भेद मानना कठिन जान पड़ता है । हिंदी में अधिकांश विभक्तियों का रूप केवल अर्थ से निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि कर्मी की संज्ञा बहुत संख्या बहुत ही कम है, इसलिए इस भाषा में विभक्तियों के लोपक नाम कर्ता, कर्म, आदि ही उपयोगी जान पड़ते हैं ।

हिंदी के बिन व्याकरणों ने कारक और विभक्ति का अंतर हिंदी में मानने की चेष्टा की है व भी इनका विवेचन समाधान पूर्वक नहीं कर सका है । पं० केशवराम भट्ट ने अपने 'हिंदी-व्याकरण' में संज्ञाओं के केवल दो कारक—कर्ता और कर्म तथा पाँच रूप—पहला, दूसरा, तीसरा,

आदि माने हैं। 'विभक्ति' शब्द का प्रयोग उन्होंने 'प्रापय' के अर्थ में किया है, और अपने माये हुए दोती कारकी का लक्षण इस प्रकार बताया है—'श्रिया के संबंध से लक्षा की जो दो विशेष अवस्थायें होती हैं उसको कारक कहते हैं।' इस लक्षण के अनुसार चिन करण, संप्रदान आदि संबंधी को संस्कृत व्याकरण 'कारक' मानते हैं वे भी कारक नहीं कहे जा सकते। तब फिर इन पिछले संबंधी को 'कारक' के बन्से और क्या करना चाहिए? आये बलकर 'विभक्ति' शीघ्र लेख में मट्टी संज्ञाओं के रूपों के विषय में लिखते हैं कि 'अल्प अलग पाँच ही रूपों से कारक आदि संज्ञाओं की विभिन्न अवस्थायें पहचाना जाता है।' इसमें 'आदि' शब्द स जाना जाता है कि लक्षा की बल दो विशेष अवस्थायों का कोह नाम देने की आवश्यकता ही नहीं। 'हिंदी-व्याकरण' में यह निम्न संस्कृत व्याकरण के अनुसार लक्ष-रूप से देने का प्रयत्न किया गया है, इसलिए इस पुस्तक में यह बात कही स्पष्ट नहीं हुई है कि 'अवस्था' शब्द 'संबंध' के अर्थ में धारा है या 'रूप' के अर्थ में, और न कही इस बात का विषयन किया गया है कि बल दो 'विशेष अवस्थायें' ही 'कारक' कयी कहलाती हैं? कारक का लक्षण दिया गया है यह लक्षण नहीं, किन्तु वर्गीकरण का बयान है और उतकी वाक्य रचना स्पष्ट नहीं है। मट्टी ने संज्ञाओं के पाँच रूप माये हैं ( चिनका कर्म कर्म वे 'विभक्ति' भी कहते हैं ) उनमें से तीसरी और पाँचवीं विभक्तियों का उन्होंने 'सुप्त अवस्था' में धामे पर उही विभक्तियों के अंतर्गत माना है, पर दूसरा विभक्ति का कही उसी में और कही पहली में लिया है। हिंदी में संबोधन-कारक का रूप इन पाँच विभक्तियों से मिला है पर यह भी संस्कृत के अनुसार प्रथमा में मान लिया गया है। इस निहा हिंदी में कही ('हि० व्या' की चौथी) विभक्ति का अभाव है, क्योंकि उसके बदले उद्धित प्रत्यय का क—का—आते हैं, परंतु मट्टी ने उद्धित प्रत्ययों पर का भी विभक्ति मान लिया है। साहित्याचार्य पं० रामायतार शर्मा ने 'व्याकरण शास्त्र' में 'विभक्ति' शब्द का उक्त कलांतर के अर्थ में प्रयुक्त किया है, जो कारक के प्रत्यय लगने के पूर्व संज्ञाओं में होता है। आरके मतानुसार हिंदी में केवल दो विभक्तियाँ हैं।

इस विवेचन का कारण यही है कि हिंदी में विभक्ति और कारक का स्पष्ट अंतर मानने में कहीं कठिनाई है। इससे हिंदी व्याकरण की स्थिति बढ़ता है और जबकि उनकी समाधान कारक व्यवस्था न हो, तबतक बल बाद-

विवाद के लिए उन्हें व्याकरण में रखने से कोई काम नहीं है। इसलिए हमने 'कारक' और 'विभक्ति' शब्दों का प्रयोग हिंदी व्याकरण के अनुकूल अर्थ में किया है और प्रथमा, द्वितीया, आदि कल्पित नामों के बचसे कर्ता, कर्म आदि सार्पक नाम लिखे हैं। ]

३०२—हिंदी में छठ कारक हैं। इनके नाम, विभक्तियों और लक्षण नीचे दिये जाते हैं—

कारक	विभक्तियाँ
( १ ) कर्ता	०, वे
( २ ) कर्म	को
( ३ ) करण	से
( ४ ) सम्प्रदाय	को
( ५ ) अपादान	से
( ६ ) संबन्ध	कर—के—की
( ७ ) अधिस्त्रय	में, पर
( ८ ) संबोधन	हे, अजी, अहो अरे

( १ ) क्रिया से जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्ता—कारक कहते हैं; जैसे, संकटा मोठा है। नीकर से दरवाजा प्योका। बिट्टी सेजी चायगी।

[ टी०—कर्ता कारक का यह लक्षण दूसरे व्याकरणों में दिये हुए लक्षणों से भिन्न है। हिंदी में कारक और विभक्ति का संस्कृत-रूढ़ अंतर न मानने के कारण इस लक्षण को आवश्यकता हुई है। इसमें केवल व्यापार के आश्रय ही का समावेश नहीं होता किंतु रियति दशक और विचार कथक क्रियाओं के कर्त्तव्यों का भी ( जो वचार्थ में व्यापार के आश्रय नहीं है ) समावेश हो सकता है। इसके सिवा सक्षम क्रिया के कर्मबाध्य में कर्म का जो मुख्य रूप होता है उसका भी समावेश इस लक्षण में हो जाता है। ]

( २ ) जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है उसे सूचित करनेवाले, संज्ञा के रूप को कर्म-कारक कहते हैं; जैसे, अक्षय परचर नेंकता है। 'माझिक से नीकर को बुझाया।

( ३ ) करल-कारक संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे क्रिया के सारण का बोध होता है; जैसे 'सिपाही चोर को रस्सी से बाँधता है।' 'बंदूके ने हाथ से छक तोड़ा। 'मनुष्य जानियों से डरते हैं, जानों से मुक्त हैं धीर बुद्धि से विचार करते हैं।'

( ४ ) जिस बलु के लिये कोई क्रिया की जाती है उसके वाचक संज्ञा के रूप को अंत्यदान-कारक कहते हैं; जैसे, 'राजा ने ब्राह्मण को मन दिया। 'युद्धके सुनि रोमा परीक्षित को क्या मुक्त हैं। 'सबका नहाने को गया है।

( ५ ) अज्ञान-कारक संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे क्रिया के विषय की अपेक्षा सूचित होती है; जैसे पंख से छक गिरा। 'गंगा हिमालय से निकली है।

( ६ ) संज्ञा के जिस रूप से उसकी वाच्य बलु का संबंध किसी दूसरी बलु के साथ सूचित होता है उस रूप को संबंध-कारक कहते हैं; जैसे राजा का महक लड़के की पुस्तक, परदार को हुकूम इत्यादि। संबंध कारक का रूप संबंधी शब्द के द्विग वाच्यकारक के कारण बढ़ता है।  
( अ०—३०१-४ )

( ७ ) संज्ञा का वह रूप जिससे क्रिया के आचार का बोध होता है अधि-करल-कारक कहा जाता है; जैसे सिंह वन में रहता है। 'बंदर पंख पर चढ़ रहे हैं।

( ८ ) संज्ञा के जिस रूप से किसी को चिताना वा पुकारना सूचित होता है उसे संबोधन-कारक कहते हैं; जैसे हे माय ! मेरे अचरार्थों को जमा करना। 'दिये हो काम से परदे में रोना।' 'अरे लड़के, हथर का।'

[ अ०—कारको के विद्यय प्रयोग और अय वाच्य-विन्यास के कारण प्रकरण में लिखे जायेंगे। ]

### विभक्तियों की व्युत्पत्ति

३०१—हिंदी की अधिकांश विभक्तियाँ प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकली हैं परंतु हम भाषाओं के विद्वान् हिंदी की विभक्तियों दोनों रूपों में एक रूप रहती है। हम विभक्तियों को कोई-कोई वैचारिक प्रत्यय नहीं मानते;



किन्तु संबंध-सूचक अण्वों में गिनते हैं। विभक्तियों और संबंध-सूचक अण्वों का साधारण अंतर पद्य ( अ०—२३२—ग में ) बताया गया है और आगे इसी अण्वाम ( अ०—२४४—३१५ ) में बताया जाया। यहाँ केवल विभक्तियों की व्युत्पत्ति केवल हो एक प्रकार्यों में अंशेपता लिखी गई है, पर इसका सविस्तार विवेचन विज्ञापनी विज्ञानों ने किया है। मिश्रणी ने भी अपने 'विभक्तिविचार' में इस विषय की योग्य समालोचना की है। तथापि हिंदी विभक्तियों की व्युत्पत्ति बहुत ही विज्ञान-मूलक विषय है। इसमें बहुत कुछ मूल शोध की आवश्यकता है और जब तक अपूर्ण-प्राकृत और प्राचीन हिंदी के बीच की माप का पता न चले तब तक यह विषय बहुत अज्ञान ही रहेगा।

( १ ) कर्ता-कारक—इस कारक के अधिकांश प्रयोगों में कोई विभक्ति नहीं आती। हिंदी आकारण पुर्विक्रम शब्दों को छोड़कर शेष पुर्विक्रम शब्दों का मूल रूप ही इस कारक के दोनों बचनों में आता है। पर अधिकांश शब्दों और आकारण पुर्विक्रम शब्दों के पशुवचन में कर्तांतर होता है, जिसका विचार वचन के अभाव में हो सुख्य है। विभक्ति का यह अभाव सूचित करने के लिए ही कर्ताकारक की विभक्तियों में ० चिह्न लिखा दिया जाता है। हिंदी में कर्ताकारक की कोई विभक्ति ( प्रत्यय ) न होने का अर्थ यह है कि प्राकृत में आकारण और आकारण पुर्विक्रम संज्ञाओं को छोड़ शेष पुर्विक्रम और अधिकांश संज्ञाओं का प्रथमा ( एकवचन ) विभक्ति में कोई प्रत्यय नहीं है और संस्कृत के कई एक उत्तम शब्द भी हिंदी में प्रथमा एक वचन रूप में आते हैं।

हिंदी में कर्ता-कारक की जो 'ने' विभक्ति आती है वह प्रथम में संस्कृत की कर्ताया विभक्ति ( कर्त्तृ-कारक ) के 'ना' प्रत्यय का कर्तांतर है, परंतु हिंदी में 'ने' का प्रयोग संस्कृत 'वा' के समान कर्त्तृ ( साधन ) के अर्थ में कभी नहीं होता। इसलिए उसे हिंदी में कर्त्तृ कारक की ( कर्ताया ) विभक्ति नहीं मानते। 'ने' का प्रयोग वाक्य-विन्यास के कारक-प्रत्यय में लिखा जाया ) यह 'ने' विभक्ति परिचयी हिंदी का एक विशेष चिह्न है, पूर्वी हिंदी ( और बँगला, उड़िया आदि भाषाओं ) में इसका प्रयोग नहीं होता। मराठी में इसके दोनों बचनों के रूप क्रमशः 'ने' और 'नी' हैं। 'न' विभक्ति को अधिकांश ( देशी और विदेशी ) देवाकरय संस्कृत के 'ना' ( प्रा०—१४ ) से व्युत्पन्न मानते हैं, और उसके प्रयोग ही हिंदी रचना भी प्रायः संस्कृत के

अनुमात्र होती है। परंतु कैलाश साहब बीमर साहय के मत के अनुसार पर उसे 'बग्' ( संगे ) वागु के भूतकारिक कृत्त 'बग्' का अपभ्रंश मानकर यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि हिंदी की विभक्तिपूर्ण प्रत्यय नहीं हैं, किंतु संज्ञाओं और दूसरे शब्द-भेदों के अवयव हैं। प्राकृत में इस विभक्ति का रूप एकवचन में 'ए' और अपभ्रंश में 'ऐ' है।

( २ ) कर्म-कारक—इस कारक की विभक्ति 'को' है, पर बहुधा इस विभक्ति का बोध हो जाता है, और तब कर्म-कारक की संज्ञा का रूप दोनों वचनों में कर्ता-कारक ही के समान होता है। यही 'को' विभक्ति संप्रदान कारक की भी है, इसलिए ऐसा कद सज्जे हैं कि हिंदी में कर्म कारक का कोई निश्चय रूप नहीं है। इसका रूप पर्याय में कर्म और संप्रदान-कारकों में बड़ा हुआ है। इस विभक्ति की व्युत्पत्ति के विषय में व्यास की माया प्रभाकर में, योग्य साहय के मतानुसार लिखते हैं कि 'कदाचित् बहु स्वार्थितं 'क' से निकला हो, पर सूत्रम संबंध हमका संस्कृत से जाय पड़ता है, जैसे कर्त्तु=कर्त्त=कर्त्त=कर्त्तु=काहे कर्त्तु=कर्त्तु=कर्त्तु=कर्त्तु=को। इस संबन्धे व्युत्पत्ति का संशय करते हुए मिश्रजी अपने 'विभक्ति-विचार' में लिखा है कि कार्यापन ने अपने व्याकरण अष्टाङ्ग पञ्चसिद्धि, सप्तमो यको अनुको, आदि उदाहरण दिये हैं। आर तुम्हादेन पाठं म्भरतो को। आदि सूत्रों से 'तुम्हादे' 'भम्भक' 'भम्भ आदि भवत कर्त्तु को सिद्ध किया है। प्राकृत के इन रूपों से ही हिंदी में हमको हमें, तुमको तुम्हें, आदि रूप बने हैं और इनके आदर्श पर ही त्रितीया विभक्ति बिम्ब 'को' सय रूपों के संग प्रचलित हो गया। इन दोनों पुस्तिकों में बीच भी प्राय है, यह बताया करिब है, क्योंकि दोनों ही अनुमान हैं और इनको सिद्ध करने के लिए प्रार्थन हिंदी के कोई उदाहरण नहीं मिलता। विभक्ति-विचार' में यह 'कर्त्तु आदि की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं कहा गया।

( ३ ) कार्य कारक—इसकी विभक्ति 'से' है। यहो प्रत्यय अपादान कारक का भी है। कर्म और संप्रदान-कारकों की विभक्ति के समान हिंदी में कार्य और अपादान कारकों की विभक्ति भी एक ही है। मिश्र जी के मत में यह से विभक्ति प्राकृत की पंचमो विभक्ति 'सुन्तो' से निकली है और इसमें हिंदी के अपादान कारक के प्राचीन रूप से 'सो', आदि व्युत्पत्त हुए हैं। चंद्र के महाभाष्य में अपादान के अर्थ में 'तुतो' और 'तृत' आये

हैं जो प्राकृत की पंचमी के दूसरे प्रत्यय 'हितो' से निकलते हैं। हार्वंडी साहब का मत भी प्रायः ऐसा ही है। पर कैंडाग साहब जी सब विभक्तियों की स्वतंत्र शब्दों के टूटे-फूटे रूप सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, इस विभक्ति को संस्कृत के 'सम' शब्द का रूपांतर मानते हैं। 'से' की व्युत्पत्ति के विषय में मिश्रजी ( और हार्वंडी साहब ) का मत ठीक ज्ञान पड़ता है; परंतु इन विद्वानों में से किसी ने यह नहीं बतलाना कि हिंदी में 'से' विभक्ति करके और अपादान दोनों कारकों में कबोकर प्रचलित हुई; जब कि संस्कृत और प्राकृत में दोनों कारकों के लिए अक्षय-अक्षय विभक्तियाँ हैं। 'आपा-प्रमाकर' में वहाँ और और विभक्तियों की व्युत्पत्ति बताने की चेष्टा की गई है, वहाँ 'से' का नाम तक नहीं है।

( ४ ) संबंध-कारक—इस कारक की विभक्ति 'क' है। वाक्य में जिस शब्द के सामे संबंध-कारक का संबंध होता है उसे भेद कहते हैं और भेद के संबंध से संबंध कारक को भेदक कहते हैं। 'राजा का घोड़ा'—इस वाक्यांश में 'राजा' का भेदक और 'घोड़ा' भेद है। संबंध-कारक की विभक्ति 'क' भेद के सिंग, कथन और कारक के अनुसार बदलकर 'की' और 'के' हो जाती है। हिंदी की और-और विभक्तियों के समान 'क' विभक्ति की व्युत्पत्ति के विषय में भी वैशाकरजी का मत एक नहीं है। उनके मतों का सार नीचे दिया जाता है—

( अ ) संस्कृत में इक, ईन, इय प्रत्यय संज्ञाओं में चलने से 'तरसंबंधी' विशेषण बनते हैं; जैसे कथा-कथिक, कृत्-कृत्वीन, राइ-राइवीन। 'इक' से हिंदी में 'का' 'ईन' से गुजराती में 'नो' और 'इय' से सिंधी में 'नो' और मराठी में 'चा' आया है।

( आ ) प्रायः इन्हीं अर्थ में संस्कृत में एक प्रत्यय क आता है, जैसे, मद्रक= मद्र देश में उत्पन्न, रोमक=रोम-देश-संबंधी, आदि। प्राचीन हिंदी में भी वर्तमान 'क' के स्थान में 'क' पाया जाता है। जैसे 'पितृ भ्रातृसु' सब अर्थ-क लेख। ( राम० )। इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हिंदी 'का' संसृज्य के 'क' प्रत्यय से निकला है।

( इ ) प्राकृत में 'इई' ( संबंध ) अर्थ में केरघो, 'केरिघा', 'केरक' 'केर', आदि प्रत्यय आते हैं जो विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं और सिंग में विशेष्य के अनुसार बदलते हैं, जैसे, कथ्यकेरकं पदं पदार्थं ( सं०

सत्य संदर्भित इव प्रबन्धार्थ) = किसका यह वाहन ( है ) । इन्हीं प्रत्ययों से रासी की प्राचीन हिंदी के केरा, केरी आदि प्रत्यय निकले हैं जिनसे वर्तमान हिंदी के 'का-के-की' प्रत्यय बने हैं ।

( ई ) कक, इकक, एयय आदि प्राकृत के इदमर्ष के प्रत्ययों से ही क्पांतरित होकर वर्तमान हिंदी के 'का-के-की' प्रत्यय सिद्ध हुए दिखते हैं ।

( क ) सर्वनामों के रा-ने-नी प्रत्यय केरा, केरो आदि प्रत्ययों के प्राय 'क' का जोप करने से बने हुए समझे जाते हैं । ( मारबाही तथा बँगाल में वे अथवा इन्हीं के समान प्रत्यय संज्ञाओं के संबंध-कारक में आते हैं । )

इस मत मतांतर से जाह पक्का है कि हिंदी के संबंध-कारक की विभक्तियों की व्युत्पत्ति निरिच्छत नहीं है । तथापि यह बात प्रायः निरिच्छत है कि वे विभक्तिर्वा संस्कृत वा प्राकृत की किसी विभक्ति से नहीं निकली हैं; किंतु किसी तत्रित-प्रत्यय से व्युत्पन्न हुई हैं ।

( ५ ) अपिकरण्य कारक—इसकी दो विभक्तियाँ हिंदी में प्रचलित हैं—'र' और 'पर' । इनमें से 'पर' को अपिकरण्य रूपसंस्कृत 'उपरि' का अपभ्रंश मानकर विभक्तियों में नहीं गिनते । 'उपरि' का एक और अपभ्रंश 'ऊपर' हिंदी में संबंध-सूचक के समान भी प्रचलित है । 'विभक्ति-विचार' में मिश्रजी ने 'बिने', 'विमित', आदि के समान 'पर ( ई )' को भी स्वतंत्र शब्द माना है, पर उसकी व्युत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं लिखा । कथार्थ में 'पर' शब्द स्वतंत्र ही है क्योंकि यह संस्कृत वा प्राकृत की किसी विभक्ति वा प्रत्यय से नहीं निकला है । पर को अपिकरण्य कारक का विभक्ति मानने का कारण यह है कि अपिकरण्य से जिस आधार पर दोष होता है उसका सब भेद करने में से सूचित नहीं होते, जैसा संस्कृत की सप्तमी विभक्ति से होता है ।

'र' की व्युत्पत्ति के विषय में भी मतभेद है और इसके मूल रूप का निश्चय नहीं हुआ है । कोई इसे संस्कृत 'मध्ये' का और कोई प्राकृत सप्तमी विभक्ति 'मि' का क्पांतर मानते हैं । मिश्रजी लिखते हैं कि यदि 'मैं' संस्कृत 'मध्ये' का अपभ्रंश होता तो 'मैं' के साथ ही 'मॉक', 'मैम्बर', 'मधि', आदि का प्रयोग हिंदी में न होता । गुजराती का, सप्तमी का, प्रत्यय 'मौ' इसी ( पिदुसे ) मत की पुष्ट करता है, क्योंकि 'मैं' प्राकृत 'मि' का अपभ्रंश है ।

( १ ) संबोधन-कारक—कोई-कोई वैवाचक्य इसे प्रथम कारक नहीं मानते, किंतु कर्ता-कारक के अंतर्गत मानते हैं। संबोधन-कारक के अभाव पर कारकों में इसविषय नहीं विना जाता कि इस दोनों कारकों का संबोधन बहुधा क्रिया से नहीं होता। संबोधन-कारक का अर्थ तो क्रिया के परीच रूप से होता भी है; परंतु संबोधनकारक का अर्थ वाक्य में किसी शब्द के साथ नहीं होता। इसकी केवल इसीविषय कारक मानते हैं कि इस अर्थ में संज्ञा का स्वतंत्र रूप पाया जाता है। संबोधन-कारक की कोई प्रथम विभक्ति नहीं है; परंतु धीरे धीरे कारकों के अभाव उसके दोनों रूपों में संज्ञा का अंतर होता है। विभक्ति के बगुने इस कारक में संज्ञा के पहले बहुधा है, हो, ओ आदि विस्मयादि बोधक अर्थ्य अंगों के साथ हैं। इन शब्दों के अभाव विस्मयादि बोधक अर्थ्य के अभाव में दिये गये हैं।

३००—विभक्तिर्वाचन प्रत्यय कदाचित् है, अर्थात् उनके परचात् दूसरे प्रत्यय नहीं आते। इस प्रथम के अनुसार विभक्तियों धीरे दूसरे प्रत्ययों का अंतर स्पष्ट हो जाता है। जैसे, 'संसार-भर के अर्थ-गिरि पर।' ( भारत )। इस वाक्यार्थ में 'भर' शब्द विभक्ति नहीं है। क्योंकि उसके परचात् 'के' विभक्ति आई है। इस 'के' के परचात् भर, एक वाचा आदि कोई प्रत्यय नहीं आ सकता। तथापि हिंदी में अधिभार-कारक की विभक्तियों के साथ बहुधा संबोधन का अपादान-कारक की विभक्ति आती है, जैसे, 'हमारे पाठकों में से कौनों ने।' ( भारत० )। 'जब उसको आसन पर ले रखा गया।' ( सुभा० ) 'छत्र पर से।' ( शिव० )। 'ऊपर से का मेंक।' 'जहाज परसे पायी', इत्यादि।

( ४ ) संबोधन-कारक के साथ कभी-कभी जो विभक्ति आती है वह बोध के अभावार्थ के कारण आती है; जैसे, 'इस रवि के ( ) को बचने हीजिये।' ( शकु )। 'यह काम किसी घर के ( ) ने किया है। कभी-कभी संबोधन-कारक को संज्ञा मानकर उसका बहुवचन भी कर देते हैं; जैसे, 'यह काम घरकीं ने किया है।' ( घरकीं ने=परचाछों ने )।

३०१—कोई-कोई विभक्तिर्वाचन कुछ अर्थ्यों में भी पाई जाती है। जैसे—

को—कहाँ को, यहाँ को, आगे को।

से—कहाँ से, यहाँ से, आगे से।

पर—कहाँ पर, यहाँ पर, कब पर।

पर—यहाँ पर, वहाँ पर।

## संज्ञाओं की कारक-रचना ।

१०६—विभक्तियों के वीच के पहले संज्ञाओं का जो स्फांतर होता है उसे विभक्त रूप कहते हैं; जैसे, 'घोड़ा' शब्द के 'ये' विभक्ति के वीच में एक पक्ष में 'घोड़े' और बहुवचन में 'घोड़ों' हो जाता है। इसविषय 'घोड़े' और 'घोड़ों' विभक्त रूप हैं। विभक्ति-रहित कर्ता और कर्म को छोड़कर शेष कारक त्रिन में संज्ञा का सर्वनाम का विभक्त रूप आता है, विभक्त कारक कह्यते हैं।

११०—एकवचन में विभक्त रूप का प्रत्यय 'ए' है जो, केवल हिंदी और उर्दू ( तर्कमय ) आध्यात्म पुर्विज्ञान संज्ञाओं में लगया जाता है, जैसे सङ्ग-सङ्गके वे, घोड़ा—घोड़े से सोया—सोये का, परदा—परदे में, घंटा—ई जंजे इत्यादि ( अ०—१२६ ) ।

( क ) हिंदी आध्यात्म संज्ञाओं का विशेषणों में 'एक' से जो भाववाचक संज्ञाएँ लगती हैं उनके आगे विभक्ति आगे पर मूल संज्ञा या विशेषण का रूप विभक्त होता है जैसे कथापन—कथेपन को गुंथापन—गुंथेपन से, पहिरा पन—बाहिरपन में इत्यादि ।

अप०—( १ ) संज्ञोपन-कारक में 'वेदा' शब्द का रूप बहुधा नहीं बदलता; जैसे, 'अर वेदा, कौन जोयो ?' ( सप्त० ) । 'वेदा ! उद !' ( १५ ) ।

अप०—( २ ) त्रिन आध्यात्म पुर्विज्ञान शब्दों का रूप विभक्तिरहित बहुवचन में नहीं बदलता वे एकवचन में भी विभक्त रूप में नहीं आते ( अ०—१२६ और अरवाच ) जैसे, राजा से, काका को, इरागा से, इंदता में, रामचोका का इत्यादि ।

अप०—( ३ ) भारतीय प्रसिद्ध स्मार्तों के व्यक्तिवाचक आध्यात्म पुर्विज्ञान नामों को छोड़, शेष सभी तथा मुसलमानी रणवाचक आध्यात्म पुर्विज्ञान शब्दों का विभक्त रूप विभक्त में होता है, जैसे 'आगरे का आया हुआ । ( गुण० ) । 'फलकसे के महलों में ।' ( वि० ) । 'इस पाटलिपुत्र ( पठने ) के विषय में ।' ( सुधा० ) । 'राजपूताने में, 'दरमंग की कपड़ ।' ( वि० ) । 'दरमंग से । ( अ० ) दिव्यादा में या दिव्यादे में, बसरा से या बसरे से, इत्यादि ।

मात्रबन्ध—प्राक्प्रत्यय स्थानों के धीरे कड़े ऐसी संज्ञाओं के आकारोंतः पुर्विङ्ग नाम अधिकृत रहते हैं; आम्बिका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कासा, रीबो, नामा, कांठ आदि ।

अप०—( ३ ) जब किसी विकारी आकारोंत संज्ञा ( अथवा वृद्धरे शब्द ) के सर्वप्रकारके के बाद वही शब्द आता है तब पूर्व शब्द बहुधा अधिकृत रहता है; जैसे, कोय का कोय; बीसा का बीसा ।

अप०—( ५ ) यदि विकारी संज्ञाओं ( धीरे वृद्धरे शब्दों ) का प्रयोग शब्द ही के अर्थ में ही तो विभक्ति के पूर्व बन्धन अधिकृत रूप नहीं होता, जैसे, 'घोड़ा' का गया अर्थ है, 'मैं' को सर्वनाम कहते हैं, 'जैसा' से विशेषता सूचित होती है ।

३११—बहुवचन में विहित रूप के प्रत्यय ओं धीरे धीरे हैं ।

(क) अकारोंत, विकारी आकारोंत धीरे द्वितीयाकारोंत शब्दों के अन्त्यस्वर में ओं आदेश होता है; जैसे, घर—घरों को ( ५० ) बात—बातों में ( श्री० ), बड़का—बड़कों का ( ५ ) द्विबिधा—द्विबिधों में ( श्री० ) ।

(ख) मुबिया, अणुषा, पुरबा धीरे बाप-बाबा शब्दों का विहित रूप बहुधा इसी प्रकार से बनता है; जैसे मुबियों को, अणुषों से, बाप-बाबों का इत्यादि ।

सुर०—संस्कृत के हसंत शब्दों का विहित रूप अकारोंत शब्दों के समाव होता है, जैसे विद्वाद्-विद्वाहों को, सरिद्-सरिहों को इत्यादि । ]

(ग) अकारोंत संज्ञाओं के अन्त्य ह्रस्व स्वर के परचात् 'या' लगाया जाता है; जैसे, मुबि—मुबियों को, हाथी—हाथियों से, शक्ति—शक्तियों का, नारी—नारियों में इत्यादि ।

(घ) शेष शब्दों में अन्त्य स्वर के परचात् 'ओं' आता है; जैसे राजा-राजाओं को, साधु—साधुओं में, माता—माताओं से, धेनु—धेनुओं का, बीजे बीजेधों में, बी—बीधों को ।

[ ५ —विहित रूप के परले ई ओर ऊ ह्रस्व हा आते हैं । ( अ — २९२, २९३ ) ]

( ३ ) ओकारांत शब्दों के अंत में कबह अनुस्वार आता है; भीर साजुम्बार ओकारांत तथा श्रीकारांत संज्ञाओं में कोई कर्मांतर नहीं होता; जैसे, रासी—रासों में, बोहों—बोहों में, सरसों—सरसों का इत्यादि।

( अं०—१११—१ ) ।

[ ६०—हिंदी में देकारांत पुस्तिय और एकारांत, देकारांत तथा ओकारांत आन्तिय संज्ञाएँ नहीं हैं । ]

(क) विन आकारांत शब्दों के अंत में अनुस्वार होता है उसके बचन भीर कारकों क रूपों में अनुस्वार बना रहता है; जैसे रोहों—रोहों, रोहों से रोहों में ।

(घ) आका; यमी बरसात, मूक, प्यास आदि इन् शब्द विद्वत कारकों में बहुधा बहुवचन ही में आते हैं; जैसे, मूकों मरना बरसातों की रातें, गरमियों में, जाहों में इत्यादि ।

(ङ) कुछ आक-आक संज्ञाएँ विभक्ति के बिना ही बहुवचन क विद्वत रूप में आती हैं; जैसे, पारसी बात गये हम जान में घंटों आ गये हैं ।'

( अं०—११२ )

११२—एक प्रत्येक लिंग भीर अंत की एक एक संज्ञा की कारक-रचना के उदाहरण दिये जाते हैं, पहले उदाहरण में सब कारकों के रूप रहेंगे; परंतु आगे के उदाहरणों में केवल कर्ता, कर्म भीर संबोधन के रूप दिये जावेंगे । बीच के कारकों को रचना कर्म-कारक के समान उन्ही विभक्तियों के बोग से हो सक्ती है ।

## ( क ) पुस्तिय संज्ञाएँ

### ( १ ) अकारांत

कारक	पुस्तिय	बहुवचन
कर्ता	कारक	कारक
	कारक से	कारकों से
कर्म	कारक को	कारकों को
संबोध	कारक से	कारकों से
संज्ञा	कारक को	कारकों को



प्रत्ययवाह—पारवात्य स्थातों के धीर कर्तृ हेतु संस्थाओं के आकारांत पुर्विधग नाम अभिवृत्त रहते हैं, आफ्रिका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जाप्ता, रीर्वा, भामा, कोटा आदि ।

अप०—( ४ ) जब किसी विकारी आकारांत संज्ञा ( अथवा दूसरे शब्द ) के अंत्य-कारक के बाद वही शब्द आता है तब पूर्व शब्द बहुधा अभिवृत्त रहता है, जैसे, कोटा का बीटा बीसा का तैसा ।

अप०—( ५ ) यदि विकारी संज्ञाओं ( धीर दूसरे शब्दों ) का प्रयोग शब्द ही के अर्थ में हो तो विभक्ति के पूर्व अवका विहित रूप नहीं होता, जैसे, 'धोषा' का नया अर्थ है, 'मी' को सर्वनाम कहते हैं, 'बीसा' से विशेषता सूचित होती है ।

३२१—वयुवचन में विहित रूप के प्रत्यय अंत्य धीर यों हैं ।

(अ) आकारांत, विकारी आकारांत धीर हिंदी आकारांत शब्दों के अंत्यस्वर में यों आदेश होता है, जैसे, घर—घरों को ( पु० ), बाठ—बाठों में ( श्री ), लड़का—लड़कों का ( पु० ), दिविसा—दिविसों में ( श्री० ) ।

(आ) मुखिया, अगुआ, पुरखा धीर बाप-बादा शब्दों का विहित रूप बहुधा इसी प्रकार से बचता है, जैसे मुखियों को, अगुओं से, बाप दादों का इत्यादि ।

सूर०—संस्कृत के हस्त शब्दों का विहित रूप आकारांत शब्दों के समान होता है, जैसे विद्वात्-विद्वाओं को, अरिह-सरितों को इत्यादि । ]

(इ) आकारांत संज्ञाओं के अंत्य इत्य स्वर के परचाए 'दा' लगाया जाता है, जैसे, मुनि—मुनिदों को, हाथी—हाथिदों से, शक्ति—शक्तिदों का बही—बहिदों में इत्यादि ।

(ई) शीघ्र शब्दों में अंत्य स्वर के परचाए 'ओं' आता है, जैसे, रामा-रामाओं को, साधु—साधुओं में, माता—माताओं से, धेनु—धेनुओं का, बीबेधों में, बी—बीधों को ।

[ सू०—विहित रूप के पहले इ धीर ऊ इत्य हा आठे हैं । ( अ०—२२२, २२३ ) ]

( ४ ) श्रीकारांत शब्दों के अंत में कबज अनुस्वार आता है, और साधुस्वार श्रीकारांत तथा श्रीकारांत संज्ञाओं में कोई क्रांति नहीं होता, जैसे, शसो—शसों में, शीशों—शीशों में, सरसों—सरसों का इत्यादि ।

( अ०—२२२—२ ) ।

[ ६०—हिंदी में श्रीकारांत पुंलिङ्ग और श्रीकारांत, श्रीकारांत तथा श्रीकारांत स्त्रीलिङ्ग संज्ञाएँ नहीं हैं । ]

( ५ ) जिन श्रीकारांत शब्दों के अंत में अनुस्वार आता है उनके बचन और कारकों के अंत में अनुस्वार बना रहता है, जैसे शीशों—शीशों, शीशों में शसों में ।

( ६ ) बाबा, गमों बरसात, मूक आस आदि कुछ शब्द विभूत कारकों में बहुधा बहुवचन ही में आते हैं, जैसे, मूकों मरना, बरसातों की रातें, गरमियों में, बाबों में इत्यादि ।

( ७ ) कुछ अत्र-बाचक संज्ञाएँ विभक्ति के बिना ही बहुवचन के विभूत रूप में आती हैं, जैसे बरसों बात गप इस अर्थ में अंतों का लगे हैं ।

( अ०—२२२ )

११२—अब प्रायेण द्विग श्री अंत की एक एक संज्ञा की कारक-अकारक उदाहरण दिये जाते हैं, पहले उदाहरण में सब कारकों के रूप हैं, और बाद में उदाहरणों में कबज अंत, अर्थात् श्री संयोग के रूप दिये जाते हैं । बीच के कारकों को अर्थात् अकारक के समान उभयों विभक्तियों के अंत में ही समझी है ।

### ( क ) पुंलिङ्ग शब्दों

#### ( १ ) श्रीकारांत

कारक	एकवचन	बुद्ध
अकारक	बहुवचन	बुद्धों
अकारक	एकवचन	बुद्धों
अकारक	बहुवचन	बुद्धों
अकारक	एकवचन	बुद्धों
अकारक	बहुवचन	बुद्धों

कारक	एकवचन	बहुवचन
अपादान	वाचक से	वाचकों से
संबंध	वाचक का-ने-की	वाचकों-वाचके-की
अधिकरण	वाचक में	वाचकों में
	वाचक पर	वाचकों पर
संबोधन	हे वाचक	हे वाचकों

## ( १ ) आकारांत ( विभक्त )

कर्ता	लड़का	लड़के
	लड़के से	लड़कों से
कर्म	लड़के को	लड़कों को
संबोधन	हे लड़के	हे लड़को

## ( २ ) आकारांत ( अविभक्त ) ।

कर्ता	राज	राजा
	राजा से	राजाओं से
कर्म	राजा की	राजाओं को
संबोधन	हे राजा	हे राजाओ

## ( ३ ) आकारांत ( वैकल्पिक ) ।

कर्ता	बाप-दादा	बाप-दादा
	बाप-दादा से	बाप-दादाओं से
कर्म	बाप दादा को	बाप दादाओं को
संबोधन	हे बाप-दादा	हे बाप-दादाओं

( अपवा )

कर्ता	बाप-दादा	बाप-दादे
	बाप-दादे से	बाप-दादों से
कर्म	बाप-दादे को	बाप-दादों को
संबोधन	हे बाप-दादे	हे बाप-दादो

## ( ५ ) हकारांत ।

कर्ता	मुनि	मुनि
-------	------	------

कर्म

पद्मवचन

बहुवचन

कर्म  
संबोधन

मुनि से  
मुनि को  
हे मुनि

मुनियों से  
मुनियों को  
हे मुनियो

( १ ) ईकारांत ।

कर्ता

माखी  
माखी से  
माखी को  
हे माखी

माखी  
माखियों से  
माखियों को  
हे माखियो

कर्म  
संबोधन

( २ ) उकारांत

कर्ता

साधु  
साधु से  
साधु को  
हे साधु

साधु  
साधुओं से  
साधुओं को  
हे साधुओं

कर्म  
संबोधन

( ८ ) ङकारांत

कर्ता

बाहू  
बाहू से  
बाहू को  
हे बाहू

बाहू  
बाहुओं से  
बाहुओं को  
हे बाहुओं

कर्म  
संबोधन

( ६ ) णकारांत ।

कर्ता

बाँधि  
बाँधि से  
बाँधि को  
हे बाँधि

बाँधि  
बाँधियों से  
बाँधियों को  
हे बाँधियो

कर्म  
संबोधन

( १० ) शोकारांत

कर्ता

रासो  
रासों से  
रासों को  
हे रासो

रासो  
रासों से  
रासों को  
हे रासो

कर्म  
संबोधन

कारक	एकवचन	बहुवचन
	( ११ ) धीकारांत	
कर्ता	धी	धी
	धी ने	धीर्यों ने
कर्म	धी को	धीर्यों को
संबोधन	हे धी	हे धीर्यो

## ( १२ ) साधुस्वार धोकारांत

कर्ता	धोहीं	धोहीं
	धोहीं ने	धोहीं ने
कर्म	धोहीं को	धोहीं को
संबोधन	हे धोहीं	हे धोही

## ( ख ) स्त्रीकिंग संज्ञार्थे

## ( १ ) षकारांत

कर्ता	बहिन	बहिनें
	बहिन ने	बहिनों ने
कर्म	बहिन को	बहिनों को
संबोधन	हे बहिन	हे बहिनो

## ( २ ) षाकारांत ( संस्कृत ) ।

कर्ता	शाखा	शाखाएँ
	शाखा ने	शाखाओं ने
कर्म	शाखा को	शाखाओं को
संबोधन	हे शाखा	हे शाखाओ

## ( ३ ) षाकारांत ( हिंदी )

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	शुद्धिवा	शुद्धियाँ
	शुद्धिवा ने	शुद्धियों ने
कर्म	शुद्धिवा को	शुद्धियों का
संबोधन	हे शुद्धिवा	हे शुद्धियो

कारक

पुरुषपक्ष

बहुवचन

कर्ता

( ४ ) इकारांत ।

कर्म  
संबोधनशक्ति  
शक्ति मे  
शक्ति को  
हे शक्तिशक्तिपौ  
शक्तिपौ मे  
शक्तिपौ को  
हे शक्तिपौ

( ५ ) ईकारांत ।

कर्ता

कर्म  
संबोधनदेवी  
देवी मे  
देवी को  
हे देवीदेविपौ  
देविपौ मे  
देविपौ को  
हे देविपौ

( ६ ) उकारांत ।

कर्ता

कर्म  
संबोधनधेनु  
धेनु मे  
धेनु को  
हे धेनुधेनुपौ  
धेनुपौ मे  
धेनुपौ को  
हे धेनुपौ

( ७ ) ङकारांत ।

कर्ता

कर्म  
संबोधनबहू  
बहू मे  
बहू को  
हे बहूबहुपौ  
बहुपौ मे  
बहुपौ को  
हे बहुपौ

( ८ ) रीकारांत

कर्ता

कर्म  
संबोधनगी  
गी मे  
गी को  
हे गीगीपौ  
गीपौ मे  
गीपौ को  
हे गीपौ

## ( १ ) सामुस्वार शोभरांत ।

कत्ता	सरसों	सरसों
	सरसों बे	सरसों बे
कर्म	सरसों को	सरसों को
संबोधन	हे सरसों	हे सरसों

(एकवचन के समान)

३१६—तत्सम संस्कृत संवाचों का मूल संबोधन-कारक ( एकवचन ) उक्त भी हिंदी और कविता में आता है, जैसे,

स्वर्जवांत संज्ञार्थ—राजन्, श्रीमान्, बिहन्, भगवान्, महात्मन्, स्वामिन्, इत्यादि ।

आश्रयार्थ संज्ञार्थ—कबिते, आगे, गिन, गिन्ने, सीते, राधे इत्यादि ।

इकारार्थ संज्ञार्थ—हरे, मुझे, सखे मठे, सतिापते इत्यादि ।

ईकारार्थ संज्ञार्थ—गुधि, देखि, माननि, जाननि, इत्यादि ।

उकारार्थ संज्ञार्थ—बंधी, प्रभो, येनो गुरो साथी इत्यादि ।

ककारार्थ संज्ञार्थ—पिता, दाता, माता, इत्यादि ।

विभक्तियों और सर्वथ-सूचक शब्दों में सर्वथ ।

३१७—विभक्ति के द्वारा संज्ञा ( या सर्वनाम ) का जो संबंध क्रिया या कृत्तरे शब्दों के साथ प्रकाशित होता है वही सर्वथी कर्मी कर्मी सर्वथ-सूचक शब्दों के द्वारा प्रकाशित होता है, जैसे,

‘बढ़का महाने को गया है’ अथवा ‘महाने को लिए गया है ।’ इसके विद्वत् सर्वथ-सूचकों से मिलने संबंध प्रकाशित होते हैं जब सब के लिये हिंदी में कारक नहीं हैं; जैसे, ‘बढ़का मदी लक गया’ ‘बिदिधा घोली समेत उठ गई’ ‘मुसाफिर पैद लले रीझ है’ ‘बीकर सोंप के पास पहुँचा’, इत्यादि ।

[ टी०—वहाँ अब ये प्रश्न उत्तरम होते हैं कि जिन सर्वथ-सूचकों से कारकों का अर्थ निकलता है उन्हें कारक क्यों न मानें और शब्दों के सब प्रकार के परस्पर संबंध सूचित करने के लिये कारकों की संख्या क्यों न बढ़ाई जाय ? यदि ‘महाने को’ कारक माना जाता है तो ‘महाने के लिए’ को भी कारक मानना चाहिये और यदि ‘पैद पर’ एक कारक है तो ‘पैद लले’ [उत्तरा कारक होना चाहिये ।

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये विमलियों और संबन्ध लक्षणों की उत्पत्ति पर विचार करना आवश्यक है। इस विषय में भाषाविदों का यह मत है कि विमलियों और संबन्ध लक्षणों का उपयोग बहुधा एक ही है। भाषा के आदि काल में विमलियाँ न थी और एक साथ दूसरे का संबन्ध स्वतंत्र शब्दों के द्वारा प्रकाशित होता था। बार-बार उपयोग में आने से इन शब्दों के टुकड़े हो गये और फिर उनका उपयोग प्राप्य-रूप से होने लगा। संस्कृत लघुलिपि प्राचीन भाषाओं में संयोगात्मक विमलियों की स्वतंत्र शब्दों के टुकड़े हैं। मिश्रणी 'विमलिविचार' में लिखते हैं कि "सु, मी, जसु, जम्, मी, शसु, श्य, म्या-मोस् आदि का स्वतंत्र रूप से रहाना ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है और वे बिना स्वतंत्र शब्दों में ही पूरा अर्थ में उपजे थे।" किसी भाषा में बहुत सी और किसी में थोड़ी विमलियाँ होती हैं। जिन भाषाओं में विमलियों की संख्या अधिक रहती है ( जैसे संस्कृत में है ) उनमें संबन्ध-लक्षणों का प्रचार अधिक नहीं होता। मिश्र-मिश्र भाषाओं के जो मंद दिखाए देते हैं उनका एक विशेष कारण यही है कि संबन्ध-लक्षणों का उपयोग किसी में स्वतंत्र रूप से और किसी में प्रत्यक्ष रूप से हुआ है।

इस विवेचन से ज्ञान पड़ता है कि विमलियों और संबन्ध-लक्षणों की उत्पत्ति प्रायः एक ही प्रकार की है। अर्थ की दृष्टि से भी दोनों समान ही हैं, परंतु रूप और प्रयोग की दृष्टि दोनों में अंतर है। इसलिए कारण का विचार केवल अर्थ के अनुसार ही न करके रूप और प्रयोग के अनुसार भी करना चाहिये। जिस प्रकार सिय और बचन के कारण लंकाओं का रूपांतर होता है उसी प्रकार शब्दों का परस्पर संबन्ध लक्षित करने के लिए भी रूपांतर होता है और उठे ( हिंदी में ) कारण कहते हैं। यह रूपांतर एक शब्द में दूसरा बोझ से मही, किंतु प्रत्यक्ष बाधने से होता है। संबन्ध-लक्षण अल्प एक प्रकार के स्वतंत्र शब्द हैं। इसलिये संबन्ध लक्षणों के अभावों को कारण नहीं कहते। इसके विषय, कुछ विशेष प्रकार के मुख्य संबंधों को जो कारण मानते हैं औरों को नहीं। यदि वह संबन्धलक्षणों के अभावों को कारण मानें तो अनेक प्रकार के संबन्ध लक्षित करने के लिये कारणों की संख्या न जाने कितनी बढ़ जाय।

विमलियों जिस प्रकार संबन्ध-लक्षणों से ( रूप और प्रयोग में ) भिन्न हैं उसी प्रकार वे लक्षित और इदं ( प्रत्ययों ) से भी भिन्न हैं। इदं का



उद्धित प्रत्ययों के आगे विभक्तियों आती हैं, पर विभक्तियों के पश्चात् छरंत वा उद्धित प्रत्यय बहुधा नहीं आते ।

इसी विषय के साथ इस बात का भी विवेचन आवश्यक जान पड़ता है कि विभक्तियों लंकाओं ( और लघनामों ) में मिश्राकर लिखी क्यों वा ठमसे प्रयुक्त । इसके लिए पहिले हम दो उदाहरण ठन पुस्तकों में से देते हैं बिनके लेखक संयोगवादी हैं—

( १ )

‘अब वह कैसे मासूम हो कि सोम बिन बातों को क्या मानते उन्हें भीमान् भी क्या ही मानते हों । अथवा आपके पूर्ववर्ती शासक ने जो काम किये आप भी उन्हें अस्वाय मरे काम मानते हों ? साथ ही एक और बात है । प्रथा के खोयीं की पहुँच भीमान् तक बहुत कठिन है । पर आपका पूर्ववर्ती शासन आपसे पहले ही मिल चुका और जो कहना या बह कर गया ।’  
( शिव० ) ।

( २ )

प्रायः पौने आठ सौ बष महाकवि चंद्र के समय से अब तक बीठ चुके हैं । चंद्र के सौ बष बाद ही अलाउद्दीन खिलजी के राज्य में दिल्ली में फरसी भाषा का सुप्रसिद्ध कवि अमीर खुसरौ हुआ । कवि अमीर खुसरौ की मृत्यु सम् १३२३ ईस्वी में हुई थी । सुतलमान कवियों में ठक अमीर खुसरौ हिंदी काव्य रचना के विषय में सर्वप्रथम और प्रधान माना जाता है ।  
( विभक्ति ) ।

हम अबतरलों से जान पड़ेया कि स्वयं लंकागवाहीं लेखक ही अमीर तक रक्तमत नहीं हैं । बिल एक शब्द ( अथवा प्रत्यय ) को गुप्तही मिश्राकर लेखते हैं ठली को मिश्रणी अलग लिखते हैं । मिश्रणी ने तो यहाँ तक किया है कि लंका में विभक्ति को मिश्राने के लिए खोनीं के बीच में ‘ही’ लिखना ही टुडक दिया है; यद्यपि यह अल्प्य लंका और विभक्ति के बीच में आता है । इसी तरह से गुप्तही ‘ठक’ को और शब्दों से ली अलग अलग, पर यहाँ में मिश्राकर मिश्राकर हैं । ‘पर’ के लंबव में भी खोनीं लेखकों का मत बेरोप है ।

एसी अवस्था में विभक्तियों का संशोधन से मिलाकर लिखने के लिये भाषा के व्याकरण पर कोई निश्चित नियम बनाना कठिन है। विभक्तियों का मिलाकर लिखने में एक बूझरी कठिनाई यह है कि हिंदी में बहुधा प्रकृति और प्रत्यय के साथ में कोई काह सम्भव भी आ सकते हैं जैसे 'बौरह पीढी तक का पता।' ( शिव० )। 'संसार मर क प्रयोगिनि।' ( भारत० )। 'पर ही क बाड़े।' ( राम० )। प्रकृति और प्रत्यय क बीच में समानाधिकरण शब्द क आ जाने से भी उन दोनों को मिलाने में बाधा आ जाता है; जैसे, 'विदर्भ नगर क राजा भीमसेन का कन्या भुवममोहिनी दुर्मर्त्यती का रूप।' ( गुरुदा० )। 'हरिगोविंद ( वंसारी क लड़के ) ने' ( परी० )। ठन्डे कामाक्षी स पिर हुए शब्दों के साथ विभक्ति मिलाने से आ गड़बड़ होती है उसके उदाहरण स्वयं विभक्ति व्याकरण में मिलते हैं जैसे 'समने' 'तके' उद्भव न होने का प्रत्यय प्रमाण, 'को का' संबन्ध इत्यादि। विभक्त्य ने कहीं कहीं विभक्ति का इन कामाक्षी के परत्वात् भी लिखा है जैसे, 'रु' का प्रयोग ( पृ० २६ ) 'स' क साथ में ( पृ० ८६ )। इस प्रकार के गड़बड़ प्रयोगों से संवागवाचियों के प्रायः सभी सिद्धांत लुप्त हो जाते हैं।

हिंदी में अविवारण शैलीक विभक्तियों का लक्षणाओं क साथ मिलाकर लिखते हैं, क्योंकि इनमें संज्ञाओं की प्रत्येका अधिक नियमित रूपांतर होते हैं, और प्रकृति तथा प्रत्यय के साथ में बहुधा काह प्रत्यय नहीं आते। तथापि 'भारत भारती' में विभक्तियों लक्षणाओं से भी पूरक लिखी यह है। ऐसी कथाया में मर्या क प्रयोग का व्याकरण वैसाकरण को नहीं है; इसलिए इस विषय को हम ऐसा ही अनिश्चित छोड़ देते हैं। ]

११५—विभक्तियों के बन्धों में कमी कमी नीचे लिखे संबंधसूचक प्रत्यय आते हैं—

- कर्मकारक—प्रति; तई ( पुरानी भाषा में )।
- करणकारक—झात करके करिये, कारण मारे।
- संज्ञानकारक—जिये, हेतु, निमित्त धर्य, बास्ते।
- धरादाहकारक—प्रत्येका अनिश्चय, सामने, आगे साथ।
- अधिकरण—सध्य बीच भीतर अंदर, ऊपर।

११६—हिंदी में कुछ संस्कृत कारकों का—विशेष कर करणकारक का प्रयोग होता है, जैसे, मुग्धेन ( मुग्ध से ) कृपया ( कृपा से ), येव केव प्रकारत

कारक	पृष्ठ	पङ्.
कर्ता	मैंने	हमने
कर्त्ता	मुझको, मुझे	हमको, हमें
कारण	मुझसे	हमसे
समदान	मुझको, मुझे	हमको, हमें
अपादान	मुझसे	हमसे
संबंध	मेरा-ने-री	हमारा-ने-री
अधिकारक	मुझमें	हममें

मध्यम पुदप 'द'

कारक	पृष्ठ	पङ्.
कर्ता	तुम्हें	तुम
कर्ता	तुम्हें	तुमने
कर्ता	तुम्हको, तुम्हें	तुम्हको, तुम्हें
कारण	तुम्हसे	तुमसे
समदान	तुम्हको, तुम्हें	तुम्हको, तुम्हें
अपादान	तुम्हसे	तुमसे
संबंध	तेरा-ने-री	तुम्हारा
अधिकारक	तुम्हमें	तुममें

(अ) पुदप-वाचक सर्वनामों की कारक-रचना में बहुत समानता है। कर्त्ता और संबोधन को बीच बीच कारकों के एकत्रचन में 'मैं' का विहित रूप 'मुझ' और 'द' का 'तुम्ह' होता है। संबंध कारक के दोनों बचनों में 'मैं' का विहित रूप क्रमशः 'मैं' और 'हम' और 'द' का 'ते' और 'तुम्हा' होता है। दोनों सर्वनामों में संबंध-कारक की रा-ने-री विभक्तिर्थाँ आती है। विभक्ति-रहित कर्त्ता के दोनों बचनों में और संबंध कारक को बीच बीच कारकों के बहुवचन में दोनों का रूप अविहित रहता है।

(आ) पुदप वाचक सर्वनामों के विभक्ति-रहित कर्त्ता के एकत्रचन और संबंध कारक को बीच बीच कारकों में अवधारक के द्विपे एकत्रचन में 'हैं' और बहुवचन में 'हैं' या 'हीं' लगाते हैं जैसे, मुझको, तुम्हसे, हमेंसे, तुम्हेंसे इत्यादि।

१) कविता में 'मेरा' और 'तेरा' के बदले बहुधा संस्कृत की यही के रूप  
 क्रमशः 'म' और 'त' आते हैं; जैसे 'करतुं सु मम नर धाम ।'  
 'राम०) । 'कहाँ गई तब गरिमा विरोध ?' (दि० प्र०) ।

२२७—निजवाचक 'आप' की कारक-रचना केवल एकवचन में होती है; परंतु एकवचन के रूप बहुवचन संज्ञा या सर्वनाम के साथ भी आते हैं। इसका विकृत रूप 'अपना' है जो सर्वव्ययकारक में आता है और जो 'अप' में सर्वव्ययकारक की 'ना' विभक्ति होने से बना है। इसके साथ 'मे' विभक्ति नहीं आती परंतु दूसरी विभक्तियों के योग से इसका रूप हिंदी आकारांत संज्ञा के समान 'अपने' हो जाता है। कर्त्ता और संबंध-कारक को जोड़ शेष कारकों में विकृत 'आप' के साथ विभक्तियाँ जोड़ी जाती हैं।

[ २०—'आप' शब्द का संबंध-कारक 'अपना' प्राकृत की बर्ती 'अपपय' से निकला । ]

### निजवाचक 'आप'

कारक	ए व
कर्त्ता	आप
कर्म—संबंध	अपने को आपको
कारण—अप	अपनेसे आपसे
संबंध	अपना-त-नी
अधिकार्य	अपनेमें आपमें

( अ ) कभी-कभी 'अपना' और 'आप' संबंध कारक को जोड़ शेष कारकों में मिश्रण आते हैं; जैसे, 'अपने-आप' 'अपने-आपको' 'अपने-आपमें' ।

( आ ) 'आप' शब्द का एक रूप 'आपस' है जिसका प्रयोग केवल संबंध और अधिकार्य-कारकों के एकवचन में होता है; जैसे कहें "आपस में कहते हैं।" जिनकी ही आपस की बातचीत ।" इसमें परस्परता का बोध होता है। कूर्त्-कूर्त् शैली 'अपस' का प्रयोग संज्ञा के समान करने है; जैसे "( जिजाता ने ) प्रीति भी तुम्हारे आपस में अपनी रखी है ।" ( शकु ) ।

- (इ) 'अपना' का संज्ञा के समान निज शीर्षों के धर्म में आता है एवं उसका कारक-रचना हिंदी भाषागत संज्ञा के समान दोनों बचकों में होती है जैसे, 'अपने माता पिता निज बच में कोई नहीं अपना पाया।' (धारा०) यह अपनों के पास नहीं गया।'
- (ई) मल्लिकार्जुन के धर्म में 'अपना' शब्द की विशेषता होती है, जैसे, अपने अपनेको सब कोई चाहते हैं।' 'अपनी-अपनी उच्छ्वाही और अपना अपना राग।'
- (उ) कमी-कमी 'अपना' के बदले निज (सर्वनाम) का संबंध-कारक आता है, और कमी-कमी दोनों रूप मिलकर आते हैं, जैसे, 'निजका मातृ निजका नीकर।' 'हम तुम्हें अपने निज के काम से भेजा चाहते हैं।' (मुद्रा०)।
- (ऊ) कविता में 'अपना' के बदले बहुधा 'निज' (विशेष्य) होकर आता है, जैसे, 'निज दृष्ट करते हैं किसी। (मारुत)। यथाग्रम निज-निज धरम, निरत वेद-यथ जोग।' (राम०)।

३२५—'आप' शब्द आदरसूचक भी है, पर उसका प्रयोग केवल धर्म्य पुरुष के बहुवचन में होता है। इस धर्म में उसकी कारक-रचना निज-वाचक 'आप' से मिल जाती है। विभक्ति के पहले आदरसूचक 'आप' का रूप विभक्त नहीं होता। इसका प्रयोग आदरार्थ बहुवचन में होता है, इसलिये बहुत्व का बोध होने क क्षिपु इसके साथ 'जोग या 'सब' कया बैठे हैं। इसके साथ 'के' विभक्ति आती है और संबंध कारक में 'का-के-की' विभक्तियाँ लगाई जाती हैं। इसके कर्म और संबन्ध-कारकों में दुहरे रूप नहीं आते।

#### आदरसूचक 'आप'

कारक	पुरु० ( आदर )	पुु ( संख्या )
कर्ता	आप	आप जोग
	आपने	आप जोगों ने
कर्म—संघ०	आपको	आप शीर्षों को
संबंध	आपका-के-की	आप जोगों का-के-की

[ ५ — इस शेष रूप विभक्तियों के साथ से इसी प्रकार बनते हैं । ]

३२६—विरचयवाचक सर्वनामों के हीनों वचनों की कारकबन्धा में स्वीकृत रूप आता है। एकवचन में "यह" का विभूत रूप 'इस', 'वह' का 'उस' और 'सो' का 'तिस' होता है। और बहुवचन में क्यसा 'इन', 'उन' और 'तिन' आते हैं। इसके विभक्ति सहित बहुवचन कर्ता के हीन्य 'त' में विकल्प से 'हो' जोड़ा जाता है। और कर्म तथा सम्प्रदान-अर्थों के बहुवचन में 'य' के पहले 'न' में 'ह' मिमाया आता है।

### विकृतवर्ती 'यह'

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	यह इसमे	यह, ये इतने इन्हींमे
कर्म—सम्प्रदान	इसको इसे	इन्को, इन्हें
क्यसा—अवधारण	इससे	इन्से
संप्रत्यय	इसका-के-की	इन्का-के-की
विभक्ति	इसमें इसवर्ती 'यह'	इन्में
कर्ता	वह उसने	वह, वे उसने, उन्हींमे
कर्म—सम्प्रदान	उसको, उसे	उन्को, उन्हें

[ व — रोच कारक 'यह' के अनुसार विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं । ]

### विरचयवाचकी 'सो'

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	सो तिसने	सो तिनने, तिन्हींमे
कर्म—सम्प्रदान	तिसको, तिस,	तिनको, तिन्हें

[ व०—रोच रूप 'यह' क अनुसार विभक्तियाँ लगावे से बनते हैं । ]

( घ ) 'सो' के जो रूप यहाँ दिए गये हैं वे वचनों में 'तीन' के हैं जो प्राचीन भाषा में 'तार ( जो ) तिस्य संदीवी है । 'तीन' यह प्रचलित नहीं है; परंतु उसके जोड़-जोड़ रूप 'सो' के पहले और कभी कभी 'तिस' के

साथ आते हैं; इसलिये भुमीति के विचार से सब रूप विकृत बिये गये हैं। 'तिसपर मी' 'त्रिष-तिसपे', आदि रूपों को जोष 'मीम' के शेष रूपों के बड़े 'वह' के रूप प्रचलित हैं।

( घा ) विशेषवाचक सर्वनामों के रूपों में ध्वनिवाचक के लिये एकवचन में ही और बहुवचन में ही अल्प स्वर में आदेश करते हैं। जैसे, यह—यही, वह—वही इन—इन्हींसे, उन्हींको, जोई, इत्यादि।

३१७—सर्वधवाचक सर्वनाम 'जो' और प्रत्ययवाचक सर्वनाम 'कीम' के रूप निरवधवाचक सर्वनामों के अनुसार बमते हैं। 'जो' के विकृत रूप दोनों वचनों में समान 'जिस' और 'जिब' हैं, तथा 'कीम' के 'किस' और 'किम' हैं।

#### सर्वध-वाचक 'जो'

कारक	एक०	बहु
कर्ता	जो	जो
कर्म—संप्रदान	जिसने	जिनमे, जिन्होंने
	जिसको, जिसे	जिबको, जिन्हें

#### प्रत्ययवाचक 'कीम'

कारक	एक०	बहु
कर्ता	कीम	कीम
कर्म—संप्रदान	किसने	किनमे, किन्होंने
	किसको, किसे	किमको, किन्हें

३१८—यह, वह सो, जो, और कीम के विभक्ति-सहित कर्ता-कारक के बहुवचन में जो दो-दो रूप हैं उनमें से दूसरा रूप अधिक रिद्ध समझा जाता है, जैसे, उनमे और उन्हींमे। जोई-जोई ध्वनिवाचक शेष कारकों में भी 'जो' जोषकर बहुवचन का दूसरा रूप बनाते हैं, जैसे, इन्हींको, जिन्होंने, इत्यादि। परंतु ये रूप प्रचलित नहीं हैं।

३१९—प्रत्ययवाचक सर्वनाम 'क्या' को कारक रचना नहीं होती। यह शब्द इसी रूप में केवल एकवचन ( विभक्ति-रहित ) कर्ता और कर्म में आता है, जैसे, 'क्या गिता ?' 'तुम क्या चाहते हो ?' दूसरे कारकों के एकवचन में 'क्या' के बड़े मञ्ज-भाष्य के 'कहा' सर्वनाम का विकृत रूप 'कहे' आता है।

## प्रत्ययवाचक 'नया'

कारक	ए० व०
कृता	नया
कर्म	नया
कारण अथा०	कार्य से
संज्ञान	कार्य को
संबंध	कार्य का-है-की
अधिकरण	कार्य में

( अ ) 'कार्य से ( अथाहाण ) और 'कार्य को' ( संज्ञान ) का प्रयोग 'नया' के अर्थ में होता है; जैसे, 'तुम यह कार्हीसे करते हो ?' 'क्या यह कार्हीको गया था ?' 'कार्य को' कभी कभी अस्मात्वाक्य के अर्थ में आता है; जैसे 'बोर कार्हीको हाय आता है' 'क्योंकि' समुच्चयबोधक में 'नया' के अर्थ में कभी-कभी 'कार्य से' का प्रयोग होता है ( अ०-२२५-अ ) जैसे, 'शकुंतला मुझ बहुत प्यारी है कार्हीसे कि वह मेरी चंदेरी की बेटी है।' ( राहु० ) । 'कार्य का अर्थ किस चीज से बना' है वा कर्म-कर्मो इसका अर्थ 'रूपा' भी होता है; जैसे, 'वह राजा ही कार्हीका है।' ( सत्य० ) ।

( आ ) 'नया से नया' और 'नया का नया' वाक्यों में 'नया' के साथ विभक्ति आती है । इनमें इत्थांतर स्पष्ट होती है ।

३१०—अभिरचपवाचक सर्वनाम 'कोई' अर्थ में प्रत्ययवाचक सर्वनाम से बना है; जैसे, सं०—कोयि, प्रा०—कोयि, हि०—कोई । इसका विकृत रूप 'किस' में अन्वयबोधक है प्रत्यय आगामे से बना है । 'कोई' की अन्वय रचना केवल एकवचन में होती है; परंतु इसके कर्मों की द्विवचन से बहुवचन का बोध होता है । कर्म और अन्वय-अन्वयों में इसका अन्वय का अर्थ भी होता है। इस अन्वयों का होता है ।

## अभिरचपवाचक 'कोई'

कारक	ए० व०
कृता	कोई
कर्म	किसी से
कर्म—अन्वय	किसी को



( इ ) कुछ काव्यवाचक संज्ञाओं के अधिकरवाचक के एकवचन के साथ ( कुछ के अर्थ में ) 'कोई' का अधिकृत रूप आता है, जैसे, 'कोई दम में' 'कोई बड़ी में' इत्यादि ।

३३८—धौगिक प्रारंभामिक विशेष्य आकारांत होते हैं, जैसे, ऐसा, वैसा, इतना, उतना इत्यादि । ये आकारांत विशेष्य विशेष्य के शिवा, बचन और कारक के अनुसार गुणवाचक आकारांत विशेष्यों के समान ( अ — ३३६ ) बदलते हैं, जैसे, ऐसा मनुष्य, ऐसे मनुष्य, जो ऐसे बच्चे, ऐसी लकड़ी, ऐसी लकड़ियाँ इत्यादि ।

( अ ) 'कौन', 'को' और 'कोई' के साथ अथ 'सा' प्राप्य आता है तब उनमें आकारांत गुणवाचक विशेष्यों के समान विकार होता है, जैसे कौनसा बच्चा कौनसी लकड़ी कौनसे बच्चे को इत्यादि ( अ०—३३६ )

३३९—गुणवाचक विशेष्यों में कबल आकारांत विशेष्य विशेष्य-निष्ठ होते हैं, अर्थात् ये विशेष्य शिवा, बचन और कारक के अनुसार बदलते हैं । इनमें बड़ी रूपांतर होते हैं जो संबंध-कारक की विभक्ति 'अ' में होते हैं । आकारांत विशेष्यों में विकार होने के नियम ये हैं—

( १ ) प्रविष्टान्त विशेष्य बहुवचन में ही अथवा विभक्त्यंत या संबंध सूचकांत ही तो विशेष्य के अंत्य 'अ' के स्थान में 'ए' आता है, जैसे, छोटे बच्चे, बड़े बच्चे, बड़े बच्चे समेत इत्यादि ।

( २ ) स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ विशेष्य के अंत्य 'अ' के स्थान में 'ई' होती है, जैसे छोटी लकड़ी, छोटी लकड़ियाँ, छोटी लकड़ी को इत्यादि ।

( अ ) राजा शिवप्रसाद ने 'इच्छ' विशेष्य को बर्तू माया आकारांत विशेष्यों के अनुकार पर बहुधा अधिकृत रूप में लिखा है, जैसे, 'हीनत इच्छ होती रही, ( इति० )', पर 'विषाच्छ' में 'इच्छे' आया है, जैसे, उनके इच्छे मुंड चबते हैं । अग्य लेखक इसे विकृत रूप में ही लिखते हैं, जैसे, 'इच्छे होने पर उन लोगों का वह शीघ्र और भी बढ़ गया ।' ( १४० ) ।

( आ ) 'जमा' 'दमदा' और 'जरा' की श्लो शेष उर्दू आकारांत विशेष्यों का रूपांतर हिंदी आकारांत विशेष्यों के समान होता है, जैसे 'शेष विद्यार्थी

की तो सुदी बात है।' (प्रा०)। हमे छन्द पर बहाने और फिर अपने पास खीसा खेने के मंत्र जुदे-जुदे हैं।' (रघु०)। 'येसारे बहक बेबारी बहकी'।

( ६०—आर-ओर लेखक इन ठहू विरोप्यों का अधिकृत कर में ही लिखते हैं जैसे, इबा, ( वि० ) परंतु हिंदी की प्रकृति इनके रूपरत को धार है। त्रिवेदीजी में 'स्वाधीनता' में कुछ बह पूर 'नियम बुदा बुदा है' लिखकर 'सुबंठ' में 'मंत्र जुदे जुदे हैं' लिखा है )

१३०—आध्यात्म संबंधसूचक (जो अर्थ में प्रायः विरोप्य के समान हैं) आध्यात्म विरोप्यों के समान विहित होते हैं। ( अ० २१३-आ )। जैसे सती ऐसी नागो ताकाब का जैसा रूप सिंह के से गुण चीर सरीखे राजा, हरिश्चंद्र ऐसा पति इत्यादि।

(घ) जब किसी मंत्रा के साथ अनिश्चय क अर्थ में 'सा प्रायम आता है ता इमप्र रूप उसी मंत्रा के छिग और बचन के अनुसार बहमता है; जैसे, 'सुम जादा सा बगता है 'एक जात सी बहती बहती आती है, ( गुरु० )। 'बसमे मुँह पर बूँट सा आत किया है। ( तया )। 'रामे में परार मे पदे है।'

१३१—आध्यात्म गुणवाचक विरोप्यों को एक ओर हिंदी गुणवाचक विरोप्यों में जोड़ दिकार नहीं होता; जैसे, बाब रोरी, मारी बोध, बाबू बनीब, इत्यादि।

१३२—संस्कृत गुणवाचक विरोप्य बहुधा कविता में विरोप्य के छिग के अनुसार विकृत होते हैं। इनका रूपान्तर 'अंत' ( अंतस्वर ) के अनुसार होता है—

(घ) व्यर्धवर्ण विरोप्यों में धीरिग के छिग 'ई' आगम है; जैसे,

बादिन्=पारिबी धी

बुदिमद्=बुदिमती आर्षा

गुणवद्=गुणवती बन्धा

प्रयावरादिन्=प्रयावरादिनी यावा

हिंदी-सुबंठ' में 'पुन-सौंधिनी बहाबट' आया है।

- (इ) अधिकता के अर्थ में कमी-कमी 'बढ़कर' पूर्वकाहिक कृतत अथवा 'कहीं' क्रियाविशेष्य आता है। जैसे, 'मुझसे बढ़कर और कीन पुण्यपारमा है ?' (गुण्य०)। 'विषय से बढ़कर चिठेरे की बढ़ाई कीजिए।' (क० क०)। 'पर मुझसे यह कहीं सुधी है।' (हि० प्र०)। 'मनुष्यों में अन्य प्राणियों से कहीं अधिक उपजाएँ होती हैं।' (हित०)।
- (ई) संज्ञावाचक विशेष्यों के साथ स्पृष्टता के अर्थ में 'कुछ कम' वाक्यांत आता है जिसका प्रयोग क्रिया-विशेष्य के समाव होता है; जैसे, 'कुछ कम इस हजार वर्ष बीत गये।' (एधु०)। 'कुछ के बढ़ते अर्थ के अनुसार निरिषत संख्यावाचक विशेष्य भी आता है, जैसे, 'एक कम सी पशु' (तथा)।
- (उ) सर्वोत्तमता सूचित करने के लिए विशेष्य के पहले 'सबसे' लगाते हैं और उपमाय और अधिकतर कारक में रखते हैं; जैसे, 'सबसे बड़ी हानि।' (सर०)। है विश्व में सबसे बड़ी सर्वान्तकारी काष्ठ ही। (मारत०)। 'मनुष्यांरी बीजाओं में इसी का नंबर सबसे ऊँचा है। (एधु०)।
- (क) सर्वोत्तमता दिखाने की एक और रीति यह है कि कमी-कमी विशेष्य द्विक्रि करतें हैं अथवा द्विक्रम विशेष्यों में से पहले की अपादानकारक में रखते हैं; जैसे, इसके अर्थों से बड़े-बड़े मोठियों का द्वार छटक रहा है। (एधु०)। 'इस नगर में जो अण्डे से अण्डे पंडित हों।' (गुण्य०)। जो सुधी बड़े-बड़े राजाओं को होती हैं वही एक गरीब से गरीब बकबहारे को भी होती है। (परी)।
- (ख) कमी-कमी सर्वोत्तमता केवल ध्वनि से सूचित होती है और शब्दों से केवल वही वाक्य आता है कि अमुक वस्तु में अणुय गुण की अतिरुचता है। इसके लिए अत्यंत, परम, अठिठाय, बहुगही, एकदरी, आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'अत्यंत सुन्दर बहि', परम मनोहर रूप । बहुत ही बराबरी मूर्ति । 'पंडितजी अपनी विद्या में एक ही हैं।' (परी)।

( ५ ) कुछ रंगवाचक विशेषणों से अतिशयता सूचित कराने के लिये उनके साथ प्रायः उसी अर्थ का दूसरा विशेषण वा संज्ञा आगती है, जैसे काका-मुजंग, छात्र-अंगार, पीला-अई ।

( ६ ) कई वस्तु की एकत्र उत्तमता बताने के लिये 'एक' विशेषण की द्विरुक्ति करके पहले शब्द की अगाधान कारक में रहते हैं और द्विरुक्ति विशेषणों के परचाह गुणवाचक विशेषण आते हैं 'जैसे 'शहर में एक से एक सबबान लोग पड़े हैं।' 'बाग में एक से एक सुंदर फूल हैं ।

३४५—संस्कृत गुणवाचक विशेषणों में तुलना-शोचक प्रत्यय आगते आते हैं । तुलना के विचार से विशेषणों की तीन अवस्थाएँ होती हैं—( १ ) मूलावस्था ( २ ) उत्तरावस्था ( ३ ) उत्तमावस्था ।

( १ ) विशेषण के जिस रूप से किसी वस्तु की तुलना सूचित नहीं होती बने मूलावस्था कहते हैं; जैसे, सोना पीला होता है उद्य स्थान, 'नम्र स्वभाव' इत्यादि ।

( २ ) विशेषण के जिस रूप से दो वस्तुओं में किसी एक के गुण की अधिकता वा न्यूनता सूचित होती है उस रूप को उत्तरावस्था कहते हैं, जैसे, 'बह इतर प्रपन्न प्रभाव हैं।' ( इति० ) 'गुस्तर दीप' 'बोरतर पाप' इत्यादि ।

( ३ ) उत्तमावस्था विशेषण के उस रूप को कहते हैं जिससे दो से अधिक वस्तुओं में किसी एक के गुण की अधिकता वा न्यूनता सूचित होती है जैसे चंद्र के प्राचीनतम काण्ड में । ( विमर्दि० ) । 'उच्चतम आदर्श', इत्यादि ।

३४६—संस्कृत में विशेषण की उत्तरावस्था में तर वा ईवस् प्रत्यय आगता आता है और उत्तमावस्था में तम वा इह प्रत्यय आता है । हिन्दी में ईवस् और इह प्रत्ययों की अन्वेषण तर और तम प्रत्ययों का विचार अधिक है ।

( अ ) 'तर' और 'तम' प्रत्ययों के योग से मूळ विशेषण में बहुत से विचार नहीं होते; केवल अर्थ नू का बोध होता है और 'वस्' प्रत्ययों विशेषणों में नू के पहले ए आता है; जैसे,

गाड़ी पर बिठाया जाय—ऐसे हैं जो रूप के अनुसार एक वाच्य में अर्थ के अनुसार दूसरे वाच्य में आते हैं। इसलिए संज्ञक व्याकरण के अनुसार, केवल रूप के आधार पर हिंदी वाच्य का लक्षण करना कठिन है। यदि केवल रूप के आधार पर यह लक्षण किया जायगा तो अर्थ के अनुसार वाच्य के कई संघीर्ष ( संलग्न ) विभाग करने पड़ेंगे और यह विषय सहज होने के बदले कठिन हो जायगा।

कई एक वैवाक्यों का मत है कि हिंदी में वाच्य का लक्षण करने में क्रिया के केवल 'रूपांतर' का उल्लेख करना अष्टव है, क्योंकि इन भाषा में वाच्य के लिये क्रिया का 'रूपांतर' ही नहीं होता, बल्कि उसके साथ दूसरी क्रिया का समास भी होता है। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि कोई भाषा कितनी ही रूपांतर-शील क्यों न हो, उसमें कुछ न कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनमें मूल शब्द में तो रूपांतर नहीं होता, किंतु दूसरे शब्दों की सहायता से रूपांतर माना जाता है। संस्कृत के 'बोधयाम् आत्' 'पठन् भवति' आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं। हिंदी में केवल वाच्य ही नहीं, किंतु अपिचर्य अज्ञ, अर्थ, कर्तव्य और अरक तथा तुलना आदि भी बहुधा दूसरे शब्दों के योग से संज्ञित होते हैं। इसलिए हिंदी-व्याकरण में कहीं-कहीं संयुक्त शब्दों को भी, सुझाते के लिये, मूल रूपांतर मान लेते हैं।

कोई-कोई वैवाक्य 'वाच्य' को 'प्रमाण' भी कहते हैं, क्योंकि संस्कृत व्याकरण में ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। हिंदी में वाच्य के संबंध से दो प्रकार की रचनाएँ होती हैं, इसलिए हमने 'प्रमाण' शब्द का उपयोग क्रिया के साथ कर्ता वा कर्म के अन्वय-तथा अनान्वय ही के अर्थ में किया है और उसे 'वाच्य' का अनावश्यक पर्यायवाची शब्द नहीं रक्खा। हिंदी व्याकरणों के 'कर्तृ-प्रमाण,' 'कर्म-प्रमाण' और 'भाव-प्रमाण' शब्द आमक होने के कारण इस पुस्तक में छोड़ दिये गये हैं। ]

३२४ (क)—कर्तृवाच्य क्रिया के उस रूपांतर को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य का ( सं०—१७८—घ ) क्रिया का कर्ता है; जैसे, 'लड़का लड़कता है' 'बच्चा पुस्तक पढ़ता है,' 'लड़क ने पुस्तक पढ़ी,' 'शानी ने सहेलियों को बुझाया,' 'हमने महाया,' इत्यादि।

[ टी०—'लड़क ने पुस्तक पढ़ी—इसी वाक्य में क्रिया का कोर-कोर वैवाक्य कमवाच्य ( वा कमविप्रयोग ) मानत है। संस्कृत-व्याकरण में

दिये हुए वाक्य के अनुसार 'पढ़ी' दिया कर्मवाच्य ( या कर्मविनियोग ) प्रकरण है, क्योंकि उसके पुस्तक, लिग, बचन 'पुस्तक' कर्म के अनुसार हैं और हिंदी की रचना 'कड़के से पुस्तक पढ़ी' संस्कृत की रचना 'बालकेन पुस्तिका पठिता, के बिलम्बन समान है। तथापि हिंदी की यह रचना कुछ विशेष बातों ही में होती है ( बिनाका क्लान आगे 'प्रयोग' के प्रकरण में किया जायगा ) और इसमें कर्म की ही प्रधानता नहीं है किन्तु कला की है। इसलिये यह रचना रूप के अनुसार कर्मवाच्य होने पर मा प्रथम अनुसार कर्मवाच्य है। इसी प्रकार 'पाना मे लहेलियो को बुलाया'—इस वाक्य में 'बुलाया' दिया रूप के अनुसार तो भाववाच्य है, परंतु प्रथम अनुसार कर्मवाच्य ही है और इसमें भी हमारा किया हुआ वाच्य लक्ष परित होता। ]

१५०—दिया के उस रूप का कर्मवाच्य कहते हैं जिसमें जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य दिया का कर्म है, जैसे कपड़ा सिया जाता है। किराँ मेजी गई। मुझसे यह बोझ न उठाया जायगा। 'उसे डतरवा सिया जाय।' ( गिब )।

१५१—दिया के जिस रूप से यह जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य दिया का कर्ता या कर्म कोई नहीं है उस रूप को भाववाच्य कहते हैं, जैसे, 'यहाँ कैय बैठा जायगा' 'रूप में बला नहीं जाता।'।

१५२ कर्मवाच्य अकर्मक और अकर्मक होने पर अर्थ की क्रियाओं में होता है, कर्मवाच्य केवल अकर्मक क्रियाओं में और भाववाच्य केवल अकर्मक क्रियाओं में होता है।

( घ ) यदि कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रियाओं में कर्ता को लिखने की आवश्यकता हो तो उसे अर्थ-कारक में रखा है, जैसे, 'कड़के से रोटी नहीं खाई गई।' मुझसे कहा नहीं जाता। कर्मवाच्य में कर्ता कभी कभी 'द्वारा' शब्द के साथ आता है, जैसे 'मीरे द्वारा पुस्तक पढ़ी गई।'

( ङ ) कर्मवाच्य में उद्देश्य कर्म अन्वय कर्मकारक में ( जो रूप में अन्वय कर्ता-कारक के समान होता है ) और कर्मो अन्वय कर्मकारक में आता है जैसे, 'दोही एक कमराई में उठारी गई।' ( डेड )। 'उसे उठारा सिया जाय। ( गिब )।

३५६—द्विकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में मुख्य कर्म उद्देश्य होता है और गौण कर्म क्यों क्या त्यों रहता है; राजा को मोंट दी गई है। विद्यार्थी को शण्डित विद्याया प्रायगा।

( अ ) अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में मुख्य कर्म उद्देश्य होता है, परंतु वह कभी-कभी कर्मकारक ही में आता है, जैसे, 'सिपाही सरदार बनाया गया।' 'कांस्टेबलों को शक्ति के अहाते में ब रखा किया जाता। ( शिब० )।

### ( २ ) काल ।

३५७—क्रिया के उस कर्मांतर को काल कहते हैं जिससे क्रिया के व्यापार का समय तथा उसकी पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था का बोध होता है; जैसे, मैं जाता हूँ ( वर्तमानकाल )। मैं जाता था ( अपूर्ण मृतकाल )। मैं जाऊँगा ( भविष्यत् काल )।

[ ९—(१) काल ( समय ) अनादि और अनंत है। उसका कोई अंत नहीं हो सकता। तथापि वक्ता वा श्रोतक की दृष्टि से समय के तीन भाग कल्पित किये जा सकते हैं। जिस समय वक्ता वा श्रोतक बोलता वा लिखता हो उस समय को वर्तमान काल कहते हैं और उसके पहले का समय मृतकाल तथा पीछे का समय भविष्यत् काल कहलाता है। इन तीनों कालों का बोध क्रिया के कर्मों से होता है; इसलिए क्रिया के कर्मों को "काल" कहलाते हैं। क्रिया के 'काल' से अलग व्यापार के समय ही का बोध नहीं होता किन्तु उसके पूर्णता वा अपूर्णता में स्थित होती है। इसलिए क्रिया के कर्मांतरों के अनुसार प्रत्येक 'काल' के भी भेद माने जाते हैं।

( २ ) यह बात स्मरणीय है, कि काल क्रिया के कर्म का नाम है, इसलिए वृत्ते शब्द किनसे काल का बोध होता है 'काल' नहीं कहाते जैसे, आज, कल, परसों, अभी, पकी पल, इत्यादि। ]

३५८—हिंदी में क्रिया के कालों के मुख्य तीन भेद होते हैं—( १ ) वर्तमान काल ( २ ) मृत काल ( ३ ) भविष्यत् काल। क्रिया की पूर्णता वा अपूर्णता के विचार से पहले दो कालों के दो-दो भेद और होते हैं।

( मविप्यत् काष्ठ में व्यापार की पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था सूचित करने के लिये हिंदी में क्रिया के कोई विशेष रूप नहीं पाये जाते; इसलिये इस काष्ठ के कई भेद नहीं होने । ) क्रिया के त्रिप रूप में केवल काष्ठ का बोध होता है और व्यापार की पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था का बोध नहीं होता इसे काष्ठ की सामान्य अवस्था करते हैं । व्यापार की सामान्य अपूर्ण और पूर्ण अवस्था से काष्ठों के जो भेद होने हैं उनके नाम और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

काष्ठ	सामान्य	अपूर्ण	पूर्ण
वर्तमान	बढ़ चसता है	बढ़ चस रहा है	बढ़ चसा है
भूत	बढ़ चसा	{ बढ़ चस रहा वा बढ़ चसता था	बढ़ चसा था
मविप्यत्	बढ़ चसंगा		बढ़ चसा था

( १ ) सामान्य वर्तमानकाष्ठ में जाना जाता है कि व्यापार का आरंभ दोसल व समय हुआ है; जैसे, इसका चसती है, अदक पुस्तक पढ़ता है बिंदी भेजी जाती है ।

( २ ) अपूर्ण वर्तमानकाष्ठ से ज्ञात होता है कि वर्तमान काष्ठ में व्यापार हो रहा है; जैसे गाड़ी चाल रही है । हम रुपये पहिन रहे हैं । बिंदी भेजी जा रही है ।

( ३ ) पूर्ण वर्तमानकाष्ठ की क्रिया से सूचित होता है कि व्यापार वर्तमानकाष्ठ में पूर्ण हुआ है; जैसे बीजर बोया है । बिंदी भेजी गई है ।

( ४ )—यदि वर्तमानकाष्ठ एक बार भूतकाल से आरंभ हुआ और मविप्यत् काष्ठ से मर्यादित है तबका उलका पूरा और उलर मर्यादा पूराया निमित्त नहीं है । वह अदक चसा था सेलक की ताकनिक करना पर निभर है । वह कमी कमी से अदक अदक-शानी हाता है और कमी-कमी अण, मर्यादर अदक करत एक दिन जाता है । इतनिक भूतकाल क अंत



और भविष्यत्-काल के आरंभ के बीच का कोई भी समय वर्तमानकाल कहलाता है।)

( ३ ) सामान्य मृतकाल की क्रिया से घाटा जाता है कि व्यापार बाधने या खिलने के पहले हुआ, जैसे, पानी गिरा गाड़ी धाई, चिट्ठी भेजी गई।

( ४ ) अपूर्व मृतकाल से बोध होता है कि व्यापार गत काल में पूरा नहीं हुआ, किंतु जारी रहा, गाड़ी धाती की चिट्ठी लिखी जाती थी, बीकर जा रहा था।

( ५ ) पूर्ण मृतकाल से ज्ञात होता है कि व्यापार को पूर्ण रूप बहुत समय पीठ चुका, जैसे, बीकर चिट्ठी जाया था, सेवा खर्चा पर भेजी गई थी।

( ६ ) सामान्य भविष्यत्-काल की क्रिया से ज्ञात होता है कि व्यापार का आरंभ होनेवाला है, जैसे, बीकर जायगा, हम कपड़े पहिनेंगे, चिट्ठी भेजी जायगी।

[ टी०—कालों का जो वर्गीकरण हमने यहाँ किया है वह प्रचलित हिंदी व्याकरणों में किये गये वर्गीकरण से भिन्न है। उनमें काल के साब साध क्रिया के दूसरे अर्थ भी ( जैसे—आज्ञा, संभाषना, संदेह, आदि ) वर्गीकरण के आधार माने गये हैं। हमने इन दोनों के आधारों ( काल और अर्थ ) पर अलग अलग वर्गीकरण किया है, क्योंकि एक आधार में किया केवल काल की प्रचानता है और दूसरे में केवल अर्थ का रीति थी। ऐसा वर्गीकरण ग्याम-संगत भी है। ऊपर सिसे सात कालों का वर्गीकरण किया क समय और व्यापार की पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था के आधार पर किया गया है। अर्थ क अनुसार कालों का वर्गीकरण अगसे प्रकरण में किया जायगा।

यदि हिंदी में वर्तमान और मृतकाल के समान भविष्यत् काल में भी व्यापार का पूरठा और अपूरठा लुघित करने क लिये क्रिया क रूप उपलब्ध होते तो हिंदी काल व्यवस्था अंगरेजी क समान पूर्ण दा जाती और कालों का संख्या सात के बरसे ठीक मौ होती। काह काह व्याकरण समझते हैं कि 'बहु लिखता रहगा' अपूर्ण भविष्यत् का और 'बहु लिख लुकेगा' पूर्ण भविष्यत् का उदाहरण है और इन दोनों कालों को स्वीकार करने से हिंदी की

काल-व्यवस्था पूरी हो जायगी। देखा करना बहुत ही ठबिठ होता, परंतु ऊपर का उदाहरण दिये गये हैं वे प्रमाण में संयुक्त क्रियाओं के हैं और इस प्रकार के रूप इतने कालों में भी पाए जाते हैं जैसे, वह लिखता रहा। वह निख चुका इत्यादि। तब इन रूपों को भी अपूर्ण परिवर्तित और पूर्ण परिवर्तित के समान समझना अपूर्णभूत और पूर्णभूत मानना पड़ेगा। जिससे काल-व्यवस्था पूर्ण होने के बदले गड़बड़ और कठिन हो जायगी। वही बात अपूर्ण वर्तमान के रूपों के विषय में भी कही जा सकती है।

हमने इस काल के उदाहरण केवल काल-व्यवस्था की पृथक् के शिष्ट दिये हैं। इस प्रकार के रूपों का विचार संयुक्त क्रियाओं के अध्याय में किया जायगा। ( ई० ४ ७, ४१२, ४१५ )।

कालों के संबंध में यह बात भी विचारणीय है कि जोड़-काट वैदाहरण इन्हीं वाक्य नाम ( सामान्य वर्तमान पूराभूत आदि ) देना ठीक नहीं समझते, क्योंकि किसी एक नाम से एक काल के सब अर्थ सूचित नहीं होते। यद्यपि ने इनके नाम संस्कृत के लट्, लोट्, लृट्, लिट् आदि के अनुसरण पर 'पढ़ता कर' 'खाता कर' आदि ( कल्पित नाम ) रखे हैं। कर्णों के नामों के समान कालों के नाम भी वैदाहरण में विचार प्रत्यक्ष विषय है परंतु बिना कारणों से हिंदी में कर्णों के वाक्य नाम रखना प्रयासनीय है, उन्हीं कारणों से कालों के वाक्य नाम भी आवश्यक हैं।

कालों के नामों में हमने के प्रयोजित 'वाचक भूतकाल' के बदले 'पूर्ण वर्तमानकाल' नाम रक्खा है। इस काल से भूतकाल में आरंभ होना शक्य क्रिया की पृथक् वर्तमानकाल में सूचित होती है। इसलिए यह निश्चय नाम ही अधिक वाक्य नाम पढ़ता है और इसके कालों के नामों में एक प्रकार की व्यवस्था भी हो जाती है। ]

### [ ३ ] अर्थ

३११—क्रिया के किस रूप में विधान करने की शक्ति का वाच्य होगा है जैसे 'घरों' करते हैं, जैसे, लड़का जाता है ( लिखते ) पढ़ता जाये ( संभावना ) कुछ जाओ ( जाता ) यदि लड़का जाता तो चप्पा टूटता ( संभव )।

[ टी०—दिना के अनिश्चित आधरों में इस काल के विचार अलग

नहीं किया गया, किंतु अज्ञ के साथ मिला दिया गया है। आर्य समाज के व्याकरणों में 'नियम' के नाम से इस कर्पांतर का विचार हुआ है और पाण्डे महाशय ने स्वात् मराठी के अनुकरण पर अपनी 'भाषातत्त्वदीपिका' में इसका विचार 'अर्थ' नाम से किया है। इस कर्पांतर का नाम अज्ञे महाशय ने भी अपने अंगरेजी संस्कृत व्याकरण में (जीट्, विधि सिद्ध, आदि के लिए) 'अर्थ' ही रक्खा है। यह नाम 'नियम' की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त है, इसलिए हम भी इसका प्रयोग करते हैं, यद्यपि यह थोड़ा बहुत आर्य अक्षर्य है।

क्रिया के रूपों से केवल समय पूर्य (अथवा अपूर्य अक्षर्य ही का बोध मही होता, किंतु निश्चय, सर्विह, संभावना, आद्य संकेत आदि का भी बोध होता है, इसलिए इन रूपों का भी व्याकरण में उग्रह किया जाता है। इन रूपों से काल का भी बोध होता है और अर्थ का भी, और किसी-किसी रूप में ये दोनों इतने मिले रहते हैं कि हमको अलग अलग करके बताना कठिन ही जाता है, जैसे, 'वहाँ न जाना पुत्र, कहीं।' (एकान्त०)। इस वाक्य में कबल आद्याय ही नहीं है, किंतु यथिभ्यत् काल भी है, इसलिए यह निश्चित करना कठिन है कि 'जाना' काल का रूप है अथवा अर्थ का। कदाचित् इसी कठिनाई से बचने के लिए हिंदी के वैदिकरण काल और अर्थ का मिलाकर क्रिया के रूपों का वर्गीकरण करते हैं। इसके लिये उन्हें काल क लक्ष्य में यह कहना पड़ता है कि 'क्रिया का 'काल' समय के अतिरिक्त व्यापार की अवस्था भी बताता है अर्थात् व्यापार समाप्त हुआ या नहीं हुआ, होगा अथवा उसके होने में संदेह है।' 'काल' के लक्ष्य को इतना व्यापक कर देने पर भी आद्या संभावना और संकृत अर्थ बच जाते हैं और इन अर्थों के अनुष्ठार भी क्रिया के रूपों का वर्गीकरण करना आवश्यक होता है। इसलिए समय और पूर्यता वा अपूर्यता के बिना क्रिया के का और अर्थ होते हैं उनके अनुष्ठार अलग वर्गीकरण करना उचित है, यद्यपि इस वर्गीकरण में थोड़ी बहुत अशास्त्रीयता अक्षर्य है।

३६०—हिंदी में क्रियाओं के मुख्य पाँच अर्थ होते हैं—( १ ) निश्चयार्थ ( २ ) संभाव्यार्थ ( ३ ) सर्विहार्थ ( ४ ) आद्यार्थ और ( ५ ) संकृतार्थ।

( १ ) क्रिया के जिस रूप से किसी विधाव का निश्चय श्रुति होता है उसे निश्चयार्थ कहते हैं, जैसे, 'बचका जाता है' बँकर बिट्टी नहीं लाया, 'हम किताय पढ़ते रहेंगे', 'जमा आदमी न आयगा'।

[ सू०—(क) हिंदी में निश्चयाव क्रिया का क्रोध विशेष रूप नहीं दे। जब क्रिया किसी विशेष समय में नहीं आती तब उसे, सुस्पष्ट के लिये, निश्चयार्थ में मान लेते हैं। 'आज' के विवेचन में पहले ( अ०—११८ में ) का उदाहरण दिने गये हैं वे सब निश्चयाव क उदाहरण हैं। ]

(ख) प्रश्नवाचक वाक्यों में क्रिया क रूप से प्रश्न सूचित नहीं होता, इसलिए प्रश्न का क्रिया का अलग 'अव' नहीं मानते। यद्यपि प्रश्न पूछने में अज्ञा के मन में संदेह का आभास रहता है तथापि प्रश्न का उत्तर तद्वैध संदिग्ध नहीं होता। 'क्या लड़का आया है?'—इस प्रश्न का उत्तर निश्चय पूर्वक क्रिया का सकता है, जैसे, 'लड़का आया है' अथवा 'लड़का नहीं आया।' इसका सिद्धा प्रश्न त्वय कह अर्थों में क्रिया का सकता है, 'क्या लड़का आया है' ( निश्चय ), 'लड़का कैसे आये?' ( संभावना ), 'लड़का आया हाया' ( संदेह ) इत्यादि।

( २ ) संभावनार्थ क्रिया से अनुमात्र इच्छा कर्त्तव्य आदि का भाव होता है। जैसे कदाचित् पानी बरस ( अनुमात्र ) तुम्हारी ज्व हो ( इच्छा ) राजा को उचित है कि राजा का पावन करे ( कर्त्तव्य ), इत्यादि।

( ३ ) संबोधार्थ क्रिया से किसी बात का संदेह जाना जाता है; जैसे, 'अच्छा आता होगा' 'बीडर गया होगा'।

( ४ ) आश्चर्य क्रिया से आश्चर्य, अपेक्ष विपय, आदि का बोध होता है; जैसे, तुम जानो, लड़का जाये, वहाँ मठ जाना, क्या मैं जाऊँ, ( आश्चर्य ) इत्यादि।

[ सू०—आश्चर्य और संभावनार्थ के रूपों में बहुत कुछ समानता है। वह बात आगे आज्ञा-रचना क विवेचन में जान पड़ेगी। संभावनाय क कल्पना योग्यता आदि अर्थों में कर्म-कर्म आश्चर्य का अर्थ गभित रहता है जन्, 'लड़का नहीं है'। इस वाक्य में क्रिया व आश्चर्य और कल्पना दानी अर्थ सूचित होते हैं। ]

( ५ ) संबोधार्थ क्रिया से ऐसी ही अर्थवाचों की अस्तिवि सूचित होता है जिसमें कर्म-कारण का संबंध होता है; जैसे 'बढ़ि मेरे पाम बहुत सा घन होता तो मैं बाम काम करता। ( माणसा० )। 'यदि तु भगवान का म्म मंदिर में पिठाया होता तो यह करुण क्यों रहता। ( गुण० )।

[ ६ —संकेतायक वाक्यों में आ—ठा समुच्चयशेषक अभ्यस बहुधा आते हैं । ]

३६१—सब अर्थों के अनुसार अर्थों के जो भेद होते हैं उनकी संख्या, नाम और उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

विशेषवाच	संभावनाय	संदिहाय	आशुर्थ	संकेताय
१ सामान्य वर्तमान यह बखता है	७ संभाव्य वर्तमान यह बखता हो	१० संदिग्ध वर्तमान यह बखता होगा	१२ प्रत्यक्ष विधि ६ बख	१४ सामान्य संकेताय यह बखता
२ पूर्ण वर्तमान यह बखता है	८ संभाव्य भूत यह बखता हो	११ संदिग्ध भूत यह बखता होगा	१३ परीक्ष विधि ६ बखना	१५ अपूर्ण संकेताय यह बखता होता
३ सामान्य भूत यह बखता	९ संभाव्य भविष्यत् यह बखे			१६ पूर्ण संकेताय यह बखता होता
४ अपूर्ण भूत यह बखता था				
५ पूर्ण भूत यह बखता था				
६ सामान्य भविष्यत् यह बखगा				

[ ६ —( १ ) इन उदाहरणों के जान पड़ेगा कि हिंदी में कालों की संख्या कम से कम सात है । मित्त-मित्त व्याकरणों में यह संख्या मित्त-मित्त पाठ जाती है । किंतु अकारण यह है कि कोई-कोई वैवाक्य कुछ कालों को स्वीकृत नहीं करते अथवा उन्हें अमभवत् ह्रास जात हैं । अपूर्ण वर्तमान, अपूर्ण भविष्यत् और पूर्ण भविष्यत् कालों को छोड़ बिना विवेचन संयुक्त क्रियाओं के साथ करना ठीक नाम पड़ता है, राय काल हमारे किये हुए कर्माकारण में ऐसे हैं बिना प्रयोग भाषा में पाया जाता है और किन्तु काल तथा अर्थ के लक्षण पड़ते हैं कालों के प्रचलित नामों में हमने ही नाम बदल दिये हैं—( १ ) आसन्नभूत ( २ ) दित्तैशुमद्भूत' । 'आसन्न भूत' नाम बदलने का कारण पहले कदा का बुद्ध है; तथापि काल

रचना में हठी नाम का उपयोग ठीक जान पड़ता है 'हेतुहेतुमद्भूत' नाम बदलने का कारण यह है कि इस काल के तीन रूप होते हैं जिनमें से प्रत्येक का प्रयोग अलग अलग प्रकार का है और जिनका अर्थ एक ही नाम से सूचित नहीं होता। ये काल केवल संकेतार्थ में आते हैं, इसलिए इनके मामों के साथ 'संकेत' शब्द रखना उही प्रकार आवश्यक है जित प्रकार 'संभाव्य' और 'संदिग्ध' शब्द संभावनाय और संदेहाय सूचित करने के लिए आवश्यक होते हैं।

आ काल और नाम प्रचलित व्याकरणों में मही पाये जाते वे उदाहरण सहित यहाँ लिखे जाते हैं—

प्रचलित नाम	नया नाम	उदाहरण
आठम मूलकाल	पूर्ण वर्तमानकाल	बह बला है
×	संभाव्य वर्तमानकाल	बह चलता हो
×	संभाव्य मूलकाल	बह चला हो
विधि	प्रत्यक्ष विधि	तू चल
हेतुहेतुमद्भूतकाल	सामान्य संकेतार्थ	बह चलता
×	अपूर्ण संकेताय	बह चलता होता
विधि	प्रत्यक्ष विधि	तू चल
हेतुहेतुमद्भूतकाल	सामान्य संकेताय	बह चल
×	अपूर्ण संकेताय	बह चलता होता
×	पूर्ण संकेताय	यह चला होता

( १ ) कालों के विशेष अर्थ वाक्य विघात में लिखे जायेंगे । )

( ४ ) पुरुष, लिंग और वचन

प्रयोग

२६९—हिंदी क्रियाओं में तीन पुरुष ( उत्तम मध्यम और अन्य, ) दो लिंग ( पुल्लिंग और स्त्रीलिंग ), और दो वचन ( एकवचन और बहुवचन ) होते हैं। उदा०—

पुल्लिंग

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	में चलता है	हम चलते हैं

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
मध्यम ॥	तू बचता है	तुम बचते हो
अन्व ॥	वह बचता है	वे बचते हैं

कीर्तिग ।

उत्तम पुरुष	मैं बचती हूँ	हम बचती हैं
मध्यम ॥	तू बचती है	तुम बचती हो
अन्व ॥	वह बचती है	वे बचती हैं

३९३—पुष्पिग एकवचन का प्रत्यय था, पुष्पिग बहुवचन का प्रत्यय ए। कीर्तिग एक वचन का प्रत्यय ई है और कीर्तिग बहुवचन का प्रत्यय ई वा ई है ।

३९४—सामान्य भविष्यत और विधि-वाचों में किंग के कारण कोई कर्पांतर नहीं होता है । स्थितिदर्शक 'होना' क्रिया के सामान्य वर्तमान के रूपों में भी किंग का कोई विकार नहीं होता । ( अ — ३८९ १, ३८७ ) ।

३९५—वाच्य के कर्ता वा कर्म के पुरुष, किंग और वचन के अनुसार क्रिया जो वाच्य और अन्वय होता है उसे प्रयोग कहते हैं । हिंदी में जो तीन प्रयोग होते हैं—( १ ) कर्त्तरिप्रयोग ( २ ) कर्मणिप्रयोग और ( ३ ) भावे प्रयोग ।

( १ ) कर्ता के किंग, वचन और पुरुष के अनुसार जिस क्रिया का कर्पांतर होता है उस क्रिया को कर्त्तरिप्रयोग कहते हैं; जैसे, मैं बचता हूँ, वह जाती है, वे आते हैं, लक्ष्मी कपड़ा सीती है, इत्यादि ।

( २ ) जिस क्रिया के पुरुष, किंग और वचन कर्म के पुरुष, किंग और वचन के साथ हाते हैं उसे कर्मणिप्रयोग कहते हैं; जैसे, मैंने पुस्तक पढ़ी, पुस्तक पढ़ी गई, रामी ने पत्र लिखा इत्यादि ।

( ३ ) जिस क्रिया के पुरुष किंग और वचन कर्ता वा कर्म के अनुसार नहीं होते, अर्थात् जो सदा अन्वय पुरुष पुष्पिग एकवचन में रहती है उसे भावे प्रयोग कहते हैं; जैसे, रामी ने सहेलियों को बुझाया, मुकून बचा नहीं जाता, सिपाहियों को खड़ाई पर भेजा जायेगा ।

३६९—सकर्मक क्रियाओं के मूलकाधिक कर्तृत्वं से बने हुए कार्यों की ( अ०—३८३ ) जोड़कर कर्तृवाच्य के शेष कार्यों में तथा अकर्मक क्रियाओं के सब कार्यों में कर्तरिप्रयोग आता है । कर्तरिप्रयोग में कर्ता-कारक अप्रत्यक्ष रहता है ।

अप०—( १ ) मूलकाधिक कर्तृत्वं से बने हुए कार्यों में बोलना, भ्रूणना, बचना, खाना, समझना और जानना सकर्मक क्रियाएँ कर्तृरिप्रयोग में आती हैं, जैसे, बड़की कुत्तू ब बोली, हम बहुत बड़े 'राम-मन-अमर न मूखा । ( राम० ) । 'दूसरे गर्भाधान में केतकी पुत्र जनी । ( गुरुका० ) । कुत्तू तुम समझे कुत्तू हम समझे । ( कहा० ) । मौडर चिट्ठी काया ।

अप०—( २ ) नहाना, झींकना आदि अकर्मक क्रियाएँ मूलकाधिक कर्तृत्वं से बने हुए कार्यों में मात्रेप्रयोग में आती हैं, जैसे, हमने नहाना है बड़की ने लीका, हत्यादि ।

प्रत्य०—कोरू-कोरू खेलक बोलना, समझना और जानना क्रियाओं के साथ विकल्प में सप्रत्यय कर्ता-कारक का प्रयोग करते हैं, जैसे 'जसने समी मूठ नहीं बाधा । ( रहु ) । 'बेतकी ने बड़की जनी । ( गुरुका० ) । 'जिन धियाँ ने तुम्हारे बाप के बाप को जना है । ( शिव ) । जिसका मतसब मैंने कुत्तू भी नहीं समझा ।' ( विधिप्र ) ।

सितारे-हैद 'पुकारना' क्रिया को सदा कर्तरिप्रयोग में लिखते हैं, जैसे, 'बोवदार पुकारा जो ए एक बार भी जो से पुकारा होता । ( गुरुका० ) ।

[ अ०—संयुक्त क्रियाओं के प्रयोगों का विचार वाक्य विन्यास में क्रिया बाधगा । ( अ०—६२८—६३८ ) । ]

३७०—कर्मविप्रयोग दो प्रकार का होता है—( १ ) कर्तृवाच्य कर्मविप्रयोग ( २ ) कर्मवाच्य कर्मविप्रयोग ।

( १ ) 'बोलना' -वर्ग की सकर्मक क्रियाओं को जोड़ शेष कर्तृवाच्य अकर्मक क्रियाएँ मूलकाधिक कर्तृत्वं से बने कार्यों में ( अप्रत्यक्ष कर्मकारक के साथ ) कर्मविप्रयोग में आती हैं, जैसे मैंने पुस्तक पढ़ी, मंत्री ने पत्र लिखे, हत्यादि । कर्तृवाच्य के कर्मविप्रयोग में कर्ता-कारक सप्रत्यय रहता है ।

( २ ) कर्मवाच्य की सब क्रियाएँ ( अ०—३६०, ३६३ ) अप्रत्यक्ष कर्मकारक के साथ कर्मविप्रयोग में आती हैं । जैसे, चिट्ठी भेजी गई, बड़का



बुझाया जायगा, इत्यादि । यदि कर्मवाच्य के कर्मविशेषों में कर्ता की आवश्यकता हो तो वह करण-कारक में अवका 'द्वारा' शब्द के साथ आता है, जैसे, मुझसे पुस्तक पढ़ी गई । मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी गई ।

३१८—भावेप्रयोग तीन प्रकार का होता है—( १ ) कर्मवाच्य भावेप्रयोग ( २ ) कर्मवाच्य भावप्रयोग ( ३ ) भाववाच्य भावेप्रयोग ।

( १ ) कर्मवाच्य भावेप्रयोग में सकर्मक क्रिया के कर्ता और कर्म दोनों सप्रत्यय रहते हैं और यदि क्रिया अकर्मक हो तो संबंध कर्ता सप्रत्यय रहता है, जैसे रानी ने सहेलियों को बुझाया, हमने कहाया है, लक्ष्मी ने बौद्ध था ।

( २ ) कर्मवाच्य भावेप्रयोग में कर्म सप्रत्यय रहता है और यदि कर्ता की आवश्यकता हो तो वह द्वारा के साथ अवका करण-कारक में आता है, परंतु बहुधा वह लुप्त ही रहता है, जैसे, 'उसे अदालत में पेश किया गया ।' और को वहाँ भेजा जाएगा ।

[ ए०—सप्रत्यय कर्म कारक का उपपाग वाक्य विन्यास के कारक प्रकाश में लिखा जायगा ( अ०—५२० ) । ]

( ३ ) भाववाच्य भावेप्रयोग में कर्ता की आवश्यकता हो तो उसे करण कारक में रचते हैं, जैसे, वहाँ भेजा नहीं जाता-मुझसे पका नहीं जाता इत्यादि भाववाच्य भावेप्रयोग में सब अकर्मक क्रिया आती है । ( अ०—३५२ ) ।

### ( ५ ) कृदंत ।

३१९—क्रिया के त्रिब रूपों का उपयोग दूसरे शब्द-भेदों के समाव होता है उन्हें कृदंत कहते हैं, जैसे, बचना ( संज्ञा ), बचता ( विशेषण ), बचकर ( क्रिया-विशेषण ), मारे, किए ( संबंध शब्द ) इत्यादि ।

[ ए०—इस कृदंतों का उपयोग कर्ण-रचना तथा संयुक्त क्रियाओं में होता है और ये सब भावधर्मों से बनते हैं । ]

३२०—हिंदी में रूप के अनुसार कृदंत दो प्रकार के होते हैं—( १ ) विकारी ( २ ) अविकारी वा अचक्षुष । विकारी कृदंतों का प्रयोग बहुधा संज्ञा

का विशेषण के समान होता है और कर्तृत्व अर्थात् क्रिया-विशेषण या कमी कमी संबंधसूचक के समान आते हैं। ( अं०—१२० )। यहाँ केवल उन कर्तृत्वों का विचार किया जाता है जो काल-रचना तथा संयुक्त क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। शेष कर्तृत्व व्युत्पत्ति-प्रकरण में किये जायेंगे।

## १—विकारी-कृत

३०१—विकारी कर्तृत्व चार प्रकार के हैं—( १ ) क्रियार्थक संज्ञा ( २ ) कर्तृवाचक संज्ञा ( ३ ) वर्तमानकालिक कर्तृत्व ( ४ ) मूलकालिक कर्तृत्व।

३०२—धातु के अंत में ना जोड़ने से क्रियार्थक संज्ञा बनती है। ( अंत—१८८—अ )। इसका प्रयोग संज्ञा और विशेषण दोनों के समान होता है। क्रियार्थक संज्ञा केवल पुर्विभग्य और एक वचन में आती है और हमारी अरक-रचना संवाचन अरक को शेष शेष अरकों में आधारांत पुर्विभग्य ( लभ्यव ) संज्ञा के समान होती है; ( अं०—३१० ), जैसे जाने को जाने से, जाने में इत्यादि।

( अ ) सब क्रियार्थक संज्ञा विशेषण के समान आती है तब उसका रूप अमयी पृथि वा कर्म ( विशेष्य ) के क्रिया-बचन के धनुमार पड़ता है। जैसे, 'तुमको परीक्षा करनी है तो जाओ।' ( परीक्षा० )। 'वनयुवतियों की सुवि रनवास की क्षिओं में मिलनी दुर्लभ है। ( शत्रु० ) 'देखनी हमको पड़ी थीरंगसेही अंत में।' ( भारत० )। 'बात करनी हमें मुश्किल कभी-कभी तो न थी। 'पहिले के बख्त आसानी से चढ़ने उतारने वाले होने चाहिए।' ( सर० )।

[ अं०—क्रियायक विशेषण का लोखक लोग कभी अविद्वृत ही रलते हैं जैसे, 'मठ देनामे के लिए लड़ाई करना।' ( प्रति० )। 'कौनसी बात समाज को मामना चाहिए।' ( रक्षा० )। 'मनुष्य-नाशना करना चाहिए।' ( शिव० )। ]

३०३—क्रियार्थक संज्ञा के विद्वृत रूप के अंत में 'वास्त' लगाने से कर्तृवाचक-संज्ञा बनती है, जैसे, पक्षनेवाजा जानेवाजा, इत्यादि। इसका प्रयोग कमी-कमी अविष्कारकालिक कर्तृत्व विशेषण के समान होता है; जैसे आज मेरा भाई जानेवाला है। जानेवाला भाँकर। कर्तृवाचक संज्ञा का क्पांतर संज्ञा और विशेषण के समान होता है।

[ सू०—'वाला' प्रत्यय के बदले कमी कमी 'हारा' प्रत्यय आता है। 'मरना' और 'होना' क्रियार्थक संज्ञाओं के अंत 'घा' का जोप करके 'हारा' के बदले 'हार' लगाते हैं, जैसे, मनहार होनहार। 'वाला' वा 'हार' केवल प्रत्यय है स्वतंत्र शब्द नहीं है। पर राम० में मूल शब्द और इत प्रत्यय के बीच में 'हुँ' अवधारण्य-बोधक अभ्यय रख दिया गया है, जैसे, मयउ न बहइ न होनिहुँ 'हारा'। कोई-कोई आधुनिक लेखक 'वाला' को मूल शब्द से अलग लिखते हैं। ]

'वाला' को कोई-कोई वैसाकरण संस्कृत के 'वल्' वा 'वल्' से और कोई-कोई 'वाल्' से व्युत्पन्न हुआ मानते हैं, और 'हार' को संस्कृत के 'हार' प्रत्यय से निकला हुआ समझते हैं। ]

३०७—वर्तमानकालिक कर्तृत घातु के अंत में 'ता' खाने से बनता है, जैसे बहता, बोजता, इत्यादि। इसका प्रयोग बहुधा विशेषण के समाज होता है और इसका रूप आकारांत विशेषण के समाज बढ़ता है, जैसे पढ़ता पाबी, बहताली बड़की, जीते कीड़े इत्यादि। कमी कमी इसका प्रयोग संज्ञा के समाज होता है, और तब इसकी अरक-रचना आकारांत पूर्वसंग संज्ञा के समाज होती है जैसे, मरता क्या न करता। डूबते को तिनक का सहारा बस है। मारतो के आगे भागते के पीछे।

३०५—मूलकालिक कर्तृत घातु के अंत में घा जोड़ने से बनता है। इसकी रचना भाषे विप विधियों के अनुसार होती है—

( १ ) आकारांत घातु के अंत 'घ' के स्थान में 'घा' कर देते हैं, जैसे,

बोजना—बाजा

पहचानना—पहचाना

करना—करा

मारना—मारा

समझना—समझ

जीचना—जींचा

( २ ) घातु के अंत में घा, ष वा घो हो तो घातु के अंत में 'व' कर देते हैं, जैसे,

खाना—खावा

बोना—बोया

कहना—कहाया

हुपना—हुपीया

पेना—पेवा

सेना—सेया

( ३ ) यदि घातु के अंत में ई हो तो उसे ह्रस्व कर देते हैं, जैसे, पीना—पीया, सीना—सीया, सिया—सिया ।

( ३ ) ककारांत धातु की 'क' को ह्रस्व करके उसके धातु 'भा' लगाते हैं, जैसे,

बूना—बुधा

हूना—हुधा

३०६—बीधे टिल मूतकाधिक कूर्त विपन विरुद बनते हैं—

होना—हुधा

धाना—गया

करना—रिधा

मरना—मुधा

देना—दिधा

खेना—खिधा

[ ३०—'मुधा' कबल कविता में आता है। गद्य में 'मरा' शब्द प्रचलित है। मुधा, हुधा, धादि शब्दों को कौर कौर लेखक मुधा, हुधा, बुधा, धादि रूपों में मिलते हैं, पर ये रूप असुद्ध हैं, क्योंकि ऐसा उच्चारण नहीं होता और ये सिद्ध-संमत भी नहीं हैं। करना का मूतकाधिक कूर्त 'करा' प्रातिक प्रयोग है। 'धाना' का मूतकाधिक कूर्त 'गया' संसुद्ध क्रियाधी में आती है। इसका रूप 'गया' सं०—गता से प्रा०—गमो के द्वारा बना है। ]

३००—मूतकाधिक कूर्त का प्रयोग बहुधा विशेष्य के समान आता है, जैसे, मरा बोधा, गिरा, बर, उद्य हाय मुर्षा वाठ मागा बोर।

( अ ) वर्तमानकाधिक धीर मूतकाधिक कूर्तों के साथ बहुधा 'हुधा' लगाते हैं और इसमें मूल कूर्तों के समान कर्पांतर होता है; जैसे हीयता हुधा बोधा, बहती हुई गाधी देखी हुई बस्तु, मरे हुए लोग हत्यादि। यीक्षिग बहुवचन का प्रत्यय केवल 'हुई' में लगता है जैसे, मरी हुई मरिचर्या।

( आ ) मूतकाधिक कूर्त भी कभी कभी संज्ञा के समान आता है जैसे, हाय का दिधा पिसे को पीसना। गई बहोरी मरीच विधान्। ( राम० )

( इ ) सकर्मक क्रिया से बना हुधा मूतकाधिक कूर्त विशेष्य कर्मवाच्य होता है कर्पांत वह कर्म की विशेषता बताता है, जैसे, किया हुधा काम, बनाई हुई वाठ हत्यादि। इस कर्म में ह्रस्व कूर्त के साथ कौर-कौर केवल 'गया' कूर्त जोड़ते हैं जैसे किया गया काम बनाई गई वाठ, हत्यादि।

[ सू०—'वाला' प्रत्यय के बदले कमी कमी 'हारा' प्रत्यय आता है। 'मरना' और 'होना' क्रियापद संज्ञाओं के अंत्य 'आ' का लोप करके 'हारा' क बदले 'हार' लगते हैं, जैसे, मरहार होनहार। 'वाला' या 'हार' कबल प्रत्यय है, स्वतंत्र शब्द नहीं है। पर राम० में मूल शब्द और इत प्रत्यय के बीच में 'हुँ' अक्षरवारण-बोधक अक्षर्य रत्न दिया गया है, जैसे, मरठ न मरह न होनिहुँ 'हारा'। कोई-कोई आधुनिक लेखक 'वाला' को मूल शब्द से अलग लिखते हैं। ]

'वाला' को कोई-कोई वैवाकरण संस्कृत के 'वत्' वा 'वत्त' से और कोई-कोई 'पास' से व्युत्पन्न हुआ मानते हैं, और 'हारा' को संस्कृत के 'कार' प्रत्यय से निकला हुआ समझते हैं। ]

३०४—सर्तमानकालिक कूर्त वातु के अंत में ता' लगाने से बनता है, जैसे, बहता बोजता, इत्यादि। इसका प्रयोग बहुधा विशेष्य के समान होता है और इसका रूप आकारांत विशेष्य के समान बढ़ता है, जैसे बहता पायी बहती बपड़ी, जीते जीते इत्यादि। कमी-कमी इसका प्रयोग संज्ञा के समान होता है, और तब इसकी कारक-रचना आकारांत पुष्पिय संज्ञा के समान होती है जैसे, मरता क्या न करता। बूबते को ठिबके का सहारा बस है। मारती के आगे मायते के पीछे।

३०५—मूलकालिक कूर्त वातु के अंत में आ जोड़ने से बनता है। इसकी रचना नाथे किञ्च नियमों के अनुसार होती है—

( १ ) आकारांत वातु के अंत्य अ के स्थान में 'आ' कर देते हैं, जैसे,

बोजना—बोजा	पहचानना—पहचाना
हरना—हरा	मारना—मारा
समझना—समझ	जीबना—जीबा

( २ ) वातु के अंत में आ, ए वा ओ हो तो वातु के अंत में 'अ' कर देते हैं, जैसे,

ठापा—ठापा	बोपा—बोपा
कड़वाना—कड़वाना	हुबोपा—हुबोपा
सेना—सेना	सेना—सेना

( अ ) यदि वातु के अंत में इ हो तो उसे इत्थ कर देते हैं, जैसे, पीबा-पीबा-बीना—बीना, सीना—सिपा।

( ३ ) कर्माणि पातु की 'क' को ह्रस्व करके उसके आगे 'धा' लगाते हैं, जैसे,

पूना—पुषा

हुषा—पुषा

१०९—जैसे किञ्च मूलशब्दिक ह्रदंत नियम विद्वज् दशन ई—

होना—हुषा

जाना—गया

करना—किया

मरना—मुषा

देना—दिया

खेना—सिया

[ ए०—'मुषा' केवल कविता में आता है । गद्य में 'मरा' शब्द प्रचलित है । मुषा, हुषा, आदि शब्दों को कोर कोर लेखक मुषा हुषा, पुषा, आदि रूपों में मिलते हैं, पर ये रूप अशुद्ध हैं, क्योंकि देना उच्चारण नहीं होता और य विष्ट संमत भी नहीं हैं । करना का मूलशब्दिक ह्रदंत 'करा' प्राकृतिक प्रयोग है । 'जाना' का मूलशब्दिक ह्रदंत 'गया' संयुक्त क्रियाओं में आती है । इतका रूप 'गया' सं —गता से प्रा०—गच्छी के द्वारा बना है । ]

१००—मूलशब्दिक ह्रदंत का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है, जैसे मरा बोधा गिरा बर, उद्य हाथ मुषी बात, मागा चोर ।

( अ ) सर्वसाधारणशब्दिक धीर मूलशब्दिक ह्रदंतों के साथ बहुधा 'हुषा' लगाते हैं और इसमें मूल ह्रदंतों के समान रूपांतर होता है, जैसे शीघ्रता हुषा बोधा बहती हुई गाधी, देखी हुई बलु मरे हुए खोग इत्यादि । धीरिण बहुवचन का प्रत्यय केवल 'हुई' में लगता है जैसे मरी हुई महिलाएँ ।

( आ ) मूलशब्दिक ह्रदंत भी कभी कभी संज्ञा के समान आता है जैसे हाथ का दिया पिस को पीसना । गई बहोरि मरिब विषाद् ।  
( राम )

( इ ) सक्र्मक क्रिया में बना हुषा मूलशब्दिक ह्रदंत विशेषण कर्मवाच्य होता है अर्थात् वह कर्म की विशेषता बताता है, जैसे, दिया हुषा काम, बनाई हुई बात इत्यादि । इस अर्थ में इस ह्रदंत के साथ कोर-कोर लेखक 'गया' ह्रदंत जोड़ते हैं, जैसे, दिया गया काम बनाई गई बात, इत्यादि ।

हुए कई वर्ष बीत गये। इससे मुख्य क्रिया की रीति भी सूचित होती है। जैसे, 'महाराज कमर कसे बैठे हैं।' ( विधिय )। 'खिण' और 'मारे' कर्तों का प्रयोग बहुधा सर्वप्रमुख अर्थ के समान होता है। ( अ०—२३३-४ )।

३८४—अपूर्व क्रियाघोतक और पूर्व क्रियाघोतक कर्तों के साथ बहुधा ( अ०—३००—घ ) 'होना' क्रिया का पूर्व क्रियाघोतक कर्त अर्थात् 'हुए' लगाया जाता है; जैसे, दो एक दिन आते हुए बासी ने उसको देखा था। ( अ० )। 'धर्म एक ईताक के सिर पर विद्यरा रखवाये हुए आता है। ( सत्य० )।

[ सू०—सांख्यिक कर्त, अपूर्ण क्रियाघोतक कर्त और पूर्व क्रियाघोतक कर्त यथाय में क्रिया के कोई निश्चय प्रकार के स्मांतर नहीं है। किंतु वर्तमानकालिक और भूतकालिक कर्तों के विशेष प्रयोग हैं। कर्तों के वर्गीकरण में इन तीनों को अलग-अलग स्थान देने का कारण यह है कि इनका योग कई एक संयुक्त क्रियाओं में और स्वतंत्र कर्तों के साथ तथा अन्य-अन्य क्रिया-विशेषण के समान होता है, इसलिए इनके अलग-अलग नाम रखने में सुभीता है। कर्तों के विशेष अर्थ और प्रयोग वाक्य-विन्यास में लिखे जायेंगे।

### ( ६ ) काल-रचना ।

३८५—क्रिया के वाक्य अर्थ, काक, पुरुष, किंग और रचना के कारण होनेवाले सब कर्तों का संग्रह करना काल-रचना कहलाती है।

( क ) हिंदी के तीसरे काक रचना के विचार से तीन वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। पहले वर्ग में वे काक आते हैं जो धातु में प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं, दूसरे वर्ग में वे काक हैं जो यत्नसामकालिक कर्त में सहकारी क्रिया 'होना' के रूप में लगाए से बनते हैं और तीसरे वर्ग में वे काक आते हैं जो भूतकालिक कर्त में उसी सहकारी क्रिया के रूप छोड़कर बचाये जाते हैं। इन वर्गों के अनुसार कर्तों का वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

#### पहला वर्ग ।

( धातु से बने हुए काक ) ।

( १ ) संघाध्य-अधिष्यत्

( २ ) सामान्य-अधिष्यत्

- ( ३ ) प्रत्यय-विधि
- ( ४ ) परीच-विधि

### दूसरा वर्ग ।

( वर्तमानकाष्ठिक हृदय से बने हुए काष्ठ )

- ( १ ) सामान्य-संकेतार्थ ( हेतुहेतुमद् मूलकाष्ठ )
- ( २ ) सामान्य-वर्तमात्र
- ( ३ ) अपूर्ण-भूत
- ( ४ ) संमाप्य-वर्तमात्र
- ( ५ ) संप्रिण्य-वर्तमान
- ( ६ ) अपूर्ण-संकेतार्थ

### तीसरा वर्ग ।

( मूलकाष्ठिक हृदय से बने हुए काष्ठ )

- ( १ ) सामान्य भूत
- ( २ ) आम्य-भूत ( पूर्णवर्तमान )
- ( ३ ) पूर्ण-भूत
- ( ४ ) संमाप्य-भूत
- ( ५ ) संप्रिण्य-भूत
- ( ६ ) पूर्ण-संकेतार्थ

( ८ ) इन तीनों वर्गों में पहले वर्ग के चारों काष्ठ तथा सामान्य संकेतार्थ और सामान्य भूत काष्ठ प्रत्ययों के योग से बनते हैं, इसलिये ये दस काष्ठ साधारण काल कहलाते हैं; और शेष इस काष्ठ सदृशी क्रिया के योग से बनने के कारण संयुक्त काल कहे जाते हैं । कोर्-कोर्द दैवाकार्य केबल पहले दस काष्ठों को पद्यार्थ 'काष्ठ' मानते हैं और पिछले दस काष्ठों को संयुक्त क्रियाओं में गिनत हैं क्योंकि इबडी रचना से क्रियाओं क मेल भ जाती है । पहले ( पं ४३—टी० में ) कहा जा चुका है कि हिंदी संस्कृत के समान रूपांतरणीय और संयोगात्मक भ्रमा नहीं है; इसलिये इसमें शब्दों के

• हिंदुस्तान के आर और आयन-बाघों—मराठी, गुजराती, बँगला, आदि—को भी यही व्यवस्था है ।



समासों को कमी-कमी, सुमती के लिए उनका कर्पांतर मान लेते हैं। इसके सिवा हिंदी में 'संयुक्त क्रियाएँ' अलग मानने की बात पुरानी है जिसका कारण यह है कि कुछ संयुक्त क्रियाएँ कुछ विशेष भाषों में ही आती हैं और कई एक संयुक्त क्रियाएँ संज्ञाओं के मेख से बनती हैं। इस विषय का विशेष विचार आगे ( अ० २०० में ) किया जाएगा। जिन भाषों को 'संयुक्त भाषा' कहते हैं, वे हड़तों के साथ केवल एक ही सहकारी क्रिया के मेख से बनती हैं और उनसे संयुक्त क्रियाओं के विशेष अर्थ—अवधारण, शक्ति आरंभ, अवकाश, आदि—सूचित नहीं होते, इसलिये संयुक्त क्रियाओं को संयुक्त क्रियाओं से अलग मानते हैं। 'संयुक्त भाषा' शब्द के विषय में किसी किसी को जो आक्षेप है उसके संबंध में केवल इतना ही कहना है कि 'कल्पित नाम की अपेक्षा कुछ भी सार्थक नाम रखने से उसका अन्वेष करने में अधिक सुमति है।

### १—कर्तृवाच्य ।

१८१—पहले वर्ग के चारों भाषों के कर्तृवाच्य के रूप नीचे लिखे अनुसार बनते हैं—

( १ ) संसाध्य भविष्यत् काल बनाने के लिए धातु में वे प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ पु०	ई	एँ
म० पु	ए	ओ
अ० पु०	ए	एँ

( अ ) यदि धातु अकारांत हो तो ये प्रत्यय 'आ' के स्थान में लगाये जाते हैं; जैसे, 'खिन्न' से 'खिन्ने', 'कह' से 'कहे', 'बोख' से 'बोखें' इत्यादि।

( आ ) यदि धातु के अंत में अकार वा ओकार हो तो 'ई' और 'ओ' को शीघ्र शेष प्रत्ययों के पहले विकल्प से 'अ' का आगम होता है, जैसे 'बा' से बाएँ वा बाने 'गा' से गाएँ वा गाये, 'खो' से खोएँ वा खोये इत्यादि। अकारांत और अकारांत धातुओं में जब विकल्प से 'अ' का आगम नहीं होता तब उसका प्रत्यय स्वर इत्थ ही जाता है; जैसे किई, जिओ, पिएँ वा पीये, सिएँ वा सीये, हुए वा हूये।

- ( ६ ) एकाराज धातुओं में ई धार को दोड़ शेष प्रत्ययों के पहले व का आगम हाता है; जैसे, मेरे खेमें देवें इत्यादि ।
- ( ७ ) देवा धार खेना क्रियाओं क धातुओं में विडम्ब म ( घ ) धार ( इ ) के अनुसार प्रत्ययों का आदेश होता है; जैसे, हूँ, ( हूँ ) दे ( देने ), ही ( देही ) लूँ खे ( खने ), ली ( खपी ) ।
- ( ८ ) आध्वरांत धातुओं के परे ए धार ए के स्थान में विकल्प से इमथा व धार र्यं धारते हैं; जैसे जाय, जायें जाय, जायें इत्यादि ।
- ( ९ ) 'होना क रूपर द्विजे निबन्धों के विकल्प होते हैं । ये धारो दिये जायेंगे ।

[ १०—कह लोकाक लावो, विमें, बाये बाव, आदि रूप लिखते हैं, पर ये असुद्ध हैं । ]

( १ ) सामान्य भविष्यत् काच की रचना क द्विजे संभाव्य भविष्यत् के प्रत्यय पुरुष में पुलिङ्ग एकवचन के द्विज गा पुलिङ्ग बहुवचन के द्विज रो स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन के द्विज गी जगते हैं; जैसे, जाईगा जायेंगे जावगी, जावोगी, आदि ।

[ १०—'भाषा-प्रमाकर' में स्त्रीलिंग बहुवचन का चिह्न गी लिखा है, परंतु भाषा में 'गी' ही का प्रचार है और स्वयं वैशाखरय में जो उदाहरण दिये हैं उनमें भी 'गी' ही आया है । इस प्रत्यय के संबंध में हमने का निबन्ध दिया है वह बिछारे-हिंद और पं० रामलखन के व्याकरणी में पाया जाता है । सामान्य भविष्यत् का प्रत्यय 'गा' संस्कृत—गताः प्राहुः—गद्यो ले निबलता हुआ जान पड़ता है । क्योंकि वह लिंग और वचन के अनुकार बदलता है तथा इसके धार मूल क्रिया के बीच में 'ही' अभ्यय धा लकता है । ( प्र०—२२७ ) ।

( ३ ) प्रत्यय विधि का रूप संभाव्य भविष्यत् के रूप के समान हाता है दोनों में केवल मध्यम पुरुष के एकवचन का अंतर है । विधि का मध्यम पुरुष एकवचन धातु ही के समान होता है, जैसे 'करना' 'कर' 'जाना' से 'जा', इत्यादि ।

१०—'शकु०' में विधि के मध्यम पुरुष एकवचन का रूप संभाव्य भविष्यत् ही के समान आया है जैसे, कर—हे बेटी, मेरे निरय कम में निप्य मत डाले ।

( घ ) आहर-सूचक 'आप' के लिये मध्यम पुरुष में आतु के साथ साथ 'हये' वा 'हयेगा' जोड़ दिये हैं; जैसे, आहये, भिजिये, पाव खाहयेगा । आहयेगा ।

( ङ ) खेना, देना, पीना, करना और होना के आहर-सूचक विधि काल में 'हये' वा 'हयेगा' के पहले न का आम होता है और उनके स्वरों में प्रायः बड़ी कर्पांतर होता है जो इन क्रियाओं के भूतकालिक कर्तव्य बनाने में क्रिया आता है ( घ — २७१ ) ; जैसे,

खेना—खीजिये करना—कीजिये देना—दीजिये होना—हूजिये पीना—पीजिये ।

[ होना का आहर-सूचक विधि-काल दाहने का भी पक्षन अधिक है—  
'आप सम्प्रति दाहने बिससे कार्य आरंभ क्रिया का लके ।' ]

( इ ) 'करना' का विधर्मित आहर-सूचक विधिकाल 'करिये' 'लडु' में आता है, पर यह प्रयोग अनुकरणीय नहीं है ।

( ई ) कभी-कभी आहर-सूचक विधि का उपयोग संमाध्य मविषय के अर्थ में होता है जैसे, 'मन में ऐसी आती है कि सब जोड़ काड़ पीठ रहिये' । ( लडु० ) । 'बापस पाक्षिय अति अतुरागा ।' ( राम० ) ।

( उ ) 'बाहिये' अर्थ में आहर-सूचक विधि का रूप है, पर इससे वर्तमान काल की आवश्यकता का बोध होता है जैसे, 'मुझे पुस्तक बाहिये ।' 'उन्हें और क्या बाहिये ?'

( ए ) आहर-सूचक विधि का सूत्र का रूप ( शीत ) कभी-कभी आहर के लिये सामान्य मविषय और परोक्ष विधि में भी आता है, जैसे, 'औन सी रात आब मिसियेगा ।' मुझे रात समझकर कृपा रहियेगा ।'

( व ) परोक्ष विधि केवल मध्यम पुरुष में आती है और दोबो बचनों में एक ही रूप का प्रयोग होता है । इसके दो रूप होते हैं— ( १ ) क्रियार्थक संज्ञा लडुत परोक्ष विधि होती है ( २ ) आहर सूचक विधि के अर्थ में जो आदेश होता है, जैसे, ( १ ) ए रहवा मुझ से पति-अंग ( सर ) । प्रथम सिद्धाप को मूख मठ जावा । ( लडु ) । ( २ ) ए किसी के सौही

मत कहियो । ( प्रेम० ) । विता इस बात को मेरे ही समान गिनियो ।  
( शकु ) ।

( अ ) 'आप' क साथ आक्ष-सूचक विधि का नमूना रूप आता है  
[ ( १ ) उ ] । जैसे, 'आप वहाँ न जाइयेगा । आप न जाइयो गिठ  
प्रयोग नहीं है ।

( ब ) आक्ष-सूचक विधि में 'इ' के परभाव रूप और रूपों बहुधा कम म  
ए और हो जात है, जैसे खीजे खीजे कीजे पीजे हजे आदि ।  
ये रूप अक्सर कविता में आते हैं जैसे 'कह गिरधर किराण कइो  
अब कैसे कीजे । अब लारी है ययो कइो अब कैसे पीजे । स्थावज्ज  
हम मच को खीजे । ( भारत ) । 'कौआ सदा धर्म से श्रमण ।  
( सर० ) ।

२ —कितनी-कितनी का मत है कि 'हये' का 'हुय' लिखना चाहिये, अथवा  
'पाहिये' 'कीबिये', आदि शुद्ध 'बाहिय' 'कीबिय', रूप में लिखे जायें ।  
इस मत का प्रचार जोड़ ही वर्षों से हुआ है और कर लोग इसके पिटोपी  
मी है । इस बय-विन्यास के प्रचलक पं महाशोर प्रसाद को हिचेरी है बिनके  
प्रभाव से इनका महत्व बहुत बढ़ गया है । स्थानामात्र क कारण यहाँ दोनों  
पक्षों के बाधों का विचार नहीं कर सकते पर मत को प्रवृत्त करने में विशेष  
कठिनाईयें यह है कि यदि 'कीबिये' को 'कीबिय' लिखें तो फिर 'कीबियो'  
कित रूप में लिखा जायगा ? यदि 'कीबिया' का 'कीबिया' लिखें तो 'बियो'  
का 'बियो' लिखना चाहिये और जो एक का 'कीबिय' और दूसरे का  
'कीबियो' लिखें तो प्रायः एक प्रकार क दोनों रूपों को इस प्रकार भिन्न-भिन्न  
लिखने से अर्थ ही भ्रम उत्पन्न होगा । इस प्रकार के दोनों अनभिन्न रूप  
भारत-भारती में पाये जाते हैं, जैसे,

'इस देव का है हीनबन्धा आन फिर अपनाइय,  
मगवान् । भारतवर्ष का फिर पुनर भूमि यनाइय,  
'दाता ! दुम्हारी बन रहे, हमका क्या कर खोजियो,  
भाता ! मरे हा । हा ! हमारे धर्म ही मुख खोजियो ।

हम अपने मत के समर्थन में भारत-भारत-वर्षादक पं० कीबिया प्रसाद  
बाबनेपी क एक शेष का कुछ अर्थ यहाँ उद्धृत करते हैं—

‘अव’ ‘वाहिये’ और ‘लिये’ जैसे शब्दों पर विचार करना चाहिये हिंदी शब्दों में हकार के बाद स्वतः यकार का उच्चारण होता है, वैसे किया, दिया, आदि से स्पष्ट है। इसके विवा ‘हानि’ शब्द इकाग्र है। इसका बहुवचन में ‘हानिओं’ न होकर ‘हानियों’ रूप होता है। × × × स्पष्ट तो भी है कि हिंदी की प्रकृति हकार के बाद यकार उच्चारण करने की है। इसलिए ‘वाहिये’, ‘लिये’ ‘दीजिये’, जैसे शब्दों के अंत में एकार न लिखकर ‘येकार’ लिखना चाहिये।’

१८०—संयुक्त कर्तों की रचना में ‘होना’ सहकारी क्रिया के रूपों का काम पड़ता है, इसलिए ये रूप आगे लिखे जाते हैं। हिंदी में ‘होना’ क्रिया के दो अर्थ हैं—( १ ) स्थिति ( २ ) विचार। पहले अर्थ में इस क्रिया के केवल दो काक होते हैं। दूसरे अर्थ में इसकी काक-रचना और क्रियाओं के समाव होती हैं; पर इसके कुछ कर्तों से पढ़का अर्थ भी सूचित होता है।

## होना ( स्थितिदर्शक )

( १ ) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुंलिंग व स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
उ० पु० मैं हूँ	हम हैं
म० पु० तू है	तुम हो
अ० पु० वह है	वे हैं

( २ ) सामान्य भूतकाल

कर्त्ता—पुंलिंग

उ० पु० मैं था	हम थे
म० पु० तू था	तुम थे
अ० पु० वह था	वे थे

कर्त्ता स्त्रीलिंग

### होना ( विकारदर्शक )

( १ ) सामान्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुरुषिण वा स्त्रीलिङ्ग

- १—मैं होऊँ
- २—तू हो, होवे
- ३—वह हो, होवे

हम हों हों  
तुम होधी हो  
वे हों, हों

( २ ) सामान्य-भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुरुषिण

- १—मैं होऊँगा
- २—तू होगा, होवेगा
- ३—वह होगा, होवेगा

हम होंगे, होंगे  
तुम होओगे, होगे  
वे होंगे होवेगा

कर्त्ता—स्त्रीलिङ्ग

- १—मैं होऊँगी
- २—तू होगी, होवेगी
- ३—वह होगी, होवेगी

हम होंगी, होंगी  
तुम होओगी, होगी  
वे होंगी, होंगी

( ३ ) सामान्य संकेतार्थ

कर्त्ता—पुरुषिण

- बहुवचन
- १—मैं होता
  - २—तू होता
  - ३—वह होता

बहुवचन  
हम होते  
तुम होते  
वे होते

कर्त्ता—स्त्रीलिङ्ग

- १—तू होती

होती

२ —“होना” ( विकार-दशक ) के शेष रूप आगे वचनान्तरण दिये जायेंगे ।

३८८—दूसरे वर्ग के कर्त्तों कर्त्तृवाच्य का काल वर्तमानकालिक कर्त्त के साथ

“होना” सहकारी क्रिया के ऊपर लिखे कार्यों के रूप जोड़ने से बनते हैं। स्थितिपूर्ण सामान्य वर्तमान काल और विकार-पूर्ण संज्ञान्तरण मरिचकाल के लोच सहकारी क्रिया के लोच कार्यों के रूप कर्ता के पुन-विद्य-वचनानुसार बदलते हैं।

( १ ) सामान्य संकेतार्थ वर्तमानकालिक कर्तृत्व को कर्ता के पुन-विद्य-वचनानुसार बदलने से बनता है। इसके साथ सहायक क्रिया वहीं आती, जैसे मैं जाता, वह आती, हम आते, वे आतीं, इत्यादि।

( २ ) सामान्य वर्तमान वर्तमान कालिक कर्तृत्व के साथ स्थितिपूर्ण सहकारी क्रिया के सामान्य वर्तमानकाल के रूप जोड़ने से बनता है जैसे, मैं जाता हूँ, वह आती है, तुम आती हो इत्यादि।

( ३ ) सामान्य वर्तमानकाल के साथ “नहीं” आने से बहुधा सहकारी क्रिया का लोप हो जाता है; जैसे, “वो भाइयों में भी बरकरार अब नहीं पटती वहीं” ( मारत० )।

( ४ ) अपूर्ण भूतकाल काल के लिये कर्तृत्व के साथ स्थितिपूर्ण सहकारी क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप ( वा ) जोड़ते हैं, जैसे, मैं जाता था तु आती थी, वह आती थीं वे आती थीं इत्यादि।

( ५ ) जब इस काल से भूतकाल के अन्वयान्त का लोप होता है। तब बहुधा सहकारी क्रिया का लोप कर देते हैं, जैसे से बराबर निबन्धपूर्ण स्वाधीनता के लिये महाराज से मार्गवा करता तो वह कहते “मर्मात्मक करो” ( विविध० )।

( ६ ) बोधकाव्य की कविता में कमी-जमी संज्ञान्तरण मरिचक के आगे स्थितिपूर्ण सहकारी क्रिया के रूप जोड़कर सामान्य वर्तमान और अपूर्ण भूतकाल बनाते हैं। जैसे, “वहाँ जलै है वह जागी।” ( एकांत )।

पूर्व सुवाक्य—कहक कपोहर दिखसाये धा सर के लीरे। ( हिं प्रं )। इसका प्रचार अब बन्द रहा है।

( ७ ) वर्तमानकालिक कर्तृत्व के साथ विकार-पूर्ण सहकारी क्रिया के सामान्य-मरिचकाल के रूप जोड़ने से संज्ञान्तरण-वर्तमान काल बनता है; जैसे, मैं जाता होऊँ, वह आता हो, वे आती हों।

( ५ ) वर्तमानकाष्ठिक हृदय के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य-अविष्यत् के रूप अगान से संदिग्ध वर्तमान काष्ठ बनता है; जैसे मैं आता होऊँगा, वह आता होगा, वे आती होंगी ।

( ६ ) अपूर्व संकेतार्थ काष्ठ बनाने के लिये वर्तमानकाष्ठिक हृदय के साथ सामान्य संकेतार्थ काष्ठ के रूप अगाये जाते हैं; जैसे आज दिन परि बर्फ़ हल व तैयार करते होते तो हमारी क्या दशा होती ।

( ७ ) इस काष्ठ का प्रचार अपिष्ट नहीं । इसमें बद्धे बहुधा सामान्य संकेतार्थ आता है । इस काष्ठ में होता क्रिया का प्रयोग नहीं आता क्योंकि उसके साथ 'होता' शब्द विरर्षक श्रुति होती है ।

३८८—तीसरे वर्ग के धर्मों कर्तुबाध्य काष्ठ मूलकाष्ठिक हृदय के साथ 'होना' सहायक क्रिया के पूर्वोक्त पाँचों काठों के रूप जोड़ने से बनते हैं । इन काठों में 'बाह्य' वर्ग की क्रियाओं को जोड़कर शेष सकर्मक क्रियाएँ कमविप्रयोग वा भावेप्रयोग में आती हैं ( ध०—२९९—३०८ ) । यहाँ कवच कर्परिप्रयोग के उदाहरण दिये जाते हैं—

( १ ) सामान्य मूलकाष्ठ मूलकाष्ठिक हृदय में कर्ता के पुदक-विग-अधना मुसार स्फांतर करने से बनता है । इसके साथ सहकारी क्रिया नहीं आती; जैसे, मैं आया, हम आये, वह घोड़ा वे बोली ।

( २ ) आसन्न-मूल अगान के विपु मूलकाष्ठिक हृदय के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य वर्तमान के रूप आते हैं; जैसे मैं बोधा हूँ, वह बोधा है, तू आया है, वे आई हैं ।

( ३ ) पूर्वमूलकाष्ठ मूलकाष्ठिक हृदय के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य मूलकाष्ठ का रूप जोड़कर बनाया जाता है; जैसे, मैं आया वा वह आई थी तुम बोली थीं हम बोली थीं ।

( ४ ) मूलकाष्ठिक हृदय के साथ सहकारी क्रिया के संभाव्य अविष्यत् काष्ठ के रूप जोड़ने से संभाव्य मूलकाष्ठ बनता है; जैसे, मैं बोधा होऊँ, तू बोधा हो; वह आई हो, हम आई हों ।

( ५ ) मूलकाष्ठिक हृदय के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य अविष्यत्-काष्ठ के रूप जोड़ने से संदिग्ध मूलकाष्ठिक बनता है; जैसे, मैं आया होऊँगा वह आया होगा, वे आई होंगी ।



( १ ) पूर्ण संकेतार्थ अथवा बचाने के लिए भूतकालिक कृत के साथ सामान्य संकेतार्थ अथवा के रूप लगाये जाते हैं; जैसे, 'ओ तु एक बार भी नी से पुकारा होता ती, मेरी पुकार तौर की तरह तारों के पार पहुँची होती' । ( गुटथ ) ।

३३०—अध्वर्याय क्रियाओं में पुरुष के कार्य में वही पक्षता, जैसे, मैं गया, तु गया, वह गया । जब उनके साथ सहकारी क्रिया आती है तब स्त्रीलिंग के वादुवचन का स्फांतर केवल सहकारी क्रिया में होता है; जैसे जाती हूँ, हम जाती है, वे जाती थीं ।

३३१—उत्तम पुरुष, स्त्रीलिंग बहुवचन के रूप बहुधा ( धं०—१२८—क ) ओष्ठ-बाध में पुष्पिग ही के समान होते हैं । राजा शिवप्रसाद का यही मत है और भाषा में इसके प्रयोग मिलते हैं, जैसे गौतमी-हम जाते हैं ( राहु० ) । राबी—अब हम महल में जाते हैं । ( कर्पूर ) ।

३३२—आगे कर्तृवाच्य के सब कार्यों में तीन क्रियाओं के रूप लिखे जाते हैं । इन क्रियाओं में एक अकर्मक एक सहकारी और एक सकर्मक है । अकर्मक क्रिया हर्षत वातु की और सकर्मक क्रिया स्वरांत वातु की है । सहकारी 'होना' क्रिया के रूप कम अभिचमित होते हैं—

### ( अकर्मक 'बलना' क्रिया ( कर्तृवाच्य ) )

वातु***		** बल ( हर्षत )
कर्तृवाचक संज्ञा		** बलनेवाला
वर्तमानकालिक कृत	..	** बलता हुआ
भूतकालिक कृत	..	** बला हुआ
पूर्वकालिक कृत	..	** बल बलकर
तात्कालिक कृत		*** बलते ही
अपूर्ण क्रियापीठक कृत		** बलते हुए
पूर्ण क्रियापीठक कृत	..	बले हुए

( क ) वातु से बने-हुए काल

कर्तृप्रयोग

( १ ) संभाव्य भविष्यत् अथ

कृतां—पुङ्गिग वा स्त्रीङिग

एभ्यश्च

१ मीं चर्त्तुं

२ तु चर्त्ते

३ बह चर्त्ते

बहुवचन

इम चर्त्ते

तुम चर्त्तो

वे चर्त्ते

( २ ) सामान्य भविष्यत्-काञ्च

कृतां—पुङ्गिग

१ मीं चर्त्सुं

२ तु चर्त्से

३ बह चर्त्से

इम चर्त्से

तुम चर्त्सो

वे चर्त्से

कृतां—स्त्रीङिग

१ मीं चर्त्सुमी

२ तु चर्त्सेमी

३ बह चर्त्सेमी

इम चर्त्सेमी

तुम चर्त्सोमी

वे चर्त्सेमी

( ३ ) प्रायश्च विधिककाञ्च ( साधारण्य )

कृतां—पुङ्गिग वा स्त्रीङिग

१ मीं चर्त्तुं

२ तु चर्त्ते

३ बह चर्त्ते

इम चर्त्ते

तुम चर्त्तो

वे चर्त्ते

( आक्षर-सूचक )

२x

आप चर्त्तिषे या चर्त्तिषगा

( ४ ) बरोह विधिककाञ्च ( साधारण्य )

२ तु चर्त्तवा वा चर्त्तियो

तुम चर्त्तवा वा चर्त्तियो

( आक्षर-सूचक )

२x

आप चर्त्तिषेगा

( १८८ )

( ख ) वर्तमानकालिक कृदन्त से बने हुए काल

कर्तृविभयोग

( १ ) सामान्य संज्ञेताप्यकाक

कर्ता—पुङ्क्तिग

एकवचन  
१ मैं बखता  
२ तू बखता  
३ वह बखता

बहुवचन  
हम बखते  
तुम बखते  
वे बखत

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं बखती  
२ तू बखती  
३ वह बखती

हम बखती  
तुम बखती  
वे बखती

( २ ) सामान्य वर्तमानकाक

कर्ता—पुङ्क्तिग

१ मैं बखता हूँ  
२ तू बखता है  
३ वह बखता है

हम बखते हैं  
तुम बखते हो  
वे बखते हैं

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं बखती हूँ  
२ तू बखती है  
३ वह बखती है

हम बखती हैं  
तुम बखती हो  
वे बखती है

( ३ ) अपूर्व मूलकाक

कर्ता—पुङ्क्तिग

१ मैं बखता था  
२ तू बखता था  
३ वह बखता था

हम बखते थे  
तुम बखते थे  
वे बखते थे

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

एकवचन

- १ मैं बचती थी
- २ तू बचती थी
- ३ वह बचती थी

बहुवचन

- हम बचती थीं
- तुम बचती थीं
- वे बचती थीं

( ४ ) संमाध्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं बचता हूँ
- २ तू बचता हो
- ३ वह बचता हो

- हम बचते हैं
- तुम बचते होधो
- वे बचते हैं

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं बचती हूँ
- २ तू बचती हो
- ३ वह बचती हो

- हम बचती हैं
- तुम बचती होधो
- वे बचती हैं

( ५ ) संदिग्ध वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं बचता हूँगा
- २ तू बचता होगा
- ३ वह बचता होगा

- हम बचते होंगे
- तुम बचते होंगे
- वे बचते होंगे

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं बचती हूँगी
- २ तू बचती होगी
- ३ वह बचती होगी

- हम बचती होंगी
- तुम बचती होगी
- वे बचती होंगी

( ६ ) अपूर्ण संकेतार्थ

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं बचता होता
- २

हम बचते होते

पुरुषवचन  
 १ तु बचता होता  
 २ वह बचता होता

बहुवचन  
 तुम बचते होते  
 वे बचते होते

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं बचती होती  
 २ तू बचती होती  
 ३ वह बचती होती

हम बचती होतीं  
 तुम बचती होतीं  
 वे बचती होतीं

( ग ) भूतकालिक कृदन्त से बने हुए काल

कर्मरिप्रयोग

( १ ) सामान्य भूतकाल

कर्ता—पुंलिङ्ग

१ मैं बचा  
 २ तू बचा  
 ३ वह बचा

हम बचे  
 तुम बचे  
 वे बचे

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं बची  
 २ तू बची  
 ३ वह बची

हम बचीं  
 तुम बचीं  
 वे बचीं

( २ ) आद्यतन भूतकाल

कर्ता—पुंलिङ्ग

१ मैं बचा हूँ  
 २ तू बचा है  
 ३ वह बचा रे

हम बचे हैं  
 तुम बचे हो  
 वे बचे हैं

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं बची हूँ  
 २ तू बची है  
 ३ वह बची है

हम बची हैं  
 तुम बची हो  
 वे बची हैं

( ३ ) पूर्ण मृतकाङ्क

कर्त्ता—पुत्रिण

पुरुषवचन  
१ मैं बछा या  
२ तू बछा या  
३ वह बछा या

बहुवचन  
हम बछे ये  
तुम बछे ये  
वे बछे ये

कर्त्ता—स्त्रीविण

१ मैं बछी थी  
२ तू बछी थी  
३ वह बछी थी

हम बछी थीं  
तुम बछी थीं  
वे बछी थीं।

( ४ ) संभारण्य मृतकाङ्क

कर्त्ता—पुत्रिण

१ मैं बछा होई  
२ तू बछा हो  
३ वह बछा हो

हम बछे हीं  
तुम बछे होघी  
वे बछे हीं

कर्त्ता—स्त्रीविण

१ मैं बछी होई  
२ तू बछी हो  
३ वह बछी हो

हम बछी हीं  
तुम बछी होघी  
वे बछी हीं

( ५ ) संदिग्ध मृतकाङ्क

कर्त्ता—पुत्रिण

१ मैं बछा होऊँगा  
२ तू बछा होगा  
३ वह बछा होगा

हम बछ होंगे  
तुम बछते होंगे  
वे बछे होंगे

कर्त्ता—स्त्रीविण

१ मैं बछी होऊँगी

हम बछी होंगी

पुरुषचम	बहुवचम
२ तु चली होगी	तुम चली होगी
३ वह चली होगी	वे चली होंगी

## ( १ ) पूर्ण संकेतार्थ

## कर्त्ता—पुर्विख्य

१ मैं चला होता	हम चले होते
२ तू चला होता	तुम चले होते
३ वह चला होता	वे चले होते

## कर्त्ता—श्रीविद्य

१ मैं चली होती	हम चली होतीं
२ तू चली होती	तुम चली होतीं
३ वह चली होती	वे चली होतीं

( धातुकारी ) 'होवा' ( विकार-वर्गक ) क्रिया० ( कर्तृवाच्य )

अस्य	"	"	हो ( स्वरांत )
कर्तृवाचक संज्ञा			होनेवाचा
कर्त्तृमानकालिक कर्त्तृ	"	"	"होता-हुया
मृतकालिक कर्त्तृ	"	"	" हुया
पूर्वकालिक कर्त्तृ	"	"	"हो होकर
साध्यकालिक कर्त्तृ	"	"	होते ही
अपूर्व क्रियापोषक कर्त्तृ	"	"	"होते हुए
पूर्व क्रियापोषक कर्त्तृ	"	"	हुए

( फ ) घातु से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

( १ ) सामान्य भविष्यत्-काल

( २ ) सामान्य भविष्यत्-काल

स०—इन कालों के रूप ३८० वें अंक में दिये गये हैं ।

( ३ ) प्रत्यय विधिकाल ( साधारण्य )

कर्त्ता पुर्विक्रम वा क्रीडिग

एकवचन	बहुवचन
१ मैं होऊँ	हम हों, होवें
२ तू हो	तुम होओ, हो
३ वह हो होवे	वे हों, होवें

( आह-सूचक )

३ × आह हूजिये वा हूजियेगा

( ४ ) परोच विधिकाल ( साधारण्य )

२ तू होना वा हूजियो तुम होना वा हूजियो

आह-सूचक

३ × आह हूजियेगा

( ख ) वर्तमानकालिक कृदन्त से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

( १ ) सामान्य संबोधार्थ काल

स०—इस काल के रूपों के लिए ३८० वां अंक देखो ।

( २ ) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुर्विक्रम

एकवचन	बहुवचन
१ मैं होता हूँ	हम होते हैं



प्रकृतजन

- १ मैं वृ होता है  
२ वृ होता है

बहुवचन

- तुम होते हो  
वह होते हैं

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं होती हूँ  
२ वृ होती है  
३ वह होती है

- हम होती हैं  
तुम होती हो  
वे होती हैं

( ३ ) अपूर्व—मूतकाक

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं होता था  
२ वृ होता था  
३ वह होता था

- हम होते थे  
तुम होते थे  
वे होते थे

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं होती थी  
२ वृ होती थी  
३ वह होती थी

- हम होती थीं  
तुम होती थीं  
वे होती थीं

( ४ ) संभाव्य वर्तमानकाक

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं होता होंगे  
२ वृ होता हो  
३ वह होता हो

- हम होते हों  
तुम होते होओ  
वे होते हों

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं होती होंगे  
२ वृ होती हो  
३ वह होती हो

- हम होती हों  
तुम होती होओ  
वे होती हों

( ५ ) संदिग्ध वर्तमानकाक

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं होता होंगे

- हम होते होंगे

एकवचन  
१ ए होता होगा  
२ एह होता होगा

बहुवचन  
एम् होते होंगे  
वे होते होंगे

कर्त्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं होती होऊँगी  
२ ए होती होगी  
३ वह होती होगी

हम होती होंगी  
तुम् होती होगी  
वे होती होंगी

अपूर्व संकेतार्थ-काव्य

ए०—'इस काल में होना' क्रिया क रूप नहीं होते ।

( ग ) भूतकालिक कृद्व से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

( १ ) सामान्य भूतकाल

कर्त्ता—पुङ्गि

१ मैं हुआ  
२ ए हुआ  
३ वह हुआ

हम हुए  
तुम् हुए  
वे हुए

कर्त्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं हुई  
२ ए हुई  
३ वह हुई

हम हुई  
तुम् हुई  
वे हुई

( २ ) आसन्न-भूतकाल

कर्त्ता—पुङ्गि

१ मैं हुआ हूँ  
२ ए हुआ है  
३ वह हुआ है

हम हुए हैं  
तुम् हुए हो  
वे हुए हैं.

कर्त्ता—स्त्रीलिङ्ग

१ मैं हुई हूँ

हम हुईं हैं

एकवचन  
२ ए डुरं है  
३ बह डुरं है

बहुवचन  
तुम डुरं हो  
वे डुरं हैं

( ३ ) एयां भूतकाल

कर्ता—पुङ्गिवा

१ मैं हुआ था  
२ तू हुआ था  
३ वह हुआ था

हम हुए थे  
तुम हुए थे  
वे हुए थे

कर्ता—शीर्षिय

१ मैं डुरं थी  
२ तू डुरं थी  
३ वह डुरं थी

हम डुरं थीं  
तुम डुरं थीं  
वे डुरं थीं

( ४ ) संभाव्य भूतकाल

कर्ता—पुङ्गिवा

१ मैं हुआ हों  
२ तू हुआ हो  
३ वह हुआ हो

हम हुए हों  
तुम हुए होओ  
वे हुए हों

कर्ता—शीर्षिया

१ मैं डुरं हों  
२ तू डुरं हो  
३ वह डुरं हो

हम डुरं हों  
तुम डुरं होओ  
वे डुरं हों

( ५ ) संदिग्ध भूतकाल

कर्ता—पुङ्गिवा

१ मैं हुआ होऊँगा  
२ तू हुआ होगा  
३ वह हुआ होगा

हम हुए होंगे  
तुम हुए होंगे  
वे हुए होंगे

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

एकवचन

- १ मैं डुरई होऊँगी
- २ तू डुरई होगी
- ३ वह डुरई होगी

बहुवचन

- हम डुरई होंगी
- तुम डुरई होगी
- वे डुरई होंगी

( २ ) पूर्ण संज्ञेतापकाक

कर्त्ता—पुंलिंग

- १ मैं डुप्रा होता
- २ तू डुप्रा होता
- ३ वह डुप्रा होता

- हम डुप्रा होते
- तुम डुप्रा होते
- वे डुप्रा होते

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं डुरई होती
- २ तू डुरई होती
- ३ वह डुरई होती

- हम डुरई होती
- तुम डुरई होती
- वे डुरई होती

सकर्मक 'पाना' क्रिया ( कर्त्तवाच्य )

- पानु
- कर्त्तृवाचक संज्ञा
- वर्तमानकालिक कर्त्तृत्व
- भूतकालिक कर्त्तृत्व
- पूर्वकालिक कर्त्तृत्व
- तात्कालिक कर्त्तृत्व
- अपूर्ण क्रियापठक कर्त्तृत्व

- 'पा ( स्वरान्त )
- पानेवाका
- 'पाता डुप्रा
- 'पापा डुप्रा
- 'पा, पाकर
- 'पाते ही
- 'पाये डुप्रा

## ( क ) घातु से बने हुए काल

कर्त्तरि—प्रयोग

( १ ) सौभाग्य भविष्यत् काल

कर्त्ता—पुत्रिण्य वा स्त्रीहिण्य

एकवचन	बहुवचन
१ मैं पाऊँ	हम पाएँ, पावें, पावें
२ तू पाए, पावे, पाए	तुम पाओ
३ वह पाए, पावे पाए	वे पाएँ, पावें, पावें

( २ ) सामान्य भविष्यत् काल

कर्त्ता—पुत्रिण्य

१ मैं पाऊँगा	हम पाएँगे, पावेंगे, पावेंगे
२ तू पाएगा, पावेगा पावगा	तुम पाओगे
३ वह पाएगा, पावेगा पावगा	वे पाएँगे, पावेंगे, पावेंगे

कर्त्ता—स्त्रीहिण्य

१ मैं पाऊँगी	हम पाएँगी, पावेंगी, पावेंगी
२ तू पाएगी, पावेगी पावगी	तुम पाओगी
३ वह पाएगी, पावेगी, पावगी	वे पाएँगी, पावेंगी, पावेंगी

( ३ ) मत्वच-विभिक्यञ ( साधारण )

कर्त्ता - पुत्रिण्य वा स्त्रीहिण्य

१ मैं पाऊँ	हम पाएँ, पावें, पावें
२ तू पा	तुम पाओ
३ वह पाए, पावे, पाए	वे पाएँ, पावें, पावें

( आद्य-सूचक )

२ ×	आप पाइये हा पाइयेगा
-----	---------------------

( ४ ) परोच-विभिक्यञ ( साधारण )

२ तू पाया वा पाइयो	तुम पाया वा पाइयो
--------------------	-------------------

( २६६ )

( आदर-सूचक )

पुरुषजन

बहुवचन

२ ×

आप आह्वेगा

( ख ) वर्तमानकालिक कृदत से बने हुए काल

करीरि प्रयोग

( १ ) सामान्य संबोधार्थकाळ

कर्त्ता—पुर्विधग

१ मैं पाठा	हम पाठे
२ तू पाठा	तुम पाठे
३ वह पाठा	वे पाठे

कर्त्ता—स्त्रीविग

१ मैं पाठी	हम पाठीं
२ तू पाठी	तुम पाठीं
३ वह पाठी	वे पाठीं

( सामान्य वर्तमानकाळ )

कर्त्ता—पुर्विधप

१ मैं पाठा हूँ	हम पाठे हैं
२ तू पाठा है	तुम पाठे हो
३ वह पाठा है	वे पाठे हैं

कर्त्ता—स्त्रीविग

१ मैं पाठी हूँ	हम पाठीं हैं
२ तू पाठी है	तुम पाठीं हो
३ वह पाठी है	वे पाठीं हैं

## ( ३ ) अपूर्व भूतकाण्ड

कर्त्ता—पुर्विषय

एकवचन  
 १ मैं पाता था  
 २ तू पाता था  
 ३ वह पाता था

बहुवचन  
 हम पाते थे  
 तुम पाते थे  
 वे पाते थे

कर्त्ता—स्त्रीविग

१ मैं पाती थी  
 २ तू पाती थी  
 ३ वह पाती थी

हम पाती थीं  
 तुम पाती थीं  
 वे पाती थीं

## ( ४ ) संभाव्य वर्तमानकाण्ड

कर्त्ता—पुर्विषय

१ मैं पाता होंऊँ  
 २ तू पाता ही  
 ३ वह पाता हो

हम पाते हों  
 तुम पाते होंओ  
 वे पाते-हों

कर्त्ता—स्त्रीविग

१ मैं पाती होंऊँ  
 २ तू पाती हो  
 ३ वह पाती ही

हम पाती हों  
 तुम पाती होंओ  
 वे पाती हों

## ( ५ ) संदिग्ध वर्तमानकाण्ड

कर्त्ता—पुर्विषय

१ मैं पाता होंऊँगा  
 २ तू पाता होगा  
 ३ वह पाता होगा

हम पाते होंगे  
 तुम पाते होंगे  
 वे पाते होंगे

कर्त्ता—स्त्रीविग

१ मैं पाती होंऊँगी  
 २ तू पाती होगी  
 ३ वह पाती होगी

हम पाती होंगी  
 तुम पाती होंगी  
 वे पाती होंगी

## ( १ ) अपूर्ण संकेतार्थकाद्य

कर्त्ता—पुङ्गिग

एकवचन

- १ मैं पाता होता  
२ तू पाता होता  
३ वह पाता होता

बहुवचन

- हम पाते होते  
तुम पाते होते  
वे पाते होते

कर्त्ता—झीङिग

- १ मैं पाती होती  
२ तू पाती होती  
३ वह पाती होती

- हम पाती होतीं  
तुम पाती होतीं  
वे पाती होतीं

## ( २ ) भूतकालिक कृदन्त से बने हुए काल

कर्मणि-प्रयोग

## ( १ ) सामान्य भूतकाल

कर्म—पुङ्गिग, एकवचन

- मैंने वा हमने  
तूने वा तुमने  
उसने वा उन्होंने

पाया

कर्म—झीङिग, एकवचन

- मैंने वा हमने  
तूने वा तुमने  
उसने वा उन्होंने

पाई

कर्म—पुङ्गिग, बहुवचन

- मैंने वा हमने  
तूने वा तुमने  
उसने वा उन्होंने

पाये

कर्म—झीङिग, बहुवचन

- मैंने वा हमने  
तूने वा तुमने  
उसने वा उन्होंने

पाई

## ( २ ) भासन्न भूतकाल

कर्म—पुङ्गिग, एकवचन

- मैंने वा हमने  
तूने वा तुमने  
उसने वा उन्होंने

पाया है

कर्म—झीङिग, बहुवचन

- मैंने वा हमने  
तूने वा तुमने  
उसने वा उन्होंने

पाई



कर्म—पुष्पिग, बहुवचन		कर्म—शीशिग, बहुवचन
मैंने वा हमने	} पाये हैं	मैंने वा हमने
तूने वा तुमने		} पाईं हैं
उसने वा उन्होंने		

## • ( ३ ) पूर्व-भूतकाव

कर्म—पुष्पिग, एकवचन		कर्म—शीशिग, एकवचन
मैंने वा हमने	} पाया वा	मैंने वा हमने
तूने वा तुमने		} पाईं थी
उसने वा उन्होंने		

कर्म—पुष्पिग, बहुवचन		कर्म—शीशिग, बहुवचन
मैंने वा हमने	} पाये थे	मैंने वा हमने
तूने वा तुमने		} पाईं थीं
उसने वा उन्होंने		

## ( ४ ) संभाव्य-भूतकाव

कर्म—पुष्पिग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने	} पाया हो	} पायें हों
तूने वा तुमने		
उसने वा उन्होंने		

कर्म—शीशिग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने	} पाईं हो	} पाईं हों
तूने वा तुमने		
उसने वा उन्होंने		

## ( ५ ) संदिग्ध-भूतकाव

कर्म—पुष्पिग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने	} पाया होगा	} पाये होंगे
तूने वा तुमने		
उसने वा उन्होंने		

कर्म—शीर्षिका	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने	पाहू होगी	
तूने वा तुमने		
उसने वा उन्होंने		

( १ ) पूर्व्य संबन्धतायं क्वाङ्

कर्म—पुर्व्विञ्जा	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने	पाया होता	पाये होते
तूने वा तुमने		
उसने वा उन्होंने		

कर्म—शीर्षिका	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने	पाई हाती	पाहू हातीं
तूने वा तुमने		
उसने वा उन्होंने		

## ०—कर्मवाच्य

११३—कर्मवाच्य क्रिया बचाने के लिये सकर्मक धातु के भूतकालिक कर्तृत्वं क धागे “जाना” ( सहकारि ) क्रिया से सब कार्यों धीर धर्पों के रूप जोड़ते हैं । कर्मवाच्य से कर्मणि-प्रयोग में ( धं०—११० ) कर्म अक्षर्य हाकर धमत्पय कर्त्ता-कारक के रूप में आता है, धीर क्रिया के रूप्य ङिङ्, बचन उस कर्म के अनुसार होते हैं, जैसे बहका बुझाया गया है, बहको बुझाई गई है ।

११४—( क ) अब सकर्मक क्रियाओं का धातु सूचक रूप संधाप्य भविष्यत् काल के धर्प में आता है ( धं०—१०९-१-ई ), तब वह कर्मवाच्य होता है धीर “बाहिये” क्रिया को दादकर शेष क्रियाएँ भावप्रयोग में आती हैं, जैसे, क्या बाहिये”, बावम पासिय धति अनुरागा । ( राम ) ।

( ग ) ‘बाहिये’ को कोई-कोई खेसक बहुवचन में ‘बाहिये’ लिखते हैं, उसे धीने ही स्वभाव के लोग धी बाहिये ।” ( साव ) । पर यह प्रयोग सार्थकिक नहीं है । “बाहिये” से बहुधा सामान्य वर्तमानकाल का धर्प पाया जाता है, इसलिये भूतकाल के लिये इसके साथ “या” जोड़ देते हैं, जैसे, तेरा

## ( १ ) सन्दिग्ध वर्तमानकाल

एकवचन	बहुवचन
१ मैं देखा जाता होंगा	हम देखे जाते होंगे
२ तू देखा जाता होगा	तुम देखे जाते होंगे
३ वह " " "	वे देखे जाते होंगे

## ( २ ) अपूर्ण संकेतार्थकाल

१ मैं देखा जाता होता	हम देखे जाते होते
२ तू " " "	तुम " " "
३ वह " " "	वे " " "

## ( ३ ) भूतकालिक कृत्य से बने हुए काल

## ( कर्म प्रसिद्धि )

## ( १ ) सामान्य भूतकाल

१ मैं देखा गया	हम देखे गए
२ तू " "	तुम " "
३ वह " "	वे " "

## ( २ ) आसन्न भूतकाल

१ मैं देखा गया हूँ	हम देखे गये हैं
२ तू देखा गया है	तुम देखे गये हो
३ वह " " "	वे देखे गये हैं

## ( ३ ) पूर्ण भूतकाल

१ मैं देखा गया था	हम देखे गये थे
२ तू " " "	तुम " " "
३ वह " " "	वे " " "

## ( ४ ) संभाव्य भूतकाल

१ मैं देखा गया हों	हम देखे गये हों
२ तू देखा गया हो	तुम देखे गये हो
३ वह " " "	वे देखे गये हों

## ( १ ) संदिग्ध भूतकाण्ड

एकवचन	बहुवचन
१ मैं देखा गया होऊँगा	हम देखे गये होंगे
२ तू देखा गया होगा	तुम देख गये होगे
३ वह " " "	वे देखे गये होंगे

## पूर्वा संकेतार्थकाण्ड

१ मैं देखा गया होता	हम देखे गए होते
२ तू " " "	तुम " " "
३ वह " " "	वे " " "

## ३—भाववाच्य

३३९—भाववाच्य ( अर्थ — ३२१ ) अकर्मक क्रिया के उस रूप को कहते हैं जो कर्मवाच्य के समान होता है। भाववाच्य क्रिया में कर्म नहीं होता और उसका कर्ता कर्त्तव्य-कारक में आता है। भाववाच्य क्रिया सर्वत्र प्रत्ययस्य, पुर्विभग एकवचन में रहती है जैसे हमसे चला ब गया, रात भर किसी से जागा नहीं जाता, इत्यादि।

३४०—भाववाच्य क्रिया सदा भावेप्रयोग में आती है ( अर्थ— ३२८-३ ) और उसका उपयोग अशक्यता के अर्थ में 'न' या 'नहीं' के साथ होता है। भाववाच्य क्रिया सब कालों और कर्तव्यों में नहीं आती।

३४८—जब अकर्मक क्रिया के आक्षर-सूचक विधिकरण का रूप संभाव्य भविष्यत्-कारक के अर्थ में आता है तब वह भाववाच्य होता है, जैसे, सब में आती है कि अब खोंद-बाद बंदे रहिये। ( उक्त० )। यह भाववाच्य क्रिया भी भावेप्रयोग में आती है—

३४९—यहाँ भाववाच्य के केवल उन्हीं रूपों के उदाहरण दिये जाते हैं जिनमें उसका प्रयोग पाया जाता है—

( अकर्मक , 'चला जाना' क्रिया ( भाववाच्य )

धातु " " " " " चला जाता

उ०—इस क्रिया से और इतत नहीं बनते।

( क ) घातु से बने हुए काल

भाषेप्रयोग

( १ ) सामान्य भविष्यत्-काल

पुरुषचय

बहुवचन

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे



चला जाए, जाये, जाय,

सामान्य भविष्यत्-काल

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे



चला जायेगा, जाएगा  
जायगा

( ख ) वर्तमानकालिक कृदत् से बने हुए काल

भाषेप्रयोग

( १ ) सामान्य संकेतार्थ

पुरुषचय

बहुवचन

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे



चला जाता

( २ ) सामान्य वर्णमात्र काल

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे



चला जाता है

( १०६ )

( १ ) अपूर्ण भूतकाव्य

एकवचन

बहुवचन

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बछा जाता था

( २ ) सामान्य वर्तमानकाव्य

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बछा जाता हो

( ५ ) संदिग्ध वर्तमानकाव्य

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बछा जाता होगा

( ग ) भूतकालिक कृदव से बने हुए काल

भावेपयोग

( १ ) सामान्य भूतकाव्य

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बछा गया

( २ ) भासब भूतकाव्य

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बछा गया है

( ३ ) पूर्ण भूतकाव्य

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बछा गया था

## ( ४ ) संभाव्य भूतकाळ

एकवचन

बहुवचन

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बना गया हो

## ( ५ ) संदिग्ध भूतकाळ

- १ मुझसे वा हमसे
- २ तुझसे वा तुमसे
- ३ उससे वा उनसे

}

बना गया होगा

१०—कर्मवाच्य और भाववाच्य में जो संयुक्त क्रियाएँ आती हैं उनका विचार धामामी अप्याय में किया जायगा । ( अ० ४२५ ४२६ ) ।

सातवाँ अध्याय

## संयुक्त क्रियाएँ

१० — वास्तुओं के कुछ विशेष कर्तव्यों के धारे ( विशेष धर्म में ) कोई-कोई क्रियाएँ जोड़ीं दो जो क्रियाएँ बनती हैं उन्हें संयुक्त क्रियाएँ कहते हैं। जैसे, करमे लगाना, वा सजना, मार देना, इत्यादि । इन कथाहरणों में करमे वा और मार कर्तव्य है और इनके धारे लगाना सजना देना क्रियाएँ जोड़ी गई हैं । संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया का कोई कर्तव्य रहता है और सहकारी क्रिया के धार के रूप रहते हैं ।

१०१— कर्तव्य के धारे सहकारी क्रिया आने से सदैव संयुक्त क्रिया नहीं बनती । 'बदका बना हो गया इस वाक्य में मुख्य वास्तु वा क्रिया 'होना' है, 'बना' नहीं । केवल सहकारी क्रिया है, इसलिए 'हो गया' संयुक्त क्रिया है। परन्तु बदका 'दुम्बारे घर हो गया इस वाक्य में 'हो पूर्वकाधिक कर्तव्य 'गया' क्रिया की विशेषता बतलाया है इसलिए नहीं गया' ( इच्छारी ) क्रिया ही मुख्य क्रिया है । नहीं कर्तव्य की क्रिया मुख्य होती है और काळ की क्रिया उस कर्तव्य की विशेषता सूचित करती है नहीं हीनों की संयुक्त

क्रिया कहते हैं। यह बात वाक्य के अर्थ पर अवलंबित है इसलिये संयुक्त का निरूपण वाक्य के अर्थ पर से करना चाहिये।

[ टी०—'संयुक्त कालों' के विशेषण में कहा गया है कि हिंदी में संयुक्त क्रियाओं को 'संयुक्त कालों' से अलग मानने की बात है, और वहाँ इस बात का कारण भी संक्षेप में बतल दिया है। संयुक्त क्रियाओं को अलग मानने का सबसे बड़ा कारण यह है कि इनमें जो सहायकी क्रियाएँ जोड़ी जाती हैं उनसे 'काल' का कोई विशेष अर्थ स्थित नहीं होता, किन्तु मुख्य क्रिया तथा सहायकी क्रिया के मेल से एक नया अर्थ उत्पन्न होता है। इसके सिवा 'संयुक्त' कालों में क्तिन् कृदन्ती का उपयोग होता है उनसे बहुधा क्तिन् कृदन्त 'संयुक्त' क्रियाओं में आते हैं, जैसे, 'जाता या' संयुक्त काल है, पर 'जाने लगा' वा 'जाया चाहता है' संयुक्त क्रिया है। इस प्रकार अर्थ और रूप दोनों में 'संयुक्त क्रियाएँ' 'संयुक्त कालों' से भिन्न हैं, यद्यपि दोनों मुख्य क्रिया और सहायकी क्रिया के मेल से बनते हैं।

संयुक्त क्रियाओं से जो नया अर्थ पाया जाता है वह कालों के विशेष 'अर्थ' से ( अ० ३५६ ) भिन्न होता है और वह अर्थ इन क्रियाओं के किसी विशेष रूप से स्थित नहीं होता। पर कालों का 'अर्थ' ( आना, समाजना, संदेह, आदि ) बहुधा क्रिया के रूप ही से स्थित होता है। इस दृष्टि से संयुक्त क्रियाएँ सहायकी क्रियाओं से ठीक रूपांतर से भी भिन्न हैं जिसे 'अर्थ' कहते हैं।

किसी-किसी का मत है कि क्तिन् कृदन्ती ( वा तिहारी ) क्रियाओं को हिंदी में संयुक्त क्रियाएँ मानते हैं वे यथार्थ में संयुक्त क्रियाएँ नहीं हैं, किन्तु क्रियावाक्यांश हैं, और उनमें शब्दों का परस्पर व्याकरणसंबंध संबंध पाया जाता है, जैसे, 'जाने लगा' वाक्यांश में 'जाने' क्रियाधिक संज्ञा अधिकरण-कारक में है और वह 'लगा' क्रिया से 'आधार' का संबंध रखती है। इस मुक्ति में बहुत-कुछ बल है, परंतु जब हम 'जाने में लगा' और 'जाने लगा' के अर्थ का देखते हैं तब जान पड़ता है कि दोनों अर्थों में बहुत अंतर है। एक से अपूर्यता और दूसरे से आरंभ स्थित होता है। इसी प्रकार 'जा जाना' और 'लौकर जाना' में भी अर्थ का बहुत अंतर है। इसके सिवा 'स्वीकार करना', 'बिटा करना', 'दाम करना', 'स्मरण हाना' आदि ऐसी संयुक्त क्रियाएँ हैं जिनके अर्थों के साथ दूसरे शब्दों का संबंध बताना कठिन है, जैसे, 'मैं



सामान्य मविष्यत् की असंभवता के अर्थ में आता है; जैसे, हम वहाँ नहीं जाने लगे = हम वहाँ नहीं जायेंगे। 'इस रूपवान् युवक की ओवर बह इतनी बर्षों पसंद करने लगी।' ( १३० )।

( २ ) 'देना' शोधने से अनुमति-बोधक क्रिया बनती है; जैसे, मुझे जाने दीजिये, उसने मुझे बोझने व दिया, इत्यादि।

( ३ ) अवकाश-बोधक क्रिया अर्थ में अनुमति-बोधक क्रिया की विरोधिनी है। इसमें 'देना' के बहूँ 'पाना' बोधा जाता है; जैसे, यहाँ से जाने व पावेगी ( लड़ )। 'बाठ होने पाई।'।

( ४ ) 'पाना' क्रिया कभी-कभी पूर्वकालिक कृदंत के वातुवत् रूप के साथ भी आती है; जैसे, 'तुम लोगों ने श्रीमान् को बड़ी कठिनाई से एक घटि देख पाया।' ( शिब० )।

टी०—अधिकारा हिंदी व्याकरणों में 'देना' और 'पाना' दोनों से बनी हुई संयुक्त क्रियाएँ अवकाश-बोधक करी गई हैं, पर दोनों से एक ही प्रकार के अवकाश का बोध नहीं होता और दोनों में प्रयोग का भी अन्तर है जो आगे ( अ०—२१६—२१७ में ) बताया जायगा। इसलिए हमने इन दोनों क्रियाओं का अलग-अलग माना है।

## [ २ ] वर्तमानकालिक कृदंत के योग से बनी हुई

४ —वर्तमानकालिक कृदंत के आगे जाना जाना वा रहना क्रिया जोड़ने से नित्यता-बोधक क्रिया बनती है। इस क्रिया में कृदंत के विद्य बचन विशेष के अनुसार बढ़ाते हैं; जैसे वह बात सबातप से होती आती है, पेड़ बढ़ता मया पानी बरसता रहेगा।

( अ ) इस क्रियाओं में अर्थ की जो सूक्ष्मता है वह विचारणीय है। 'बढ़नी गाती जाती है' इस वाक्य में 'गाती जाती है' का वह भी अर्थ है कि बढ़नी गाती हुई वा रही है। इस अर्थ में 'गाती जाती है' संयुक्त क्रिया नहीं है; ( अ० ७० )।

( आ ) 'जाता रहना' का अर्थ बहुधा 'मर जाना', 'नष्ट होना' वा 'बढ़ा जाना' होता है; जैसे, 'मैंर पिता जाते रहे' 'बाँदी की सारी चमक जाती रही' ( गुदका ) 'बोकर बर से जाता रहेगा।

- ( ६ ) 'रहना' के सामान्य भविष्यत्-काल से अपूर्वता का बोध होता है; जैसे, जब तुम आओगे तब हम लिखते रहेंगे। इस अर्थ में कोई-कोई विधाकरके इस संयुक्त क्रिया को अपूर्ण भविष्यत्-काल मानते हैं। ( अं०—१५८, टी )।
- ( ७ ) आना, रहना आर जाना से कर्मण्य भूत, वर्तमान धीर भविष्यत्-नित्यता का बोध होता है; जैसे खरक्य पड़ता आता है खरक्य पड़ता रहता है खरक्य पड़ता आता है।
- ( ८ ) 'बचता' क्रिया के वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ होना" वा 'बचना' क्रिया के सामान्य भूतकाल रूप जोड़ने से विद्वन्तो क्रिया का निरचय सूचित होता है; जैसे वह मसख हो बलता बना। यह प्रयोग बोलचाल का है।

### (३) भूतकालिक कृदन्त से धनी हुई।

१०८—अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त के धागे 'जाना' क्रिया जोड़ने से तत्परता-बोधक संयुक्त क्रिया बनती है। वह क्रिया केवल वर्तमानकालिक कृदन्त से बने हुए कालों में धाती है; जैसे खरक्य आया जाता है, 'मार वू के सिर फटा जाता था' (गुटक) मारे बिता क वह मरी जाती थी मेरे हाँगे लखे हुए जाते हैं, इत्यादि।

( अ ) 'जाना के साथ 'जाना' सहकारी क्रिया नहीं धाती। 'बचना' के साथ 'जाना' धागामे से बहुधा विद्वन्तो क्रिया का निरचय सूचित होता है; जैसे, वह बछा गया। यह वाक्य अर्थ में अं० १००—३ के समान है।

( आ ) कुछ पर्यायवाची क्रियाओं के इसी अर्थ में 'पड़ना' जोड़ते हैं; जैसे, वह गिर पड़ता है, मैं झूरी पड़ती हूँ।

१०९—भूतकालिक कृदन्त के धागे 'करना' क्रिया जोड़ने से अभ्यास बोधक क्रिया बनती है; जैसे तुम हमें देखो व देखो हम तुम्हें देखा करो; 'बारह बरस रिझी रहे, पर माव ही भ्रँका किये' (मारत)।

[ सू०—इस क्रिया का प्रयुक्त नाम 'नित्यता-बोधक' है पर कितने हमने नित्यता-बोधक लिखा है ( सं०—४०० ) उसमें और इस क्रिया में रूप के सिवा अर्थ का भी ( सूत्र ) अंतर है; जैसे 'लड़का पढ़ता रहता है' और लड़का पढ़ा करता है। इस लिए लिए इस क्रिया का नाम अन्त्यात् बोधक उचित जान पड़ता है। ]

३१०—भूतकालिक कर्तव्य के आगे 'चाहना' क्रिया जोड़ने से इच्छा-बोधक संयुक्त क्रिया बनती है; तुम क्रिया चाहोगे तो सफाई होगी कीव कठिन है।' ( परी० ), बैसा नहीं जानकी माता। ( राम० ) 'बैसाजी, हम तुम्हें एक अपने निज के काम से भेजा चाहते हैं। ( मुद्रा० )।

( अ ) अन्त्यात् बोधक और इच्छाबोधक क्रियाओं में 'जाना' भूतकालिक कर्तव्य 'जाना' और 'मरना' का 'मरा' होता है; जैसे, जाया करता है, मरा चाहता है। ( अ०—३०६ सू० )।

(घ) इच्छा-बोधक क्रिया के रूप में 'चाहना' का आदर सूचक रूप 'चाहिये' भी आता है—( सं०—३०५ ); जैसे, "महाराज, अब नहीं बखरामजी का विवाह क्रिया चाहिये।" ( प्रेम० )। 'मातु उचित पुति आपसु शोभा। अकति शीघ्र धर चाहिये कीन्हा। ( राम )। यहाँ भी 'चाहिये' से कर्तव्य का बोध होता है और यह क्रिया भावेप्रयोग में आती है।

( इ ) इच्छाबोधक क्रिया से कभी-कभी अत्यन्त अविश्वस्य का भी बोध होता है; जैसे, 'राजी रोहितारव का मृत कंधक अदा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी दिखती है। ( सत्य ) 'तू जब उम्ह कदा चाहती थी, सो छौंमुजों ने रोके क्रिया।" ( लङ्० ) 'गाड़ी आया चाहती है'। बड़ी बजा चाहती है।" इसी अर्थ में कर्तृबोधक संज्ञा ( सं०—३०३ ) के साथ "होवा" क्रिया के सामान्य कार्यों के रूप जोड़ती है जैसे, "बह जानेवाला है", "अब यह मज्जहार भा सौषा" ( राम० )।

( ई ) इच्छा बोधक क्रियाओं में क्रियाबोधक संज्ञा के अविश्वस्य रूप का प्रथम अधिक होता है; जैसे, मैंने तपस्वी की कन्या को रोकना चाहा" ( लङ्० )। "(राजी) उम्हल की मति बढकर दीवना चाहती

है" ( सत्य० ) मूलकाव्य कृत से बने काव्यों में बहुधा क्रियार्थक संज्ञा ही आती है, जैसे, 'मैंने उसे देखा चाहा' के बरबरे 'मैंने उसे देखना चाहा' अधिक प्रयुक्त है।

( ४ ) पूर्वकालिक कृत के मेल से बनी हुई।

[ टी०—पूर्वकालिक कृत का एक रूप ( अ०—१८० ) पाठ्यवत् होता है; इसलिए इस कृत से बनी हुई संयुक्त क्रियाओं को हिंदी के वैयर्थ्य "पाठ्य से बनी हुई" कहते हैं; पर हिंदी की उप-भाषाओं और विदुस्तम की वृत्ती भाष-भाषाओं का मिलान करने से जान पड़ता है कि इन क्रियाओं में मुख्य क्रिया पाठ्य के रूप में नहीं, किंतु पूर्वकालिक कृत के रूप में आती है। स्वयं बोधायन की कविता में वह रूप प्रचलित है जैसे, "मन के नद को समसाय रही।" ( क० क० )। यही रूप ब्रह्मपात्र में प्रचलित है; जैसे, वह झपा रहा खुँ देय।" ( प्रेम० )। रामचरितमानस में इसके अनेकी उदाहरण हैं जैसे, "राखि न तर्कहि न कहि सक बाहु।" वृत्ती भाषाओं के उदाहरण यह—कश्च युक्त्यै ( मराठी ), कही युक्त्यै ( गुज० ), करिया युक्त्यै ( मैथला ) करि तारिया ( उड़िया )।

४११—पूर्वकालिक कृत के योग से तीन प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं—( १ ) अवधारणबोधक, ( २ ) शक्तिबोधक, ( ३ ) र्व्यताबोधक।

४१२—अवधारणबोधक क्रिया से मुख्य क्रिया के अर्थ में अधिक निरूपण पाया जाता है। बीच बिचौ सहायक क्रियाएँ इस अर्थ में आती हैं। इन क्रियाओं का ठीक-ठीक उपयोग सर्वथा व्यवहार के अनुभार है; तथापि इसके प्रयोग के कुछ नियम बर्तों दिये जाते हैं—

उठना—इस क्रिया से अभावक का बोध होता है। इसका उपयोग बहुधा स्थितिदर्शक क्रियाओं के साथ होता है; जैसे, बौक उठना, चिन्ना उठना रो उठना, चीक उठना, हस्तादि।

बैठना—वह क्रिया बहुधा च्युता के अर्थ में आती है। इसका प्रयोग कुछ विशेष क्रियाओं ही के साथ होता है; जैसे, मार बैठना, कह बैठना, चढ़ बैठना, लो बैठना। "उठना के साथ 'बैठना' का अर्थ बहुधा अभावकता बोधक होता है, जैसे, वह उठ बैठा।

जाना—कई स्थानों में इस क्रिया का स्वतंत्र अर्थ पाया जाता है, जैसे, देख जाओ=देखकर जाओ, और जाओ=धीरेकर जाओ। दूसरी स्थानों में इससे यह सूचित होता है कि क्रिया का वह चोर पम के घर में बच जाया, इत्यादि। “बातहिं-बात कर्य बदि आई।” ( राम० )

( घ ) कमी-कमी बोखवा, कहना, रीवा, ईसना, आदि क्रियाओं के साथ “जाना” का अर्थ “उठना” के समान अचानकता का होता है, जैसे, कछो चाहे कहु तो कहु कहि आवि।’ ( बगद्० )। उसकी बात धुनकर मुझे रो आया।

जाना—यह क्रिया कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने में प्रयुक्त होती है, इसलिये कई एक सकर्मक क्रियाएँ इसके बोग से अकर्मक हो जाती हैं, जैसे,

कुचकना—कुचक जाना

झुषा—झुषा जाना

घोना—घो जाना

सूना—सू जाना

खोना—खो जाना

खिखना—खिख जाना

सौना—सौ जाना

मूखना—मूख जाना

उदा०—मेरे पैर के नीचे कोई कुचक गया। मैं बाँधकों से झुगषा हूँ। ‘यदि राक्षस बड़ाई करने को उद्यत होता तौ भी पकड़ जायगा’। सुभा )।

इसका प्रयोग बहुधा स्थिति या विकारदर्शक अकर्मक क्रियाओं के साथ पूर्वता के अर्थ में होता है, जैसे, हो जाना, बन जाना, दैख जाना, विगड़ जाना, फूट जाना मर जाना, इत्यादि।

व्यापारदर्शक क्रियाओं में ‘जाना’ के बोध से बहुधा शीघ्रता का बोध होता है, जैसे, जा जाना, विगड़ जाना, पी जाना, पहुँच जाना, धाम जाना, समझ जाना, भा जाना, घूम जाना कद जाना इत्यादि। कभी कभी ‘जाना’ का अर्थ प्राप्त स्वतंत्र होता है और इस अर्थ में ‘जाना’ क्रिया ‘जाना’ के विकृत होती है, जैसे, देख जाओ=देखकर जाओ, खिख जाओ=खिखकर जाओ, खौट जाना=खौटकर जाना, इत्यादि।

खेना—जिस क्रिया के व्यापार का ज्ञान कर्ता ही को प्राप्त होता है उसके साथ ‘खेना’ क्रिया आती है। ‘खेना’ के बोग से कभी कभी संयुक्त क्रिया का अर्थ संयुक्त के व्यात्ययेपद के समान होता है, जैसे, जा खेना, पी खेना, मुच खेना, बीन खेना, कर खेना, धमझ खेना, इत्यादि।

'होना' के साथ 'बेना' से पूर्वता का अर्थ पाया जाता है। जैसे, 'जब तक पहले बातचीत नहीं हो जाती तब तक किसीका किसीके साथ कुछ भी संबंध नहीं हो सकता।' ( रघु )। जो बेना, मर बेना, त्याग बेना, आदि संयोग इसलिये अष्टक हैं कि हमके व्यापार से कर्ता को कोई लाभ नहीं हो सकता।

देना—यह क्रिया अर्थ में 'बेना' के विरुद्ध है और इसका उपयोग तभी होता है जब इसके व्यापार का लाभ दूसरे को मिलता है जैसे, कह देना, लौं देना, समझ देना, सिखा देना, सुना देना, इत्यादि। इसका प्रयोग अस्तुष्ट के परस्मैपद के समान होता है।

'देना' का संयोग बहुधा सक्र्मक क्रियाओं के साथ होता है जैसे मार देना, बाध देना, जो देना, त्याग देना, इत्यादि। बचना, हँसना, रोना, झींकना, आदि अक्र्मक क्रियाओं के साथ भी 'देना' आता है, परन्तु उनके साथ इसका अर्थ अभावकता का होता है।

( ध ) मारना, पटकना आदि क्रियाओं के साथ कभी कभी 'देना' पहले आता है और बाध का अन्तर्गत दूसरी क्रिया में होता है जैसे, म मार, दे पटका, इत्यादि।

'बेना' और देना अपने अपने कर्तों के साथ भी आते हैं, जैसे, बे बेना दे देना।

पढ़ना—यह क्रिया आचरणकता-बीबक क्रियाओं में भी आती है। आचरणक-बीबक क्रियाओं में इसका अर्थ बहुधा 'आना के समान होता है और के समान उसी के बीग से कई एक सक्र्मक क्रियाएँ अक्र्मक हो जाती हैं; जैसे सुनना—सुन पढ़ना जानना—जान पढ़ना। रकना—रक पढ़ना, सूचना—सूच पढ़ना, समझना—समझ पढ़ना।

'पढ़ना' क्रिया सभी सक्र्मक क्रियाओं के साथ नहीं आती। अक्र्मक क्रियाओं के साथ इसका अर्थ 'बढ़ना' आता है, जैसे, गिर पढ़ना, चीक पढ़ना, बूढ़ पढ़ना, हँस पढ़ना, आ पढ़ना इत्यादि।

'बढ़ना' के साथ 'पढ़ना' के बदले इसी अर्थ में कभी-कभी 'घाना' क्रिया आती है; जैसे, बात बढ पढ़ी-बढ घाई। 'दि बढियाँ बढि आये के साथी।

बह किया बहुधा वर्तमानकालिक कृत से बने हुए कार्यों में तथा विधि कार्यों में आती है।

४१३—प्रायः क्रियापीठक कृत के आगे होना, देना, आना और देना (अवधारण की सहायक क्रियाएँ) बोलने से विरचनबोधक संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं। ये क्रियाएँ बहुधा एककर्मक क्रियाओं के साथ वर्तमानकालिक कृत से बने हुए कार्यों में ही आती हैं; जैसे मैं यह पुस्तक लिखे देता हूँ। यह कपड़ा दिया देता है। हम कुछ कहते बैठते हैं। वह मुझे मारे आगता है। मैं उस आशापत्र का अनुबाप किये देता हूँ। (विधि०)।

### ( ७ ) संज्ञा वा विशेषण के योग से बनी हुई

४१०—संज्ञा वा विशेषण के साथ क्रिया बोलने से संयुक्त क्रिया बनती है उसे नाम-बोधक क्रिया कहते हैं; जैसे, भस्म होना, भस्म करना, स्वीकार करना, मोक्ष लेना दिखाई देना।

ए०—नामबोधक संयुक्त क्रियाओं में केवल वही संज्ञाएँ आना विद्ये पद्य आते हैं जिनका संबंध वाक्य के दूसरे शब्दों के साथ नहीं होता। 'ईश्वर ने लड़के पर दया की', इस वाक्य में 'दया करना' संयुक्त क्रिया नहीं है, क्योंकि 'दया' संज्ञा 'करना' क्रिया या कर्म है; परंतु 'लड़का दिखाई दिया,' इस वाक्य में 'दिखाई देना' संयुक्त क्रिया है, क्योंकि 'दिखाई' संज्ञा का 'दिवा' से बंध संबंध नहीं है। यह 'दिखाई' को 'दिवा' क्रिया का कर्म मानें तो 'लड़का' शब्द उपलब्ध कर्ता कारक में होना चाहिये और क्रिया कर्मवि प्रयोग में आनी चाहिये जैसे 'लड़के ने दिखाई दी' पर यह प्रयोग अशुद्ध है इसलिए 'दिखाई देना' को संयुक्त क्रिया मानने ही में व्याकरण के नियमों का पालन हो सकता है। इसी प्रकार मैं आपकी योग्यता स्वयं कर रहा हूँ इस वाक्य में 'करता हूँ' क्रिया का कर्म, स्वीकार नहीं है, किंतु 'स्वीकार करता हूँ' संयुक्त क्रिया का कर्म 'योग्यता' है।

४११—नामबोधक संयुक्त क्रियाओं में 'करना' 'होना' (कमी-कमी 'रहना') और 'देना' आते हैं। और 'होना' के साथ बहुधा संयुक्त

की क्रियापद संज्ञाएँ और 'देना' के साथ हिन्दी की भाववाचक संज्ञाएँ आती हैं, जैसे,

### होना

स्वीकार होना, मारा होना, स्तब्ध होना, बंद होना, याद होना, विस्तर्जन होना, धारम होना, सुरु होना, मरना होना, मस्म होना, बिदा होना ।

### करना

स्वीकार करना, धींगीका करना, चमा करना, धारम करना, ग्रहण करना, मरण करना, उपार्जन करना, संपादन करना, बिदा करना, त्याग करना ।

### पढ़ा

दिलाना देना, सुनाइ देना, पकड़ाना देना, सुझाना देना, बँधाना देना ।

( अ ) पढ़ा के बन्धे कमी-कमी 'पढ़ता जाता है' जैसे शब्द सुनाइ पढ़ा । बीच-बीच से दिनाइ पढ़ा ।

[ ६ — कार-कोर शैलक नामबोधक क्रियाओं को संज्ञा के बदले, व्याकरण की दृष्टि से उमका विद्येपर-रूप उपयोग में लाते हैं 'कैर, 'तमा बिठवन हुर' के बदले 'तमा बिठबित्त हुर' स्वीकार करना' के बन्धे 'पढ़ीइत करना, हस्तादि । यह प्रयोग कर्म कावचिक मरौ इ । इसक बदले कार-कोर शैलक कता और कर्म को सर्वपकारक में रखत हैं कैर, कथा का धारम हुआ । उन्होंने कथा का धारम किया । कर शैलक भूष के 'होना' क्रियाय संज्ञा और उनक साथ कार हुर काधारय संज्ञा का संयुक्त क्रिया नामकर विन्धि के दम से संज्ञा के मेरक का विद्येपर का विद्येपर रूप में रखत हैं कैर, उनके कर्म होत पर ( उमका कर्म होने पर ) राजा के देहाइ होने के पम्ह ( राजा का देहाइ होने के पम्ह ) ।

### ( ८ ) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ ।

३२३—इस दो समान धपवाची का समान धनिवाची क्रियाओं का संयोग हाता है, सब उन्हे पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ कहते हैं; जैसे, पढ़ना-बिठवना करना-धरना, समझना-बुझना, बोंडना-बाँडना, चुड़ना-चाड़ना, धावा-धीना, होना-दुबाना, मिचका-झुझना, देचना-जाचना ।



( अ ) जो क्रिया केवल पमक ( ध्वनि ) मिष्ठाने के द्विजे जाती है वह निरर्थक रहती है; जैसे, ताकुम्भ, माधना, इवाना ।

( आ ) पुनरुक्त क्रियाओं में दोनों क्रियाओं का अन्तर होता है; परंतु सहायक क्रिया केवल पिङ्गली क्रिया के साथ जाती है; जैसे अथवा काम देना माझो यह वहाँ जाया-आया करता है, अहाज वहाँ चार्ये आवेंगे, मित्र लुक्कर, शोचता-याचता हुआ ।

३२३—संयुक्त क्रियाओं में कमी-कमी सहकारी क्रिया के कर्तृ के आगे दूसरी सहकारी क्रिया जाती है जिससे तीन अथवा चार शब्दों की भा संयुक्त क्रिया बन जाती है, जैसे, उसकी लम्बक सफाई कर लेना चाहिये ।” ( परी० ) : “उन्हें यह काम करना पड़ रहा है ।” ( आदर्श० ) । “हम यह पुस्तक उठा ले जा सकते हैं ।” इत्यादि ।

३२४—संयुक्त क्रियाओं में अंतिम सहकारी क्रिया के अर्थ को विद्भे कर्तृ का विशेष के साथ मिश्रकर संयुक्त धातु मानते हैं; जैसे उठा ले जा सकते हैं’ क्रिया में ‘उठा ले जा सकें’ धातु माना जायगा । संयुक्त में भी ऐसे ही संयुक्त धातु माने जाते हैं, जैसे अमासीक, पञ्चोचरीम् इत्यादि ।

३२५—संयुक्त क्रियाओं में केवल नीचे लिखी सकर्मक क्रियाएँ कर्मवाच्य में जाती हैं—

( १ ) आश्चर्यकता-बोधक क्रियाएँ जिनमें ‘होना’ और “चाहिये” का बोध होता है, जैसे चिढ़ी चिढ़ी जाता थी । काम देना जाना चाहिये इत्यादि ।

( २ ) आर्हम-बोधक जैसे यह विद्वान् समस्य जाने लगा । धातु परी बर्षों में गिने जाये लगे ।

( ३ ) अपधारण-बोधक क्रियाएँ जो “देना” ‘देना’, “हालना”, के बोध से बहती हैं, चिट्ठी भेज दी जाती है, काम कर लिया गया, पत्र अफ हाहा जायगा, इत्यादि ।

( ४ ) शक्ति-बोधक क्रियाएँ, जैसे चिट्ठा भेजी जा सकती है, काम क किया जा सक्य इत्यादि ।

( ५ ) पूर्णता-बोधक क्रियाएँ जैसे, पानी जाया जा चुका । कपड़ा सिक्का जा चुकेगा इत्यादि ।

( ९ ) वाम-बोधक क्रियाएँ जो बहुधा संस्कृत क्रियाधिक संज्ञा के योग से बनती हैं, जैसे वह बात स्वीकार की गई, क्या भ्रमण की जावगी, हाथी मौन विधा जाता है इत्यादि ।

( १० ) पुनरुक्त क्रियाएँ, जैसे काम हुआ भाषा नहीं गया बात समझी न्यूनी आपराग इत्यादि ।

( ११ ) विलपता-बोधक जैसे काम किया जाता रहेगा=होता रहेगा । फिरछी किली जात रही ।

४२६—भाववाच्य में केवल वामबोधक धीर पुनरुक्त अस्मिक क्रियाएँ आता है जैसे, सम्भाव देरकर किरी से चुप नहीं रहा जाता । अफके ते कैने बला किरा आपगा, इत्यादि ।

आठवीं अध्याय ।

विकृत अव्यय

[ शब्दों के कर्ता के प्रकार में अर्थों का ठीक-ठीक व्यापकता नहीं है, क्योंकि अर्थों में निग-बचनादि के अर्थ विचार (कर्ता) नहीं होता । पर भाषा में निरपवाद निबन्ध बहुत बोधे पाये जाते हैं । भाषा संक्षिप्त शब्दों में बहुधा अनेक अपवाद और प्रत्ययवाह रहते हैं । वृत्त में अर्थों का अर्थकारी शब्द कहा गया है, परंतु कोई-कह अव्यय विकृत रूप में भी आते हैं । इस अध्याय में हमारी विकृत अव्ययों का विचार किया जायागा । ये सब अव्यय बहुधा आकारांत होने के कारण आकारांत विशेषणों के समान उपयोग में आते हैं धार अर्थों के समान निग बचन के साथ इनका रूप पड़ता है । ]

४२७—त्रियाविशेष्य—जब आकारांत विशेषणों का प्रयोग किया विशेषणों के समान होता है तब उनमें बहुधा कर्ता होता है । इस कर्ता के नियम ये हैं—

( १ ) परिभाषावाचक वा अंतरवाचक क्रियाविशेष्य जिस विशेषण की विलेपता बताते हैं उसी के विशेष्य के अनुसार उनमें कर्ता होता है ; जैसे 'जो जितने बड़े हैं उन्हीं की उन्नी ही बड़ी है ।' (सत्य०) । "साधाम्पात्र उमका जैसा कहा हुआ वा उपयोग भा उमका वीसा ही अर्धमुत वा" (रघु) । "बर पर्यंत के कस्तू बड़े भारी हैं । (विचित्र०) ।

( आ ) अधर्मक क्रियाओं के कर्त्तरिबोध में आकारांत क्रियाविशेषण कर्त्ता के शिग-वचन के अनुसार बढ़ते हैं; जैसे वे उनसे इतने बिक गये थे ।' ( रघु० ) । 'बुधों की बढ़ पतित्र बरहों के प्रवाह से बुधकर कैसी चमकती है ।

( शकु ) । 'प्याहे सें फाजा मयो तिरछो तिरसो जात ।

( रघोम ) 'जैसी चख बवार ।' ( बुध० ) ।

अप०—इस प्रकार के वाक्यों में कभी-कभी क्रियाविशेषण का रूप धातु वृत्त ही रहता है, जैसे, 'जितना वे पहले तैवार रहत वे जितना पीछे नहीं रहते । ( स्वा० ) । 'यहाँ की क्षिर्पा डारीक धीर बेतकूठ होन से उतवा ही कबाठी है जितना कि पुरुष ।'

( विचित्र ) । ये बधोग अनुस्यूयिष नहीं हैं, क्योंकि इन वाक्यों में धातु रूप शब्द टुब क्रियाविशेषण नहीं हैं । मूल विशेषण होने के कारण संज्ञा धार शक्या दोनों से समान संबंध रखते हैं ।

( इ ) सधर्मक कर्त्तरि धीर कर्मवि-प्रवागों में प्रकृत क्रिया-विशेषण कर्म के शिग-वचन के अनुसार बढ़ते हैं, जैसे, 'एक बंदा किसी महाजन के बाग में जा कख-पकके कुछ मलमाल जाता था । 'खि कमीन में सीधे गाये गये । ( अचिप्र० ) । समुद्र अपनी बढ़ा-बढ़ी बहरें उँची उँहाकर उट की तरह बढ़ता है । ( रघु ) ।

अप —जब सधर्मक क्रिया में कर्म की विवक्षा नहीं रहती तब उसका प्रयोग अधर्मक क्रिया के समान होता है; धीर प्रकृत क्रियाविशेषण कर्त्ता के साथ सम्बन्ध न होकर सर्वत्र पुर्विलग एकवचन ( अविहृत ) रूप में रहता है; जैसे, 'मैं इतना पुकारती हूँ ।' ( सत्य ) । 'बढ़की अप्प्या गाठी है । 'वे तिरछा दिखते हैं । 'इसी वर से वे थोड़ा बोझते हैं । ( रघु ) ।

( ई ) अधर्मक भावप्रयोग में पूर्वोक्त क्रियाविशेषण विकल्प से विहृत अथवा अविहृत रूप में आते हैं, धीर अधर्मक भावप्रयोग में बहुधा अविहृत रूप में; जैसे 'एकमात्र बंदिबी ही को उसने सामने खड़ी रखा' । ( रघु० ) । इसको ( हमने ) इतना बड़ा बनाया । ( सर ) । मुझसे स्तीषा नहीं बना जाता । ( धी —५१२ ) ।

ए०—सदा, तबदा, तबधा, बहुधा, कृया, आदि आकारांत क्रिया विशेषणों का स्वरान्तर नहीं होता, क्योंकि ये शब्द मूल में विशेषण नहीं हैं ।

४२२—संबंध-सूचक अप्यय—जो संबंध-सूचक अप्यय मूल में विशेषण हैं ( अ०—३४० ), उनमें आकारांत शब्द विशेष्य के द्विगत्वनानुसार बदलते हैं । विशेष्य विभक्त्यंत क्रिया संबंध-सूचक हो तो संबंध सूचक विशेष्य विहित रूप में आता है; जैसे 'तुम सरोखे घोकरे,' यह आप एसे महात्माओं ही का काम है' इत्यादि ।



३३०.—एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं वे बहुधा हीन प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी-किसी शब्द के पूर्व एक-दो अक्षर अगान से बने शब्द बनते हैं; किसी-किसी शब्द के परचात् एक-दो अक्षर अगान्कर बय शब्द बनाये जाते हैं; और किसी-किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिचाने से नये संयुक्त शब्द तैबार होते हैं।

( अ ) शब्द के पूर्व जो अक्षर वा अक्षर-समूह अगान्का जाता है उसे उपसर्ग कहते हैं; जैसे अन्न शब्द के पूर्व 'अन्न' विधेयायी अक्षर-समूह अगान्का से 'अन्नपन्न' शब्द बनता है। इस शब्द में 'अन्न ( अक्षर-समूह )' को उपसर्ग कहते हैं।

ख — संस्कृत में शब्दों के पूब आनेवाले कुछ नियत अक्षरों ही को उपसर्ग कहते हैं और बाकी को अम्पय मानते हैं। यह अंतर उस भाषा की इति स महत्व का मी हो, पर हिंदी में ऐसे अंतर मानने का कोई कारण नहीं है। इतिहिंदी में 'उत्तरग' शब्द की याचना अधिक स्वापक अय में होती है।

( आ ) शब्दों के परचात् ( आगे ) जो अक्षर वा अक्षर समूह अगान्का जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं; जैसे, 'बड़ा' शब्द में 'आई' ( अक्षर-समूह ) से 'बड़ाई' शब्द बनता है, इसलिये 'आई' प्रत्यय है।

ख — कर्मांतर-प्रकरण में जो कारक-प्रत्यय और अज्ञा प्रत्यय बने गये हैं उनमें और स्मृत्यति-प्रत्ययों में अंतर है। पहले दो प्रकार के प्रत्यय अरम प्रत्यय हैं अर्थात् उनके परचात् और कोई प्रत्यय नहीं लग सकता। हिंदी में अविपर्यय कारक के प्रत्यय इस नियम के अयवाह हैं, तथापि विभक्तिओं को आचारवातया अरम प्रत्यय मानते हैं। परंतु स्मृत्यति में जो प्रत्यय आते हैं वे अरम प्रत्यय नहीं हैं क्योंकि उनके परचात् दूसरे प्रत्यय आ सकते हैं। उदाहरण के लिये 'अतुराई' शब्द में 'आई' प्रत्यय है और इस समय के परचात् 'से' 'को', आदि प्रत्यय अगान्का से 'अतुराई से' 'अतुराई को' आदि शब्द तिरु होते हैं पर 'से' 'को', आदि के परचात् 'आई' अथवा और कोई स्मृत्यति प्रत्यय नहीं लग सकता।

बौगिक शब्दों में जो अम्पय हैं ( जैसे, पुपके, लिये, बीरे, आदि ) उनमें प्रत्ययों के आगे मी बहुधा दूसरे प्रत्यय नहीं आते; परंतु उनका अरम प्रत्यय

नहीं कहते, क्योंकि उनके परवात् विभक्तियों का लोप हो जाता है। उदाहरण यह है कि कारक प्रत्यय और काल प्रत्ययों ही को अरम प्रत्यय कहते हैं।

( ६ ) जो अथवा अधिक शब्दों के मिलने से जो संयुक्त शब्द पमता है उसे समास कहते हैं जैसे, रसोई-घर, सैन्धवार पंखेरी इत्यादि।

६०—एक शब्द का शब्द भी होता है; और अनेक शब्दों के उपसर्ग और प्रत्यय भी होते हैं, इसलिए बाह्य स्वरूप देखकर यह बताया कठिन है कि शब्द कौनसा है और उपसर्ग अथवा प्रत्यय कौनसा है। ऐसी अवस्था में उनके अर्थ के अंतर पर विचार करना आवश्यक है। जिस शब्द-समूह में स्वतन्त्रतापूर्वक कोई अर्थ पाया जाता है उसे शब्द कहते हैं, और जिस शब्द या शब्द-समूह में स्वतन्त्रतापूर्वक कोई अर्थ नहीं पाया जाता अर्थात् स्वतन्त्रतापूर्वक विचार प्रयोग नहीं होता और जो किसी शब्द के आशय से उसके आगे अथवा पीछे आकर अर्थवान् होता है, उसे उपसर्ग अथवा प्रत्यय कहते हैं।

६१—उपसर्ग प्रत्यय और समास से बने हुए शब्दों के विषय हिंदी में और दो प्रकार के रीतिगत शब्द हैं जो अमरः पुनरुक्त और अनुसंधान-वाचक कहलाते हैं पुनरुक्त-शब्द किसी शब्द को दुहराने से बनते हैं, जैसे, घर-घर भासामास, कामधाम ऊँ-सुनू, काट-कूट, इत्यादि। अनुसंधान-वाचक शब्द, जिसका कोई-भीई अर्थान्वय पुनरुक्त शब्दों का ही अर्थ मानने से किसी पदार्थ को अपना अर्थवाचक शब्द को अर्थ में रखकर बनाने जाते हैं; जैसे, घरघराना, धड़ाम, चर इत्यादि।

६२—प्रत्ययों से बने हुए शब्दों को दो मुख्य भेद हैं—कूर्त, लदित। धातुओं से परे जो प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें कूर्त कहते हैं, और कूर्त प्रत्ययों के बाग से जो शब्द बनते हैं वे कूर्त कहलाते हैं। धातुओं को संबद्ध शेष शब्दों के आगे प्रत्यय लगाने से जो शब्द तैयार होते हैं उन्हें लदित कहते हैं।

६३—हिंदी-भाषा में जो शब्द प्रचलित हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके विषय में यह निश्चय किया जा सकता है कि उनका व्युत्पत्ति भेद है। इस प्रकार के शब्द वैज्ञानिक कहलाते हैं। इन शब्दों का संख्या बहुत बड़ी है और संभव है कि प्राथमिक आद्यव्यंजनों की बहता के नियमों का अविज्ञान और पहचान इनके अंत में इनकी संख्या बहुत कम हो सकती है। ऐश्वर्य शब्दों का दो-दो-दो क अतिरिक्त शब्द दुर्लभ भाषाओं से आया

३३०—एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं वे बहुधा सीम प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी-किसी शब्द के पूर्व एक-दो अक्षर लगाते से नये शब्द बनते हैं; किसी-किसी शब्द के परचात् एक-दो अक्षर लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं; और किसी-किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिचाने से नये संयुक्त शब्द तैयार होते हैं।

( अ ) शब्द के पूर्व जो अक्षर वा अक्षर-समूह लगाया जाता है उसे उपसर्ग कहते हैं; जैसे 'अन' शब्द के पूर्व 'अन' विषयवाची अक्षर-समूह लगाने से 'अनअन' शब्द बनता है। इस शब्द में 'अन' ( अक्षर-समूह ) को उपसर्ग कहते हैं।

ए — संस्कृत में शब्दों के पूरा आनेवाली कुछ निवृत्त अक्षरों ही को उपसर्ग कहते हैं और बाकी को अल्प्य मानते हैं। यह अंतर उस भाषा की दृष्टि से महत्व का मी हो, पर हिंदी में ऐसे अंतर मानने का कोई कारण नहीं है। इसलिए हिंदी में 'उठठग' शब्द की योजना अल्प्य स्थापक अर्थ में होती है।

( आ ) शब्दों के परचात् ( आगे ) जो अक्षर वा अक्षर समूह लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं; जैसे, 'बधा' शब्द में 'धा' ( अक्षर-समूह ) से 'बधा' शब्द बनता है, इसलिये 'धा' प्रत्यय है।

ख — स्मांतर प्रत्यय में जो कारक-प्रत्यय और अज्ञ प्रत्यय बड़े गये हैं उनमें और व्युत्पत्ति प्रत्ययों में अंतर है। पहले दो प्रकार के प्रत्यय चरम प्रत्यय हैं अर्थात् उनके परचात् और कोई प्रत्यय नहीं लग सकते। हिंदी में अधिप्रत्यय कारक के प्रत्यय इस नियम के अपवाद हैं, तथापि विभक्तिवों को साधारणतया चरम प्रत्यय मानते हैं। परंतु व्युत्पत्ति में वा प्रत्यय आते हैं वे चरम प्रत्यय नहीं हैं क्योंकि उनके परचात् दूसरे प्रत्यय आ सकते हैं। उदाहरण के लिये 'बहुराह' शब्द में 'आह' प्रत्यय है और इस समय के परचात् 'से' 'को', आदि प्रत्यय लगाने से 'बहुराह से' 'बहुराह को' आदि शब्द सिद्ध होते हैं पर 'से' 'को', आदि के परचात् 'आह' अथवा और कोई व्युत्पत्ति प्रत्यय नहीं लग सकता।

योगिक शब्दों में जो अल्प्य हैं ( जैसे, चुनके, लिये, बरिरे, आदि ) इनके प्रत्ययों के आगे मी बहुधा दूसरे प्रत्यय नहीं आते; परंतु उनके चरम प्रत्यय

नहीं कहते, क्योंकि उनके पर्याय विमलियों का लोप हो जाता है। ताराय यह है कि कारक-प्रत्यय और काल प्रत्ययों ही को वरम प्रत्यय कहते हैं।

( ६ ) की अपवा अत्रिक शब्दों के मिश्रण से जो संयुक्त शब्द बनता है उसे समास कहते हैं जैसे, रसोह पर, मेषपार पंसेरी इत्यादि।

२०—एक अक्षर का शब्द भी होता है; और अनेक अक्षरों के उपसर्ग और प्रत्यय भी होते हैं, इतना ही वास्तविक देखकर यह बताना कठिन है कि शब्द कीमता है और उपसर्ग अथवा प्रत्यय कीमता है। ऐसी अवस्था में उनके अर्थ के अंतर पर विचार करना आवश्यक है। बिना अक्षर-समूह में स्वतन्त्रतापूर्वक काह अर्थ पाया जाता है उसे शब्द कहते हैं, और बिना अक्षर या अक्षर समूह में स्वतन्त्रतापूर्वक काह अर्थ नहीं पाया जाता अर्थात् स्वतन्त्रतापूर्वक बिनाका अर्थ नहीं होता और जो किसी शब्द के अर्थ से उसके अर्थ अथवा पीछे आकर अर्थवान् होता है, उसे उपसर्ग अथवा प्रत्यय कहते हैं।

२१—उपसर्ग प्रत्यय और समास से बने हुए शब्दों के सिवा हिंदी में और दो प्रकार के व्यंग्यिक शब्द हैं जो क्रमशः पुनरुक्त और अनुसंधान-वाचक कहलाते हैं पुनरुक्त-शब्द किसी शब्द को दुहराने से बनते हैं, जैसे, पर-पर मारामारी, काम-काम, ऊँ-ऊँ, ऊँ-ऊँ, हापादि। अनुसंधान-वाचक शब्द जिसको और-कोई विचारण पुनरुक्त शब्दों का ही अर्थ आते हैं, किसी पदार्थ की पदार्थ अथवा अविगत अर्थ को अर्थ में रखकर बताने आते हैं; जैसे, सटपटाना, भड़ाना, आ इत्यादि।

२२—प्रत्ययों से बने हुए शब्दों के दो मुख्य भेद हैं—कृत, लटित। पातुओं से पर आ प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें कृत कहते हैं, और कृत प्रत्ययों के अर्थ से जो शब्द बनते हैं वे कृत कहलाते हैं। पातुओं को जोड़कर लोप शब्दों के अर्थ प्रत्यय लगाने से जो शब्द तैयार होते हैं उन्हें लटित कहते हैं।

२३—हिंदी-भाषा में जो शब्द प्रचलित हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके विषय में यह निश्चय किया जा सकता है कि उनकी व्युत्पत्ति कैसी हुई। इस प्रकार के शब्द वैज्ञानिक कहलाते हैं। इन शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है और संभव है कि व्यापारिक व्यवसायों की बढ़ती के निमित्त की अत्रिक शब्द और परधान होने से अंत में इनकी संख्या बहुत कम हो जायगी। वैज्ञानिक शब्दों का जोड़कर हिंदी के अत्रिक शब्द कृती भाषाओं से आये



द्विनमें संस्कृत, सर्व और आद्यकाल ईंगरेजी मुख्य है। इनके सिवा मराठी और बँगला भाषाओं से भी हिंदी का योद्धा-बहुत समागम हुआ है। भुवनेश्वर में पूर्वोक्त भाषाओं के शब्दों का अलग अलग विचार किया जायगा।

दूसरी भाषाओं से और विशेषकर संस्कृत से वा शब्द मूल शब्दों में कुछ विकार होने पर हिंदी में रूप हुए हैं वे सम्भव कहनाते हैं। वृत्त प्रकार के संस्कृत शब्दों को तत्सम कहते हैं। हिंदी में तत्सम शब्द भी आते हैं। इस प्रकार में केवल तत्सम शब्दों का विचार किया जायगा, क्योंकि सम्भव शब्दों की भुवनेश्वर का विचार करना अशक्य का विषय नहीं, किंतु श्रेय का है।

हिंदी में जो बौद्धिक शब्द प्रचलित हैं वे बहुधा ठीक एक भाषा के प्रत्ययों और शब्दों के योग से बने हैं बिना भाषा से आये हैं, परंतु कोई-कोई शब्द ऐसे भी हैं जो वा भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों और प्रत्ययों के योग से बने हैं। इस बात का स्वीकार्य पधारमान किया जायगा।

### दूसरा अध्याय।

#### उपसर्ग।

३१३—पहले संस्कृत उपसर्ग मुख्य अर्थ उदाहरण सहित दिये जाते हैं। संस्कृत में इन उपसर्गों को धातुओं के साथ जोड़ने से उनके अर्थ में हेरफेर होता है\*। परंतु अब अर्थ का स्वीकार्य हिंदी व्याकरण का विषय नहीं है। हिंदी में उपसर्ग कुछ को संस्कृत तत्सम शब्द आते हैं उन्हीं शब्दों के संबंध में यहाँ उपसर्ग का विचार करना कर्त्तव्य है। ये उपसर्ग कभी-कभी बिना हिंदी शब्दों में आगे हुए भी पाये जाते हैं उनके उदाहरण उदाहरण दिये जायेंगे।

#### ( क ) संस्कृत उपसर्ग।

अति=अधिक, उस पार, ऊपर जैसे, अतिक्रम, अतिरिक्त अतिरथ आत्वंत आत्पाचार।

\* उपसर्गों का धातुओं का उदाहरण भी यहाँ।

महाराष्ट्रसंसारविहारपरिहारणत् ॥

६ —हिंदी में 'अति' इसी अर्थ में स्वतंत्र शब्द के समान भी प्रयुक्त होता है। जैसे, 'अति बुरा हागी है।' 'अति संपन्न ( राम० ) ।'

अधि=ऊपर स्थान में भेद; जैसे, अधिहरण, अधिकार अधिपाठक, अधिराज, अधिहाता, अध्वान ।

अनु=पीछे समान; जैसे, अनुकरण, अनुक्रम, अनुग्रह, अनुसर अनुम, अनुताप अनुरूप अनुशासन अनुत्वार ।

अप=बुरा, हीन विद्वत् अभाव इत्यादि जैसे, अपहृति अपमय अपमान अपाप, अपराध अपमथ्य अपहरण ।

अभि=धीर पाम; सामन; जैसे, अभिषाप, अभिमुख, अभिमान, अभिजाय, अभिपार अभ्यागत, अभ्यास अन्वय ।

अव=नीच हीन अभाव; जैसे अवगत अवगाह अवगुण अवतार, अवगत अवर्षादन, अवसान, अवस्था ।

७.—शास्त्रीय कविता में 'अव' का रूप बहुधा 'ओ' पाया जाता है; जैसे, आंगुन ओठर ।

आ=तक, धार, समेत उपर; जैसे, आकर्षण, आकर, आकाश आक्रमण, आगमन अचार आक्रम, आवाहण आरम ।

उत्=ऊपर ऊँचा भेद; जैसे, उत्कर्ष, उत्कृष्ट, उत्तम उत्तम उत्तरण, उत्थति, उत्पन्न, उत्थेत् ।

उप=विद्वत् सदृश मीप; जैसे उपकार उपदेश उपमान, उपमेव उपभेद उपयोग, उपवाचन, उपवेश ।

दुः=दुःख, अति दुःख। जैसे, दुःखार, दुःख्य, दुःख दुर्लभ दुर्लभ दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ दुःख ।

नि=घाता; नीचे बाहर, जैसे निहृद निहर्षण, निराम, निपात, निबंध विपुल, विस्पष्ट ।

निर्=निस्—बाहर विषेय जैसे, निराकरण, निर्मम निर्दोष निरपराध, निर्मय, निर्दोष, निरवज्ञ निर्दोष निरोग ( हि०—निरोगी ) ।

८ —हिंदी में यह उपसर्ग बहुधा 'नि' ही जाता है, जैसे, निघन, निवृत्त, निर, निर्दोष ।

पर्य - पीछे उल्टा; जैसे, पराक्रम, पराजय, पराभव, परामर्श, परावर्तन ।

परि—आसपास, चारों ओर, पूर्ण; जैसे, परिदृश्य, परिजन, परिचय, परिधि, परिपूर्ण, परिभाषा परिवर्तन, परिष्कार, पर्याप्त,

प्र—अधिक, आगे, ऊपर जैसे, प्रकाश, प्रकृति प्रचार, प्रभु प्रभाग, प्रसार, प्रस्थान, प्रवृत्त ।

प्रति—विपक्ष, सामने, एक-एक जैसे, प्रतिद्वन्द्व, प्रतिपक्ष, प्रतिष्ठा, प्रतिहार, प्रतिनिधि, प्रतिवादी, प्रत्यक्ष प्रत्युत्तर, प्रत्येक ।

वि—मिथ, विरोध, अभाव; जैसे विकास, विशान, विदेश, विधवा; विवाद, विरोध विस्मरण, ( दि०—विसरना ) ।

सम्—अच्छा साथ पूर्ण; जैसे, संकल्प, संगम, संग्रह, संतीय, संस्था, संयोग, संस्कार, संरक्षण संहार ।

सु—अच्छ, सहज अधिक; जैसे सुकर्म, सुकृत, सुगम, सुख, सुखि चित, सुदूर स्वगत ।

हिंदी—सुखी सुखान सुखर, सपुत्र ।

४१४—कमी-कमी एक ही शब्द के साथ जो-सी उरसर्ग आते हैं; जैसे, विराट्प्रथ, प्रत्युत्तर, समाख्यान, समाभ्याहार ( भा० प्र ) ।

४१५—संस्कृत शब्दों में कोई-कोई विशेष्य और अन्वय भी उपसर्गों के समान व्यवहृत होते हैं । इनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है; क्योंकि वे बहुधा स्वतंत्र रूप से उपयोग में नहीं आते ।

अ—अभाव, निषेध जैसे, अगम, अज्ञान, अर्थ, असीति, अतीति, अभ्यय ।

स्वरादि शब्दों के पहले 'अ' के स्वर में 'अत्' ही जाता है और 'अत्' के 'त्' में आगे का स्वर मिथ जाता है । उदा०—अवन्तर, अविष्ट, अवाचार, अवादि, अवाचास, अवेक ।

हि०—अस्त, अज्ञान, अस्त, अथाह, अलग ।

अथस्—बीच; उदा०—अथोगति, अथोमुक्त, अथोभाव, अथपठन, अथस्तव ।



सत्—अप्या जैसे, सम्भव सत्कर्म सत्पात्र, सत्गुरु, सत्वाचार ।

सह—साथ, जैसे, सहकारी, सहगमन, सहज, सहचर, सहानुभूति सहोदर ।

स्व—अपना, बिज्जी, उदा०—स्वर्तज्ञ, स्वदेश, स्वधर्म, स्वभाव, स्वभाष्य, स्वराज्य, स्वल्प ।

स्वयं—पुत्र, अपने आप जैसे, स्वयंभू स्वयंवर, स्वयंसिद्ध, स्वयं-सेवक ।

स्वर—आकाश, स्वर्ग, जैसे, स्वर्गोक्त, स्वर्गता ।

सु०—हृ० और भू ( संस्कृत ) भातृधर्मों के पूर कर शब्द विशेषकर संज्ञार्थ और विशेष्य-रूपकारण अभ्यस होकर आते हैं, जैसे, स्त्रोकार बर्षी करण, द्रवामृत, पत्नीमृत, मरामीमृत, बशीमृत, समीकरण ।

### [ सु ] हिंदी उपसर्ग

ये उपसर्ग बहुधा संस्कृत उपसर्गों के अनुरूप ही और विशेषकर तन्मक शब्दों के पूर्व आते हैं ।

अ०अभाव, निषेध उदा०—अचंत, अज्ञान, अयाह अचेर अक्षय ।

अपयाद्—संस्कृत में स्वरादि शब्दों के पहले अ के स्थान में अप् हा जाता है परंतु हिंदी में अल अर्बनादि शब्दों के पूर्व आता है जैसे, अविगिनती अक्षरेण ( हृ० ) अभवन्न, अभमन्न, अनहित ( राम० ), अभमोक्ष ।

सु —( १ ) अमृता, अनासा और अनैता शब्द संस्कृत के अनुरूप जान पड़ते हैं बिनमें अन् उपसर्ग आया है ।

( २ ) कमी कमी यह प्रत्यय मूल से लगा दिया जाता है, जैसे, अलोप, अक्षयल ।

अध—( सं०—अर्ध )=आधा, उदा०—अधश्चा, अधश्चिन्ता, अधपद्य, अधमरा, अधपरी, अधसेरा ।

सु —“अधूरा” शब्द “अध+रू” का अपभ्रंश जान पड़ता है ।

अन ( सं० अन )—एक कम, जैसे, उन्नीस उन्तीस उबचास उबसठ, उबहत्तर उब्यासी ।

श्री ( सं०—अच )=हीन, निपेय; उदा०—श्रीगुन, श्रीघट, श्रीरत्न, श्रीहर पासर ।

शु ( सं०—शुर् )=शुल, हीन; उदा०—शुकाव ( राम० ) शुका ।

नि ( सं०—निर् )=निष्ठ; उदा०—निकम्मा, निखरा, निहर, निबद्धक, निरोगी, निहत्या । यह उद् के 'खादिस' ( =शुद्ध ), शब्द में व्यर्थ ही जोड़ दिया जाता है; जैसे निखादिस ।

पिन ( सं०—पिन् )=निपेय, अभाव; उदा०—पिनजाने पिन-बोया, पिनभ्याहा ।

भर=पूरा, सीक; उदा०—भरपर भर-सीक ( शकु० ), भरपूर भरसक भरकोस ।

### [ ग ] उर्द्ध उपसर्ग

ग्रह ( घ )=विरिधत; उदा०—ग्रहगारज; ग्रहवता ।

पेन ( घ )=सीक, पूरा; उदा०—पेनकवाणी, पेनवत्त ।

ह०—यह उपसर्ग हिंदी 'भर' का पर्यायवाची है ।

कम=धीरा हीन; उदा०—कमउप, कमकीमत, कमजार कमवत्त, कमहिम्मत ।

ह०—कमी कमी यह उपसर्ग एक शो हिंदा शब्दों में लगा हुआ मिलता है, जैसे, कमठमठ, कमदाम ।

गुण=अपत्ता; उदा०—गुणवृ, गुणविक, गुण-किस्मत ।

गैर ( घ०—गीर )=मित्र, विपन्न; उदा०—गैरहाजिर, गैरसुखक गैर वात्रिव, गैरसरकारी ।

ह०—'बगैर' शब्द में 'व' ( घोर ) लघुपय-बोधक है घोर गैर' गैर' का बहुवचन है । इस शब्द का अर्थ है 'घोर बूते ।'

हर=में; उदा०—हरअवत, हरअर हरछारत, हरइकीकत ।

मा—अभाव ( सं०—म ); उदा०—माउमैद, मादान मापसई, माराज माकायक ।

फो ( फ ) में, पर; जैसे, फिजहाब, ( फी+घब+हाब )=हाब में फी आदमी ।

घ=घोर, में, अनुसार; उदा—बनाम ब-इज्जाम, ब-इस्तर, ब-दौकत

बद=पुरा; उदा०—बदकार, बदकिस्मत, बदपाम बदफेज, बदबू, बदमाय, बदराह ( सत ) बदहजमी ।

बर=ऊपर, उदा०—बरकास्त, बरदायत, बरतरफ, बरबकत, बराबर ।

बा=साथ; उदा०—बाजाबता, बाकबदा, बातमीज ।

बिख ( ब० )=माथ; उदा०—बिखकुल, बिखमुकता ।

बिखा ( ब )= उदा०—बिखाहपुर बिखाशक ।

बै=बिना; उदा०—बैईमाल, बेकारा ( हि०—बिचारा ), बैतरह, बैबकूफ, बैरहम ।

बू०—यह उपत्यक बहुधा हिंदी में भी लगाया जाता है, जैसे, बेकाम, बेचैन, बेजोड़, बेडोड़ । 'बाहिनात' और 'फुज्ज' शब्दों के साथ यह उपत्यक मूल से जोड़ बिना जाता है, जैसे, बे बाहिनात, बेफुज्ज ।

बा ( ब० )=बिना अभाव; उदा०—बाचार बाबरिस, बाजबाय, बामबहब ।

सर=मुख्य; उदा०—सरकार, सरताज ( हि —सिरताज ), सरघार, सरबाम, ( हि० सिर-नामा ), सरखत, सरहद ।

हि —सरपंच ।

हम ( सं०—सम )—साथ, समान; उदा०—हमकल, हमबर्ही, हमराह, हमबतब ।

हर=अपेक; उदा —हररोज, हरमाह, हरबीज, हरसात, हर-तरह ।

[ वू० इस उपत्यक का उपयोग हिंदी शब्दों के साथ अधिकता से होता है, जैसे हरकाम, हरमही, हरदिन, हरपक, हर कोई । ]

## ( घ ) अंगरेजी उपसर्ग

सब—अधीन, भीतरी, बहा०—सब इस्तेफार। सब-रजिस्ट्रार सब जग  
सब आकिस, सब कमेटी ।

हिंदी में अंगरेजी शब्दों की मरती अमी हो रही है; इसलिये आज ही यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि उस भाषा से आये हुए शब्दों में से कौनसे शब्द रूप और कौनसे र्थगिष्ठ हैं। अमी इस विषय के पूर्ण विचार की आवश्यकता भी नहीं है इसलिये हिंदी व्याकरण का वह भाग इस समय अधूरा ही रहेगा। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वह अंगरेजी उपसर्गों का केवल एक नमूना है।

[ टी०—इस अध्याय में जो उपसर्ग दिए गये हैं उनमें कुछ ऐश है जो कभी-कभी स्वतंत्र शब्दों के समान भी प्रयोग में आते हैं। इन्हे उपसर्गों में संमिलित करने का कारण केवल यह है कि जब इनका प्रयोग उपसर्गों के समान होता है तब इनके अर्थ अथवा रूप में कुछ अंतर पड़ जाता है। इस प्रकार के शब्द इति, स्वयं, बिन, मा, कम आदि हैं। ]

[ टी०—राजा शिवप्रसाद ने अपने हिंदी व्याकरण में प्रत्यय, अभ्यन्त, विभक्ति और उपसर्ग, आदि जो उपसर्ग माना है परंतु उन्होंने इतका काह कारण नहीं लिखा और न उपसर्ग का कोई लक्षण ही दिया बिना उनके मत की पुष्टि होती। ऐसी अवस्था में हम उनके किये वर्गीकरण के विषय में कुछ नहीं कह सकते। भाषा प्रमाकर में राजा साहब के मत पर आश्रय किया गया है परंतु लेखक ने अपनी पुस्तक में संस्कृत उपसर्गों को छोड़ और हिंदी भाषा के उपसर्गों का नाम तक नहीं लिया। उच्-उपसर्ग तो भाषा प्रमाकर में था ही नहीं सकते, क्योंकि लेखक महाशय स्वयं लिखते हैं कि हिंदी में बस्तुता पारसी, अरबी, आदि शब्दों का प्रयोग करो।' पर सर्वत्र लक्ष्मी का तात्पर्य में बदले' शब्द न जाने उन्होंने कैसे लिख दिया ? जो हा, इस विषय में कुछ कहना ही व्यय है, क्योंकि उपसर्गयुक्त उच् शब्द हिंदी में आते हैं। हिंदी उपसर्गों के विषय में भाषा प्रमाकर में केवल इतना ही है कि 'स्वतंत्र हिंदी शब्दों में उपसर्ग नहीं लगते हैं।' इस ठिक का खंडन इस अध्याय में दिए हुए उदाहरणों से हो जाता है मद्रबी ने अपने व्याकरण में उपसर्गों की तात्पर्य दी है, परंतु उनका अर्थ नहीं समझाये, बचपि प्रायसी



अथ अर्थोंमें विस्तारपूर्वक लिखा है उन दोनों पुस्तकों में दिखे हुए उपरम के लक्षण म्याप-संगत नहीं जान पड़ते । ]

तौसरा अध्याय ।

संस्कृत प्रत्यय ।

( क ) संस्कृत कृदन्त

अ ( कर्तृवाचक )—

तुर ( तुरावा )—घोर

हीप ( चमकना )—हीप

नम् ( शब्द करना )—नम्

सुप् ( धरकना )—सर्प

इ ( हरना )—हर

ग्रह ( पकड़ना )—ग्राह

रम् ( स्वीकृता करना ) राम

( भाववाचक )—

कप् ( इच्छा करना )—कम्

खिद् ( उदास होना )—खेद्

खि ( जीतना )—खप

नी ( खे जाना )—वप

अक ( कर्तृवाचक )—

कृ—कारक

गी—गायक

वा—वाचक

खिख—खेखक

मृ ( मरना )—मारक

नी—वाचक

वर ( चढना )—वर ( दूत )

दिष् ( चमकना )—द्वेष

वु ( धरना )—वर ( पर्वत )

बुष् ( जानना )—बुष

स्मृ ( यादना )—स्मर

म्यम् ( मारना )—म्याम

जम् ( पाषा )—जाज

कुम् ( स्वीकृता करना )—कूप

खि ( इच्छा करना )—( र्त् ) कप

मुह ( अपेक्ष होना )—मोह

इ ( शब्द करना )—इव

वृत्—वर्तक

पृ ( पवित्र करना )—पापक

पुम् ( जीवना )—पौत्रक

तृ ( तरना )—तारक

पद्—पाठक

पच्—पाचक

अत्—इस प्रत्यय के अगामे में ( संस्कृत में ) वर्तमानकालिक कृदन्त<sup>१</sup>

जनता है, परंतु उसका प्रचार हिन्दी में नहीं है। तथापि जगत् जगती, जमर्दनी आदि कई संशार्द्ध मूल कृत हैं।

अन ( कर्मवाचक )—

नंद ( प्रसन्न होना )—नंदन  
रम्—रमण

मद् ( पावन होना )—मदन  
मु—मवण

द—रापण्य  
सूर—( मारना — मनु ) सूरन  
प—पावन

मुर्—मोहन  
साध—साधन  
पाञ्—पावन

( भाववाचक )—

सह—सहन  
म—मवन

शी ( सोना )—शयन  
स्या—स्यान

सु—मरण  
भुज—भोजन

रघ—रघण्य  
हु ( होम करना )—हवन

( कर्ण-वाचक )

नी—नयन  
वा—वान

वर—वरण भूप—भूपण ।  
बह बाहन बद्—बदन

अना ( भाववाचक )—

बिद्—बतना—बेदना  
घट ( होना )—घटना

रक—रचना  
गुम्—गुजना

सुष्—सूचना  
सह—सहना

मा+घर्ष—माघना  
धा+राप्—धाराधना

घष+हेज ( तिरस्कार करना ) गबद् ( लाजना ) गहैपदा

मू—भाषना

—घषहेजना

अनीय ( धीगवाय )—

रय—रयणीय  
रम्—रमणीय

रम्—रमणीय  
बि+बर्—बिचारणीय

धा+र—धादरणीय  
ह—हाणीय

मम्—मावनीय  
छप्—छावनीय

[ ए०—हिंदी का 'तरादनीय' शब्द इसा छापदश पर बना है । ]  
आ ( भाववाचक )—

इप् ( इष्य ) इप्वा कम्—इषा गुर् ( विगना )—गुहा

पृष्—पृषा	कीर्—कीर्वा किर—किरा
श्वष्—श्वषा	ठिष्—ठिषा तृष्—तृषा
अस ( विविध अर्थ में )—	
सृ ( बहना )—सरस	बष् ( बोजना ) बषस्
तम् ( लेव करना )—तमस्	
तिष् ( देना )—तेषस्	पष् ( जाना )—पयस्
श्र ( सताना )—शिरस्	बस् ( जाना )—बषस्
अ ( जाना )—अरस्	ब्रष् ( प्रसन्न करना )—ब्रहस्

[ ए — इन शब्दों के अंत का ए अथवा इषी का विसर्ग हिंदी में आने वाले संस्कृत सामायिक शब्दों में दिखाई देता है, जैसे, सरतिब, तेकापुंष, पनोद, लुंशशाब्, हत्यादि । इस कारण ये हिंदी व्याकरण में इन शब्दों का मूळ रूप बताना आवश्यक है । जब ये शब्द स्वतंत्र रूप से हिंदी में आते हैं तब इनका अर्थ ए छोड़ दिया जाता है और ये सर, तम, तेज, पय, आदि आकारांत शब्दों का रूप ग्रहण करते हैं । ]

आसु ( गुणवाचक )—

वप्—ववासु, षी ( सोना )—वपासु ।

इ—( कर्मवाचक )—

इ—इरि, कु—कवि ।

इम्—इस प्रत्यय के लगाने से जो ( कर्मवाचक ) मंझाई बनती है उसकी अथवा का एकवचन इकारांत होता है । हिंदी में यहाँ ईकारांत रूप रचकित है । इसलिये यहाँ ईकारांत ही के अर्थग्रहण दिये जाते हैं ।

त्यम् ( बोजना )—त्यागी । हुष् ( मूषना )—होपी । पुष्—पोषी ।  
 त् ( बोजना )—वादी । शिष् ( रैर करना )—शेपी । उप+हृ—उपकारी ।  
 इम्+पम्—संपमी । सह+चर—सहचारी ।

इस्—

भुव ( तमकना )—भूतिस्, कु—हृतिस् ।

[ ए — अस् प्रत्यय के नीचेवाली एषना बेसी । ]

इप्सु—( पोषार्थक कर्मवाचक )—

सह—सहिष्णु । वृष् ( बहना )—वर्षिष्णु ।

'स्याणु' धीर 'विणु' में केवल 'यु' प्रत्यय हैं धीर विणु में एणु प्रत्यय है । यु धीर एणु प्रत्यय इणु के शेष भाग हैं ।

उ ( कर्तृवाचक )—

मिष—मिषु । इष्—इषु ( हितेष्णु ) । साय सायु

उक ( कर्तृवाचक )—  
मिष् मिषुक, इन् ( भारवाहता )—वातुक ।

मू—मातक, कम्—कामुक ।

उर् ( कर्तृवाचक )—

भास ( चमकना )—मासुर । मंम् ( दूरता )—मंगुर ।

उस् ( विविध धर्म में )—

वष् ( बहना देखना ) वषुस् ई ( ज्ञाना )—वषुस् ।

पम् ( पूजा करना )—पठम् ( बठबैठ ) । वप् ( उत्पन्न करना )

वपुस् । वन् ( शम्भ करना )—वपुस् ।

[ वृ — अष्ट प्रत्यय के नीचे की रचना देखा ]

त—इस प्रत्यय के बोग से मूलकाविक्रु कर्तव्य बनते हैं । हिंदी में इनका प्रचार अधिकता से है ।

गम्—गत

मृ—मृत

इन्—इत

त्वम्—त्वक्त

गुर्—गुप्त

दुर्—दुष्ट

विद्—विदित

मू—मूत

मद्—मत्त

प्यु—प्युत

भु—भुत

सिष्—सिक्त

नरा—नष्ट

कप्—कथित

कृ—कृत

जन्—जात

क्याव्—क्यात

वष्—वृक्त

वृप्—वृत्त

वर्त्—वृष्ट

मद्—मृष्ट

( घ ) ल के बदले कहीं-कहीं म वा ए होता है ।

की ( जगना )—कीम कृ ( कैजाना )—कीय ( संकीर्ण ) कु ( कुज होना )—कीय उव + पिम्—उत्रिम

सिष्—सिक्त ही ( पीपना—हीम धरे ( लाता )—घक्त चि—चीय

( झ ) किसी किसी वातुधो में ल धीर न होने प्रत्ययों के छानने से दो-दो रूप होते हैं ।

पू—पूरित, पूर्यं, प्रा—प्रात, प्राब ।

( ई ) त के स्थान में कमी कमी क, म, ब आते हैं ।

छप् ( सूचना ) छुप्, पच्-पक्व ।

ता ( त् )—( कर्तृवाचक )—

सूक्ष्म प्रत्यय वृद्धि परंतु इस प्रत्ययवाचक शब्दों की प्रथमा के पूर्विका पुरुषजन का रूप ताकारांत होता है और बही रूप हिंदी में प्रचलित है । इसलिये यहाँ ताकारांत उदाहरण दिये जाते हैं ।

दा—दाता

मी—मैता

झ—झोता

बच् बच्छ

बि—बैता

भृ - भर्ता

कृ—कर्ता

मुञ्=मोच्छ

हृ—हर्ता

[ सू०—इन शब्दों का लीङ्गिग बनाने के लिये ( हिंदी में ) व प्रत्यय वांत शब्द में ह आयाते हैं ( सं०—२७६ ह ) । जैसे, प्रबंधनी, भार्गो, कवचिनी । ]

तस्य ( भोग्यार्थक )—

कृ—कर्तव्य

सू—भूषितव्य

दा—दातव्य

दत्त—द्वेष्य

ब्र—भूषितव्य

दा—दातव्य

पद्—पठितव्य

बच्—बच्छव्य

ति ( भाववाचक )—

कृ—कृति

यी—यीति

दृच्—दृक्ति

स्वृ—स्वृति

री—रीति

स्वा—स्विति

( अ ) कई एक नकारांत और मकारांत धातुओं के अंत्याक्षर का जोप हो जाता है; जैसे,

मच्—मति बच्—पति, गम—गति रम—रति, धम्—पति ।

( आ ) कहीं-कहीं लृप्ति के विषयों से कृञ् स्फांतर हो जाता है । बुब—बुक्ति बच्—बुक्ति मुञ्—मुष्टि, दृष्ट—दृष्टि, स्वा—स्विति ।

( इ ) कहीं-कहीं ति के अक्षरे मि आती है ।

दा—दाति, गृही—गृहीति ।

प ( कर्तृवाचक )—

नी—नैत्र, धु—घोत पा—पात्र, शास्—शास्त्र ।

अस्—अस्त्र, शस्—शस्त्र, द्वि—द्वेष ।

( ६ ) किसी-किसी घातु में घ के बड़े रूप पाया जाता है ।

कन्—कवित्र पृ—पवित्र चर—चरित्र ।

त्रिम ( निवृत्त के अर्थ में )—

हृ—हृत्रिम ।

न ( भाववाचक )—

पद् ( उपाय करना )—पान स्वप्—स्वप्न प्रप्त्—प्ररन

वच्—वज्ज

पाच्—पाचा तृप्—तृष्या

मन् ( विविध अर्थ में )—

दा—दाम

हृ—कर्म

सि ( बंधना )—सीमा

सा—सास

वृ ( विपाना )—वृष

चर्—चम

हृह—महा

जन्—जन्म

त्रि—हेम

[ ६ —ऊपर लिखे आकारों के शब्द 'मन्' प्रत्यय के म् का लोप करने से बने हैं । हिंदी में मूल व्यंजनात् रूप का प्रचार न होने के कारण प्रथमा के एकवचन के रूप दिये गये हैं । ]

मान—

यह प्रत्यय यद् के समान वर्तमानअधिक कर्तृत् का है । इस प्रत्यय के योग से बने हुए शब्द हिंदी में बहुधा संज्ञा अथवा विशेषण होते हैं ।

यच्—यजमान वृत्—वर्तमान बि+रच्—विराजमान

विद्—विद्यमान दीप्—देदीप्यमान ज्वस्—ज्वम्ब्यमान

[ ७ —इन शब्दों के अनुकरण पर हिंदी के "जलायमान" और 'शोभायमान' शब्द बने हैं । ]

य ( साम्प्रदायिक )—

कृ—कार्य

त्यच्—त्याग्य

बष्—बध्य

पठ—पाठ्य

बच्—बाध्य, बाध्य

दा—द्वेष

जम्—जम्ब्य

गम्—गम्ब्य

गद् ( शोचना )—गद्य

ि+धा—विधेय शास्—शिष्य

पर—पर्य

खाद्—खाद्य

एग्—एरय

सद्—सद्य

या ( भाववाचक )—

बिद्—विद्या

बर्—बर्षा

हृ—हृत्वा

शी—शय्या

भृग्—भृगवा

सम्+घस्—समस्या

ए ( गुणवाचक )—

मम्—मज्ज, हिंस् ( मार बाधना )—हिंस् ।

ह ( कर् वाचक )—

पा—दाह, मि—मेह

घर ( गुणवाचक )—

भास्—मास्वर, स्वा—स्वावर, ईश—ईश्वर, बर्—बबर ।

स्+घा+( इच्छा-वाचक )—

पा ( पीना )—पिपासा

हृ ( कर्मा )—विहीर्षा

शा ( ज्ञानवा )—त्रिशासा

बिद् ( बंगा कर्मा )—बिद्विष्ता

बन् ( इच्छा कर्मा—बाधसा )

मम् ( विचारता )—मीमांसा,

### [ ख ] संस्कृत उद्धृत ।

घ ( अत्यन्तवाचक )—

रह्—राधव

कल्पप—कल्पप

कुम्—कीरव

पावह्—पावहव

पूवा—पार्श्व

सुमित्त—सीमित्त

पदंत—पार्श्वी ( की० ) हुदिन्—द्विदिन्

बसुदेव—वासुदेव

( गुणवाचक )—

शिक्—शीघ्र, विष्णु—वैष्णव

बर्—बर्ष ( मास, वर्ष )

मनु—मानव पृथिवी—पार्थिव ( क्षिण ) ज्याकरव—वैपाकरव ( जागनेवाला ) ।

बिरा—वीर

सूर—सीर

( भाववाचक )—

इस शब्द में यह प्रत्यय बहुधा आकारांत इकारांत वीर उकारांत शब्दों में लगता है ।

हृशक्—कीरव

पुरुक्—पौरव

मुधि—मौघ

हृधि—हीध

बहु—बाधव

गुह—गौरव

अक् ( उसको जागनेवाला )—

मीमांसा—मीमांसक, शिक्—शिक्क ।

आमह ( उसका पिता )—  
पितृ—पितामह मातृ—मातामह ।

इ ( उसका पुत्र )—

दशरथ—दशरथि ( राम ) मरुत्—मासति ( हनुमात् ) ।  
इच्छ ( उसको आवनबाजा )

तर्क—तार्किक अर्थकार—आर्थकारिक म्याप—न्यायिक  
वेद—वैदिक ।

( गुणवाचक —

वर्ष—वार्षिक

दिन—दैनिक

इतिहास—ऐतिहासिक

भवा—सैनिक

मनस—मानसिक

समाज—सामाजिक

समय—सामयिक

वन—वनिक

इत् ( गुणवाचक )—

पुण्य—पुण्यित कञ्—अञ्जित पुण्य—दुग्धित

कन्दक—कन्दकित कुमुम—कुमुमित पञ्जव—पञ्जवित

इय—इयित धानन्द—धानन्दित प्रतिदिप—प्रतिदिवित

इन् ( कर्तृवाचक )—

इस प्रत्ययवाले शब्दों की प्रथमा के षष्ठ्यन्त में न का जोप होन पर  
इकारित रूप हो जाता है । वहीं रूप हिंदी में प्रकथित है । इसलिये यहाँ  
इसी के उदाहरण दिये जाते हैं । यह प्रत्यय बहुधा आकारित शब्दों में  
लगया जाता है ।

शास्त्र—शास्त्री इच्छ—इच्छी

तरंग—तरंगिणी ( स्त्री० )

वन—वनी

अय—अयी ( विधायी ) पञ्च—पञ्ची

भ्राज—भ्राजी भोग—भोगी

मुग्ध—मुग्धी

इत्ता—इत्ती पुच्छर—पुच्छरिणी ( स्त्री० ) इत्त—इत्ती ।

इन्—यह प्रत्यय कञ्, मञ् और बर्ह में लगया जाता है ।



फल—फलित, मल—मलित, बह—बहिष् ( भोर ) । बहिष् शब्द फल-रूप बहों की होता है ।

( घ ) अधि—अधीन,

प्राप् ( पहले )—प्राचीन,

अधीन ( पीछे )—अधीनीन, सम्पत् ( भली भाँति )—समीचीन

इम ( गुणवाचक )—

अध—अधिम, अंत—अंतिम परचाह—परिचम ।

इमा ( भाववाचक )—

महत्—महिमा

गुरु—गरिमा

बहु—बहिमा

रक्त—रक्तिमा

अद्व—अद्विमा

नीच—नीचिमा

इय ( गुणवाचक )—

पश—पशिय, राष्ट्र—राष्ट्रिय, पत्र—पत्रिय ।

इत् ( गुणवाचक )—

मुद्—मुदिच ( हि० लोदच , पंक—पंकिच अटा—अटिच केन—केचिच ।

इत् ( अर्थवा के अर्थ में )—

बधी—बधिच, स्वादु—स्वादिच, गुरु—गरिच, अक्षस्—अक्ष ।

ईन ( गुणवाचक )—

कुञ—कुञ्जीच

नव—नवीच

शाखा—शाखीच

ग्राम—ग्रामीच

पार—पारीच

ईय ( संबंधवाचक )—

त्वत्—त्वदीय

तद्—तदीय

मत्—मदीय

मवत्—मवदीय

वारत्—वारदीय

पादिचि—पादिनीच

( छ ) स्व पर और राजत् में इस प्रत्यय के पूर्व क् का आगम होता है ।

जैसे, स्वदीय, परदीय, राजदीय ।

उत्त ( संबंधवाचक ) ।

मात्—मातृत् ( मामा ) ।

एय ( अन्त्यवाचक )—

विभता—विभतेच

कुम्ती—कुम्तेच

दीया—दीयेच

अग्निनी—अग्निनेच

युक्तं—युक्तेच

राजा—राजेच

( विविध अर्थ में )—

आग्नि—आग्नेय

पुरप—पौदरेय

पयिन्—पायेव

अतिथि—आतिथेय

क ( ऊनवाचक )—

पुत्र—पुत्रक वास—वाहक मृष—मृषक वी—वीडा ( जी० )

( समुदाय-वाचक )—

पंच—पंचक

सप्त—सप्तक

अष्ट—अष्टक ।

दश—दशक

कट्ट ( विविध अर्थ में )—

यह प्रायः कुछ उपसर्गों में लगाने से यह शब्द बनते हैं—

संकट, प्रकट, विकट, निकट, उरकट ।

कतृप ( ऊनवाचक )—

कुमारकल्प कविकल्प मृतकल्प, विद्रुकल्प ।

क्षित् ( क्षमिष्यवाचक )—

क्षक्षित् कदाचित्, किञ्चित् ।

ठ ( कर्तृवाचक )—

कर्मन्—कर्मठ, उरा—उराठ ।

तन ( वास-संबन्धवाचक )—

सदा ( सदा )—सनातन,

पुरा—पुरातन

मन्—मन्तन,

प्राग्—प्राक्तन,

अप—अपगत ।

चिर—चिरंतन

सस् ( शीतिवाचक )

प्रयम—प्रयमता स्वता, उमयुत, तावता, अंगत ।

स्य ( संबन्धवाचक )—

इषिया—इषियाम्ब

परवान्—परवाय

अमा—अमाय

मि—मिन्ध

अग्र—अग्रय

तत्र—तत्रय

[ न०—उभयमात्र और बीबास शब्द इन शब्दों के अनुकरण पर दिष्टों में प्रयुक्त हुए हैं पर अशुद्ध हैं ।

य ( स्थानवाचक )—

यन्—यय, तन्—तत्र, यत्र च यत्र, उरुत ।

सा ( भाववाचक )—

गुह-गुहता	बहु-बहुता	कवि-कविता
मपुर-मपुरता	सम-समता	आबरवक-आबरवकता
बन्नीम-बन्नीमता	विशेष-विशेषता ।	

( समूहवाचक )

जन्-जन्मता ग्राम-ग्रामता बंधु-बंधुता, सहाय-सहायता ।  
 'सहायता' शब्द हिंदी में केवल भाववाचक है ।

स्थ ( भाववाचक )—

गुह्य	ग्राह्यत्व
गुह्यत्व	सतीत्व
राज्यत्व	बंधुत्व

धा ( रीतिवाचक )

तद्-तथा	यद्-यथा
सर्वथा	अन्यथा

दा ( वाचवाचक )—

सर्व-सर्वदा, यद्-यथा, किम्-कदा, सदा ।

धा ( प्रकारवाचक )—

द्वि-द्विधा, शत-शतधा, बहुधा ।

धेय ( गुणवाचक )—

नाम-नामधेय, भाग-भागधेय ।

म ( गुणवाचक )—

मध्य-मध्यम, प्रादि-प्रादिम, अक्षत-प्रथम, हु ( खाका )—  
हुम ।

मत् ( गुणवाचक )—

श्रीमान्	मठिमान्	पुत्रिमान्
आहुप्मान्	श्रीमान्	गोमती ( श्री )

'पुत्रिमान्' शब्द अशुद्ध है ।

[ ६०—मत् ( मान् ) के लक्षण वत् ( वान् ) प्रत्यय है जो ध्राये लिंगा  
 वायगा । ]

मय ( विकार और व्याप्ति के अर्थ में )—

काष्ठमय विष्णुमय, ब्रह्ममय मांसमय तैजोमय ।

माघ—बाममाघ पक्षमाघ, ज्येष्ठाघ, एकादशमाघ ।

मिन्—( कर्तृवाचक )—

स्व—स्वामी, चाक्—चाग्मी ( बच्चा ) ।

य—( मातृवाचक )—

मधुर—माधुर्य चतुर—चातुर्य पंडित—पांडित्य ।

बाणिक—बाणिक स्वस्थ—स्वास्थ्य अविपत्ति—अविपत्तय ।

धीर—धीर्य धीर—धीर्य । प्राह्वन्—प्राह्वय ।

( अपर्यवाचक संबंधवाचक )—

शंख—शंखिन् प्रसक्ति—प्राप्त्य दिति—दित्य

जानदनि—जानदन् चतुर्नास—चतुर्नास्य ( हिं श्रीमाता )

धन—धान्य मूक—मूक्य ताहु—ताह्य

मुस—मुस्य भाम—भाम्य धीन—धीत्य

र—( गुणवाचक )—

मधु—मधुर मुक—मुक्य कुंज—कुंजर

नग—नगर पाहु—पाहुर

ल ( गुणवाचक )—

वास—वासल शीत—शीतल रपाय—रपामल

मंहु—मंहुल मोस—मोसल

सु ( गुणवाचक )—

धजासु, रपासु, हपासु, विजासु ।

घ ( गुणवाचक )—

केश—केशल ( सुन्दर केशवाला, विष्णु ), विपु ( समान )—विपुल

( दिन रात समान होने का फल वा वृत्त ), राजी ( रेखा—राजीव ( रेखा में

बढ़नेवाला, कमल ), अर्यसु ( पानी अर्धव ( समुद्र ) ) ।

घत् ( गुणवाचक )—

यह अत्य अकारण वा अकारण संज्ञाओं के परवाह अतः है ।

धनवान्, विद्यावान्, ज्ञानवान्, गुणवान्, रूपवान्, भाग्यवती ( श्री० ) ।

( अ ) किसी-किसी सर्वनामों में इस प्रत्यय को छगाने से अविविधत संज्ञा-वाचक विशेषण बनते हैं ।

वत्—वावत्                      तद्—तावत् ।

( आ ) यह प्रत्यय 'गुणव' के अर्थ में भी आता है और इससे क्रिया-विशेषण बनते हैं ।

मातृवत्, पितृवत्, पुत्रवत्, आत्मवत् ।

पल्ल ( गुणवाचक )—

कुपीवत्, राजस्वजा, ( श्री ), शिक्षावत् ( मयूर ) दंठावत् ( इन्दी )

कर्जस्वत् ( बकवात् ) ।

धिन् ( गुणवाचक )—

तपस्—तपस्वी                      वयस्—वयस्वी                      तेजस्—तेजस्वी

माया—मायावी                      मेधा—मेधावी

पथस्—पथस्वीनी                      ( श्री , कुम्हार याव )

व्य ( संबन्धवाचक )—

पितृव्य ( काका ) आतृव्य ( भतीजा )

श ( विविध अर्थ में )—

रीम—रीमश, कर्ज—कर्जश ।

श ( रीतिवाचक )—

क्रमशः अक्षरशः शब्दशः, अक्षरशः, श्लेषशः ।

सात् ( विकारवाचक )

भस्म—भस्मसात्,

धर्म—धर्मसात्,

बन्ध—बन्धसात्,

भूमि—भूमिसात्

[ छ —ये शब्द बहुधा होना या करना क्रिया के छाय आते हैं । ]

[ छ —हिंदी भाषा दिन-दिन बढ़ती जाती है और उसे अपनी वृद्धि के लिए बहुधा संस्कृत के शब्द और उनके साथ उनके प्रत्यय होने की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए इस छूँ में समय-समय पर और भी शब्दों तथा प्रत्ययों का समावेश हो सकता है। इस दृष्टि से इस अध्याय को ग्रामी अपूर्ण ही समझना चाहिये। तथापि वर्तमान हिंदी दृष्टि से इसमें प्रायः के सब शब्द और प्रत्यय आ गये हैं बिनश्रय प्रकार ग्रामी हमारी भाषा में है । ]



## हिंदी-प्रत्यय ।

## ( फ ) हिंदी-कृदंत ।

अ—वह प्रत्यय आध्वरांत वातुओं में बोझ जाता है और इसके योग से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

सूचना—सूच ।

भारना—भार ।

बाँधना—बाँध ।

चमकना—चमक ।

पहुँचना—पहुँच ।

समझना—समझ ।

देखना—भासना—देखभास ।

बढ़ना—कूटना—बढ़कूट ।

[ सू०—“हिंदी व्याकरण” में इस प्रत्यय का नाम “शून्य” लिखा गया है जिसका अर्थ यह है कि वातु में कुछ भी नहीं जोड़ा जाता और उसी का प्रयोग भाववाचक संज्ञा के समान होता है यथार्थ में वह वातु ठोक है; पर हमने शून्य के बदले अ इतिवृत्ति लिखी है कि शून्य शब्द से होने वाला भ्रम दूर हो जाए। इस अ प्रत्यय के आदेश से वातु के अंत अ का लोप समझना चाहिए ।

( घ ) किसी-किसी वातु की उपोत्पत्ति इत्थं है और उ को गुणादेश होता है; जैसे,

मिलना—मैल, दिखना—मिखना—देखमैल, मुकना—भ्येक ।

( ङ ) कहीं-कहीं वातु के उपोत्पत्ति अ की वृत्ति होती है, जैसे

अपना—आप ।

खाना—खाग ।

बहना—बाह ।

पटना—पाट ।

बढ़ना—बाढ़ ।

( इ ) इसके योग से कोई-कई धिरोपत्त भी बनते हैं; जैसे

बढ़ना—बढ़ ।

घटना—घट ।

भरना—भर ।

( ई ) इस प्रत्यय के योग से पूर्वात्मिक कृदंत आत्मय बनता है; जैसे,

बहना—बह ।

जाना—जा ।

देखना—देख ।

[ ६०—माचीन कविता में इत प्रत्यय का इस्तेमाल कन पाया जाता है, जैसे, देलना-देलि । फेंकना-फेंकि । उठना-उठि । स्वरान्त भातुओं के साथ इ के स्थान में बहुधा य का आदेश होता है, जैसे, लाय, गाय । ]

अचकड़ ( कर्मुवाचक )—

पूमना—पुम्पकड़

कूरमा—कुरकड़

मूजना—मुजकड़

पीना—पियकड़

अर्त ( भाववाचक )—

गदना—गदंत

खिपटना—खिपटंत

खदना—खदंत

रटना—रदंत

आ—इस प्रत्यय के योग से बहुधा भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे,

पेरना—परा

केरना—करा

खोदना—खोदा

झगड़ना—झगड़ा

झापना—झापा

रगड़ना—रगड़ा

भटकना—भटका

उतारना—उतारा

तोड़ना—तोड़ा

( अ ) इस प्रत्यय के लगने के पूर्व किसी-किसी धातु के उपान्त स्वर में गुण होता है, जैसे

मिछना—मोछा

हटना—टोटा

मुड़ना—मोड़ा

( आ ) समास में इस प्रत्यय के योग से कई एक कर्मुवाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे,

( सुह- ) बहा

( सोंग- ) रजा

( भव- ) भूँजा

( खड- ) खोदा

( गेंड- ) कटा

( मव- ) बजा

( मिड- ) बोधा

( ख- ) बोधा

दे-देधा

( इ ) भूतकालिक कर्तृत्वं इसी प्रत्यय के योग से बनाने जाते हैं, जैसे,

मरना मरा

घोना-घोधा

नीचना-नीधा

पढ़ना-पढ़ा

बनाना-बनाया

बैठना-बैठा

( ई ) को<sup>१</sup> कोई करवावाचक संज्ञाएँ, जैसे,

मूचना-मूचा

डेप्रना-डेखा

कौसना-कौसा

आरना-आरा

पोतना-पोटा

पेरना-परा



झाई—इस प्रत्यय से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं जिनसे ( १ ) क्रिया के व्यापार और ( २ ) क्रिया के मामों का बोध होता है ।

( १ ) खडना-खड़ाई	समाना-समाई	चढ़ना-चढ़ाई
दिखना-दिखाई	सुनना-सुनाई	पढ़ना-पढ़ाई
सुदना-सुदाई	शुठना-शुठाई	सीमा-सिखाई
( २ ) खिखाना-खिखाई	पिसाना-पिसाई	
चरावा-चराई	कमाना-कमाई	
खिखाना-दिखाई	पुथाना-पुथाई	

[ सू०—'झाना' से 'झाई' और जाना से 'जाई' भाववाचक संज्ञाएँ ( क्रिया के व्यापार के अर्थ में ) बनती हैं । ]

झाऊ—यह प्रत्यय किसी किसी धातु में बोधवत्ता के अर्थ में लगता है, जैसे,

टिकना—टिकाऊ	बिकना—बिकाऊ
चढ़ना—चढ़ाऊ	दिखना—दिखाऊ
खडना—खडाऊ	गिरना—गिराऊ

( अ ) किसी किसी धातु में इस प्रत्यय का अर्थ कर्तृवाचक होता है, जैसे,

झाना—झाऊ	खडना—खडाऊ	सुमना—सुमनाऊ
झाँझू, झाऊ, झाँझू, ( कर्तृवाचक )		
खडना—खडाँझू	खडना—खडाँझू	
पिरना—पिराऊ	पैरना—पैराऊ	
खडना—खडाऊ ( खडाऊ, खडाँझू )	खडना—खडाऊ ( खडाँझू )	
झाम ( भाववाचक )—		
खडना—खडाम	खडना—खडाम	
झगावा—झगाव	मिखना—मिखाव	

चढ़ना—चढ़ान ।

झाप ( भाववाचक )—  
मिखना—मिखाव

खडना—खडाव

## पूजना-पूजापा

बढ़ना — बढ़ाव	बचवा — बचाव
बिड़कना — बिड़काव	बहना — बहाव
झगना — झगाव	जमाव — जमाव
पढ़ना — पढ़ाव	पूमाना — पूमाव
आघट ( भाववाचक )—	
खिलना — खिलावट	धकान — धकावट
दकना — दकावट	दबना — दबावट
मजना — मजावट	दिखना — दिखावट
झगना — झगावट	मिखना — मिखावट

## कहना-कहावट ।

आघना ( विरोध )—	
मुहाना — मुहावना	सुमाना — सुमाना

## हराना — हरावना ।

आघा ( भाववाचक )—	
मुहाना — मुहावा	मुजाना — मुजावा
दुखना — दुखावा	मुसाना — मुसावा
बहना — बहावा	पहिरना — पहिरावा

## पढ़ना-पढ़ाव ।

आस ( भाववाचक )—		
पीना — पीनास	हँपना — हँपास	रोना — रोनास
आहट ( भाववाचक )—		
बिड़कना — बिड़काहट	घबराना — घबराहट	
गढ़ाहना — गढ़ाहाहट	भनमनाना — भनमनाहट	
गुरीना — गुरीहट	जगमगाना — जगमगाहट	

[ घ — यह शब्द बहुधा अनुकरणात्मक शब्दों के साथ आता है, और 'शब्द' के अर्थ में इसका अर्थ प्रयोग भी होता है । ]

इयल ( कर्तृवाचक )—

बढ़ना—बढ़िया

मरना—मरिया

हँ ( भाववाचक )—

हँसना—हँसी

बोखना—बोखी

धमकाना—धमकी

( कारखवाचक )—

रेठना—रेठी

गौसना—गौसी

सड़ना—सड़िया

बड़ना—बड़िया

कहना—कही

मरना—मरी

बुझना—बुझी

छँसना—छँसी

चिमटना—चिमटी

टँकना—टँकी ।

इया ( कर्तृवाचक )

बड़ना—बड़िया

बुझना—बुझिया

( गुणवाचक )—

बड़ना—बड़िया

ऊ ( कर्तृवाचक )—

खाना—खाऊ

उठरना—उठार ( सँघार )

बिगाड़ना—बिगाड़ू

काटना—काटू

( कारखवाचक )—झड़ना—झड़ू ।

खजना—खजिया

बिघराना—बिघारिया ।

बटना—बटिया ।

रटना—रटू

खजना—खाजू

मारना—मारू

खगना—खगू ( मराठी )

ए—बहु प्रत्यय सब बातुओं में लगता है और इसके बोग से सम्बन्ध धक्ते हैं । इससे क्रिया की समाप्ति का बोध होता है । इसलिये इससे बड़े हुए शब्दों को बहुधा पूर्व क्रिया-बोधक कृदंत बतते हैं । इस सम्बन्धों का प्रयोग क्रिया-विशेष्य के समान तीनों व्यंजनों में होता है । वे सम्बन्ध संयुक्त क्रियाओं में भी आते बिना विचार पपास्वान हो कृष्य है ।  
उदा — देखे, पावे, खिसे, समीरे, बिकसे ।

एरा ( कर्तृवाचक )—

कमावा—कमेरा

( भाववाचक )—निबयाना—निबटेरा

पेया ( कर्तृवाचक )—

क्यरना—कटंपा

परोसना—परोसैषा

सूटना—सुटेरा

बसना—बसरा

बचाना—बर्षया

भरना—भरैषा

[ सू०—इस प्रत्यय का प्रचार प्राचीन हिंदी में अधिक है आधुनिक हिंदी में इतक बढ़ते हैंसा' प्रत्यय आता है जो बयारपान लिखा जायगा । ]

पेत ( कर्तृवाचक )—

कड़ना—कड़ैत

पड़ना—पड़ैत

केंटना—किकैत

ओढ़ा ( कर्तृवाचक )—

भागना—मगोषा

हँसना—हँसीषा ( हँसोइ )

चारना—चरोरा

ओता ओती ( भाववाचक )—

समझना—समझैता

मनावा—मनाँती

पुढ़ना—पुढ़ीती

बुझना—बुझैता, बुझैती

कगना—कसीरी

बुबना—बुबाठी ( प्रख्या० )

ओना, ओनी आयनी ( विविध अर्थ में )—

पखना—पिखीना

बिहाना—बिहौना

ओढ़ना—ओढ़ीना

पहरना—पहरीनी ( पहरावनी )

दाना—दावनी

खरना—खरीनी

कहना—कहानी

( अर्ध्र ) मीचना—( अर्ध्र ) मिर्चीना

ओपल ( भाववाचक )—

बूझना—बुझावत

बबना—बबीबल

मीचना—मिर्चीपल

क ( भाववाचक, स्वाभाविक )—

पैदना—पैदक

आइना—आरक

( कर्तृवाचक )

मारना—मारक

बोझना—घोझक

घाबना—बाहक

बाँचना—बाँचक

[ सू०—किसी किसी अनुकरणावाचक मूल अर्थ के आगे इस प्रत्यय के योग से वातु भी बनते हैं, जैसे, लड़—लड़कना, पढ़—पढ़कना लड़—लड़कना, बम—बमकना, लड़—लड़कना । ]

कर, के, करके—ये प्रत्यय सब वातुओं में लगते हैं और इसके योग से अर्थ बनते हैं । इस प्रत्ययों में 'कर' अधिक शिष्ट अर्थवाला है और शब्द में बहुधा इसी का प्रयोग होता है । इस प्रत्ययों से बने हुए अर्थ पूर्ण व्यक्तिक कर्तृत्व कहलाते हैं और उनका उपयोग क्रिया विशेष्य के समान तीनों भावों में होता है । पूर्णव्यक्तिक कर्तृत्व का उपयोग संयुक्त क्रियाओं की रचना में होता है विशेष्य वर्तन संयुक्त क्रियाओं के अन्वय में या लुप्त है ।  
उदा०—देकर, बाकर, लठके, दीद करके ।

[ सू०—किसी किसी की संमति में 'कर' और 'करके' प्रत्यय मही हैं, किन्तु स्वतंत्र हैं, और कदाचित् इसी विचार से वे ही 'बलकर' शब्द की 'बल कर' ( अलग अलग ) लिखते हैं । यदि वह भी मान लिया जाये कि 'कर' स्वतंत्र शब्द है—यह कई एक स्वतंत्र शब्द भी अपनी स्वतंत्रता द्वारा प्रत्यय हो गये हैं—तो भी उसे अलग-अलग लिखने के लिए कोई कारण नहीं है, क्योंकि समास में भी तो दो या अधिक शब्द एकत्र लिखे जाते हैं । ]

का ( विविध अर्थ में )—क्रीडना—क्रीडक

की ( विविध अर्थ में )—फिरना—फिरकी, फूटना—फूटकी

गी ( भाववाचक )—देना—देगी ।

ल ( भाववाचक )—

बचना—बचत

लपना—लपत

पढ़ना—पढ़त

रंगना—रंगत

रत्ता—इस प्रत्यय के द्वारा सब वातुओं से वर्तमानव्यक्तिक कर्तृत्व बनते हैं विशेष्य प्रयोग विशेष्य के समान होता है और क्रिया विशेष्य के क्रिया-बचन के अनुसार विचार होता है । अकारणता में इस कर्तृत्व का बहुत उपयोग होता है । उदा—जाता, आता, देखाता करता ।

ती ( मातृवाचक )

बढ़ना—बढ़ती

बढ़ना—बढ़ती

बढ़ना—बढ़ती

घरना—घरती

घुड़ना—घुड़ती

गिनना—गिनती

म्हना—म्हती

पाना—पावती

रबना—रबती

ती—इस प्रत्यय के द्वारा सब धातुओं से अपूर्ण क्रिया प्रोत्क वर्तक बनाये जाते हैं जिनका प्रयोग क्रिया-विशेष्य के समान होता है। इससे बहुधा मुख्य क्रिया के समय होनेवाली घटना का बोध होता है। कभी-कभी इसमें 'कगतार' का अर्थ भी निकलता है जैसे, मुझे आपकी ओरते कई घंटे हो गये। इनमें यहाँ रहते तीन बरस हो चुके।

न ( मातृवाचक )—

बढ़ना—बढ़न

बढ़ना—बढ़न

मुरखपाना—मुरखपान

खेना—खेना—खन—खन

घाघा—घीना—घाघपान

खाना—खान

सीपा—सिपन, सीरन

( कर्तृवाचक )—

म्हना—म्हन

खेना—खेन

जमाना—जामन

[ १०—( १ ) कभी-कभी एक ही कर्तृवाचक शब्द कर अर्थों में आता है, जैसे म्हाइन=म्हाइने का इतिहास अथवा म्हाइना हुआ पहाय ( कूड़ा )।

( २ ) न प्रत्यय संसृत के अन्त वर्तक प्रत्यय से निपला है। ]

सा—इस प्रत्यय के योग से क्रियार्थक कर्मवाचक धीरे कर्तृवाचक संज्ञार्थ बनती हैं। हिंदी में इस वर्तक से धातु का निर्देश करते हैं जैसे, बोलना, बिपना, खेना घाघा इत्यादि।

[ १०—संसृत क अन्त प्रत्ययार्थ वर्तकों से हिंदी के कई मातृवाचक वर्तक निकलते हैं पर एका ही जान पड़ता है कि संसृत स बेवज्र अन्त प्रत्यय लेकर उमे 'न' कर लिया, क्योंकि यह प्रत्यय उन्नी शब्दों में ही लगा दिया जाता है और हिंदी के दूसरे शब्दों में ही कहा जाता है, जैसे, उन्नी शब्द—'बदल' से बदलना, 'गुबर' से गुबरना, दाग स दागना, गम से गमाना।

हिंदी शब्द—असग से असगाना, अनना से अननाना, साठी से लखियाना, रिठ से रिठाना इत्यादि । ]

( कर्मवाचक )—

आना—आना ( भोग्य पदार्थ )—इस अर्थ में यह शब्द बहुधा मुसक भागों और उभरे सहवासियों में प्रचलित है । गाना-गाना ( गीत ), बोलना बोलना ( वात ) इत्यादि ।

( घ )—( कर्णवाचक )—

बेजना—बेजना

कसना—कसना

घोड़ना—घोड़ना

घोटना—घोटना

( ङा ) किसी किसी घात का आघ स्वर ह्रस्व हो जाता है, जैसे,

बौंधना—बौंधना

हावना—हावना

कुटना—कुटना

( इ )—( विशेष्य )—

उड़ना ( उड़नेवाला )

हँसना ( हँसनेवाला )

रोना ( रोनेवाला, रोनीसूरत )

बढ़ना ( पैदा )

( ई )—( अविकृतवाचक )—भिरना, रमना, पाखना ।

भी—इस प्रत्यय के योग से लीलांग कर्तृत्व संज्ञाएँ बनती हैं ।

( झ )—( भाववाचक )—

करना—करनी

भरना—भरनी

कटना—कटनी

बोना—बोनी

( ञा )—( कर्मवाचक )—कटनी भुँवनी, कहरनी ।

( ञ )—( कर्णवाचक )—

पीकनी, घोटनी, कतरनी, बगनी, कुदेवनी, खेचनी, बड़नी, धुमरती ।

( ञं )—( विशेष्य )—

कटनी ( कटने के योग्य ), मुननी ( मुनने के योग्य )

वा—( विशेष्य )—

ठाकना—ठाकनी

कटना—कटनी

पीटना—पीटनी

कुटना—कुटनी

घासा—यह प्रत्यय सब क्रियापद संज्ञाओं में लगता है और इसके बीज से कर्तृवाचक विशेषण और संज्ञाएँ बनती हैं। इस प्रत्यय के पूर्व ध्वंस्व वा के स्थान में ए हो जाता है; जैसे, जानेवासा, रोकनेवासा, खायेवासा, वेनेवासा।

धीया—यह प्रत्यय ङसा का पर्यायी है और 'बाका' का समावायी है। इसका प्रयोग एकापरी धातुओं के साथ अधिक होता है; जैसे, गर्धिया, लुधिया, विदेया, रक्षधिया।

सार—मिलनसार। ( यह प्रत्यय ऊर्ध्व है )।

हार—यह बाका के स्थान में कुछ धातुओं से हाता है; जैसे मरनहार, क्षानहार, ज्ञानहार।

द्वारा—यह प्रत्यय "बाका" का पर्यायी है; पर इसका प्रचार यद्य में कम होता है।

हा—( कर्तृवाचक )—

करना—करहा, मारना—मरकरहा, करना—करबाहा।

### ( ख ) हिंटी-सङ्घित ।

आ—यह प्रत्यय ऊर्ध्व एक संज्ञाओं में लगाकर विशेषण बनाते हैं; जैसे

मूध—मूधा	प्यास—प्यासा	मैत्र—मैत्रा
प्यार—प्यारा	दंड—दंडा	खार—खारा

( घ ) कधी-कभी एक संज्ञा से दूसरी भाववाचक अथवा समुदायवाचक संज्ञा बनती है; जैसे,

जोड़—जोड़ा	पूर—पूरा	सराफ—सराफा
बजाज—बजाजा	बोध—बोधा	

( ङ ) नाम और जातिसूचक संज्ञाओं में यह प्रत्यय अन्तर् अथवा पुकार के अर्थ में आता है; जैसे,

शंकर—शंकरा	राजुर—राजुरा	पसदेव—पसदेवा
------------	--------------	--------------

[ २०—रामचरित मानस तथा कूर्तरा पुगती पुस्तकी की कविता में यह



अगते हैं, जैसे, पूजा—पुजारी, खेड—खिडाड़ी बनिज—बनिजारा, बसिबारा, मिखारो हखारा, भटिपारा, कौठरी ।

( अ )—( भाषवाचक )—सूत्र—सुत्रकार ।

आस्र—( आ ) इस प्रत्यय से बिरुपञ्च आर संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

आस्र—अठिपास्र

माठा—भठिपास्र

जांघास्र ( जाँ और अघास्र का मिश्रण )

दया—दयास्र

दृषा—दृषास्र

दाढ़ी—दाढ़िस्र

( आ ) किसी-किसी शब्दों में यह प्रत्यय संस्कृत आस्रप्रत्यय अर्थात् है, जैसे, समुरास्र ( स्वसुरास्र ), बनिहास्र, गंगास्र, धनियास्र ( धनी का घर ), बिबासा, शिबासा, पभारा ।

आस्रो—संज्ञित 'आस्र' का अर्थ है श्रीर समूह के अर्थ में प्रयुक्त होता है; जैसे, दिवासी ।

आसू—आसा—आसासू—आस—आसासू—आस—आसासू ।

आस्र ( भाषवाचक )—आसास्र, महास्र ।

आस्र ( भाषवाचक )—

मीठा—मिठास्र

बहा—बहास्र

बीद—बिदास्र ।

आसा—( विविध अर्थ में )—सुँबासा, सुँहासा

आस्र ( भाषवाचक )—

कहुवा—कहुवास्र

बिकना—बिकनास्र

गरम—गरमास्र

इस लीङिण का प्रत्यय है । इसका प्रयोग किय प्रकरण में दिया गया है ।

इया—( अ ) कृष्ण संज्ञाओं से इस प्रत्यय के द्वारा कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे

आइठ—अइठिया

अस्रव—अस्रविया

बसेड़ा—बसेड़िया

गावर—गावरिया मुञ्ज—मुञ्जिया

मुञ्ज—मुञ्जिया

रसोइ—रसोइया, रसि—रसिया

( स्थानवाचक )—

मधुप—मधुरिया

कउकता—कउकतिया

सरबार—सरवरिया

कबीर—कनीरिया

( भा )—( कनकाचक्र )—

घाट—घुरिया

कोड़ा—कुड़िया

हस्ता—हथिया

गडरी—गडरिया

आम—आँधिया

पेरी—पेरिया

( ६ )—( बछाधी ) आँधिया, आँगिया ।

( ७ ) ईकारांत पुर्विग और स्त्रीग संज्ञाओं में अनादर अथवा दुखार के लिये यह प्रत्यय लगते हैं, जैसे,

हरी—हरिया

तेली—तिलिया

धोबी—धुबिया

राधा—रधिया

दुर्गा—दुर्गिया

माई—मीया

माई—मीया

मियाही—मिपहिया

( ८ ) प्राचीन कविता के कई शब्दों में यह प्रत्यय स्वार्थ में अग्रा कृष्ण मिश्रता है, जैसे,

आँख—आँधिया

आँग—आँगिया

आग—आगिया

पौर—पौरा

जौ—जिया

पी—पिया

ई—( अ ) यह प्रत्यय कई एक संज्ञाओं में लगाने से विशेषण बनते हैं, जैसे, भार—भारी, ऊन—ऊनी देर—देरी । इसी प्रकार अंगली, बिदेरी, बिंगनी, गुडाबी, विमात्री, बहाबी, सरकारी आदि शब्द बनते हैं । देर के नाम से जाति चार भाषा के नाम भी इस प्रत्यय के वीग से बनते हैं, जैसे, मारपाही, पंगाबी, गुजराती, सिखापती, निपाबी, पंजाबी, थारबी ।

( भा ) कई एक अकारांत वा आकारांत संज्ञाओं में यह प्रत्यय लगाने से ऊनपापक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे

पहाड़—पहाड़ी

घाट—घाटी

होडकी

होरी

टोकी

रस्ती

उपकी

( ६ ) कोई कोई व्यापारपापक संज्ञाएँ इसी प्रत्यय के वीग से बनी हैं, जैसे, तेली ( तेल विक्रयनेवाला ), माकी, धोपी, लमोची ।

( ७ ) किसी-किसी विशेषणों में यह प्रत्यय अनादर अथवा अज्ञान संज्ञाएँ बनाते हैं, जैसे, गूदस्य—गूदस्वी, बुद्धिमान—बुद्धिमान्नी, साबधान—साबधान्नी

बतुर—बतुरी । इस अर्थ में यह प्रत्यय उर्दू शब्दों में बहुतायत से आता है; जैसे, गरीब—गरीबी, मेक—मेकई, बद्—बड़ी—सुस्त—सुस्ती । इस प्रत्यय के और उदाहरण अगले अध्याय में दिये जायेंगे ।

- ( ब ) कुछ संख्यावाचक विशेषणों से इस प्रत्यय के द्वारा समुदायवाचक संज्ञायें बनती हैं; जैसे, बीस—बीसी, बचीसी, पचीसी ।
- ( छ ) कई-एक संज्ञाओं में भी यह प्रत्यय लगाने से भाववाचक संज्ञायें बनती हैं; जैसे,

बोर—बोरी

केत—केती

किसाब—किसाबी

महाजब—महाजनी

बूबाब—बूबाबी

बाबटर—बाबटरी

सबार—सबारी

‘सबारी’ शब्द यात्री के अर्थ में ज्ञाति-वाचक है ।

- ( झ ) भूपर्यायक—अंगूठी, कंठी, पंजुची, पीरी, बीसी ( बीम साफ करने की छबार्ह ), अगाड़ी, पिछाड़ी ।

ईसा—इस प्रत्यय के योग से विशेष्य बनते हैं; जैसे,

रंग—रंगीबा

कवि—कवीबा

बाब—बाबीबा

रस—रसीबा

बहर—बहरीबा

पानी—पानीबा

- ( घ ) कोई-कोई संज्ञायें; जैसे, पोवर—पोवरीबा ।

ईसा—ईह—ईबीसा, उसीसा ।

उद्या—इस प्रत्यय से महुआ, गीहआ, चाबआ, फगुआ, टहलुआ, आदि विशेष्य अथवा संज्ञायें बनती हैं—

ऊ—इस प्रत्यय के योग से विशेष्य बनते हैं—

बाब—बाबू

बर—बरक

बाजार—बाजारक

पेट—पेटू

मरज—मरजू

धौता—धौतू

बाक—बाकू

( बद्बाम )

- ( झ ) रामचरित-मावस तथा दूसरी प्राचीन कविताओं में यह प्रत्यय संज्ञाओं में लगा हुआ पाया जाता है; जैसे, रामू, ध्रापू, प्रछापू, बमिगू, बीगू,

हृत्पादि । 'ठ' के बहने कभी कभी ठ आता है; जैसे, धातु, विद्यु, मातु रामु ।

(घ) कोई-कई व्यक्तिवाचक तथा सर्वव्यवाचक संज्ञाओं में यह प्रत्यय प्रेम अथवा आदर के लिये लगाया जाता है; जैसे

जगन्नाथ—जग्गु

श्याम—श्याम्

वरुण—वरुण्

कल्याण—कल्यण्

मन्दा—मन्दु

( इ ) छोटी जाति के लोगों अथवा बच्चों के नामों में बहुधा यह प्रत्यय पाया जाता है; जैसे, कबडु, गबडु, सटसु, मुबडु ।

एँ—( क्रमवाचक )—पाँचें, साठें, आठें, नवें, दसैं ।

ए—कई एक आकारांत संज्ञाओं कीर विशेषणों में यह प्रत्यय लगाने से अस्पष्ट बनते हैं त्रिवक्र प्रयोग सर्वव्यवाचक अथवा क्रियाविशेषण के समाव होता है; जैसे

सामना—सामने

घरि—घरि

बहना—बहने

खेरा—खेत

तड़का—तड़के

जैसा—जैसे

पीपा—पीसे

पर—मूँह—मुँहेर, धंघ—धंघेर ।

परा—( व्यापारवाचक )—

साँप—सपेरा, काँसा—कसेरा, बिह—बितरा, जाघ—जखेरा ।

( गुणवाचक )—बहुत—बहुतेरा, धन—धनरा ।

( भाववाचक )—धीप—धीपेरा ।

( सर्वव्यवाचक )—

कामा—कहेरा

मामा—मभेरा

दूध—दूधेरा

बाबा—बभेरा

मीसा—मीसेरा

पड़ी ( कर्तृवाचक )—भोग—भोगेरी, गाँजा—गाँजेरी ।

पल्ली—हाप—हपेरी ।

पल ( पितृव )—दूध—दूधेरा, नाक—नकेरा ।

पेस ( ध्वनसाय-वाचक )—

छट्ट—छट्ट

बरझ—बरझैत

बरद ( विरद )—बरझैत ( गदैया ) भाषा—भाझैत

कपडा—कपझैत

नासा—नझैत

इंगा—इंगैत

झाझ—झझैत

पेस—( गुपवाचक )—

•

कपरा—कपझैत

तुध—तुधैत

बाँत—बाँत

साँद—साँद

पला—( विविध )—

बाध—बाधेबा

एक—अधेबा

मोर—मुरेबा

भाषा—अधेबा

सीत—सीतेबा ।

देखा—( गुपवाचक )—बन—बनीबा, भूम—भुमीबा

मूँब—मूँबेबा ।

झौ—साकस्य और बहुत के अर्थ में, जैसे, दोपों चारों, सिककों काखों ।

झोटा, झोडा—झंग—झंगोट, जम—जमोटा ।

झोटी—हाब—हबीटी, सच—सचीटी, अजर—अजरीटी,

ज्मा—जुबीटी ।

झोड़ा ( चीकी )—हाब—हचीड़ा बरस—बरसीड़ी ।

झोली ( माववाचक )—बाप—बपीली, बुडा—बुपीली ।

झोला—( पात्र के अर्थ में )—काठ—कडीला, कजर—कजरीला ।

झोला ( कनवाचक )—

साँप—सँपोबा

साद—सदोबा

बाध—बधोबा

मौम—मैमोबा

बदा—बदोबा

गद—गदोबा

झोला ( असन्न बन्ना—हिरम—हिरलीटा, बिन्धी—बिन्धीटा,

पहिवा—पहिबीटा ।

क—( अ ) आग्य से नाम, जैसे, पद—पदक मद्—मदक  
घम—घमक ।

( घा ) समुदायवाचक—बीक, पंचक सप्तक, अष्टक ।

( इ ) स्वार्थक—ईड—ईडक, बीड—बीडक, कहुँ—कहुँक

( कविता में ) ।

कर करके—इसे कुछ शब्दों में जगान से किया-विशेष्य बनते हैं, जैसे,

गाम—जासकर विशेष—विशेषकर बहुत करके, कपोकर ।

का ( स्वार्थ में )

घोय—घुरका वहा—वहका सुर—सुरम

घान—घुरका वृ—वृका ।

( समुदाय-वाचक )—इका सुरका, बीका ।

की—( क्तवाचक )—कव—कतका, दिन—दिनकी ।

चम्—विवाद अथवा चान्द्र में संज्ञाओं के साथ आता है, जैसे गीदद

चम् मूयचचम् वामनचम् ।

जा—जाई अथवा बहिन का शेष, जैसे, मतीजा, मानजा ।

( क्तवाचक ) वृजा वीजा ।

जी—घादस्वार्थ, जैसे, गुदजी, पंडितजी बाबूजी ।

डा, टो—( क्तवाचक )—

रोर्छी—रोगदा काका-कपूदा

बोर—बोहा बह—बहूरी

टो—संज्ञावाचक शब्दों के साथ अतिरिक्त में, जैसे शी-टो चारदी,

रमदा ।

डा, डी—( क्तवाचक )—

घान—घमदा बरदा—बददा

घुय—घुमदा मृय—मृमदा

दूक—दूकदा र्छेय—र्छेयदा

र्येय—र्येयदी पर्वेय—पर्वेयदी

वेय—वेयदी वाह—वाहदी

( स्थाववाचक )—आगा—आगाही, पीछा—पिछाही ।

त—( भाववाचक )—बाह—बाहूत, रंग—रंगत, मेख—मिखलत ।

ता—( विविध ) पाँपता, रायता ( राह से बना ) ।

ती—( भाववाचक )—कम—कमती । यह प्रत्यय बहुते आरसी शब्द में आता है और इस धीगिक शब्द का उपयोग कभी-कभी विशेष्य के समान भी होता है ।

तामा—उड़, बह, जो, और कीच के परे परिनाय के अर्थ में; जैसे, इतना, उतना, अितना, कितना ।

था—थार और ठा से पर संख्या-कर्म के अर्थ में; जैसे, चौथा, षः से ष्ठ ।

नी—( विविध अर्थ में )—चाँद—चाँदनी, पाँच—पाँचवी, नम—नमवी ।

पन—( भाववाचक )—

आका—आकापन

आका—आकापन

बाह—बाहपन

पागल—पागलपन

गँवार—गँवारपन

पा—भाववाचक—हुआ—हुआपा रँद—रँगापा, बहिन—बहिनपा  
मौय—मौयपा ।

ब—बह, बह, जो और कीच के परे काज के अर्थ में; जैसे अब, तब, जब, कब ।

महात्मान—आदर अथवा विभोद में; जैसे, देव-महात्मा, रघु-महात्मा  
( विधि० )

राम—हुए शब्दों में आदर के लिये और हुए में विरादर, अथवा, विभोद के लिये आया जाता है; जैसे, माताराम, पिताराम, ब्रह्मरा, मन्थाराम, गीदकराम ।

री—( उचवाचक )—कोय—कोरी, दुष्टा—दुष्टरी, बधि—बधुरी,  
मोट—मीररी ।

सा—( गुणवाचक )—

भागे—भागवा

वीक्षी—विद्यवा

मांछि—मैच्छवा

पुंष—पुंषवा

वाद्—वाद्वा

वाव—वाववा

स्त्री—( कर्मावाचक )—टीका—टिकाही, सूय—सुयवा, राज—राजवा, पंटा—पंटावा, डक—डकवा ।

झ—( विविच )—बाह—बाहवा, पॉय—पायवा ।

पॉ—पह, पद, बी और कॉम के परे प्रस्तर के अर्थ में जैसे, पॉ, त्वॉ, क्यॉ क्यॉ ।

पैत—पुन-अर्थ में; द्वा—द्वारवा, बन—बनवा, गुय—गुयवा, शीक—शीकवा ।

याझ—यह प्रत्यय 'वा' का रूप है; जैसे

गवा—गवावा

प्रयाग—प्रयागवा

पवझो—पवझीवा

कोठ ( कौठ )—कोठवा

याझा—क्यू—अर्थ में;

टीपी—टीपीवा

गाडी—गाडीवा

बन—बनवा

काम—कामवा

पॉ—( क्रमवाचक )—पॉकपॉ घटपॉ सातपॉ नवॉ दसपॉ सीपॉ ।

या—( क्रमवाचक )—पैरा—पिटवा, बपुवा—पपुवा बघा—बघवा, पुर—पुरवा ।

[ यह प्रत्यय प्राक्कि दे । ]

स—( भाववाचक )—घाप—घापवा, घाम—घमवा ।

( क्रमवाचक )—ग्यारह—ग्यारहवा, बारह—बारहवा, तेरस, चारह ।

सा—( पठारवाचक )—बह बह, म्ये, जा कॉम के साथ; जैसे पेसा, पिसा, कैसा, जैसा, ठिसा ।

( क्रमवाचक )—माससा, चप्पासा उदतासा थकसा, मरामा ऊँचासा ।

( परिमाणवाचक )—घोडासा, बूठसा, दाटासा ।



[ ए० ह्रस्व प्रत्यय का प्रयोग कभी कभी सर्वव्ययक के समान होता है ( अं०—२४२ ) ] ।

सरा—( क्रमवाचक )—दूसरा, तीसरा ।

सौं—( पूर्व दिग्वाचक )—पारसों, पारसों ।

हर—( घर के अर्थ में )—काँहर, पीहर, गैहर, कटहरा ।

हरा—( परत के अर्थ में )—इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा ।

( विभिन्न अर्थ में )—ककहरा ।

( गुणवाचक )—सीसा—सुनहरा, रूपा—रुमहरा ।

हा—( गुणवाचक )—हल—हलवाहा, पानी—पनिहा कबीर—कबिराहा ।

हारा—यह प्रत्यय वाक्य का पर्यायी है, परंतु इसका उपयोग इसकी अपेक्षा कम होता है; जैसे, ककरी—ककवाहारा, पनहाग, तुविहारा, मनिहारा ।

ही—( निरपेक्षवाचक )—कई एक सर्वनामों और क्रियाविशेषकों में यह प्रत्यय ई होकर मिल जाता है; जैसे, भावही, सयी, मँही, तुम्हीं, उसी, वही; कभी कभी, किसी, वही ।

नगर पुर, गढ़, गाँव, मेर, मेर, धाड़ा, कोट, आदि प्रत्यय स्वार्थों का नाम सूचित करते हैं; जैसे, रामनगर, तिखपुर, देवागढ़ चिरगाँव, बीकानेर भजमेर, राजवाड़ा, नगरकोट ।

पाचसौं अध्याय-

उर्दू प्रत्यय

४१०—संस्कृत धीर द्विती के समान उर्दू वीरिण शब्द भी कर्बत धीर उचित के भेद से वी प्रकार के होते हैं । ये शब्द मुख्य करके ही भाषाओं अर्थात् फारसी धीर धरवी के हैं । इसलिये इनका विशेषण अलग अलग किया जाता है ।

[ १ ] फारसी प्रत्यय

[ फ ] फारसी कृदन्त

अ ( भाववाचक )—

आमद ( खाया )—

परीह ( घाँटा )—

बरदारत ( सदा )—

दरक़्वास्त ( मर्ग )—

रसीद ( पहुँचा )—

आ ( कर्तृवाचक )—

आमद—( खाया )

परीह ( छप )

बरदारत ( सरत )

दरक़्वास्त ( मार्गता )

रसीद ( पहुँच ), रसद

शान ( जानना )—शाना ( जाननेवाला, जगुर ), रिह ( छुटना ) रिहा ( छुटनेवाला, मुक्त ) ।

आन ( आँ ) ( वर्तमानकालिक कृदन्त )—

पुर्य ( पढ़ना )—पुर्या ( पढ़ना हुआ ) बस्य ( बिरकाबा )—बस्यी ( बिरकता हुआ ) ।

इन्दा ( कर्तृवाचक )—

जुन ( जाना )—जुमिन्दा ( करनेवाला ), जी ( जीना )—जिन्दा ( जीतनेवाला, जीता ) बाय ( रहना ) बायिन्दा, परिदा ( उड़नेवाला, पछी ) ।

[ ६०—हिंदी क्रिया 'जुनना' के साथ यह प्रत्यय लगाने से जुनिदा शब्द बना है पर यह असुद है । ]

इरा ( भाववाचक ) ।

परबर ( पाठना )—परबरिय, बोर ( उपाय करना )—बोरिय, बाह ( रोना ) बाहिय, माह ( मजना )—माहिय, चारमाय ( घाया देना )—चरमाह्य ।

ई ( भाववाचक )—

रकन ( जाना )—रकनबी, आमद ( खाया )—आमदबी

इ ( भूतकालिक कृदन्त )—

छत्र ( छत्रा )—छत्र, छत्र ( मरा )—छत्र, छत्र ( रज्जा )—छत्र  
( रज्जा छत्र की ) ।

( ख ) फारसी तद्धित ।

( अ ) संज्ञार्थ

आ—इस प्रत्यय के द्वारा कुछ विशेषणों से भाववाचक संज्ञार्थ बनती हैं; जैसे, गरम—गरमा, सफेद—सफेदा, खराब—खराबा ।

आमह ( आमा )—( अपने के अर्थ में )—

छत्र—छत्राता तबब—तबबाना

मजर—मजराबा इर्ज—इर्जाता

बम ( बिक्री )—बबाना मिहमत—मिहमताबा

( विविध अर्थ में )—

बस्त—बस्ताता ( बाग का मोजा )

ई—विशेषणों में यह प्रत्यय लगाने से भाववाचक संज्ञार्थ बनती हैं; जैसे,

लुग—लुगी सियाह—सियाही ( कपड़ापन भरी )

मेक—मेकी बह—बही

( ब ) इसी प्रत्यय के द्वारा संज्ञार्थों से अचिन्तर, गुण, स्थिति अथवा मोक्ष सूचित करनेवाली संज्ञार्थ बनती हैं, जैसे,

मबाब—मबाबी फकीर—फकीरी

सौदागर—सौदागरी दोस्त—दोस्ती

दुरमब—दुरमबी दबाब—दबाबी

मंजूर—मंजूरी मुकतदार—मुकामदारी

( आ ) लम्बाई का 'ह' बढ़कर ग हो जाता है; जैसे

बंदह—बंदगी किहह—किहगी

रवानह—रवानगी परवानह—परवानगी

( इ ) क्वायह—क्वाइती ।

क ( ऊबवाचक ); जैसे, लोप—लुपक ।

कार—इससे कर्तृवाचक संशय बनती है, जैसे, पेठ ( सामने )—पेठ  
कार ( सहायक ), बर ( घुस )—बरकार ( घुस ), कमत ( सेती )—कारतकार  
( किसान ), सखाह—सखाहकार ।

[ ६०—हिंदी "बानकर" में यही प्रत्यय बान पड़ता है । ]

शर—( कर्तृवाचक ), जैसे,

सीसा—सीसागर                      शिबू—शिबूगर

कार—कारीगर                        कछई—कछईगर

जीम—जीमगर

शार—कर्तृवाचक )—

मदद—मददगर                        बाद—बादगर

खिदमत—खिदमतगर            गुमाह—गुमाहगर

या अथवा हवा ( कर्तृवाचक )—

बाग—बागवा अथवा बागीचा ( हि०—बगीचा )

गाडी ( कारीगर=शतरंजी )—गाडीवा ( हि०—गागीचा )

देग ( हि०—देग )—देगवा ( बटकोई ) अथवा ।

दान ( पत्रवाचक )—

कमल—कमलदान अथवा ( मोमबत्ती )—अमलदान

इन्द्रदान, बाददान आदि ।

[ ६०—यह प्रत्यय हिंदी शब्दों में भी लगाया जाता है और इसका  
रूप बहुधा दानी ही जाता है जैसे, पानदान, पीकदान, ( पीकदानी ),  
वपदान, मच्छुददानी, योद्धदानी, उयालदान । ]

दान ( कर्तृवाचक )—

बाग—बागदान                        दर ( शर )—दरदान

मिहर ( दया ) मिहरदान, मेजदान ( पाहुने का स्वागत करनेवाला ) ।

[ ६०—हिंदी शब्दों में भी यह प्रत्यय लगता है पर इसका रूप संस्कृत  
के अनुकार पर बान ही जाता है, जैसे, गाड़ीबान, हाथीबान । ]

द ( विविध अर्थ में )—

हस्त ( हाथ )—	हस्तह ( सहाह )
चरम ( धाँस )—चरमह	वस्त ( हाथ )—वस्तह ( मूठ )
पेश ( सामने )—पेशह	रौज—रौजह ( उपास )

[ ६०—हिंदी में ह के स्थान में बहुधा आ हो जाता है जैसे, हफ्ता, पेशा । ]

४३० ( क )—नीचे दिये शब्दों का उपयोग बहुधा व्युत्पत्तियों के समान होता है—

नाम ( बिन्दी—इकरारनामा, सरनामा, मुक्तारनामा ।  
आब ( पानी ) गुलाब, गिआब ( गिबन्मिही ), धराब ।

### ( आ ) विशेषण

आनह ( आना )

साब—साबाना

मर्द—मर्दाबा

शाह—शाहाबा

रौज—रौजाबा

जग—जगाबा

'आपादाना' बहुत प्रयोग है

हूदा—

धर्म—धर्मिबा

आघर—

ओराघर

बस्ताघर ( भाग्यदान )

नाक—

दर्ब—दर्बाक,

ई—

ईरानी

खली,

देहाली,

जाकी

आसिमाबी

ईन—

रंगीन

शीकीन

नमकीन

संग ( पत्थर ) संगीन ( भारी )

पोस्त ( बमका )—पोस्तीन

मंद—

धरममंद

दीवतमंद

दाविर ( ज्ञान )—दाविरमंद

धार—बन्नीदार ( हि०—बन्नेदार ), बाहवार, लफसीखवार,  
धारीखवार ।

धर—

जानवर

नामवर

दाफतवर

दिम्मतवर

ईना—

कम—कमीना

माह ( चंद्रमा )—महीना

परम—परमीना ( ऊनी कपड़ा )

जादह ( जलपत्र बुझा )—शाहबादा, हरामबादा ।

३१८—संज्ञाओं से कुछ कड़वत बोझ से दूसरी संज्ञाएँ धीरे धीरे बिसर्प्य  
बनते हैं । ये यथार्थ में समास हैं, पर सुनीते के कारण यहाँ छिपे जाते हैं ।

अंदाज ( जेम्नेबाबा )—

बक ( बिक्री )—पकवाठ ( सिपाही ), धीर—धीरंदाज, गोदा  
( हि० )—गोर्खंदाज इस्तंदाज ।

आयेज ( अटकानेबाबा )—इस्तावेज ( हाथ का कागज जिससे सहास  
मिलता है ) ।

कुन ( करनेबाबा )—करकुन, बत्तीइतकुन,

खोर ( खानेबाबा )—इकाखोर ( भंगी ) हरामखोर, सूदखोर,  
सुगुलखोर ।

गीर—( पकड़नेबाबा )—राहगीर ( बटोरी ), अर्हगीर ( जगत्प्राही ),  
इस्तगीर ( सहायक ) ।

दान—( जाननेबाबा )—

कारदान, कदरदान, हिसाबदान ।

[ ध०—अंतिम का उच्चारण बहुधा आधुनिक होता है, जैसे, कररही । ]

दार ( रखनेवाला )—

बर्मीदार	बूकानदार
चोपदार	तरहदार
फौजदार	माछदार

[ सू०—यह प्रत्यय हिंदी शब्दों में भी स्या कुछा मिलता है, जैसे, बमकदार, नासेदार, पामेदार, फलदार, रवदार, 'खरीदार' में 'खरीद' शब्द के 'द' का लोप होता है पर कोई कोई लेखक इसे भूल से खरीददार लिखते हैं ।

नुमा ( दिखानेवाला )—

कुतुबनुमा	किबलानुमा
-----------	-----------

किरतीनुमा ( माद के आकार का )

( दिखानेवाला )—

धरबीबबीध	स्वाहबबीस
बासिबबाबीनबीस	बिदबबीस

मशीम ( बैठनेवाला )—तकतबशीम, परदानशीम  
बंद ( बानेवाला )

गाछबंद, कम्मरबंद, इबारबंद, विस्तारबंद ।

[ सू०—हिंदी शब्दों में भी यह प्रत्यय पाया जाता है; जैसे, इबियारबंद, मलाबंद, माकेबंदी । ]

पोश ( पहिननेवाला, छुपनेवाला )—बीनपोश, पापोश, ( मूला ), सरपोश ( बन्कन ), सकेदपोश ( सन्ध ) ।

साज ( बनानेवाला )—जाससाज, बीनसाज, बड़ीसाज ।

[ सू०—पिछले उदाहरण में 'पड़ी' हिंदी है । ]

बर ( खेनेवाला )—

पैगम ( पैगाम = संदेश )—पैगबर ( ईशबर—भूत ), बिष—बिबबण ( पेसी ) ।

परदात ( बढानेवाळा )—

याङ् ( खेळनेवाळा, प्रेम करनेवाळा )

बग्याबाज, बग्येबाज, सतरंजवाज

[ ८—यह प्रत्यय बहुधा हिंदी शब्दों में भी लगा दिया जाता है जैसे ठठ्ठेबाज, धौसेबाज, चालवाज । ]

धीन ( देखनेवाळा )—

शुद्ध ( घोडा )—शुद्धबीन, दूरबीन, तमाछबीन ।

माझ ( मझनेवाळा, पोंचनेवाळा )—

रू ( मुँह )—रूमाळ, हस्तमाळ ।

३३४—संज्ञाओं के बीच छिपे शब्दों की प्रत्ययों को जोड़ने से स्पष्ट वाक्य संज्ञाएँ बनती हैं—

आयाद ( यसा हुआ )—

हैदराबाद

इलाहाबाद

अहमदाबाद

राहबहावाबाद

खाना ( स्थान )—

अरखाना

श्रीखरखाना

कैरखाना

गाड़ीखाना

दूधखाना

गाह—

हैदगाह, ठिकारगाह, बंदरगाह, चरगाह, दूधगाह ।

इस्तान—

अरबिस्तान

अफगाबिस्तान

तुर्किस्तान

हिंदुस्तान

अमिस्तान

[ ८—अरबी का 'इस्तान' प्रत्यय रूज और अर्य में संशुद्ध के 'स्थान' शब्द के लच्छ होने के कारण हिंदी शब्दों के साथ बहुधा 'स्थान' ही का प्रयोग करते हैं; जैसे, हिंदुस्तान, अरबस्थान । ]

शन—गुणधन ( बाग )



घार—गुब्बार ( पुष्प स्वान ) । ( हिंदी में गुब्बार कम्प का अर्थ बहुधा 'रमणीय' होता है । ) बाजार ( अर्थात्=मोजन )

घार—घरवार, बंगवार ( बंजीवार )

खार—शर्मसार, काकसार ( काक=रूख ) ।

[ ६०—अरबी समासों के उदाहरण आगे समास प्रकरण में दिये जायेंगे । ]

## [ २ ] अरबी प्रत्यय

### [ क ] अरबी कृदंत

४३०—अरबी के प्रायः सभी कम्प किसी न किसी वातु से बने हुए होते हैं और अधिकांश वातु त्रिवर्ण रहते हैं । कम्प वातु चार बच्चों के और कुछ पाँच बच्चों के भी होते हैं । वातुओं के अक्षरों के मान ( बजन ) के अक्षर सब कृदंतों में पाये जाते हैं और वे मूलाक्षर कहलाते हैं । इन मूलाक्षरों के सिवा कुछ और भी अक्षर कृदंतों की रचना में प्रयुक्त होते हैं जिन्हें अधिकाक्षर कहते हैं । ये अधिकाक्षर सात हैं—क, त, स, म, न, झ, य और इन्हें स्मरण रखने के लिये इन्हें 'अतसममूब' शब्द बना लिया गया है । एक वातु से बने हुए सभी कृदंत हिंदी में नहीं आते, और जो आते हैं उनमें भी बहुधा उच्चारण की सुगमता के लिये कर्पांतर कर लिया जाता है ।

अरबी में वातुओं और कृदंतों के संपूर्ण रूप बजब अर्थात् बसूब पर बनाये जाते हैं, और फ़, भू, छ को मूलाक्षर मानकर इन्हीं से सब अक्षर से बजब बनाते हैं । जब कभी चार या पाँच मूलाक्षरों का काम पड़ता है तब ब को दो या तीन बार काम में आते हैं ।

४४० ( क )—त्रिवर्ण वातु के मूल रूप से कई एक क्रियाार्थक संज्ञार्थ बनती हैं । इनमें से जो हिंदी में प्रयुक्त हैं उनके बजब और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

सं०	शब्द	उदाहरण
१	कर्म	कर्म=कार्य
२	कर्मण	कर्मण=कार्य
३	कर्मणः	कर्मणः=कार्य
४	कर्मणो	कर्मणो=कार्य
५	कर्मण्य	कर्मण्य=कार्य
६	कर्मण्यः	कर्मण्यः=कार्य
७	कर्मण्यो	कर्मण्यो=कार्य
८	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
९	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१०	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
११	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१२	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१३	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१४	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१५	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१६	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१७	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१८	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
१९	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य
२०	कर्मण्योः	कर्मण्योः=कार्य

[ १०—( १ ) एक ही शब्द से ऊपर लिखे लभ शब्दों के शब्द म्युलर्य नहीं होते किसी-किसी से दो या तीन और किसी-किसी से केवल एक ही शब्द बनता है ।

( २ ) चिन् क्रियापक, लंछाओं के अंत में ल रहता है वे बहुधा दूसरी क्रियापक लंछाओं में इस प्रत्यय के बंधने से बनती हैं, जैसे, रश्म=रश्मन् । ]

### कृत विशेषण ।

शब्द—सारे मुख्य म्युलर्य शब्द कृत-विशेषण हैं । अधिक अधिकृत शब्दों के शब्द य हैं—

( १ ) फ़ाहक—अपूर्ण कूर्त अथवा कर्मवाचक संज्ञा, जैसे, आदिम=विद्वान् ( अक्षम=जावना से ), हाकिम=अधिकारी ( हकम=न्याय करना से ), गाफ़िल=भूलनेवाला ( गफ़ल=भूलना से ) ।

( २ ) मफ़ूह—मूधेकाधिक (कर्मवाचक) कूर्त, जैसे, मघज़म=जागा हुआ ( अक्षम=जावना से ), ( मफ़ूर=स्वीकृत करना से ) ।

( ३ ) कर्ह—इस रूप से गुण की स्थिरता अथवा अधिकता का बोध होता है, जैसे, हकीम=साधु, बैब ( हकम=न्याय करना से ), रहीम=बड़ा दयालु ( रहम=दया करने से ) ।

[ सू०—ऊपर लिखे तीनों बचनों के शुद्ध बहुधा लंका के समान प्रयुक्त होते हैं ]

( ४ ) फ़क़ह—इसका अर्थ तीसरे रूप के समान है, जैसे, गफ़ूर=अधिक जमातीक ( गफ़ूर=जमा करने से ), ज़कर=आवरणक ( कर्ह=संज्ञा से ) ।

( ५ ) अफ़सह—इस बचन पर विचर्य कूर्त विशेष्य से बल्कल-बोचक विशेष्य बनते हैं, जैसे, अकबर=बहुत बड़ा ( कबीर=बड़ा से ), अहमद=परम प्रशंसनीय ( हमीद=प्रशंसनीय से ) ।

( ६ ) अफ़माह—इस नाम्ने पर व्यापार की कर्मवाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे, अफ़्हाद, ( अफ़द=बौद्धा मारना ), अर्राह ( अरफ़=बदना, हिं—सराफ़ ), अज़्ज़ाह ( हिं—बजाह ), अफ़्हाह ।

४४२—विचर्य वातुओं से क्रियार्थक संज्ञाओं के धीरे भी रूप बनते हैं जिनमें ही वा अधिक अधिकार आते हैं । मूक क्रियार्थक संज्ञाओं के अनुक्रम रूप क्रियार्थक संज्ञाओं से भी कर्मवाचक और कर्मवाचक विशेष्य बनते हैं । दोनों के मुख्य सन्धि नीचे दिये जाते हैं ।

( क ) क्रियार्थक संज्ञाओं के अन्य रूप ।

( १ ) तफ़ूह—जैसे, तफ़हीम=शिष्या ( अक्षम=जावना से, हिं—साक्षी ) तहसील=प्राप्ति ( हसल=पाना से ) ।

( २ ) मुफ़ाहकत—मुकाबला=सामना ( कबल=सामने होना से ), मुफ़ामहा=विषय, उधोग ( अमह=अधिकार बहावा से ) ।

( ३ ) इष्माह—इष्कार=आही (कहर=न जानना से, इष्माह=स्वाय)  
( नसह = स्वाय करना से ) ।

( ४ ) तच्छुद्ध—शैसे तच्छुद्ध=संयम ( चच्छ=घासना करना से ),  
तच्छुद्ध=उपनाम ( चच्छ=रहित होना से ), तच्छुद्ध ( चच्छ=मादुर  
करना से ) ।

( ५ ) इष्टिष्माह—शैसे इष्टिष्माह=परीक्षा ( महत्=परीक्षा करना से ),  
पतराह=घासना ( घाह=घने रखना से ) वेतवार=विद्यास ( घराह=  
विद्यास करना से ) ।

( ६ ) इस्तिष्माह—इस्तिष्माह=उपयोग ( इष्माह=इष्माह=मैं जानना से )  
इष्माह=स्वाराह=स्वाराह ( इष्=इष्माह रक्षना से ) ।

### [ ख ] क्रियार्थक विशेषणों का अन्य रूप

कर्माहक की कर्माहक विशेषणों के बहुत भीसे लिख जाते हैं ।  
इनके स्तों में यह अंतर है कि पहले के अर्थात् में इ की वृत्त के अर्थात्  
में आ रहा है—

कर्माहक विशेषण का व्यय	व्यय	कर्माहक विशेषण का व्यय	व्यय
१ मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध ( 'इष्' से )	मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध
२ मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध ( 'इष्' से )	मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध
३ मुष्माह	मुष्माह=स्वाय ( 'नसह' से )	मुष्माह	मुष्माह=स्वाय पानेवाहा
४ मुष्माह	मुष्माह=वृद्ध ( 'इष्' से )	मुष्माह	मुष्माह=वृद्ध दुष्मा
५ मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध ( 'नसह' से )	मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध
६ मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध ( 'नसह' से )	मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध
७ मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध ( 'नसह' से )	मुष्माह	मुष्माह=शुद्ध

## स्थानवाचक और कालवाचक संज्ञार्थ

३३३—स्थानवाचक और कालवाचक संज्ञार्थ बहुधा मध्यम या मध्यम के ब्रजन पर होती हैं और उनके आदि में म अक्षरव रहता है जैसे, मकतब=बह स्थान जिसमें छिपना सिलावा जाता है । ( कतब=छिपना से ) ; मक्-तब=कतब करने की जगह ( कतब=मार डालना से ) ; मजलिद=बह स्थान जहाँ भजना बह समय समय कई लोग बैठते हैं ( जलस=रीढ़ना से ) ; मम्जिद=पूजा की जगह ( मजद=पूजा करना से ) ; मजिद=पदवाप ( मजद=बठरना से ) ।

[ सू०—स्थानवाचक संज्ञाओं में कमी-कमी इ थोड़ा दिया जाता है, जैसे, मक्बरह, गद्दरह । ]

### ( ख ) अरबी तद्धित

आनी—इस प्रत्यय के योग से बिलेख बनते हैं, जैसे, जिस्म ( शरीर )—जिस्मानी ( शारीरिक ), कद ( आत्मा )—कदानी ( आध्यात्मिक ) ।

ईयत—( आध्यात्मिक ) जैसे, ईसाब ( मनुष्य )—ईसाबियत ( मनुष्यत्व ), ईयत ( जैसे ? )—ईयतियत, मा ( क्या ? )—माहियत ( मूढ ) ।

ई—( गुणवाचक )—जैसे, इस्म—इस्मी, अरब—अरबी ईसा—इसबी, ईसाब—ईसानी ।

थी—इस तुर्की प्रत्यय से प्नापारवाचक संज्ञार्थ बनती हैं, जैसे, मसअलथी ( हिंदू—मसअलथी ) तबअथी, खजानथी बाबर ( बिरबास )—बाबरथी ( रसोइया ) ।

म—इस तुर्की प्रत्यय से कुछ विविध संज्ञार्थ बनाई जाती हैं, जैसे, बेग—बेगम, खान—खानम् ।

३३४—अरबी में समास के बिना दो संज्ञाओं के बीच में बङ् ( क ) संबंधसूचक रख देते हैं और भेद दो भेदक के पहले करते हैं जैसे बडाब ( प्रमुख ) + उम् + दीय ( धर्म ) = बडाबुदीय ( धर्म—प्रमुख ) । इस उदाहरण में उम् का अर्थ अरबी भाषा की संधि के अनुसार इ हीअर 'दीय' के आद्य 'द' में मिला गया है । इसी प्रकार दार ( घर ) + उम् + सलतम

( राज्य ) = दास्यसक्तगत ( राजधानी ) ; इषोब ( मित्र ) + इष् + प्रप्राह  
 ( ईश्वर = इषीबुववाह ( ईश्वर-मित्र ) ; विजामुष् मुष्क ( राज्यप्यव  
 स्थापक ) ।

( क ) बहद् ( अय बहद् = पुत्र ) का हिंदी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के बीच  
 में पिता-पुत्र का संबंध बताने के लिये आता है ; जैसे मोहन बहद् मोहन  
 ( सोहन का पुत्र मोहन ) । यह कानून हिंदी का एक उदाहरण है ।

### ख । अप्पाय

#### समास

३४३— दो या अधिक शब्दों का परस्पर संबंध बतानेवाले शब्दों अथवा  
 प्रत्ययों का छेप होमै पर उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतंत्र शब्द  
 बनता है उस शब्द को सामासिक शब्द कहते हैं और उन दो या अधिक  
 शब्दों का जो संबंध होता है वह समास कहलाता है । उदा०—प्रेमसागर  
 अर्थात् प्रेम का समुद्र । हम उदाहरण में प्रेम और सागर इन ही शब्दों  
 का परस्पर संबंध बतायेवाले संबंधकारक के का प्रत्यय का छेप होने से  
 'प्रेमसागर' और इस शब्द में प्रेम और सागर, इन ही शब्दों का संयोग है ;  
 इसलिये इस संयोग की समास कहते हैं ।

समास के और उदाहरण—रसोत्पर, राजकुमार अयोमिर्ष  
 मित्रपोषा ।

[ ६ —यदि "समास" शब्द का मूल अर्थ बड़ा है का ऊपर दिखा  
 गया है तबहि वह सामासिक शब्द के अर्थ में भी आता है और इस पुस्तक  
 में भी कहीं-कहीं यह अर्थ दिया गया है । ]

३४४—जब दो या अधिक शब्द हम प्रकार जाइ जाते हैं तब उनमें  
 संधि के नियमों का प्रयोग होता है । संस्कृत शब्दों में संधि अरथ्य हमी है,  
 पर हिंदी और दूसरी भाषाओं के शब्दों में बहुत नहीं होती है ।

उदा०—राम+प्रजापार=रामाप्रजापार, पय+इच्छ=पयच्छ मन्व+भाग=

मनोबोध । वपस्+वृद्ध=वषोवृद्ध । परंतु वर+वर्णित = वर वर्णित, राम+  
आसरे = राम-आसरे । वे+ईमाम=वेईमान ही रहता है ।

[ ६०—छोटे-छोटे और साधारण सामासिक शब्द बहुधा वृत्ते से  
मिलाकर लिखे जाते हैं, पर बड़े-बड़े और असाधारण सामासिक शब्द  
बोधक चिह्न के द्वारा, जो अंगरेजी के 'हार्डफन' का अनुकरण है, मिलाये  
जाते हैं जैसे, ( १ ) रामपुर, धूपपड़ी, लीचिचा, आसपास, रघोईपर,  
कैदखाना ( २ ) विश्व-रचना, नाटक-शास्त्र, पत्र-प्रवचक, साध-वर्तु, मन्ना-  
बंगा । कभी कभी संस्कृत के ऐसे सामासिक शब्द भी जो वृत्ति के नियमों  
से मिला सकते हैं, केवल बोधक ( हार्डफन के द्वारा मिलाये जाते हैं जैसे,  
ब्रह्म आभूषण, मठ एकता, हरि इच्छा । कविता में यह बात विशेष रूप से  
पाई जाती है, जैसे,

“पराधीन-वम बीन कुसुद सुद होन हुए हैं।

पर उग्रति को देख शोक में लीन हुए हैं ।—उ० । ]

४३०—सामासिक शब्दों का संबंध व्यक्त कर दिखाने की रीति को  
विग्रह कहते हैं । “वृत्त-संपन्न” समास का विग्रह “वृत्त से संपन्न” है, जिससे  
जान पड़ता है कि “वृत्त” और “संपन्न” शब्द क्रम-कारक से संबंध हैं ।  
इसी प्रकार जाति-मेव, ब्रह्ममुख और विभुज शब्दों का विग्रह ब्रह्ममुख  
“जाति का मेव” “ब्रह्म के समास मुख” और “तीव है मुख  
जिसमें” है ।

४३८—किसी की सामासिक शब्द में विभक्ति छगाने का प्रयोग ही  
ही उसी समास के अंतिम शब्द में कीजते हैं, जैसे, भाषाप से, राजकुल में,  
माई-बहिनों को ।

[ ६०—( १ ) संस्कृत में इस नियम का एक भी अपवाद नहीं है, परंतु  
हिंदी के किसी किसी ग्रंथ समास में अर्थात् आकारांत शब्द विहित रूप में  
आता है, जैसे, थोड़े-बुरे से, छोटे बड़ी ने, लड़के-बच्चे को । इस नियम का  
और विवेचन इस समास के प्रकरण में मिलेगा ।

( २ ) हिंदी में संस्कृत सामासिक शब्दों का प्रकार साधारण है, पर  
आवृत्त यह प्रकार बड़ रहा है । दूसरी भाषाओं और विशेष कर अंगरेजी

के विचारी को हिंदी में व्युत्पन्न करने के लिये संस्कृत के सामासिक शब्दों का उपयोग करने में सुधीता है बिना इत प्रकार के बहुत से शब्द आसन्न हिंदी में प्रयुक्त होये सगे हैं। निरं हिंदी सामासिक शब्द बहुत कम मिलते हैं और वे बहुधा दो ही शब्दों से बने रहते हैं। संस्कृतसमास बहुधा लंबे होते हैं और और और लेखक अथवा कवि आग्रहपूर्ण लंबे-लंबे समासों का उपयोग करने में अपनी कुशलता समझते हैं। 'अनयममंजु-मुकुट मत्त इरनी' ( राम० ) हिंदी में प्रचलित एक सबसे बड़े समास का उदाहरण है पर इस प्रकार के समासों के लिये हिंदी की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। हमारी भाषा में तो दो अथवा अधिक से अधिक तीन शब्दों ही के समास उचित और मयूर जान पड़ते हैं। ]

४४२—समासों के मुख्य चार भेद हैं। जिन ही शब्दों में समास होता है उनकी प्रधानता अथवा अप्रधानता के विभागांतर पर ये भेद किये गये हैं।

त्रिस समास में पहला शब्द प्रायः प्रधान होता है उसे अग्र्ययीभाव समास कहते हैं। त्रिस समास में दूसरा शब्द प्रधान रहता है उस उत्पूरुप कहते हैं। त्रिसमें दोनों पद प्रधान होते हैं वह ईद कहलाता है। और त्रिसमें कोई भी शब्द प्रधान नहीं होता उसे बहुयीहि कहते हैं।

इन चार मुख्य भेदों के कई उपभेद मौ हैं जो व्यापक महत्व के हैं। इन सबका विवेकन आगे बचास्यान किया जायगा।

### अग्र्ययीभाव ।

४४०—त्रिस समास में पहला शब्द प्रधान होता है और आ समूचा शब्द त्रिसा विशेषण अग्र्य होता है उसे अग्र्ययीभाव समास कहते हैं। जैसे बचाबिधि, प्रतिदिन, भरसक।

[ १०—संस्कृत में अग्र्ययीभाव-समास का पहला शब्द अग्र्य होता है और दूसरा शब्द लंबा अथवा विशेषण रहता है। पर हिंदी में इस समास के उदाहरणों में पहले शब्द के बदले बहुधा लंबा ही पाए जाती है। यह बात ध्याये श्री० ४४२ में स्पष्ट होगी। ]

४४१—( अ ) त्रिस समासों में बचा ( अनुसार ) का ( लक ) प्रति ( अग्र्येक ), याद ( लक ) वि ( विना ) पहले आते हैं, ऐसे, संस्कृत अग्र्य बीभाव समास हिंदी में बहुधा आते हैं, जैसे,



पचाविधि	आह्वय
पचास्यान	आमरव
पचाह्वय	पाचरजीवन
पचासंभव	प्रतिदिन
पचाशक्ति	प्रतिमान
पचासाध्य	व्यर्थ

( घा ) अर्ध ( यत्र ) शब्द अल्पपीमाव समास के अंत में अच हो जाता है; जैसे, परमव ( अर्ध के आगे ), अमव ( सामने, परोप ( अर्ध के पीछे, पीठ-पीछे ) ।

४५३—हिंदी में संस्कृत पञ्चति के बिरे ( हिंदी ) अल्पपीमाव समास बहुत ही कम पाये जाते हैं । इस प्रकार के शब्द हिंदी में प्रचलित हैं के तीन प्रकार के हैं ।

( अ ) हिंदी—जैसे, बिबर, बिबड़क, भरपेट, भरबीड़ अनजाने ।

( आ ) अर्ध अर्थात् फारसी अथवा अरबी जैसे हररोज हरसाह, बंराह, बेफायदा, बकिस, बखूबी, नाहक ।

( इ ) मिश्रित अर्थात् मिश्र-मिश्र भाषाओं के शब्दों के मेल से बने हुए; जैसे, हरमही हरदिव बेअम, बेअरके ।

[ ६०—ऊपर के उदाहरणों में जो 'हर' शब्द आया है, वह अर्थात् में विशेषण है; इसलिये उसके बोग से बने हुए शब्दों को कम भारय मानने का भ्रम हा लफटा है । पर इन समस्त शब्दों का उपनाम क्रिया विशेषण के समान होता है इसलिये इन्हें अल्पपीमाव ही मानना चाहिये ।

४५३—प्रतिदिन प्रतिवर्ष इत्यादि संस्कृत अल्पपीमाव-समासों के विग्रह ( उदा०—द्विने दिने प्रतिदिनम् ) पर भाव करने से आया जाता है कि अथपि अर्ध शब्द का अर्थ प्रत्येक है तो भी वह अगली संज्ञा की द्विक्रि मिश्रण के लिये आया जाता है । पर हिंदी में प्रति का उपयोग ब कर अगली संज्ञा की ही द्विक्रि करके अल्पपीमाव-समास बनाते हैं । इस समास में हिंदी का प्रथम शब्द बहुधा विहृत रूप में आता है । उदा०—बरघर, हाथोंहाथ, पछपछ, दिनोंदिन, राठोराठ, कोठे-कोठे, इत्यादि ।

(घ) पुरठाकपुरत साक इरसाक आदि शब्दों में इर (फारसी) की आन (सं०—अनु) अन्वयों का प्रयोग हुआ है। ये शब्द भी अन्वयीभाव समास के उदाहरण हैं।

(आ) कभी-कभी द्विकृत शब्दों के बीच में ही वा ही अन्वय आता है; जैसे मकहों मक धरही-धर, आपही आप मुंहामुंह सरासर (पृथक्पृथक्)।

[ ६०—ऊपर लिखे शब्दों का उपयोग संज्ञाओं और विशेष्यों के समान भी होता है; जैसे, चौकी-चौकी बौझकर, ठलकी नल-नल में ऐब मरा है, 'तिल-तिल भारत मूमि भीत सबनों क कर से' (सर०)। य समास कमचार्य है। ]

४१४—संज्ञाओं के समान अन्वयों की द्विकृति से भी अन्वयीभाव समास होता है; जैसे बीबीबीब पहापह पहबे-पहब, पाबर, धीरे-धीरे।

### तत्पुरुष ।

४१५—त्रिम समास में दूसरा शब्द प्रधान होता है उसे तत्पुरुष कहते हैं। इस समास में पहला शब्द बहुष संज्ञा अन्वय विशेष्य हाता है और दूसरे त्रिम में इस शब्द का साथ कर्ता या संबोधन कारकों का धीरे धीरे कारकों की विभक्तियाँ आती हैं।

४१६—तत्पुरुष-समास के मुख्य दो भेद हैं, एक व्यधिकरण तत्पुरुष और दूसरा समानाधिकार तत्पुरुष। त्रिम तत्पुरुषसमास के त्रिम में उनके अन्वयों में मित्र-मित्र विभक्तियाँ लगाई जाती हैं उसे व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं। व्याकरण को पुस्तकों में तत्पुरुष का नाम से त्रिम समास का अर्थ रदता है वह पही व्यधिकरण तत्पुरुष है। समानाधिकरण तत्पुरुष का त्रिम में उनके दोनों शब्दों में एक ही विभक्ति लगती है। समानाधिकरण तत्पुरुष का अर्थ द्वित नाम कमधारण है और यह को, अङ्ग समास बदी है, द्वि तत्पुरुष का अर्थ एक उपभ्र है।

४१७—व्यधिकरण तत्पुरुष का प्रथम शब्द में त्रिम विभक्ति का

बोध होता है उसी के कारक के अनुसार इस समास का नाम होता है । यह समास बीसों विधों विभागों में विभक्त ही सकता है—

**कर्म-तत्पुत्र्य ( संस्कृत-उदाहरण )—**

स्वर्गप्राप्त, जलपिपासु) आयासीत ( आता को लॉचकर गया हुआ )  
द्वि-गत ।

( संस्कृत ) ईश्वरदत्त, तुलसीकृत, मच्छिन्न, मदीय, कटस्ताप्य,  
गुणदीन, शरादत्त, अजातपीडित, इत्यादि ।

( हिंदी ) मनमाना, गुणमरा, बईमारा, कपकपन, मुँहमोया,  
बुगुना, मवभाता, इत्यादि ।

( उर्दू ) इस्तफरी, प्याबामात, हैदराबाद ।

**संप्रदान-तत्पुत्र्य—( संस्कृत )** कृष्णार्थक देयमक्ति, कक्षिपट, रत्न-  
निर्मल्य, विद्यागृह इत्यादि ।

( हिंदी ) रसोईघर, गुणवच, उद्भूत-मुहाती, हयकपी, रोकवही ।

( उर्दू ) राहकर्म, शहरपनाह, कारवाँ-सराय ।

**अपादान-तत्पुत्र्य—**

( संस्कृत ) कर्मार्थ, कल्पमुक्त, पदधुत, जातिभ्रष्ट, धर्मविमुक्त मव  
कारण, इत्यादि ।

( हिंदी ) बेह-बिखावा गुनमाई, कमचोर, नाम-साध, इत्यादि ।

( उर्दू ) शाहजादह ।

**संबन्ध-तत्पुत्र्य—**

( संस्कृत ) राजपुत्र, प्रजापति, वैशाल्य, जेरण, पराधीन, विद्याम्बास,  
सेनानायक; कर्ममीपति, पित्रुगृह, इत्यादि ।

( हिंदी ) कर्ममातुष, मुह-बीद, मीरगाड़ी, राजपुत्र कक्षपती, पदचली,  
रामकहापी, मृगतृणा, राजदरबार, रेतचही, धमचूर, इत्यादि ।

\* संस्कृत में विभक्ति ही का नाम दिया जाता है; जैसे, द्वितीय-तत्पुत्र्य  
तत्पुत्री तत्पुत्र्य, त्री तत्पुत्र्य, इत्यादि ।

( उर्दू ) कुचममामा, बंदरगाह, नूरजहाँ, शकरपाता, ( शकर का डूबना-  
मेधा, पकवान ) ।

[ सू०—बड़ी तत्पुरुष क उदाहरण प्रायः सभी भाषाओं में बहुतायत से  
मिलते हैं । अधिकांश व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हठी समास से बनती हैं ]

### अधिकरण-तत्पुरुष—

( संस्कृत ) ग्रामबाह्य, गृहस्थ, मित्रावर, कक्षाप्रवीण, कविभेद्य, गृहप्रवेश,  
बचन-वातुरी, बख्त शम्शोर, दूरमंदूक, धरा, वैराट्य प्रेममग्न ।

( हिंदी ) मकमाजी, घाप-बीती, कामाकुसी, इत्यादि ।

( उर्दू ) इर-कच-माया ।

[ सू०—इन सब प्रकार के उदाहरणों में विभक्तियों के संबंध में मतभेद  
होने की संभावना है, पर विशय महत्व का नहीं है । जब-तक इस विषय में  
संदेह नहीं है कि ऊपर क सब उदाहरण तत्पुरुष के हैं तब तक यह बात  
अप्रामाण्य है कि कोई एक तत्पुरुष इस कारक का है या उस कारक का ।  
'बचन-वातुरी' शब्द अधिकरण-वाचक का उदाहरण है परंतु यदि कोई  
इसका विग्रह 'बचन-वातुरा' करके इसे संबंध तत्पुरुष माने, तो इस (हिंदीके)  
विग्रह के अनुसार उस शब्द को संबंध-तत्पुरुष मानना असुबुद्ध नहीं है ।  
कोई एक तत्पुरुष समास किंतु कारक का है, इस बात का नियम उस समास  
योग्य विग्रह पर अवलंबित है । ]

उ०—जिस अधिकरण्य तत्पुरुष समास में पहले पद की विभक्ति का  
आप नहीं होता उसे अमुक् समास कहते हैं, जैसे अन्वसिद्ध सुपिहित,  
सेवर, पाचरजति, कर्पतिप्रयोग आत्मनेपद ।

हि०—रूपयोग ( यह शब्द यदुवा बहुव्रीहि में आता है ), गृहेमार ।

( क ) 'हीनामाय' शब्द व्याकरण की दृष्टि से विचारणीय है । यह शब्द  
बचार्थ में 'हीन'वाच्य होता आदिष्ट, पर 'हीन' शब्द क 'न' को हीन बोधक  
( धीर विद्यमे ) को हर्ष, चय्य बदी है । इस हीन का ही योजन का अर्थ  
कारण विहित नहीं हुआ है, पर संभव है कि जो हर्ष न' बच्चों का उच्चारण  
एक साथ करते की कठिनाई से पूर्व 'न' हीन कर दिया गया हो । 'हीनामाय'  
समास अवरय ६ धातु इस संबंध तत्पुरुष ही मानना ठीक होगा । किसी  
किसी व्याकरण के अज्ञानुसार यह शब्द हीना+माय के बीज से बना है ।

४५६—अथ तत्पुरुष समास का दूसरा पद ऐसा कर्तव्य होता है जिसका स्वतंत्र उपयोग नहीं हो सकता, तब उक्त समास को उपपद समास कहते हैं। जैसे, प्रथकार, तटस्थ, जलद करण, कृत्यम्, कृत्य, रूप । जलदकर, पापहर, जलदकर, आदि उपपद-समास नहीं हैं, क्योंकि इनमें जो धर, हर और कर कर्तव्य है उनका प्रयोग अन्यत्र स्वतंत्रतापूर्वक जाता है । ये केवल तत्पुरुष के उदाहरण हैं ।

हिंदी-उपपद समासों के उदाहरण—अकल्पशील, तिस्रहटा कम्बुआ ( कान काटनेवाला ) मुँदचीरा, बटमार, बिड़ीमार, पपहुम्भी, घर-तुसा, मुक्कडा ।

उर्दू—उदाहरण—गरीब-मिवाज ( बहि-वाक्यक ), कलम-तराश ( कलम काटनेवाला, चाकू ), चौबदार ( बँचवारी ), डौदागर ।

[ ६०—हिंदी में स्वतंत्र कर्मादि तत्पुरुषों की संख्या अधिक न होने के कारण बहुधा उपपद समास को इन्हीं के अंतर्गत मानते हैं ।

४६ — अभाव किंवा निषेध के अर्थ में शब्दों के पूर्व अ वा अन् लगाये से जो तत्पुरुष बनता है उसे नन् तत्पुरुष कहते हैं ।

उदा०—( अ ) अधर्म ( अ धर्म ), अन्धा ( न न्याय ), अयोग्य ( न योग्य ), अवाचार ( न आचार ), अगिह ( न इह ) ।

हिंदी—अमनन अलमन, अन्धाहा, अपूरा अवनामा, अहूट अमगाड़ा अकन, अकन अमरीत अचहोषी ।

उर्दू—नापसंद, नाकायक, नाबाकिग गैरबाकिर, गैरबाकिब ।

( अ ) किसी-किसी स्थान में निषेधायी न अन्वय जाता है; जैसे, नबन, नास्तिक, नपुंसक ।

[ ६०—निषेध के नीचे त्रिसे अर्थ होते हैं—

( १ ) भिन्नता—अत्राभय अथात् माद्यसे भिन्न अह नाति; जैसे, बेर, बेरक शूद, आदि ।

( २ ) अभाव—अठान अथात् जान अ अभाव ।

( ३ ) अयोग्यता—अकल अथात् अनुचित काल ।

( ४ ) विरोध—अनोठि अथात् नीति का उलटा । ]

३६१—जिस तत्पुरुष समास के प्रथम स्थान में उपसर्ग आता है उसे संस्कृत व्याकरण में प्राप्ति समास कहते हैं।

उदा०—प्रतिष्पत्ति ( समास पत्ति ), अतिश्रम ( आगे श्रमा )। इसी प्रकार अतिविष अतिभृष्टि, उपदेश, अगति, पुर्ण्य।

( क ) ई' के योग न होने हुए संस्कृत-समास को एक प्रकार के तत्पुरुष ई, त्रिभे, बड़ीकाच, कड़ीभूत, खड़ीकर, लुचीभाव।

### समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय

३६२—जिस तत्पुरुष समास के विग्रह में दोबो पदों के साथ एक ही ( कर्ता-कारक की ) विभक्ति आती है उसे समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय कहते हैं। कर्मधारय समास दो प्रकार का है—

( १ ) जिस समास से विशेष्य-विशेष्य भाव सूचित होता है उसे विशेष्यतावाचक कर्मधारय कहते हैं और ( २ ) जिसमें उपमाभावमेव-भाव जाना जाता है उसे उपमावाचक कर्मधारय कहते हैं।

३६३—विशेष्यतावाचक कर्मधारय समास के बाचे कितने मात्र भेद हो सकते हैं—

( १ ) विशेष्य-सूर्यपद—जिसमें प्रथम पद विशेष्य होता है।

संस्कृत-उदाहरण—महाजन, पूर्वराज, पीतांबर सुभाषमन, नीलकमल सद्गुण, हनु, पानाभेद।

हिंदी-उदाहरण—नीलगाय, काशीमिर्च, मधुघार, लखन पढ़ी-बोली, मुंदरकाच, पुष्पवतारा, भजानामय, काष्ठापात्री, हृदभवा सादेहीव।

बहु-उदाहरण—शुद्ध, अर्धमर्द, बंतीव।

ए०—विशेष्य पृथक् कर्मधारय-समास के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि हिंदी में इस समास के क्षेत्र जुने हुए उदाहरण मिलते हैं। इसका कारण यह है कि हिंदी में, संस्कृत के समान, विशेष्य के साथ विशेष्यो में विभक्ति का योग नहीं होता—अर्थात् विशेष्य विभक्ति लागू कर विशेष्य में नहीं मिलता। अतः हिंदी में कर्मधारय समास उन्हीं

विशेष्यों के साथ होता है जिनमें कुछ ऊर्ध्व हो जाता है, अथवा जिनके कारण विशेष्य से किसी विशेष्य वस्तु का बोध होता है। जैसे कुम्भैरा, अलीमिच, बदापर । ]

( २ ) विशेष्योत्तर-पद—जिसमें दूसरा पद विशेष्य होता है ।

संस्कृत-उदा०—अर्मांतर (अंतर=अभ्य), पुरुषोत्तम, बराचम, मुनिवर ।  
विशेष्ये तीन शब्दों का विग्रह दूसरे प्रकार से करने से ये संयुक्त हो जाते हैं, जैसे, पुरुषों में उत्तम=पुरुषोत्तम ।

हिंदी-उदा०—अमुदयाल, शिवहीन, रामद्विज ।

( ३ ) विशेष्योत्तमपद—जिसमें दोनों पद विशेष्य होते हैं ।

संस्कृत-उदाहरण—बीछपीत, लीलोप्य, रबीर्मसुंदर, सुजासुख, सुदु-मंद ।  
हिंदी-उदा०—काछपीछा, भवापुरा ऊँचनीच, कर्मिहा, बदा-बोया, मोयातावा ।

उदू-उदा०—सस्त-सुस्त, मेक-अह, कम-बेरा ।

( ४ ) विषयपूर्वपद—धर्मबुद्धि ( धर्म है, यह बुद्धि—धर्मविषयक बुद्धि ), विषय-पर्यंत ( विषय नामक पर्यंत ) ।

( ५ ) अभ्ययपूर्वपद—तुम्हेंचम, बिराया, सुयोग, कुनेर ।

हिंदी उदा०—अधमरा, तुकाज ।

( ६ ) संख्यापूर्वपद—जिसे कर्मधारय समास में पहला पद संख्या-नामक होता है और जिसके समुदाय ( समाहार ) का बोध होता है उसे संख्या पूर्वपद कर्मधारय कहते हैं । इसी समास को संस्कृत व्याकरण में द्विगु कहते हैं ।

उदा — त्रिगुण्य ( तीस गुणों का समाहार ), त्रैलोक्य ( तीनों लोकों का समाहार )—इस शब्द का रूप त्रिलोकी भी होता है । अतुष्यही ( अर पर्वों का समुदाय ), पंचकटी, त्रिकर, अष्टाप्यापी ।

हिंदी-उदा०—पंचेरी, दीपहर, चौबोका, चौमासा, सतछई, सतजवा, चौराहा, अठबाका, षडाम, चौबदा, दूपडा, दूपत्री ।

उदू-उदा०—सिमाही ( अय०—सिमाही ) बहार-दीवारी, लछमाही ( अय०—लछमाही ) ।

( ० ) मध्यमपदलोपी—त्रिस समास में पहले पद का संबंध दूसरे पद से बताया जाता शब्द अर्थात् रहता है उस समास को मध्यमपदलोपी अथवा मूल-पद समास कहते हैं । इस समास के विग्रह में समासगत शेषों परों का संबंध स्पष्ट करने के लिये उस अर्थात् शब्द का उल्लेख करना पड़ता है; नहीं तो विग्रह होना संभव नहीं है । इस समास में अर्थात् पद बहुधा बीच में आता है; इसलिये इस समास को मध्यमलोपी कहते हैं ।

संस्कृत-उदाहरण—घृतान्न ( घृत मिश्रित अन्न ), पर्यंशका ( पर्यं मिश्रित शका ), दायातर ( दाया-प्रधान तर ) देव-प्राण्य देव-पुत्रक प्राण्य ) ।

हिंदी-उदा०-दही-बका ( दही में हुआ हुआ बका ), गुग्गुला ( गुग्गु में उकाका आम ) गुग्गुला, तिष्ठताका, गोबरगनेश वैषण्वी, चितकबरा, पनकपदा, गीदकमक्की ।

१६३—उपमावाचक कर्मधारय के चार भेद हैं—

( १ ) उपमान-पूर्वपद—त्रिस शब्द की उपमा देने हैं उसका वाचक शब्द त्रिस समास के आरंभ में आता है उसे उपमान-पूर्व पद समास कहते हैं ।

उदा०—चंद्रमुख ( चंद्र मरीचा मुख ), धरवाम ( धर सरीषा वाम ), बभ्रुदेह, माय-मिय ।

( २ ) उपमानोत्तरपद—अप-कमल, राजर्षि, पापिरहृदय ।

( ३ ) अपधारणापूर्वपद—त्रिस समास में पूर्वपद के अर्थ पर उत्तर पद का अर्थ अर्थात् होता है उसे अपधारणापूर्वपद कर्मधारय कहते हैं; जैसे गुग्गुला ( गुग्गु ही देव अथवा गुग्गु स्त्री देव ) कर्म-वैष, पुण्यार, कर्म-मैत्रु कर्मियम ।

( ४ ) अपधारणोत्तर पद—त्रिस समास में दूसरे पद के अर्थ पर पहले पद का अर्थ अर्थात् रहता है उसे अपधारणोत्तर पद कहते हैं; जैसे, साधु-नमात्र-प्रयाग ( साधु-नमात्र-स्त्री प्रयाग ) ( राम० ) । इस उदाहरण में दूसरे शब्द 'प्रयाग' के अर्थ पर प्रथम शब्द साधु समास का अर्थ अर्थात् है ।



( ६०—कमवारय समास में वे रंग-बासक विशेष्य भी आते हैं किन्तु ताय अधिष्ठा के अर्थ में उनका समानार्थी कोई विशेषण वा लंका बोधी नहीं है; जैसे, लाल-मुल, काला-मुबंग, फल-उपला । ( अ० १४४—ए ) । ]

### ईद्व

३६५—जिस समास में सब पद अथवा कबका सहारा प्रधान रहना है उसे ईद्व समास कहते हैं । ईद्व समास तीन प्रकार का होता है—

इतरेतर ईद्व—जिस समास के सब पद 'धीर' समुच्चय-बोधक से लृप्ते हुए हों, पर इस समुच्चयबोधक का बोध ही इसे इतरेतर ईद्व कहते हैं; जैसे, राधा-कृष्ण, कृष्ण-मुनि, बंद-मूक प्रभ ।

हिंदी-शृंखला—

गाय-बीड	बेटा-बेटी	भाई-बहिन
मुल-मुल	पटी-पड़ी	बाक-बाक
माँ-बाप	बाक-भात	दूब-रोटी
चिट्ठी-पाठी	तन-मन-धन	इकतीस
लैला-लीला		

( अ ) इस समास में प्रत्येकपद हिंदी समास लंकारों बहुधा एकवचन में आते हैं । यदि दोनों शब्द मिलकर मात्र एक ही वस्तु सूचित करते हैं तो वे भी एकवचन में आते हैं; जैसे,

बी-मुल	बाक-रोटी	दूब-भात
काम-पान	बोन-मिर्च	दूब-पानी
	गेंद-बंडा	

ये सब ईद्व समास बहुधा बहुवचन में आते हैं ।

( आ ) एक ही शिग के शब्दों से बने समास का मूल शिग रहता है; परंतु मिल-मिल शिगों के शब्दों में बहुधा शिग होता है; धीर कभी-कभी अतिशय धीर कभी-कभी प्रथम शब्द का ही शिग आता है जैसे गाय-बीड ( पु० ), माक-जान ( पु० ), धी-बाकुर ( पु० ), दूब-रोटी ( ली० ), चिट्ठी-पाठी ( ली० ), भाई-बहिन ( पु० ), माँ बाप ( पु० ) ।

[६०—उद् के आबो हवा, नामी निघान, आमदो-रफ्त चादि शब्द समास नहीं कहे जा सकते, क्योंकि इनमें 'आ' समुच्चय बापक का लोप नहीं होता । हिंदी में 'आ' का लोप कर इन शब्दों को समास बना लेते हैं, जैसे, नाम-निघान, आब-हवा, आमद-रफ्त । ]

( २ ) समाहार ईद्—जिस ईद् समास से उसके पदों के अर्थ के सिवा उसी प्रकार का और भी अर्थ सूचित हो उसे समाहार ईद् करते हैं, जैसे, साधार-निद्रा-मय ( बेवज्र आहार, निद्रा और मय ही नहीं किन्तु प्राणियों के साथ धर्म ) सेठ-साहूकार ( सेठ और साहूकारों के सिवा और और भी दूसरे धर्म धोग ), भूख-भूक हाथ-भोंव, राज-रोटी, उपपा-सिया, देवपितर इत्यादि । हिंदी में समाहार ईद् की संख्या बहुत है और उसमें भीषण अन्धे हो सकते हैं—

( क ) बाया एक ही अर्थ के पदों के मेल से बन हुए—

कपड़े कपडे	सामन-वर्तन	पास-बखन
मार पीर	रूउ-मार	पास-भूम
दिवा-बखी	साग-पाठ	मंग-ईद
चमक-दमक	महा-संगा	मोटा-तावा
टट-बुट	दूदा-कचरा	कीण-कीटा
कंडर-पापर	भूल प्रेत	काम काज
बोस-बाध	बाप-बधा	साध जंतु

[ ६०—इस प्रकार क सामासिक शब्दों में कभी-कभी एक शब्द हिंदी और दूसरा उद् रहता है; जैसे, बन-दीसठ, बी-बान, मोटा-तावा, लीब-बरतु, तन बदन, कायब-पब, रीति रहम, देरी-नुरमन, माद-बिरादर ।

( ख ) मिलते जुलते अर्थ पदों के मेल से बने हुए—

छप-जब	घाघार-विचार	घर शर
पास-फूट	गोपा-बाराद्	नाक रत
माह-ताउ	गाना-नीना	पान-समागू
लंगड-भ्यादी	तोब तरद	दिन-दोपहर
दीमा-नीसा	सोप-दिपद्	शोब-लेह

( ग ) परस्पर विपक्ष अर्थवाले पदों का मेल, जैसे,

आगा-पीठा

बहा-बतरी

खेम-खेम

कहा-कुली

[ सू० इस प्रकार के जोड़ें कीइ विशेषणोत्सवक भी पाये जाते हैं। जब इनका प्रयोग संज्ञा के समान होता है तब ये इह होते हैं, और जब वे विशेषण के समान आते हैं तब कर्मवाच्य होते हैं। उदा०— लैगापा शूला, भूखा-प्यासा, बैठा पैठा, नंगा उपारा, उँचा पूरा, मरा पूरा । ]

( घ ) ऐसे समास जिसमें एक शब्द आर्यक और दूसरा शब्द अर्यहीन अप्रचलित अथवा पहले का समास प्राप्त हो— जैसे, आमम-सामये, घास-घास, अफोस-अफोस बात-बीत, देख-माक, शीक-भूप, भीक-भाक, बदला-बदला बाक-बाक, काट-कूट ।

[ सू — ( १ ) अनुपास के लिये जो शब्द लाया जाता है उसके आदि में दूसरे ( मुख्य ) शब्द का स्वर रखकर उस ( मुख्य ) शब्द के शेष भाग को पुनरुक्त कर देते हैं, जैसे, डेरे एरे, जोड़ा जोड़ा, कपड़े-अपड़े । कभी-कभी मुख्य शब्द के आद्य व्यंज के स्थान में स का प्रयोग करते हैं जैसे, उलटा मुलटा, लैवार-लैवार, मिठाईं सिठाईं । उवू में बहुधा 'व' लाते हैं, जैसे, पान-वान, छत-वठ, कायक वागक । बुंदेलखंडी में बहुधा म का प्रयोग किया जाता है, जैसे, पान-मान, मिट्टी-मिट्टी, वागल मायल गाँव मॉव ।

( २ ) कभी-कभी पूरा शब्द पुनरुक्त होता है और कभी प्रथम शब्द के अंत में आ और दूसरे शब्द के अंत में ईं कर देते हैं, जैसे काम-काम, मागा-भाग, देखा-देखी, तकातही, देखा-असी, रोखा-रार्ई । ]

( ३ ) वैकल्पिकार्थ—जब दो पद 'वा', 'अथवा', आदि विकल्पसूचक समुच्चय बोधक के द्वारा मिले हों और उस समुच्चय-बोधक का जीप हो जाय, तब उन पदों के समास को वैकल्पिक ईंई कहते हैं। इस समास में बहुधा परस्पर-विरोधी शब्दों का मेल होता है; जैसे, जात-अजात, बाप-दुष्टप, कर्म-कर्म, उँचा-नीचा, जोड़ा-बहुत भला उरा ।

[ सू०— दो-तीन, मो-बल, बीस-पचीस, आदि अनिश्चित गणनावाचक सामाजिक विशेषण कभी-कभी संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं। उत समक

उन्हें वैदिकीय ब्रह्म कहना उचित है, जैसे, मैं हो-चार को कुछ नहीं समझता । ]

### बहुव्रीहि

४९९—त्रिज समास में कई भी यह प्रमाण नहीं होता और जो अपने पदों से सिद्ध किसी सजा का विशेषण होता है उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं, जैसे, चंद्रमूर्ति ( चंद्र है सिर पर जिसके अर्थात् सिद्ध ) अर्धत ( नहीं है अर्ध जिसका अर्थात् ईश्वर ), कृतकार्य ( कृत अर्थात् किया गया है काम जिसके द्वारा—बह मनुष्य ) ।

[ ५०—पहले कहे हुए प्रायः सभी प्रकार के समास किसी किसी बुरी संज्ञा के विशेषण के अर्थ में बहुव्रीहि हो जाते हैं, जैसे 'मंत्र-मति' (कर्मधारय विशेषण के अर्थ में बहुव्रीहि है । पहले अर्थ में 'मंत्र मति' केवल 'धीमी बुद्धि' वाचक है, पर, पिछले अर्थ में इस शब्द का विग्रह भी आया—मंत्र है मति जिसकी वह मनुष्य । यदि 'धीमावर' शब्द का अर्थ केवल 'धीला कपड़ा' है तो वह कर्मधारय है, परंतु यदि ठठठे 'धीला कपड़ा है जिसका' अर्थात् 'विष्णु' का अर्थ लिखा जाय तो वह बहुव्रीहि है ।

४९०—इस समास के विग्रह में सर्वव्यापक सर्वनाम के साथ कर्ता और संबोधन कारकों को छोड़कर शेष त्रिज कारकों की विमर्शिता आती है, जहाँ के नामों के अनुसार इस समास का नाम होता है, जैसे,

कर्म-बहुव्रीहि—इस जाति के संस्कृत समासों का प्रचार हिंदी में नहीं है और न हिंदी ही में कोई ऐसे समास हैं । इनके संस्कृत उदाहरण ये हैं—  
प्रासादक ( प्रास हुआ है जब जिसका वह प्रासादक प्रास ), आरुहवाच ( आरुह है वाचर जिस पर वह आरुह वाचर—बुध ) ।

करण-बहुव्रीहि—कृतकार्य (किया गया है कार्य जिसके द्वारा), दत्तचित्त ( दिया है चित्त जिसने ), पुरुषाय प्रासकाम ।

संप्रदान-बहुव्रीहि—बह समास की हिंदी में बहुधा नहीं आता । इसके संस्कृत उदाहरण ये हैं—दत्तयत्न ( दिया गया है यत्न जिसका ) उपदान-वत् ( धेनु में दिया गया पद जिसको )

१५५—*सहस्र* ( विद्वत्त गया है जब समूह जिसमें से ),  
 १५६—*सहस्र* ( पत है मुँह जिसके ), *सहस्रबाहु* ( सहस्र  
 है बहु लेनके सार ( राँव है धँवर—कपड़ा—जिसका ), *बहुमुख*,  
*बहुवक्त्र*, *बहुवक्त्र*, *बहुवक्त्र*, *पतिव्रता* ।

१५७—*सहस्र*—*सहस्र* *बहुमुख*, *मिठबोका* *बारहसिंगा* *धनमोक*, *हँस-  
 मुप*, *सिरका* *दुर्जे* *ज्या* *बहुभागी*, *बहुकविता*, *मनपूजा*, *सुबहु* ।

१५८—*सहस्र*, *बहुवक्त्र*, *सुखदिव*, *बेकनाम* ।

अधिकार बहुमीहि—*सपुत्र*—*कमक* ( जिस है कमक जिसमें—*बह  
 ताका* ), *इंद्रादि* ( इंद्र है आदि में जिसके—*बे देवता* ), *स्वराज* ( राज्य ) ।

१५९—*सहस्र*—*त्रिकोण*, *सतसंध*, *पतसंध*, *पीछपी* ।

[ १६०—*सहस्र*—*प्रधिकारा* *पुस्तकों* और *सामयिक पत्री* क नाम इती समास में  
 समाहित होते हैं । ]

१६०—जिस बहुमीहि-समास के विग्रह में दोबों पदों के साथ एक ही  
 विभक्ति आती है उसे समानाधिकरण बहुमीहि कहते हैं; और जिसके  
 विग्रह में दोबों पदों के साथ भिन्न भिन्न विभक्तियाँ आती हैं वह अधिकरण  
 बहुमीहि कहा जाता है । ऊपर के उदाहरणों में फलरूप, पलायन, नीकण्ड,  
 सिरका, *नामिकरण* बहुमीहि हैं और *बहुमीहि*, *इंद्रादि*, *सतसंध*,  
*पीछपी* हैं । १६० शब्द में 'नीक' और 'कंड' (नीकटा है कंड  
 १६० में है; और 'बहुमीहि' शब्द में 'बहु'  
 ) अलग-अलग, अर्थात् कमरा कती

१. *सहस्र*—*सहस्र* के अर्थ की विशेषता

*सहस्र* ।

जिससे )

हिंदी उदा — इगळ्या सिरळ्या मनबळा ।

( १ ) उपमान-पूर्वपद् — राजीब-खोचन बंदमुली, पापापुडरप, बडदेही ।

( २ ) विषय-पूर्वपद् — शिबगव्द ( शिब है गव्द जिसका—बह तनवी ) बहनमिमान ( बहम् अर्थात् मैं बह अमिमान है जिसको ) ।

( ३ ) अवधारणा-पूर्वपद् — पशोषन ( पश ही बन है जिसका ), लपोबड, विषापन ।

( ४ ) मध्यमश्रुतीपी — कोकिडडंडा ( कोकिड के डंड के समान डंड है जिसका बह को ) मृगनेला गजानन अमिमानयाकुंडल सुमाराबस ।

उद् — उदा० — गाबनुम पीबपा ।

हिंदी — उदा० — सुकमुहा मौरकती ( गहना ) बाबतोष ( धोरा ), हापीपौड ( बीमारी ) ।

( ५ ) समूहशुभोहि — असार ( सार नहीं है जिसमें ), अद्वैताप, अम्यप अनाय अकर्मक, बाक ( बही है अक — दुख जिसमें — बह तनवी ) ।

हिंदी — अतनीब अमान, अयाह अचेत, अमान अशमिती ।

( ६ ) संप्रयापूर्वपद् — पृथक्पत्र किमुत्र अतुप्पद, पंचानन, इगमुख ।

हिंदी — अकत्री हुनाकी बीबीक, निमंत्रता सतकही, हुसुति ।

उद् — उदा० — सितार ( तीन हैं तार जिसमें ) पंजाब दुआब ।

( ७ ) संप्रयोत्तरपद् — उपपृथ ( पृथ के पास है जो अर्थात् बी का अयाह ), जिसस ( तीन साथ हैं जिसमें, बह संख्या — इककीस ) ।

( ८ ) सह बहुशुभोहि — सपुत्र ( पुत्र के साथ ) सकर्मक सदेह साबपाव सपरिचार, अकड, सार्यक ।

हिंदी — उदा — सवेरा, सचेत, साडे ।

( ९ ) विगतपक्ष बहुशुभोहि — परिचमोचल ( बापव्य ) शशिपुर्व ( आनेप ) ।

( १० ) इतिहास बहुशुभोहि — जिस समय से एक मकर का पुत्र, शोनों एको के सनात-मुत्र साबन धार उबका आयात मात्पावाठ सूचित होता है उसे इतिहास-बहुशुभोहि कहते हैं ।

अपादान-बहुव्रीहि—विर्जन ( विकल्प वाया है जब समूह जिसमें से ),  
भिर्बिकार, विमल लुप्तपद ।

संबंध-बहुव्रीहि—दशानन ( दस हैं मुँह जिनके ), सहजबाहु ( सहज  
हैं बाहु जिनके, परिवार ( पीत है धर—अपदा—जिसका ) पशुमुँज,  
नीलकंठ, अक्षयाधि, तपोवन, चंद्रमीशि, पतिव्रता ।

हिंदी-उदा०—कनक्या सुधर्मुंहा, मिठबोहा बारहासिगा धनमोक, हंस-  
मुस, सिरक्या, टुटपुंजिया, बहमागी, बहुकपिवा, मबबुहा, धुधर्मुंहा ।

उच्—कमबोर, बहनसीब, लुठदिह नेक्याम ।

अधिकरस बहुव्रीहि—अपुन्य-कमल ( जिस है कमल जिसमें—बह  
ठाकाव ), इयादि ( इन्द्र है यादि में जिनके—वे पकता ), स्वरांत ( शब्द ) ।

हिंदी-उदा०—त्रिकोन, सतर्बहा, पठप्य, बीबदी ।

[ उ०—अधिकरस पुस्तकों और धार्मिक पत्रों के नाम इही समास में  
समाविष्ट होते हैं । ]

४१८—जिस बहुव्रीहि-समास के शिग्रह में दोनों पदों के साथ एक ही  
विभक्ति आती है उसे समासाधिकरस बहुव्रीहि कहते हैं, और जिसके  
शिग्रह में दोनों पदों के साथ भिन्न भिन्न विभक्तियाँ आती हैं वह व्यधिकरस  
बहुव्रीहि कहलाता है । ऊपर के उदाहरणों में लुठकृत्य दशानन, नीलकंठ,  
सिरक्या, समासाधिकरस बहुव्रीहि हैं और चंद्रमीशि इयादि, सतर्बहा,  
व्यधिकरस बहुव्रीहि हैं । नीलकंठ' शब्द में 'नील' और 'कंठ ( नीला है कंठ  
जिसका ) एक ही अवयव कर्ता-कारक में हैं, और 'चंद्रमीशि' शब्द में 'चंद्र'  
तथा 'मीशि ( चंद्र है मीशि में जिसके ) अलग अलग, अर्थात् अलग कर्ता  
और अधिकरस-कारक में हैं ।

४१९—बहुव्रीहि समास के पदों के स्थान अथवा उनके अर्थ की विशेषता  
के आधार पर उसके नीचे विद्ये भेद हो करते हैं—

( १ ) विशेषस-पूर्वपद—पीतांबर, मंदबुजि, बंब-कर्म, हीर्यबाहु ।

हिंदी-उदा०—बहपेटा बाबुलुर्षी अमरंगा, धगातार मिठबोहा ।

उच् उदा०—साधदिह, अबरहस्त, बर्दाग ।

( २ ) विशेषशीतर-पद—शाकप्रिय ( शाक है प्रिय जिसको ),

मातृप्रिय ।

हिंदी-उदा०—इकठ्ठा सिरक्या मनबडा ।

( ३ ) उपमान-पूर्वपद—राजीव-शोचन चंद्रमुखी, पापायइवक,

बनूवेही ।  
( ४ ) विपय-पूर्वपद—शिवशब्द ( शिव है शब्द जिसका—बह  
उपस्था ) अहममिमान, ( अहम् अर्थात् मैं वह अभिमान है जिसको ) ।

( ५ ) आवधारसा-पूर्वपद—पयोधन ( यद्यही बन है जिसका ),  
उपोबक, विद्याधन ।

( ६ ) मध्यमपदस्तोपी—कोकिलकंडा ( कोकिल के कंड के समान कंड  
है जिसका वह को ), सुगन्धना राजावन अभिमानयाकुंतक सुनारावस ।

उद्—उदा०—गाबहुम, लीबपा ।

हिंदी—उदा०—हुजुहा भीरकती ( गहना ), बाबतोइ ( घोड़ा ),  
हाथीपॉब ( बीमारी ) ।

( ७ ) मनुबहुमोहि—असार ( सार नहीं है जिसमें ), अद्वितीय, अम्यप  
अमाय अकर्मक, नाक ( नहीं है अक—दुख जिसमें—बह स्वर्ग ) ।

हिंदी—अननोअ अजान, अमाह अचेठ अमान अमगिबती ।

( ८ ) संप्यापूर्वपद—एकरूप त्रिभुज अणुपद, पंचानन अणुमुक ।

हिंदी—एकजो हुनाबी बीकोन, विमंजला सतबही, हुसूति ।

उद्—उदा०—सितार ( तीन हैं तार जिसमें ) पंजाब हुध्याव ।

( ९ ) संप्योत्तरपद—अपनेय ( इस क पास है जो अर्थात् बी वा  
-गारह ), सिसठ ( तांन छात है जिसमें, वह संख्या—इकमीस ) ।

( १० ) सह बहुमोहि—सपुत्र ( पुत्र के साथ ) सकर्मक, सवेह,  
साबपाव सपरिबार, सफड, सार्थक ।

हिंदी—उदा—सवेय, सचेठ, सांटे ।

( ११ ) दिर्गतपक्ष बहुमोहि—परिबमोत्ता ( बापध्व ) वधिपदार्थ  
( आगवय ) ।

( १२ ) व्यतिहार बहुमोहि—त्रिज सनय से एक प्रकार का पुत्र,  
दोनों दलों के समान-मुक सापन धार उनका आयात प्रायावात सूचित होता  
है उसे व्यतिहार-बहुमोहि कहते हैं ।



सं० उदा०—मुद्गा-मुष्टि ( एक वृत्तरे को मुष्टि अर्थात् मुक्का मारकर किया हुआ बुज ), हस्ताहस्ति, वृंदाहृदि । संस्कृत में ये समास अपुंसक क्रिय, एक वचन और अभ्यय रूप में आते हैं ।

हिंसी उदाहरण—सम्यङ्गी, मारामारी, बदाबदी, कदाकही, धनदायनकी, पूसापूसी ।

[ ए०—( क ) हिंसी में ये समान स्त्रीलिंग और एकवचन में आते हैं । इनमें पहले शब्द के अंत में बहुधा आ और वृत्तरे शब्द के अंत में ई आदेश होती है । कभी-कभी पहले शब्द के अंत में म और वृत्तरे के अंत में आ आता है; जैसे, लङ्गमङ्गु, धकमधका, कुरतमकुरता, पुस्तमपुस्ता । इस प्रकार के शब्द पुल्लिंग, एकवचन में आते हैं ।

( ख ) कभी-कभी दूसरा शब्द निधार्थी, अर्थहीन अथवा समानुप्रास होता है जैसे, माराकूटी, कदासुनी, लींवातानी, ऐंभालेंवी, मारामूरी । इस प्रकार के शब्द बहुधा दो कृदंतों के बोध से बनते हैं । ]

( १३ ) प्रावि अथवा अभ्ययपूर्वक बहुव्रीहि—निर्वय ( निर्गता अर्थात् गई हुई है क्या जिसकी ) विच्छन्न, विषया, कुक्ष्य निर्वन ।

हिंसी—उदा०—सुखीह, कुर्गा रंगविरंगा । पिच्छे शब्द में संज्ञा की पुनर्वृत्ति हुई है ।

### संस्कृत समासों के कुछ विशेष नियम

४० —किसी किसी बहुव्रीहि समास का उपभोग अभ्यधीमात्र-समास के समान होता है; जैसे, प्रेमपूर्वक, विभवपूर्वक साक्षर सविनय सम्रेम ।

४०१—तत्पुरुष समास में नीचे दिये विशेष नियम पाये जाते हैं—

( अ ) अहन् शब्द किसी-किसी समास के अंत में अन्द् हो जाता है; जैसे पूर्वाह्, अपरान्द् मध्वान्द् ।

( आ ) राजन् शब्दों के अंत्य ध्वज्जन का बोध हो जाता है; जैसे, राज पुरुष, महाराज, राजकुमार, जनकराज ।

( इ ) इस समास में जब पहला पद सर्वनाम होता है तब मित्र-मित्र सर्वनामों के विभूत रूपों का प्रयोग होता है—

दिवी	संस्कृत	विहृत रूप	उदाहरण
मै	महम्	मत्	मधुम्
हम	वयम्	धरमत्	अस्मदिता
ए	त्वम्	त्वर	त्वत्पुह
तुम	{ पूषम् मवाम्	पुष्पम्	पुष्पकृष्ण
वह, वे	तद्	भवत्	भवन्माया
पह, पे	एतद्	तद्	तद्वाच तद्गुण
ओ	यद्	एतद्	एतद्देशीय
		यद्	बहूप्या

( ई ) कमी-कमी तत्पुण्य-समास का प्रभाव यह पड़ने ही जाता है, जैसे पूर्ववाच ( कथा अर्थात् शरीर का पूर्ण अर्थात् अगला भाग ), मध्याह्न ( अह्नः अर्थात् दिन का मध्य ), राजर्षि ( ईसों का राजा ) ।

( ङ ) जब अर्थतद् और इत्थं शब्द तत्पुण्य समास के प्रथम स्थान में आते हैं तब उनके अर्थ न् का शोष होता है जैसे, आत्म-वत् मङ्गलान्, इत्थिपत् योगिराज स्वामिमत् ।

( छ ) विद्वान्, भगवान्, श्रीमान् इत्यादि शब्दों के मूल रूप विद्वत्, भगवत्, समास में आते हैं; जैसे विद्वग्जन भगवद्भक्त, श्रीमद्भगवत् ।

( झ ) नियम विद्वत् शब्द—वाचस्पति, बसाहक ( बारीयाँ बाहक; बह बाहक—मेघ ) पिशाच ( पिशित अर्थात् मांस मज्जा करनेवाले ) इह शक्ति, वनशक्ति, प्राचरिबत् इत्यादि ।

४०२—कर्मधारय समास के संबंध में नीचे दिये विषय पाये जाते हैं—

( अ ) महत् शब्द का रूप महा होता है; जैसे, महाराज महादण्ड, महादेव, महाअम्ब, महाअहमी महासमा ।

अपवाद्—महर्षतर, महदुपकार, महार्यर्ष ।

( आ ) अर्थात् शब्द के द्वितीय स्थान में आने पर अर्थ बकार का शोष हो जाता है; जैसे महाराज महोप ( बका ईश )

( ६ ) शक्ति शब्द समास के अंत में राय हो जाता है। जैसे, पूर्वराज, अपराज, मध्यराज, नवराज ।

( ७ ) कृ के बच्चे किसी-किसी शब्द के आरंभ में कर्त्, क्य और क्य हो जाता है। जैसे कर्त्तव्य, कर्त्तव्य, कर्त्तव्य, कर्त्तव्य ।

४०३—बहुव्रीहि समास के विशेष नियम वे हैं—

( अ ) सह और समास के स्थान में प्रायः स आता है। जैसे, साहस, सविस्मय, सचर्य, सजाय, सकृप ।

( आ ) अथि ( अर्थ ) सखि ( मित्र ), वामि, इत्यादि कृत् इकराव शब्द समास के अंत में आकारांत हो जाते हैं। जैसे पुंडरीकाक्ष, मरुत्सख, पद्यमाम ( पद्य है वामि में जिसके अर्थात् विष्णु ) ।

( इ ) किसी-किसी समास के अंत में क जोड़ दिया जाता है। जैसे, सपरवीर शिवाविषयक, अक्षयवयस्क, ईश्वरकर्तृक सङ्गमक, अङ्गमक, निरर्थक ।

( ई ) नियम-विह्वल शब्द—द्वीप ( जिसके दोनों ओर पानी है अर्थात् द्वीप ), अंतरीप ( द्वीप; हिंदी में स्पष्ट क्य अग्रभाग जो पानी में बसा गया हो ), समीप ( पानी के पास स्थित ), शतबन्धा सपत्नी ( समान पति है अस्तम्, सौत ), सुगंधि, सुगंधी ( सुंदर अर्थात् जिसके, वह थी ) ।

४०४—संज्ञ समास के कुछ विशेष नियम—

( अ ) कहीं कहीं प्रथम पद के पीछे अंत में दीर्घ हो जाता है। जैसे, मित्रावकथ्य ।

( आ ) नियम के विह्वल शब्द—जाया+पति=दंपति; अर्धती जयापती; अन्व+अन्व=अन्वोप्य; पर+पर=परस्पर, अहम्+राशि=अहोराज ।

४०५—यदि किसी समास के अंत में आ या ई ( श्री प्रत्यय ) हो और समास का अर्थ उसके अक्षरों से मित्र हो तो उस प्रत्यय को ह्रस्व कर देते हैं। जैसे, विद्वान् सङ्घश्च अन्वप्रतिष्ठा दक्षप्रतिष्ठा । 'ई' के उदाहरण हिंदी में नहीं आते ।

## हिंदी समासों के विशेष नियम ।

२०६—सामान्य समास में यदि प्रथम पद का प्रायः स्वर दीर्घ हो तो वह बहुधा ह्रस्व हो जाता है और यदि पद आकारांत वा ईकारांत हो तो वह आकारांत हो जाता है; जैसे सुवर्णाक्ष, पल-मत्त, मुँहखीरा कबज्या रजवादा, अमपूर कपड़दान ।

अपवाद—धोहागाही, रामकहाणी रामदाशर, सोनामाखी ।

२०७—कर्मधारय-समास में प्रथम स्थान में आनेवाले छोटे वद्दा, खंभा, खड्ड, चाबा, चादि आकारांत विशेष्य बहुधा आकारांत हो जाते हैं और उनका प्रायः स्वर ह्रस्व हो जाता है; जैसे, छुटभंगा, बड़गाँव, अमचोर, फट मिट्टा, धबपका ।

अपवाद—माकाताय भूरासक ।

[ २०—जाल' शब्द के साथ झाड, गाँठ, मूरा, मग्हा, बौका आदि विशेष्यों के अन्त का के स्थान में ए होता है; जैसे, भूलास, छोटेलाक, बौकास, नन्हेलाक । 'अला' के बदले काजू अथवा कबहु होता है; जैसे, काजूराम, कबहुतिर । ]

२०८—बहुव्रीहि-समास के प्रथम स्थान में आनेवाले आकारांत शब्द ( संज्ञा और विशेष्य ) आकारांत हो जाते हैं और दूसरे शब्द के अंत में बहुधा का जोड़ दिया जाता है । यदि दोनों पदों के प्रायः स्वर दीर्घ हों तो उन्हें बहुधा ह्रस्व कर देते हैं; जैसे, छुपमुँहा, बड़पेय, अमज्या ( मूहा ), मज्या ( गाँठ है कड़ी हुई जिसकी ) कबज्या इरुमुँजिया, छुपमुँहा ।

अपवाद—आकड़ुनी, बड़भागी, बहुरंगी ।

[ २१—बहुव्रीहि समासों का प्रयोग बहुधा विशेष्य के समान होता है और आकारांत शब्द पुलिग होते हैं । पुलिग में इन शब्दों के अंत में ई या नी कर देते हैं, जैसे, छुपमुँही, मज्यी, बड़पेयी, छुपमुँकी । ]

२०९—बहुव्रीहि और दूसरे समासों में जो संज्ञावाचक विशेष्य आते हैं उनका रूप बहुधा बदल जाता है । ऐसे कुछ विज्ञेय कर्मों के उदाहरण ये हैं—

मूल शब्द	विकृत रूप	उदाहरण
धा	ड	डुबड़ी, दुबिता, दुगुला, दुराम, दुपहा ।
धीम	ठि, तिर	तिपाईं ठिरसठ, तिबासी, तिखी ।
धात	धी	धीखीय धीपह
धात	धत	पचमेध, पचमहडा, पचछोता पचबड़ी ।
धा	ध	धुपच धुपक, धराम, धुपई ।
सात	सठ	सतनडा, सठमासा सठरुडा, सठसीबा ।
धाठ	धठ	धठखेसी धठडी, धठोर

४८०—समास में बहुधा पूर्ववर्ग शब्द पहले धीर शीर्षिग शब्द पीछे आता है। जैसे, माई-बहिन, दूध-रोटी, धी-शफर बेरा-बेटी, देसा-देसी, कुला-खेपी, खोटा-माडी ।

४८१—माँ-बाप, धंटी-धंटा, सास-ससुर ।

### समासों के सामान्य नियम

४८२—हिंदी ( धीर उर्दू ) समास जो पहले से बने हैं वे ही भाषा में प्रचलित हैं । इनके सिवा गिह्र खोजक किसी विशेष कारण से बने शब्द बना सकते हैं ।

४८३—एक समास में आनेवाले शब्द एक ही भाषा के होने चाहिये । वह एक आधारित नियम है। पर इसके कई अपवाद भी हैं। जैसे, रेखगाड़ी हरदिन, मनमाँजी, इमामबाबा, शाहपुर, धनदीबत ।

४८४—कभी-कभी एक ही समास का विग्रह अर्थ-अर्थ से कई प्रकार का होता है। जैसे, 'त्रिनेत्र' शब्द 'तीन आँखों' के अर्थ में प्रिण्ट है; परंतु 'महादेव' के अर्थ में बहुमीहि है । 'सत्यमत' शब्द के धीर भी अधिक विग्रह हो सकते हैं। जैसे,

सत्य और मृत = ईद

सत्य ही मृत  
साथ मृत } = धर्मपारय

सत्य का मृत = तत्पुरुष

सत्य है मृत जिसका = बहुमीहि

ऐसी व्यवस्था में समास का विग्रह केवल पूर्वापर संबंध से हो सकता है।

- ( अ ) कभी-कभी विना धर्म-भेद के एक ही समास के एक ही म्यात्र में दो विग्रह हो सकते हैं। जैसे, बहुमीकांत शब्द तत्पुरुष भी हो सकता है और बहुमीहि भी। पहल में उसका विग्रह बहुमी का कांत ( पति ) है, और दूसरे में वह विग्रह होता है कि बहुमी है कल्या ( जी ) जिसकी। इन दोनो विग्रहों का एक ही धर्म है इसलिये और एक विग्रह स्वीकृत हो सकता है और उसी के अनुसार समास का नाम रखा जा सकता है।

उदाहरण—कई एक तद्भव हिंदी सामासिक शब्दों का रूप में इतना अंग भंग हो गया है कि उनका मूल रूप पहचानना संस्कृतानुमिष्ट लोगों के लिये कठिन है। इसलिये इन शब्दों को समास न मानकर केवल धातुिक व्यवस्था का ही मानना ठीक है। जैसे ( अनुसूचक ) शब्द अर्थात् में संस्कृत अनुसूचक का अपभ्रंश है, परंतु अनुसूचक शब्द आज तक माना जा रहा है जिसका प्रयोग केवल प्रत्यय के समास होता है। इसी प्रकार 'पक्षोत्' शब्द ( प्रतिपाद्य ) का अपभ्रंश है, पर इसके एक ही मूल अवयव का पता नहीं चलता।

- ( ब ) कई एक ठेठ हिंदी सामासिक शब्दों में भी उनके अवयव एक दूसरे से ऐसे मिल गये हैं कि उनका पता लगाना कठिन है। उदाहरण के लिये 'होई' एक शब्द है जो अर्थात् में 'होई-होई' है पर उसके 'होई' शब्द का रूप कबल 'होई' रह गया है। इसी प्रकार 'भोगो' शब्द है जो भोगोका का अपभ्रंश है, पर 'भोगो' शब्द 'भोगो' हो गया है। ऐसे शब्दों को सामासिक शब्द मानना ठीक नहीं जान पड़ता।

उदाहरण—हिंदी में सामासिक शब्दों के लिखने की रीति में कहीं कहीं 'होई' शब्दों को सटाकर लिखना चाहिये वे जोरक विन्द ( हार्दक ) से

मिथ्याये जाते हैं और जिन्हें केवल पौबक से मिथ्याता उचित है वे सत्यकर सिद्ध दिये जाते हैं। फिर, जिस सामासिक शब्द को किसी न किसी प्रकार मिथ्याकर सिद्धये की आवश्यकता है, वह अलग अलग सिद्धा जाता है।

[ टी०—हिंदी व्याकरणों में भ्रुत्वदि-प्रकरण बहुत ही संक्षेप रीति से दिया गया है। इसका कारण यह है कि उनमें पुस्तकों के परिमाण के अनुसार इस विषय को स्थान मिला है। अन्त्याम्ब पुस्तकों को छोड़कर हम वहाँ केवल 'प्रवेशिका हिंदी-व्याकरण' के इस विषय के कुछ अंश की परीक्षा करते हैं, क्योंकि इस पुस्तक में यह विषय दूसरी पुस्तकों की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है। स्थानाध्यय के कारण हम इस व्याकरण में दिये गए समासों ही के कुछ उदाहरणों पर विचार करेंगे। तत्पुत्र समास के उदाहरणों में से एक ने 'राम मरना' 'मूँ ( ? ) मरना', 'ध्यान करना', 'काम खाना', इत्यादि कर्तव्य-वाक्यांशों की संमिश्रित किता है, और इनका नियम संभवतः मूँ की 'हिंदी-व्याकरण' से लिखा है। संस्कृत में राशि करण, बन्धीमवन आदि संयुक्त कर्तव्यों को समास मानते हैं, क्योंकि इनमें विभक्ति का लोप और पूरपूर में समांतर हो जाता है, पर हिंदी के पूर्वोक्त कर्तव्य-वाक्यांशों में न विभक्ति का निवृत्त लोप होता है और न समांतर ही पाया जाता है 'काम खाना' को विफल से 'काम में खाना' भी कहते हैं। फिर इन वाक्यांशों के पदों के बीच, समास के नियम के विरुद्ध, अन्त्याम्ब शब्द भी आ जाते हैं, जैसे काम न खाना, ध्यान ही करना, राम भी मरना, इत्यादि। संस्कृत में केवल कृ, मू, आदि दो-तीन वाद्यों से ऐसे नियमित समास बनते हैं, पर हिंदी में ऐसे प्रयोग अनियमित और अपेक्ष हैं। इसके सिवा यदि 'काम करना' को समास मानें तो 'घाये खसना' को भी समास मानना पड़ेगा, क्योंकि 'घाये' के परवात् भी विफल से विभक्ति प्रकृत वा लुप्त रह सकती है। ऐसी अवस्था में उन शब्दों को भी समास मानना होगा जिनमें विभक्ति का लोप रहने पर स्वर्तव्य व्याकरणीय संबंध है। 'प्रवेशिका हिंदी-व्याकरण' में दिए हुए इन कर्तव्यवाक्यांशों को पूर्वोक्त अर्थों से संयुक्त वाद्यों की नहीं मान सकते ( अं०-४१ -६० )। अतएव इन सब उदाहरणों को समास मानना मूल्य है। ]

## सातवीं अध्याय

## पुनरुक्त शब्द

४८१—पुनरुक्त शब्द यौगिक का एक भेद है और इनमें स बहुत से सामासिक भी हैं। इनका विवेचन पुस्तक में पत्र-तत्र बहुत कुछ हो चुका है। श्लोकादि में इनका प्रकार सामासिक शब्दों ही के अगमग है, पर इनकी व्युत्पत्ति में सामासिक शब्दों से बहुत कुछ मिश्रता भी है। अतएव इनके एकत्र और नियमित विवेचन की आवश्यकता है। इन शब्दों का संयोग बहुधा विभक्ति अथवा संबंधी शब्द का लोप करने से नहीं होता।

४८२—पुनरुक्त शब्द तीन प्रकार के हैं—पूर्व पुनरुक्त अपूर्वपुनरुक्त और अनुवर्णवाचक।

४८३—जब कोई एक शब्द एक ही साम अगाधार दो-बार अथवा तीन बार प्रयुक्त होता है तब उन सबको पूर्ण-पुनरुक्त शब्द कहते हैं; जैसे देव-देव, बड़े-बड़े, चढ़ते-चढ़ते जप-जप अथ।

४८४—जब किसी शब्द के साथ कोई समानुपास सार्थक वा निरर्थक शब्द आता है तब वे दोनों शब्द अपूर्ण-पुनरुक्त कहते हैं, जैसे, आस-वास, सामने-सामने, एक मात्र इत्यादि।

४८५—पर्याय की अथवा अथवा, कश्चित् क्वचि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाए जाते हैं उन्हें अनुकरणावाचक शब्द कहाते हैं, जैसे, प्यप्य गगगाहाहट, अरोमा।

## पूर्ण-पुनरुक्त-शब्द

४८६—य शब्द कई प्रकार के हैं। कभी-कभी समूह शब्द की पुनरुक्ति ही से एक शब्द बनता है, और कभी-कभी दोगों शब्दों के बीच में एकत्र अक्षर का आवेश ही आता है।

[ ४८७—पुनरुक्त शब्दों को शयम शब्द के समान् २ लिखकर सूचित करना अशुद्ध है, जैसे, बीरे २, राम २। ]

४८८—संज्ञा की पुनरुक्ति नीचे लिखे अर्थों में होती है—

( १ ) संज्ञा से सूचित होनेवाली वस्तुओं का अक्षय-अश्रय निर्देश—



जैसे, घर-घर खोबत दीन हूँ जन-जन बरिष्ठ जाय । कौड़ी-कौड़ी मास जोड़ी । मेरे रोम-रोम प्रसन्न हो रहे हैं ।

[ ६०—यदि इन पुनरुक्त शब्दों का प्रयोग संज्ञा अथवा विशेषण के समान हो तो इन्हें कर्मधारय और क्रिया-विशेषण के समान ही तो ग्रन्थों में मानना चाहिए । ऊपर के उदाहरणों में 'जन-जन' ( संज्ञा ) 'कौड़ी कौड़ी' विशेषण तथा 'रोम-रोम' ( संज्ञा ) कर्मधारय समास हैं और 'बर-बर' ( क्रि० वि० ) अग्र्यपीमास-समास है ।

( १ ) प्रतिशब्दा—जैसे, बर्तन टुकड़े टुकड़े हो गया, राम-राम कहि राम कहि, उससे मुझे दामे-दाने को कर दिना, हँसी-हँसी में खड़ा हो पड़ी, इत्यादि ।

( २ ) परस्पर-संबंध—भाई-भाई का प्रेम, बहिब-बहिब की बातचीत, मित्र-मित्र का व्यवहार, उठे-उठे बरभाई ।

( ३ ) एकत्रातीवता—जैसे, फूल-फूल अलग रस हो, माहात्म्य-माहात्म्य की वैवहार, लड़के-लड़के पहाँ बैठे हैं ।

( ४ ) मिश्रता—'आदमी-आदमी अंतर', देश-देश के भूपति जाया' बात-बात में घेह है, रंग-रंग के फूल इत्यादि ।

( ५ ) रीति—पाँच-पाँच बहना, छोटे-छोटे जल मरना ( पहले एक बोया, फिर दूसरा बोया और इसी क्रम से आगे ) ।

[ ६१—( १ ) पूर्ण-पुनरुक्त शब्दों के अर्थ ग्रन्थ में विभक्ति का योग होता है, परंतु उसके पूरे दोनों शब्द विहित रूप में आते हैं; जैसे, लड़के लड़के की लड़ाई, फूलों फूलों को अलग रस हो । यह विहित रूप आचार्य शब्दों के दोनों बचनों में और दूसरे शब्दों के अर्थ बहुवचन में होता है ।

( २ ) कमी-कमी विभक्ति का लोप हो जाता है, और विहित रूप केवल प्रथम शब्द में अथवा कमी-कमी दोनों शब्दों में पाया जाता है । जैसे, हाथों-हाथ, रातों-रात, बीबों-बाप, दिनों-दिन, बंगसों-बंगसों, इत्यादि । ]

४१३—सर्पनामों की पुनरुक्ति संज्ञाओं ही के समान होती है । यह विषय सर्पनामों के अर्थानुसार में आ शुभ्र है ।

४१७—विशेषणों की भी पुनर्रक्ति का विचार विशेषणों के अन्वय में हो चुका है। वहाँ मुख्यपदक विशेषणों की पुनर्रक्ति के कुछ विशेष अर्थ सिद्धे जाते हैं—

( १ ) मिथता—जैसे, हरी-हरी पुष्पाती हरी-हरी जगाम में । ' नये नये सुख, बनूँते बनूँते खेळ ।

( २ ) एकत्रातीपता—बड़े बड़े लोगों को हुरसी ही गइ, छोटे छोटे बहके बहका विद्यये गये ।

( ३ ) अतिरूपता—मीठे-मीठे आम, चख्ये-चख्ये कपड़े, लँके-लँके बा, बाड़े-बाड़े केय, नूबे-नूबे पुन सिधे । ( कबीर ) ।

( ४ ) स्पृणता—कीका कीका स्वद, तरकररी कहीं-कहीं बयती है, छोटी छोटी आँखें, हल्पादि ।

४१८—क्रिया की पुनर्रक्ति से नीचे किये अर्थ सूचित होते हैं—

( १ ) हट—मैं यह काम करूँगा, करूँगा और फिर करूँगा । वह भापगा, भापगा और फिर भापगा । तुम आओगे, आओगे और फिर आओगे ।

( २ ) संतव—कथ आँगे आँगे करते हैं, पर आते नहीं । वह गया, गया, न गया न गया । पिछले वाक्य में कुछ शब्दों का अन्वयार्थ भी भाँबा जा सकता है, जैसे, ( जो ) वह गया ( ती ) गया ( और ) न गया ( तो ) न गया ।

( विभिकारण की दृष्टिक से भावर, उठावही, आमह और अनादर सूचित होता है, जैसे, आइये आइये, आइ कियर भूख पड़े । देखो, देखो वह आदमी भाग रहा है । आओ, आओ ।

४१९—सहायक क्रियाओं का काम करनेवाले कर्तव्यों की भी पुनर्रक्ति होती है और इनसे नीचे किये अर्थ पाये जाते हैं—

( १ ) पीवानुम्ब—पसे बह-बहकर आये हैं, बह मेरे पास आ-आकर बैठता है, पर मैं बीज कहकिर्षों छोटी न्योत-न्योत आबगी, मैं तुम्हारा घर पकना पकना पर्वों नद बाबा हैं ।

विशेषण—बूझा-बुझा, पेसा-पेसा, कमाया कसूया, फटा-फटा, चौड़ा  
बकरा भरा-भरा ।

क्रिया—समझना-बुझना, बेना-बेना, कपना-मिडना, सोचना-बाधना,  
सोचना-विचारना ।

अभ्यय—यहाँ-वहाँ, इधर-उधर, जहाँ-तहाँ, दार्द-दार्द, धार-धार, सॉक  
सबैरे, जब ठब, सदा सर्वदा, कैसे-कैसे ।

[ ए०—ऊपर दिए हुए अभ्यय के उदाहरणों में समूचे शब्द का अर्थ  
उसके अभ्ययों के अर्थ से प्रायः मिला है, जैसे, जहाँ-तहाँ=तत्रत्र जब ठब=  
सदा; कैसे-कैसे=किसी न किसी प्रकार । ]

( आ ) एक सार्थक और एक निरर्थक शब्द के मेल से, जिसमें निरर्थक  
शब्द बहुधा सार्थक शब्द का समानुपास रहता है, जैसे,

सुँझाई—टाकनटाक, पड़ताइ, हुइ-हुँइ अइ-अँआइ, गाछी-गाछीइ  
बातचीत, बाक-बाक, भीव-भाइ ।

विशेषण—टैका-मेड़ा सीका-साका, मोका-मोका, डीक-डाक, डीला-वाका,  
उकटा-युकटा ।

क्रिया—देकना-भाकना, बीना-बाता, बीचना-बाँचना, होना-हुवाया,  
पड़ना-ताकना ।

अभ्यय—बीने-बीने, जामने-सामने आस-पास ।

[ ए०—इस समास के विवेचन में ही हुई रीति के अनुसार जो पुनरुक्त  
निरर्थक शब्द बनते हैं उनका भी ऐसा ही उपयोग होता है, जैसे पानी-धानी  
बिछी-रुछी । ]

( इ ) दो निरर्थक शब्दों के मेल से, जो एक दूसरे के समानुपास रहते हैं  
जैसे, सटर-सटर, अट-सट, अयइ-अयइ, डीक-डाम, सटर-पटर, इहा-कहा ।

[ ए०—अपूर्व पुनरुक्त शब्दों का प्रचार बोल-बाल की भाषा में अधिक  
होता है और शिष्ट तथा शिक्षित लोग भी इनका उपयोग करते हैं । उपन्यासों  
तथा नाटकों में बहुधा बोल-बाल की भाषा सिधी बाने के कारण इन शब्दों  
के प्रयोग से एक प्रकार की स्वाभाविकता तथा मुँहरेता आती है । ]

### अनुकरणवाचक शब्द

१०३—अनुकरणवाचक शब्दों का अर्थ यह है कि वह शब्द दिया गया है। ( अं०—१०० ) । यहाँ उनके सब प्रकार के उदाहरण दिये जाये हैं—

( अ ) संज्ञा—बड़-बड़ मक-मक पटपट चीची, गिटपिट, गड़गड़ धमधम, पटपट, बक्यक इत्यादि ।

[ ६०—इह एक छाहट प्रत्ययान्त शब्द भी अनुकरणवाचक है जैसे, गड़गड़हाहट मरमराहट, सनसनाहट, गुबगुबाहट ।

( आ ) विशेषण—कुछ अनुकरणवाचक संज्ञाओं में इया प्रत्यय जोड़ने से अनुकरणवाचक विशेषण बनते हैं; जैसे, गड़गड़िया, कटपटिया, धरधरिया ।

- ( इ ) क्रिया—हिबहिबाबा, सनसनाबा, बकबकना, पटपटाबा, धमधमना, मिममिना, गड़गड़ाबा, बुरबुरना ।

( ई ) क्रियाविशेषण—ये शब्द बहुत प्रचलित हैं—

उद०—धमधम, लड़लड़, पटपट, धमधम, धरधर, मरमर, कपकप, मधमध कड़कड़ सड़सड़ क्वाक्व, भड़भड़, कटाकट, बड़ाबड़, कड़ाकड़ धमाधम ।

१०५—जहाँ तक किम पीयिक शब्दों का विचार किया गया है उनके सिवा एक और प्रकार के शब्द होते हैं जिससे कोई स्पष्ट अर्थ सूचित नहीं होता और जो अविशेषित रूप से व्यवहार में आ सकते हैं । इन शब्दों को अमूर्त शब्द कहते हैं ।

उदा०—रौंर-रौंर-फिस, कड़कड़ीची, कड़कड़ी, अड़-अड़ना, बरोकराक, धाड़कवाड़ ।

[ ६०—ये शब्द भाषा में अनुकरणवाचक शब्दों के अंतर्गत हैं। हल-लिये इनका अलग में मानने की आवश्यकता नहीं है । धूरधुनकड़ और अनुकरणवाचक शब्दों के समान इनका प्रचार भी भाषा में अधिक होता है, पर साहित्यिक भाषा में इनके प्रयोग से एक प्रकार की हीनता पाई जाती है ।

[ टी०—हिंदी में प्रचलित व्याकरणों में पुनरुक्त शब्दों का विवेचन

बहुत कम पाया जाता है। इस कमी का कारण यह जान पड़ता है कि लेखक जोम कदाचित् ऐसे शब्दों को निरे साधारण मानते हैं और इनके आधार पर व्याकरण के ( उच्च ) नियमों को रचना करना आवश्यक समझते हैं। इस उदासीनता का एक कारण यह भी हो सकता है कि वे लेखक इन शब्दों को अपनी मातृभाषा के होने के कारण कदाचित् इतने कठिन न समझते हों कि इनके लिये नियम बनाने की आवश्यकता हो। यो हो, वे शब्द इस प्रकार के नहीं हैं कि व्याकरण में इनका संघर्ष और विचार न किया जाय। पुनरुक्त शब्द हिंदी भाषा की एक विशेषता है और यह विशेषता भरतलाल की कुतरी आर्य भाषाओं में भी पाई जाती है। हमने इन शब्दों का का विवेचन किया है उसमें अपूर्यता, अर्धमति आदि दोष संभव हैं; तो भी यह आवश्यक कहा जा सकता है कि इस पुस्तक में इनका पूर्ण विवेचन करने की चेष्टा की गई है और यह हिंदी की अन्य व्याकरण पुस्तकों में नहीं पाई जाती।

पुनरुक्त शब्दों के संबंध में यह संदेह हो सकता है कि जब यह एक पुनरुक्त शब्द सामासिक शब्द भी है तब उनका अक्षय वर्ग मानने की क्या आवश्यकता है। इस शंका का समाधान इती अण्पाय के आदि में किया गया है। इस विषय में यहाँ पर इतना और लिखा जाता है कि सभी पुनरुक्त शब्द सामासिक नहीं हैं, इतलिय इनका अक्षय वर्ग मानने की आवश्यकता है।



# तीसरा भाग

## वाक्य-विन्यास ।

पहला परिच्छेद ।

वाक्य-रचना ।

पहला अध्याय ।

प्रस्तावना ।

५०६—व्याकरण का मुख्य उद्देश्य वाक्यार्थ का स्पष्टीकरण है और इस स्पष्टीकरण के लिये वाक्य के अक्षरों का केवल रूपांतर और प्रयोग ही नहीं किन्तु उनका परस्पर-संबंध भी जानना आवश्यक है । वह विषय व्याकरण के इस भाग में आता है जिसे वाक्य-विन्यास कहते हैं । वाक्य-विन्यास में शब्दों का उनके परस्पर संबंध के अनुसार व्यवस्था रखने की और उनसे वाक्य बनाने की रीति का भी बयान किया जाता है ।

वाक्य का अर्थ पहले लिखा जा चुका है । ( अ०—८३ ) ।

( क ) अर्थ के अनुसार वाक्य आठ प्रकार के होते हैं—

( १ ) विधानार्थक—जिससे किसी बात का होना पाया जाय, जैसे, ईश्वर पहले एक गाँव था । मनुष्य अन्न खाता है ।

( २ ) निषेधवाचक—जो किसी विषय का अभाव सूचित करता है, जैसे बिना पानी के कोई जीववारी नहीं जो सकता । आपका जाना उचित नहीं है ।

( ३ ) आश्चर्यार्थक—जिससे आश्चर्य व्यक्त हो या उपदेश का अर्थ सूचित होता है, जैसे वहाँ आओ । वहाँ मत जाना । माता पिता का कहना माओ ।

( ४ ) प्रश्नार्थक—जिससे प्रश्न का बोध होता है, जैसे यह कहना कौन है ? यह काम कैसे किया जायगा ?

- ( ५ ) विस्मयादिबोधक—जो आश्चर्य, विस्मय, आदि भाव बतलाता है; जैसे, वह कैसा मूर्ख है ! वैं ! अंय बज गया !
- ( ६ ) इच्छाबोधक—जिससे इच्छा वा आशीष सूचित होती है, जैसे, ईश्वर सबका भला करे । तुम्हारी बकती हो ।
- ( ७ ) संवेहसूचक—जो संवेह वा संभावना प्रकट करता है, यथा, शाबद भाव पायी बरसे । यह काम उस बच्चे ने किया होगा । गाड़ी आती होगी ।
- ( ८ ) संकेतार्थ—जिससे संकेत अर्थात् दर्श पाई जाती है, आप बने तो मैं बाऊँ । पानी न बरसता तो बाव सूख जाता ।

२००—वाक्य में शब्दों का परस्पर ठीक-ठीक संबंध जानने के लिये उनका एक दूसरे से अन्वय, एक दूसरे पर उनका अधिकार और उनका क्रम जानने की आवश्यकता होती है; इसलिये वाक्य विन्यास में इन तीनों विषयों का विचार किया जाता है ।

( क ) दो शब्दों में लिंग, वचन, पुंस्य, कारक अथवा क्रम की जो समावृत्ता रहती है उसे अन्वय कहते हैं; जैसे, धीरा बच्चा रोता है । इस में 'धीरा' शब्द का 'बच्चा' शब्द से लिंग और वचन का अन्वय है; और 'रोता है' शब्द 'बच्चा' शब्द से लिंग, वचन और पुंस्य में अन्वित है ।

( ख ) अधिकार उस संबंध की करते हैं जिसके कारण किसी एक शब्द के प्रयोग से दूसरी संज्ञा वा सर्वनाम किसी किरीप कारक में आता है; जैसे, बच्चा बंदर से डरता है । इस वाक्य में डरना क्रिया के योग से 'बंदर' शब्द अपादान कारक में आता है ।

( ग ) शब्दों को उनके अर्थ और संबंध की प्रधानता के अनुसार, वाक्य में यथा-स्थान रखना क्रम कहलाता है ।

२०१—इस पुस्तक में अन्वय, अधिकार और क्रम के निबन्ध अलग-अलग स्थानों में का पूरा प्रयत्न नहीं किया गया है, क्योंकि ऐसा करने से अत्यन्त शब्द-मैत्र के विषय में कई बार विचार करना पड़ता और इन विषयों के अलग-अलग विषय करने में कठिनाई होती है । इसलिये अधिकांश शब्द-मैत्री की

वाक्य विन्यास संबंधी प्रायः सभी बातें एक शब्द मेर के साथ एक ही स्थान में लिखी गई हैं ।

५०८—वाक्य में शब्दों का परस्पर संबंध दो रीतियों से बतझाया जा सकता है—( १ ) शब्दों को उनके अर्थ और प्रयोग के अनुसार मिखाकर वाक्य बनाने से और ( २ ) वाक्य के अवयवों को उनके अर्थ और प्रयोग के अनुसार अवयव-अवयव करने से । पहली रीति को वाक्य-रचना और दूसरी रीति को वाक्य-पुनर्रचना कहते हैं । यह पिछली रीति हिंदी में अंगरेजी से आई है, और वाक्य के अर्थ बोध में इससे बहुत सहायता मिलती है । ( इस पुस्तक में दोनों रीतियों का बर्चन किया जायगा ।

५०९—वाक्य में मुख्य दो शब्द होते हैं—( १ ) उद्देश्य और ( २ ) वाक्य में जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले शब्द को उद्देश्य कहते हैं और उद्देश्य के विषय में विधान करने वाला शब्द विधेय कहलाता है । उदा०—'पानी गिरा ।' इस वाक्य में 'पानी' शब्द उद्देश्य और 'गिरा' विधेय है । जब वाक्य में दो ही शब्द रहते हैं तब उद्देश्य में संज्ञा अथवा सर्वनाम और विधेय में क्रिया आती है । उद्देश्य की रक्षा बहुत ही कठोर रहती है और क्रिया सिद्धी एक वाच्य, पुरुष, किंग, वचन, वाच्य, अर्थ और प्रयोग में आती है । यदि क्रिया सार्थक हो तो इसके साथ कर्म भी आता; जैसे कर्कश चिड़ खींचता है । इस वाक्य में चिड़ कर्म है । वाक्य के और भी कई होते हैं पर वे सब मुख्य दोनों शब्दों के आश्रित रहते हैं । बिना इन दोनों अवयवों ( अर्थात् उद्देश्य और विधेय ) के वाक्य नहीं बन सकता और प्रत्येक वाक्य में एक संज्ञा और एक क्रिया अवश्य रहती है ।

[ उ०—उद्देश्य और विधेय का विशेष विवेचन इसी भाग के दूसरे परिच्छेद में किया जायगा । ]

दूसरा अध्याय ।

कारकों के अर्थ और प्रयोग ।

५१०—संज्ञाओं ( सबवाकों ) का दूसरे शब्दों के साथ, ठीक-ठीक संबंध



जानम के लिए उनके कारकों के मित्र-मित्र अर्थ और प्रयोग जानना आवश्यक है ।

### ( १ ) कर्ता-कारक ।

५११—हिंदी में कर्ता-कारक के दो रूप हैं—( १ ) अपत्यय ( प्रथम ), ( २ ) समत्यय ( अप्रथम ) ।

अपत्यय कर्ता-कारक नीचे लिखे अर्थों में आता है—

( क ) मातिपदिक के अर्थ में ( किसी वस्तु के बख्शेज मात्र में ); जैसे, पुण्य, पाप अक्षय, वेद, अस्त्रंग अगज ।

[ सू०—शब्द-श्रेणों और शेषों के शीपकों में संज्ञार्थे इसी रूप में आती हैं । इस पुस्तक में अलग अलग अक्षरों और शब्दों के वा उदाहरण दिए गए हैं वे सब इसी अर्थ में कर्ता-कारक हैं । ]

( ख ) बहुरथ में—पानी गिरा, नीकर काम पर भेजा जायगा; हम तुम्हें बुझाते हैं ।

( ग ) उद्घ्य पृति में—बोका एक जामघर है मंत्री राजा हो गया; साहू खोर निकला सिपाही सेनापति बनाया गया ।

( घ ) स्वतंत्र कर्ता के अर्थ में—इस मगबती की कृपा से सब धितार्थे दूर होकर बुद्धि-निर्मल हुई ( शिब० ), रात बीतकर आस्मान के किनारों पर काशी वीर आई थी ( गुटका ), इससे आहार पचकर अन्न बनकर हो जाता है ( शुक ) कोपला बल भई राख नी यजकर दस मिन्न हुए हैं, हमारे मित्र जो काली में रहते हैं, उनके अर्थ का विवाह है मामला अदागत के सामने पेश हीकर कई आवसी इच्छाम में पकने गये ( सर० ) ।

[ सू०—जिस लंहा वा लबनाम का वाक्य के किसी शब्द से संबंध नहीं रहता, अथवा जो केवल पूर्वअधिक अथवा अपूर्ण क्रियावाचक कर्तृत्वं से संबंध रखता है और कर्ताकारक में आता है उसे स्वतंत्र कर्ता कहते हैं । हिंदी में इस स्वतंत्र कर्ता का प्रयोग अधिक नहीं होता । कभी कभी क्रियाचक लंहा के लाम भी स्वतंत्र कर्ता आता है; जैसे, मालने पर गुबरातवालों का अधिकार होना सिद्ध है । ( सर० ) । ]

( क ) स्वतंत्र उदरपत्ति में—संगी का राजा होना सबसे सुरा खाता, खड़े का हथी बनना डीक नहीं है ।

५११—बुद्ध कावकाचक संज्ञार्थे बहुवचन के विद्वत् रूप में ही कर्ता करक में धाती है; जैसे मुझे परदेय में बरसों बीठ गये, इस काम में महीनों लगते हैं ।

५१२—नहाना क्षीक्या, खांसया आदि कुछ शरीर-व्यापार-सूचक क्रियाओं के मूलकाण्डिक कर्तृत्व से बने हुए कावों को श्लोक शेष अकर्मक क्रियाओं के और बक्या, मूखगा, आदि कई एक सकर्मक क्रियाओं के साथ कावों में अत्यय कर्ता-करक धाता है । उदा०—मैं जाता हूँ, छाड़का थाया, स्त्री सौती थी, वह कुछ नहीं बोका । ( संयुक्त क्रियाओं के साथ इस करक के प्रयोग के लिए १३५वाँ अंक देखो । )

५१३—सप्रत्यय कर्ता-करक वाक्य में केवल उदरपत्ति ही के अर्थ में धाता है; जैसे लड़के से चिट्ठी लिखी, मैंने मौऊर को बुझाया, हमने धरती बहाया है ।

५१४—बोखना, पूखना बकना, जाना, समझना, बनना, आदि सकर्मक क्रियाओं को श्लोक शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना क्षीक्या, खांसया, आदि अकर्मक क्रियाओं के मूलकाण्डिक कर्तृत्व से बने हुए कावों के साथ सप्रत्यय कर्ता-करक धाता है; जैसे, तुमसे क्यों झीका, रामी से ब्राह्मण को बचिया ही, मौऊर से बीस मछा होगा, यदि मैंने उसे देखा होता तो मैं उसे अवरय हुआता ।

५१५—सप्रत्यय कर्ता करक केवल नीचे लिखी संयुक्त सकर्मक क्रियाओं के मूलकाण्डिक कर्तृत्व से बने हुए कावों के साथ धाती है—

( क ) अनुमति-बोचक—उसने मुझे बोखने व दिया और व वहाँ रहने दिया ।

( ख ) इच्छा-बोचक—इसने उसे देखा ( देखना ) जाहा राजा ने क्या खेपा जाहा ।

( ग ) अचक्य-बोचक—( विद्वत् से ) जब वह पूर्वकाण्डिक कर्तृत्व के

योग से बनती है। जैसे, मैंने उससे यह बात न कह पाई ( अथवा ) मैं उससे यह बात न कह पाया । ( अ०—११० ) ।

( घ ) अथवा अथवा बोधक—जब उसका उत्तरार्थ सकर्मक होता है; जैसे, अड़के ने पाठ पढ़ लिया, उसने अपने साथी को मार दिया मौकर ने बिट्टी फाड़ बाँधी, हमने सो लिया इत्यादि ।

५१०—प्राचीन हिंदी के पद्य में और बहुधा पद्य में भी सप्रत्यय कर्ता-कारक का प्रयोग बहुत कम मिलता है; जैसे 'सीताहि चितै कही प्रमु बाठा', 'सुम्नासियन मेर बिल हें सब धन काहि खिबो' ( राज० ) ।

## ( २ ) कर्म-कारक ।

५१८—कर्म-कारक का प्रयोग सकर्मक क्रिया के साथ होता है और कर्ता-कारक के समान यह दो रूपों में आता है—( १ ) अप्रत्यय ( २ ) सप्रत्यय ।

अप्रत्यय कर्म-कारक से बहुधा नीचे किले धर्म सूचित होते हैं—

( क ) मुख्य कर्ता—राजा ने ब्राह्मण को धन दिया, गुरु शिष्य को शक्ति पकाया है नर ने लोगों को खेत दिखाया ।

( ख ) कर्म-वृत्ति—अहहवा ये गंगाधर को स्वीयाव बनाया मैंने चोर को छाधु समझ लिया, राजा ब्राह्मण को गुरु मानता है ।

( ग ) सजातीय कर्म [ बहुधा अकर्मक क्रियाओं के साथ ]—सिपाही कई छद्माहुर्यों अथवा सोधी सुख-निद्रिया, प्यारे बहन' ( नील ), किसान ने चोर की शूब मार मारी, वही यह माध बाचते हैं । ( विविध ) ।

( घ ) अपरिचित या अनिश्चित कर्म—मैंने शेर देखा है, पानी छापी, लड़का बिट्टी लिपटा है, हम एक मौकर बाँजते हैं ।

५१९—नामबोधक संयुक्त सकर्मक क्रियाओं का सहकारी शब्द अप्रत्यय कर्मकारक में आता है; जैसे स्वीकार करना, माया करना, त्याग करना दिखाई देना, सुमार्ह देना ।

५२०—सप्रत्यय कर्मकारक बहुधा नीचे किले धर्मों में आता है—

( क ) निश्चित कर्म में—चोर ने लड़के को मारा, हमने शेर को रीजा

है, बड़का सिद्धी को पढ़ता है, माखिऊ ने नीकर को निष्कास दिया, सित्र को बनायो।

(घ) व्यक्तिवाचक अधिकारवाचक तथा संबंध-वाचक कर्म में; जैसे हम मोहन को जानते हैं राजा ने ब्राह्मण को दया, बाबू गाँव के मुखिया को खोजते व महाजन ने अपने भाई को अलग कर दिया, गुरु शिष्य को बुझावेंगे।

(ग) मनुष्यवाचक सार्वभौमिक कर्म में—राजा ने दसों दिया सिपाही तुमको पकड़ खगा, बड़का किसी को वेपता है, धाय किसको खोजते हैं ?

(ङ) कर्मता, वचना, सम्यक्ता मानता इत्यादि धार्य क्रियाओं का कर्म जब दसके साथ कर्म-वृत्ति आती है, जैसे ईश्वर राई को पर्यंत करता है; बड़क्या व गंगाधर को शीमान बनाया।

(च) कर्मवाच्य के भावे प्रयोग के उद्देश्य में—छिर उम्हें एक बजुमूरक चार पर कियबा जाठा (सर०) मारत क प्रशान में बाबक कृष्णमूर्ति को बसका सिर चार मिसैज एनी बिदेष्ट को उसका संरचक बनाया गया है। (मार्गी०), कमी कमी डाक्टर कैलास बाबू का ठा समा की ओर से निर्मित किया जाया कर (शिब०)। (अ०—१९८)

५११—जिन विशेषणों का प्रयोग संज्ञा के समान होता है उनमें सप्रत्यय कर्मकारक आता है, जैसे वीन को मल सताया, अनायी को पात्रो घन वाले को सब चाहते हैं।

५१२—जब वाक्य में अपादान, संबंध अथवा अधिकार्य-कारक की विवका नहीं होती, तब उभय पदक कर्म-कारक आता है; जैसे, मैं माय बुहता हूँ (अर्थात् माय से पूब), पाखी परीतो (अर्थात् पाखी में भीजन) नीकर कोटा खोजेगा (अर्थात् कोटे के बिना)।

५१३—बुझावा, बुझरना बोसना, मुझना, जगना आदि इतु क चीर धौगिक क्रियाओं के साथ समग्रय कर्मकारक आता है; जैसे बह कुच को बुझाता है; एनी बरखे को मुझाठी थी, नीकर न मालिक को जगाया।

५१४—‘मारता के साथ कर्मकारक के दोनों रूपों का प्रयोग होता है, पर उनक कर्म में बहुत अंतर पद आता है; जैसे, चोर ने लडुका मारा चोर ने लडुके को मारा चोर ने लडुके को पत्थर मारा।

योग से घबरी है; जैसे, मैंने उससे यह बात न कह पाई ( अथवा ) मैं उससे यह बात न कह पाया । ( अ०—१३० ) ।

( घ ) अथपारथ बोधक—जब उसपर उत्तरार्थ सकर्मक होता है, जैसे, अणके ने पाठ पढ़ लिया, उसने अपने साथी को मार दिया नीकर ये चिट्ठी फाड़ बाँधी, हमने सी लिखा इत्यादि ।

५१०—प्राचीन हिंदी के पद्य में और बहुधा गद्य में भी सप्रत्यय कर्ता-कारक का प्रयोग बहुत कम मिलता है; जैसे 'सीतहि चिठि कही प्रभु बाता', 'संन्यासियन मरे बिछ तें सब धन क्यदि कियो' ( राज० ) ।

## ( २ ) कर्म-कारक ।

५१८—कर्म-कारक का प्रयोग सकर्मक क्रिया के साथ होता है और कर्ता-कारक के समान वह दो रूपों में आता है—( १ ) अप्रत्यय ( २ ) सप्रत्यय ।

अप्रत्यय कर्म-कारक से बहुधा नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

( क ) मुख्य कर्म—राजा ने ब्राह्मण को धन दिया, गुह शिष्य को पण्डित फटाहा है नर ने लोभों को खेला दिखाया ।

( ख ) कर्म-वृत्ति—अहम्ना ने गंगाधर को वीर्यम बनाया, मैंने चोर को लामु समझ लिया राजा ब्राह्मण को गुरु मानता है ।

( ग ) सहायी कर्म [ बहुधा अकर्मक क्रियाओं के साथ ]—सिपाही कई लड़ाइयों कवा, सोभो सुख-निदिया, प्यारे अजन ( बीड० ), किसान ने चोर को जूब मार मारी, बड़ी बड़ माख बाचते हैं । ( विचित्र० ) ।

( घ ) अपरिचित वा अविश्रित कर्म—मैंने शेर देखा है, पानी बामो, बड़का चिट्ठी लिखता है, हम एक नौकर खोजते हैं ।

५१९—धामबोधक संयुक्त सकर्मक क्रियाओं का सहकारी लब्ध अप्रत्यय कर्मकारक में आता है; जैसे स्वीकार करना, नाश करना, त्याग करना दिखाई देना सुनाई देना ।

५२०—सप्रत्यय कर्मकारक बहुधा नीचे लिखे अर्थों में आता है—

( क ) निश्चित कर्म में—चोर ने लड़के को मारा, हमने शेर को देखा

है, अथवा सिद्धी को पढ़ता है, मासिक ने गौकर को निम्नक दिया चित्र को बनायो।

(घ) व्यक्तिवाचक अधिकारवाचक तथा संबंध-वाचक कर्म में, जैसे हम मोहन को जानते हैं राजा ने द्राक्षण को देखा, बाबू गाँव के मुखिया को खोजते थे, महाजन ने अपने भाई को अलग कर दिया, गुरु शिष्य को बुलायेंगे।

(ग) अनुप्यवाचक सांबन्धामिक कर्म में—राजा ने इसे दिया सिपाही तुमको पकड़ अगा अथवा किसी को देखता है, आप किसको जानते हैं ?

(घ) कर्मा, बनवा, समझना, मानना इत्यादि अपूर्ण क्रियाओं का कर्म जब इससे साथ कर्म-पूर्ति आती है जैसे ईश्वर राई को पर्वत करता है, अथवा वे रागाधर को बीवान बनाया।

(ङ) कर्मवाचक क भावे प्रयोग के अर्थ में—फिर उन्हें एक बहुमुख्य चार पर छिपया जाता ( सर ) भारत के प्रदर्शन में पाण्डव कुप्यमूर्ति को उसका सिर धार निसैज एबी विसेण्ट को उसका संरक्षक बनाया गया है। ( बागरी ), कर्मा कमी वास्तर कैसास बाबू को ता समा की ओर से निर्मित किया जाया कर ( शिव )। ( ई०—१९८ )

५११—जिन विशेषों का प्रयोग संज्ञा के समान होता है उनमें समाप्य कर्मकारक आता है, जैसे, दीम को नल सतायो, यनायो को पाओ धन वाले को सब चाहते हैं।

५१२—अब वाच्य में अपादान, संबंध अथवा अधिकार-कारक की विवधा नहीं होती, तब उनसे बहुत कर्म-कारक आता है; जैसे, मैं गाय बुढ़ता हूँ ( अर्थात् गाय से हूँ ), पाओ परोसो ( अर्थात् पाओ में भोजन ) धीकर कोठ खोखेगा ( अर्थात् कोठे के टिकाइ )।

५१३—बुझाना, सुझाना, जोसना, सुझाना, अगाता आदि कुछ रूप धीर बौगिक क्रियाओं के साथ समाप्य कर्मकारक आता है। जैसे वह कुचे को बुझाता है; स्त्री वृत्त को सुझाती थी, गौकर ने मासिक को जगाया।

५१४—'जाना के साथ कर्मकारक के दोनों रूपों का प्रयोग होता है, पर उनसे अर्थ में बहुत अंतर पड़ जाता है; जैसे, चोर ने लड्डुका मारा, चोर ने लड्डुके को मारा चोर ने लड्डुके को पत्थर मारा।

५२५—निर्मिषत कावचाचङ्क संज्ञा में और गतिवाचङ्क क्रिया के साथ बहुधा अधिकरण के अर्थ में साम्प्रत्य कर्म कारक आता है, जैसे, रात को पानी गिरा, सोमवार को समा होगी, हम दो पहर को घर में थे, राम बग को गये, हस्तिनापुर को बहिये, वह कचहरी को नहीं आया ।

[ ए०—कमी-कमी इस अर्थ में कर्म-कारक की विभक्ति का लोप भी हो जाता है जैसे, हम घर गये, वह गाँव में रात रहा, रात बर्ष खूब वर्षा हुई, इसी से हम तुमको स्वर्ग में भेजेंगे ( सत्व० ) । ]

५२६—कविता में कपर किले नियमों का बहुधा व्यतिक्रम हो जाता है। जैसे, नाराय वैसा बिकल जयन्ता, जगत बनायो कैहि सकल सो हरि बाप्यो नाहि । ( सत ) किन्तु कभी इस भाग्य नहीं सुख को पाता है ( सर ) ।

### ( ३ ) करण-कारक ।

५२७—कारण-कारक से भीषे किले अर्थ पाये जाते हैं—

( क ) करण अर्थात् साधन—माक से घाँस खेते हैं, पैरों से चढ़ते हैं, शिकारी ने शेर की बँतूक से मारा ।

( ख ) कारण—आपके बर्तन से काम हुआ, घन से प्रतिष्ठा करती है, वह किसी पाप से अज्ञपर हुआ था ।

[ ए०—इस अर्थ में कारण, हेतु, इच्छा विचार आदि शब्द भी करण कारक में आते हैं जैसे, इस कारण से, इस हेतु से । ]

( ग ) रीति—जबके क्रम से बँडे हैं मेरी बात ध्यान से सुनो, उसने लक्ष्मी और श्रेष्ठ से दृष्टि की, बीकर धीरज से काम करता है ।

[ ए —( १ ) इस अर्थ में बहुधा रीति, प्रकार, विधि, मोति, तरह, आदि शब्द करण-कारक में आते हैं । ( २ ) अनुकरणवाचक शब्दों में इस कारक के योग से क्रियाविशेषण बनते हैं जैसे, जम से, फल से, बहाम से । ]

( घ ) साहित्य—विवाह धूम से हुआ, काम खाने से काम का पैदा गिमाने से, सर्वसंमति से विरचय हुआ, [सबसां रापो प्रेम, उनसे मेरा संबंध है] श्री से रोरी जाना, हम यह बात धर्म से कहते हैं ।

( ४ ) विकार—हम क्या से क्या हो गये, वह आत्मी शूद्र से  
वसिय बन गया मनुष्य बालक से बृज होता है ।

( ५ ) क्या—शरीर से बड़ा-बड़ा, स्वभाव से छोपी, हृदय से  
बयालु ।

[ ६०—इस अर्थ में करण-कारक का प्रयोग बहुधा विशेष्य के साथ  
होता है । ]

( ६ ) मात्र धीर पकड़ा—तेहूँ किस भाय से विकटा है तुमने  
प्यास किस हिस्ताय से किया ने अनात्र से भी बढ़ाते हैं ।

( ७ ) कर्मबाध्य, भावबाध्य धीर मेरप्यार्थक क्रियाओं का कर्ता—मुझसे  
बड़ा नहीं जाता, यह काम किसी से न किया जायगा, राम ने प्राणाय से  
बस करवाया दासी से धीर कोई उपाम न बन पड़ा ।

५१८—कड़वा पूजना बोधना इत्यादि प्रार्थना करना बात करना  
आदि क्रियाओं के साथ गौरव कर्म के अर्थ में करण-कारक आता है। जैसे,  
दासी ने दासी से सब हाक कड़ा मीने ठससे बर्बाई का कारण पूजा हम  
आप से इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं, सापी बीच दुग्दारे मुझ से बस तब  
अनुचित बरुते हैं ( हि० प्र० ) ।

[ ६१—कठाना क्रिया के साथ विकल्प से करण अथवा संपदान कारक  
आता है; जैसे, मैं तुमसे ( तुमसे ) यह मेद बताता हूँ । ]

५१९—प्राचीन कविता में इस क्रियाओं के साथ बहुधा संपदान-कारक  
आता है; जैसे मोकहूँ कहा कहर तयुना ( राम० ) परशुर्हि बंद  
बराई ( अम )

५२०—करण-कारक की विभक्ति का बोध हो जाने के कारण बस  
मथोसे बहारे, हारा, काय, विमित्त, आदि शब्दों का प्रयोग सर्वत्र सूचक-  
प्रत्यय के समान होता है ( अ० —२३४ ) जैसे बकका पेड़ के सहारे  
कहा है हाक के द्वारा, बर्न के कारण ।

५२१—भूख, प्यास, आका, हाय आँख, आन, आदि शब्द इस करक  
में बहुधा बहुवचन में आते हैं धीर इनके परचाय विभक्ति का बोध हो जाता  
है; जैसे मूखों मरना आड़ों मरना, मीने नीकर के हाथों बरपा भेजा, न  
आँखों देका, न कानों सुना ।



## ( ४ ) संप्रदान-कारक

५३२—संप्रदान-कारक नीचे छिद्ये अर्थों में आता है—

( क ) द्विकर्मक क्रिया के गौण कर्म में—राजा ने ब्राह्मण को भज दिया, गुरु शिष्य को स्थावरस्य सिखाता है, छोरों को मीठा पाणी न पिखावा चाहिये, सीपि गये मोहिं छुबर पाती ।

( ख ) अपूर्ण सकर्मक क्रिया के मुख्य कर्म में ब्रह्मन्वा ने गंगाधर को दीक्षान बसावा में खोर को साधु समझ, राम गोविंद को अपना भाई बताता है, वे तुम्हें मूर्ख कहते हैं, हम जीव को ईश्वर नहीं मानते, नृपति वास, वासहिं नृपति ।

[ ६०—'कहना' क्रिया' कमी द्विकर्मक और कमी अपूर्ण सकर्मक होती है, और दोनों अर्थों में, और द्विकर्मक क्रियाओं के समान, इसके दो कर्म होते हैं, जैसे, मैं तुमसे समाचार कहता हूँ, और मैं तुमसे ( तुमको ) मार कहता हूँ । हम दोनों अर्थों में इस क्रिया के साथ वहाँ संप्रदान-कारक आता है वहाँ कमी-कमी विकल्प से करण-कारक भी आता है, वीरा ऊपर के उदाहरणों में आया है । इस क्रिया के पिछले अर्थ क दोनों प्रयोगों का एक उदाहरण यह है—वैपता लें धुर और असुर रहे वानस लें, बारं को सुबाव, दास पैलिये कहत है । ]

( ग ) फल का निमित्त—ईश्वर ने सुमित्रे को दो काम दिये हैं बचके सीर को गये, राजा जोगा इसे शोभा के छिय पाखते हैं, वह धन को शिष्य मारा जाता है, हम अमी आक्रम के दृश्यां को जाते हैं, अन्धक विहान् होने को बिधा पढ़ता है ।

[ ६०—फल का निमित्त के अर्थ में बहुधा क्रियार्थक सहा के संप्रदान कारक का प्रयोग होता है, जैसे, या रहे हैं वीरु लड़ने के छिये ( हित० ), मुझे कही रहने को ठीर बताहये ( प्रेम० ), तुम क्या मारने को जाये हो ( चंद्र० ) । 'होना' क्रिया के साथ क्रियायक सहा का संप्रदान-कारक कर्मता अथवा शेष का अर्थ सूचित करता है, जैसे, गाड़ी आने को है, पठव अछने को दुरं, अमी बहुत काम होने को है । ]

( घ ) प्राप्ति—मुझे बहुत काम रहता है, उसे भरपूर बाहर मिया है, लड़के को गाना आता है, पिछवा मुझे व आता ( सर० )

( ८ ) विभिन्न वा मूल्य—इसको तुम एक, अपने तुम्हें हम जैसे को  
 ऐसा मित्रे यह पुस्तक बार छाने को मित्रता है ।

[ सू०—मूल्य के अर्थ में विक्रय से अधिकतर प्रकार की आता है, जैसे  
 यह पुस्तक बार छाने में मिलती है । अं — १४४-५-६ ]

( ९ ) मनोविकार—इसको वेद की मूल्य न रही तुमदि न सोच  
 सोहाग बज, कदशाकर को कस्या कष्ट आता । इस बात में किसी को  
 शोक न होगी ।

( १० ) प्रयोग—मुझे उनसे कुछ नहीं कहना है इसको इसमें इतना  
 काम नहीं, तुमको इसमें क्या करना है ?

( ११ ) कथम्य धारणकृता धीर योग्यता—मुझे बर्हो जाना चाहिये, यह  
 बात तुमको कब योग्य है ( शकु० ) ऐसा करना मनुष्य को उचित नहीं  
 है उनको बर्हो जाना या ।

( १२ ) धारणारण्य के अर्थ मुख्य क्रिया की क्रियार्थक संज्ञा के अर्थ  
 संप्रदाय-कारक आता है; जैसे जाने को तो मैं जा सकता हूँ, सिखने को तो  
 यह सिद्धि अर्थात् किसी आयोगी ।

२३३—सर्वत्र के अर्थ में कोई-कोई अल्पक संवदान-कारक का प्रयोग  
 करते हैं; जैसे राजा को भी पुत्र से ( मुद्रा० ) अमन्त्रिण को पराक्रम हुए  
 ( सत्य० ) । इस प्रकार की रचना बहुधा कायी और विहार के अर्थक अर्थ  
 है और भारतेंदु की इसके अर्थक अर्थ पढ़ते हैं । मराठी में इस रचना का  
 बहुत प्रचार है जैसे त्याखा होन पाठ आते हैं । हिंदी में यह रचना इसविध  
 अर्थक है कि इसका प्रयोग न तो पुरानी भाषा में पाया जाता है और न  
 आधुनिक मित्र अर्थक ही इसका अनुमोदन करते हैं । इस रचना के अर्थके हिंदी  
 में स्वर्तत्र सर्वत्र-कारक आता है, जैसे

एक बार मूल्य अर्थ नहीं । अर्थ अर्थानि मोरे सुव नहीं ।  
 ( राम० ) ।

मनुष्य शक नरैय के इतने अर्थ अर्थ । ( अर्थ० ) ।

बादे साहुकार के अर्थान हो बादे न ही ( शकु० ) ।

इस अर्थ में उनके एक अर्थकी और एक अर्थकी भी हो गया  
 ( मुद्रा० ) ।

इस समय हमको केवल एक कन्वा है ( हि० को ) ।

५३४—बीजे बिले शब्दों के योग से बहुधा संप्रदान-कारक आता है—

( क ) बगना, रुचना, मिचाना, विखाना, भासना, आना, पचना, होना आदि अकर्मक क्रियाएँ; जैसे, क्या तुमको बुरा लगा, मुझे खयाँ नहीं भाती, इसमें ऐसा दिखता है, राजा को संख्य पदा, तुमको क्या हुआ है, मोहिं न बहुत प्रपंच सुहाही ( राम० ) ।

( ख ) प्रथम अमरकार, अन्य अन्यवाच, बचाई, विकर, आदि संज्ञाएँ; जैसे, गुरु को प्रथम है, जगदीश्वर को अन्य है इस कृपा के बिये आपको अन्यवाच है; तुझसी, ऐसे पतित को बार बार विकर । संस्कृत बदा०—श्रीगणेशाय नमः ।

( ग ) चाहिये, उचित योग्य आवश्यक सहज, कठिन, आदि विशेष्य, जैसे, अंतर्गु उचित नृपहिं वनवासु मुझे उपदेश नहीं चाहिये, मेरे मित्र को कुछ घब आवश्यक है, सर्वाहिं सुखम ।

५३५—बीजे बिली संयुक्त क्रियाओं के साथ उद्देश्य बहुधा संप्रदान कारक में आता है—

( क ) आवश्यकता-बोधक क्रियाएँ—जैसे, मुझे नहीं जाना पदा, तुमको यह काम करना होगा, जैसे ऐसा नहीं करना था ।

[ सू०—यदि इन क्रियाओं का उद्देश्य अप्रायश्चित्तक हो, तो यह काम त्यज कर्ता कारक में आता है; जैसे, घंटा बजना चाहिये, अमी बहुत काम होना है । थिठी मेनी जानी थी । ]

( ख ) पचना और आना के योग से बनी हुईं कुछ अवधारणबोधक क्रियाएँ—जैसे बहिन, तुम्हें भी देख पड़ेगी वे सब बातें आगे ( सर ) रोगी को लक्ष न सुन पदा, उसकी दया देखकर मुझे रोना आता ।

( ग ) देना अथवा पचना के योग से बनी हुईं आम-बोधक क्रियाएँ—जैसे, मुझे शब्द सुनाई पदा, जैसे रात को दिखाई नहीं देता ।

( ४ ) काष्ठ धीर वयस—एक समय की बात, दो हजार वर्ष का इतिहास, दस बरस की लड़की, साः महीने का बच्चा, चार दिन की चिट्ठी ।

( ५ ) अमर्द किंवा जाति—असाह का महीना, लन्दन का पेड़, कर्म की कौंस, बंदन की लकड़ी, प्लेग की बीमारी, क्या सौ रुपये की रूखी, क्या एक बेटे की संतान, जय की ध्वनि 'मारो-मारो' का शब्द, जाति का शूद्र, बलपुर का राज्य, दिल्ली का शहर ।

( ६ ) समस्तता—इस अर्थ में किसी एक शब्द के संबंध कारक के परभाव उसी शब्द की पुनरुक्ति करते हैं जैसे, ग ब का गाँव, घर का घर, मुहब्बा, कोय का कोय । 'यह वास्तिक, सारा का सारा, पचात्मक है' ( सर० ) ।

( ७ ) अधिकार—इस अर्थ में भी ऊपर की तरह रचना होती है; जैसे, मूर्ख का मूर्ख, दूध का दूध, पापी का पापी, जैसा का जैसा, जहाँ का जहाँ ज्यों की त्यों, मनुष्य अंत में कोरा का कोरा बसा रहे' ( सर० ), 'बलबल' का जहाँ-जहाँ अंत जीवों की पीठ ( सत० ) ।

( ८ ) अवधारण—आम के आम, गुब्बिधों के आम, बैंग का बैंग धीर जौड़ का जौड़, धन का धन गणा और ऊपर से बढ़नामी हुई । घर के घर में कवाई होने लगी । बात की बात में=दुरत ।

[ ९०—उपर्युक्त तीनों प्रकार की रचना में आकारगत संज्ञा विभक्ति के योग से विद्वत रूप में नहीं आती पर बहुवचन में और वाक्यांश के पश्चात् विभक्ति छाने पर नियम के अनुसार आ के स्थान में ए हो जाता है, जैसे, ये लोग खड़े के खड़े रह गये, लड़के कोठे के कोठे में चले गये, समाज के समाज ऐसे पाये जाते हैं, सारे के सारे मुसाफिर ( ठर ) । ]

'शेरा का पैठा' और 'जैठ का पैठा', इन दो वाक्यांशों में रूप और अर्थ का सूक्ष्म भेद है । पहले से अधिकार सूचित होता है, पर दूसरे से अन्य जनक अथवा कार्यकारण की समता पाई जाती है । ]

( १० ) नियमितपन—इस अर्थ में भी ऊपर लिखी रचना होती है, पर वह बहुधा विद्वत कारकों में आती है और इसमें आकारगत शब्द एकत्रित हो जाते हैं, जैसे, सोमवार के सोमवार मेला भरता है, महीने के महीने

ठगवराह मिळती है दोपहर के दोपहर, होली के होली, दिवाली के दिवाली, दशहरे के दशहरे ।

( ग ) देखांतर—राई का परबत, मंत्रो का राजा होगा, दिव की राठ हो गई, वात का बतकइव कुइ का कुइ फिर राँग का सोना हुआ ( सर० ) ।

( प ) विषय—कान का करवा झाँख का घंघा गाँठ का पूरा, वात का पकका घन की रूपा; 'अपय तुम्हार भरत है आवा ( राम ), गंगा की जय नाम की मूष ।

५११—योग्यता घषषा निरचय के अर्थ में किचार्थक संज्ञा का सर्वत्रकारक बहुधा नहीं के साथ आता है जैसे यह वात नहीं होने की ( विवित्र ), जाने का नहीं हूँ यह राम का टिकने का नहीं है, रोगी मरने का नहीं मेरा विचार जाने का नहीं था ।

५१२ — किचार्थक संज्ञा और भूतकालिक हुई विरोध के योग्य से बहुधा सर्वत्रकारक का प्रयोग होता है और उससे दूसरे अर्थों का अर्थ पाया जाता है; जैसे

कर्ता—मेरे जाने पर कवि की लिखी हुई पुस्तक अगमान का विषा हुआ सब कुछ ।

कर्म—गाँव की बूट कपा का सुनना, मौकर का मेजा जाना, अँट की बोरी ।

करख—अधम का लिखना मूख का मारा, कब का लिखा हुआ 'मोख को बीगहों, खूने की काप, रूय का जहा ।

अपादान—बास का हृय खेख का भागा हुआ, बंबई का जहा हुआ दिसावर का आवा हुआ ।

( क ) कई एक किताबों और दूसरे शब्दों के साथ काबनाचक संज्ञाओं में अपादान के अर्थ में सर्वत्रकारक आता है जैसे, केय, में कब की पुअर रही हैं, बह कमो का या कुछ, में बहाँ खवेरे का बैय हूँ, जन्म का बरिशी ।

अधिकरख—तंगी का बैठना, पहाड़ का चढ़ना, धर का बिगड़—हुषा, मोख का लिखाया जइक, केय का जहा हुआ आना ।

५४१—क्रियाशीलक और तरलकषोपक कूर्तत अम्पयों के साथ पदुवा कर्ता और कर्म के अर्थ में संबंध-कारक की 'के' ( स्वतंत्र ) विभक्ति आती है, जैसे, सरकार श्रीप्रेजी के पनाये सब कुछ बन सकता है ( शिब० ) मेरे रहते किसी का सामर्थ्य नहीं है, इतनी बात के मुक्ते ही हरि बोले ( प्रेम० ) राजा के पद बहते ही सब शांत हो गये ।

५४२—अधिकार्य संबंध-रूपकों के योग से संबंध कारक का प्रयोग होता है ( अं०—२३३ ) ।

५४३—संबंध ( अं०—५३३ ), स्वामित्व और संग्रहण के अर्थ में संबंध-कारक का संबंध क्रिया के साथ होता है चार उसकी 'के' विभक्ति आती है, जैसे, अब इनके कोई संताप नहीं है, मेरे एक बहिन न हुई ( गुरु० ) महाजन के बहुत बच है, जिसके अर्थों न हों वह क्या जाने ? नाथ, एक बड़ संतप मोरे ( राम० ), माहाय्य यजमानों के राखी बंधिते हैं, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ, हृष्टी के उभाचा इस ओर से उगा ( सर ) ।

[ सू०—इस प्रकार की रचना का समाधान 'के' के पश्चात् 'पास' 'यहाँ' अथवा इसी अर्थ के किसी और शब्द का अप्वाहार मानने से हो सकता है । किसी-किसी का मत है कि इन उदाहरणों में 'के' संबंध-कारक की 'के' विभक्ति नहीं है, किंतु उससे निम्न एक स्वतंत्र संबंध-रूपक अम्पय है, जो मेघ के लिंग-बचन के अनुसार नहीं बदलता । ]

५४४—संबंध-कारक को कभी-कभी ( मेघ के अप्वाहार के कारण ) आकारांत संज्ञा मानकर उसमें विभक्तियों का प्रयोग करते हैं ( अं०—३०० अ ) जैसे, रौंइके को बकने बीभिय ( शकु ), एक बार सब घरकीं से महाभारत की क्या सुयी ।

( अ ) राजा की चोरी ही गई=राजा के धन की चोरी ।

( आ ) बैठ सुयी पंचमी=बैठ की सुयी पंचमी ।

[ सू०—मेघ के अप्वाहार के लिये १२ वीं अप्वाय देखो । ]

### ( ७ ) अधिकरख-कारक ।

५४५—अधिकरख-कारक की मुख्य दो विभक्तियाँ हैं—में और पर । इन दोनों विभक्तियों के अर्थ और प्रयोग अलग-अलग हैं, इसलिये इनका विचार अलग-अलग किया जायगा ।

५७६—'में' का प्रयोग नीचे किये अर्थों में होता है—

( क ) अग्निव्यापक आहार—दूध में मिठास मिल में लेब, फुल में सुगाँप, आरामा सब में व्याप्त है ।

[ ६०—आहार को व्यापक में अविप्रेरक कहते हैं और बहुधा तीन प्रकार का होता है । अग्निव्यापक आहार वह है जिसके प्रत्येक भाग में आग्नेय यावा आब । इसे व्याप्ति-आहार भी कहते हैं । औपश्लेषिक आहार वह कहलाता है जिसके किसी एक भाग में आग्नेय रहता है, जैसे, नीकर कोठे में लोठा है, लहसुन पीसे पर बैठा है । इसे एकदेशाहार भी कहते हैं । तीर्यक आहार वैयधिक कहलाता है और उलठे विषय का बोध होता है, जैसे, धर्म में रुचि, विद्या में प्रेम । हतक नाम विषयाहार भी है । ]

( ख ) औपश्लेषिक आहार—वह धन में रहता है, जिसका मन्दी में बहावा है, मन्त्रिणी समुद्र में लक्ष्मी है पुस्तक कोठे में लक्ष्मी है ।

( ग ) वैयधिक आहार—नीकर काम में है, विद्या में बसकी रुचि है । इस विषय में कोई मतभेद नहीं रूप में सुंदर । शील में ईश्वर गुण में पूरा ।

( घ ) मौल—पुस्तक चार आने में मिली, उससे बीस रुपये में गाव थी, वह कपड़ा तुमने कितने में बेचा ?

[ ६०—मौल के अर्थ में संप्रदान, संबंध और अविप्रेरक-कारक आते हैं । इन तीनों प्रकार के अर्थों में यह अंतर जान पड़ता है कि संप्रदान-कारक से कुछ अधिक दामों का, अविप्रेरक-कारक से कुछ कम दामों का और संबंध-कारक से उचित दामों का बोध होता है, जैसे, मैंने बीठ रुपये को माय ली, मैंने बीठ रुपये में माय ली और मैंने बीठ रुपये को माय ली । ]

( ङ ) लेब तथा सुगाँप—हममें तुममें कोई भेद नहीं, भाई भाई में प्रीति है, अब लोको में अकलम है ।

( च ) अरक—व्यापार में उसे छोटा पहा, प्रीति में खरीद हीनता है, बातों में बड़ाबा, ऐसा जो जिसमें ( वा जिससे ) प्रयोजन सिद्ध हो जाय ।

( ष ) निर्घाणर—देवताओं में कौन अधिक पूज्य है ? सती स्त्रियों में पमिनी प्रसिद्ध है, सबमें छोटा, अंधों में काने राजा, तिन-मर्हें रावण कबल तुम ? नय मर्हें तिनके एम्मे होई । ( अ०—५३० ष )

( ज ) स्थिति—सिपाही खिता में है, बसकर भाई युद्ध में मारा गया, रोगी होश में नहीं है, बाँकर मुझे रास्ते में मिखा, बचके खीम में है ।

( झ ) निरिच्छ ब्रह्म की स्थिति—बह एक घटि में बच्छ हृष्य बृह करं दिनों में खीम, संवत् १६५३ में ब्रह्मक पदा या प्राचीन समय में भाव नाम का एक प्रतापी राजा हो गया है ।

५४०—भरता, समाया, सुसवा मिदवा मिहवा आदि कुछ क्रियाओं के साथ खासि के अर्थ में अधिकरण का चिन्ह 'में' आता है जैसे, धड़े में पाबी भरो छाल में गीजा १ग मिह आता है, पाबी घरती में समा गया ।

५४८—गत्यर्थ क्रियाओं के साथ निरिच्छ स्वाव की वाक्य संज्ञाओं में अधिकरण कारक का 'में' चिन्ह लगाया जाता है; जैसे, बचक कोठे में गया बौकर घर में नहीं आता, वे रात के समय गाँध में पहुँचे, चोर जंगल में जायगा ।

[ ६ —गत्यर्थ क्रियाओं के साथ और निरिच्छ कालवाचक संज्ञाओं में अधिकरण क अर्थ में कम कारक भी आता है ( अं —५९५ ) । 'बह पर ओ गया', और 'बह पर ये गया', इन दो वाक्यों में कारक क कारक अर्थ का कुछ अंतर है । पहले वाक्य ठे पर की सीमा तक ज्ञान का बोध होता है, पर दूसरे ठे पर क भीतर ज्ञान का अर्थ पावा आता है । ]

५४६—'पर' नीचे दिये अर्थ सूचित करता है—

( क ) एकदेशाचार—सिपाही छोड़ें पर बंम है बचक खाल पर सोता है, गाड़ी सड़क पर जा रही है; पंखों पर चिड़ियाँ चहचहा रही हैं ।

[ ६ —'में' निर्माक ठे भी यही अर्थ सूचित होता है । 'में' और



'पर' के अर्थों में यह अंतर है कि पहले से अंतरण और दूसरे से बाध स्पष्ट का नाम होता है। यही विशेषता बहुधा दूसरे अर्थों में भी पाई जाती है। ]

( ६ ) सामीप्यभाव—मेरा घर सड़क पर है बड़का द्वार पर लगा है, तालाब पर मंदिर बना है फाटक पर सिपाही रहता है।

( ७ ) दूरता—एक कोस पर, एक एक हाथ के अंतर पर, कुछ आगे जाने पर, एक कोस की दूरी पर।

( ८ ) विपरीतभाव—मीकरो पर दया को राजा उस कन्या पर मोहित हो गये आप पर मेरा विरवाह है इस बात पर बड़ा विवाद हुआ बाबर जेहि पर सत्य सबेह जाति भेद पर कोई आश्रय नहीं करता।

( ९ ) कार्य—मेरे घोसने पर वह अपसन्न हो गया इस बात पर सब आका मिट जायगा सोम-वेम पर कड़ा मुनी हो गई अन्धे काम पर इनाम मिळता है पानी के बौदे छींटों पर राजा को बटपीन की बाह आई।

( १० ) अधिकता—इस अर्थ में संज्ञा की द्विसंख्य होती है जैसे घर में बिरियौ पर बिरियौ आती है ( सर ) दिन पर दिन मात्र बढ़ रहा है तगादे पर तगादा घेजा जा रहा है बकई में सिपाहियों पर सिपाही बन्द रहे हैं।

( ११ ) निरिक्त भाव—समय पर बर्षा नहीं हुई, मौसम ठीक समय पर गया, गाड़ी भी बज कर पैताबिस मिनट पर आती है, एक एक घंटे पर दबा ही जाने।

( १२ ) विपरीतभाव—बहु अपने जेठों की आँख पर चकती है अकक माँ बाप के स्वभाव पर होते हैं, अंत में वह अपनी जाति पर गया, तुम अपनी बात पर नहीं रहते।

( १३ ) अर्थरता—मोक्ष करने पर पाप क्षमा बात पर बात विकरती है आपका पत्र आने पर सब प्रबंध हो जायगा।

( १४ ) विरोध अथवा अनादर—इस अर्थ में 'पर' के परभाव बहुधा 'भी' आता है; जैसे, यह धींचक बात रोग पर चकती है, जैसे पर भोज लगाया बड़का बोधा होने पर भी चतुर है, इतना होने पर मो कोहं तिरक्य हुआ, मेरे कई बार सम्माने पर भी वह दुपुष्प नहीं लगे।

( क ) निर्धारण—देवताओं में कौन अधिक पूज्य है ? सती स्त्रियों में पद्मिनी प्रसिद्ध है सबमें चौथा अर्थों में काने राजा, तिन मर्हें राजक क्वम तुम ? मय मर्हें तिनके पुरो होई । ( अ०—५३० क )

( ख ) स्थिति—सिपाही सिता में है, बसक मर्हें पुत्र में मारा गया, रोगी होश में नहीं है, नीकर मुझे रास्ते में मिला, उसके खेन में है ।

( ग ) निश्चित काल की स्थिति—वह एक घंटे में अर्धक हुआ वृत्त कर दिनों में अर्ध, संवत् १६३३ में अर्धक पदा वा प्राचीन समय में मीठ नाम का एक प्रतापी राजा हो गया है ।

५३०—भरवा, समाना, सुसना मिया, मिथना आदि कुछ क्रियाओं के साथ व्याप्ति के अर्थ में अधिकरण का चिन्ह 'में' आता है जैसे, छोड़े में पानी मरो खाल में नीका रंग मिला जाता है, पानी भरती में समा गया ।

५३८—गत्वर्थ क्रियाओं के साथ निश्चित स्थान की वाचक संज्ञाओं में अधिकरण कारक का 'में' चिन्ह लगाया जाता है; जैसे, ऊपर कोठे में गया नीकर घर में नहीं आता, दो रात के समय गाँव में पहुँचे, चार जंगल में जायगा ।

[ ६०—गत्वर्थ क्रियाओं के साथ और निश्चित कालवाचक संज्ञाओं में अधिकरण के अर्थ में कर्म कारक भी आता है ( अ — १२५ ) । 'बह पर ओ गया', और बह पर में गया', इन दो वाक्यों में कारक के अर्थ अर्थ का कुछ अंतर है । पहले वाक्य से पर की सीमा तक जाने का बोध होता है, पर वृत्तरे से पर क भीतर जाने का अर्थ पाया जाता है । ]

५३९—'पर' नीचे लिखे अर्थ सूचित करता है—

( क ) एकदशावार—सिपाही थोड़े पर धेय है ऊपर खाल पर सोता है, गाड़ी सड़क पर आ रही है; पेड़ों पर चिड़ियाँ चहचहा रही हैं ।

[ ६ — 'में' निर्माह से भी नहीं अर्थ सूचित होता है । 'में' और

‘पर’ के अर्थों में यह अंतर है कि पहले ठ अंतःश्व और दूसरे ठे बाह्य श्वा का वाक होता है। यही विरोधता बहुधा दूसरे अर्थों में भी पाई जाती है।]

( क ) सार्मीप्राधार—मेरा घर सड़क पर है बड़का झार पर लड़ा है, ताकाल पर मंदिर बनाई फाटक पर सिपाही रहता है।

( ग ) बुरा—एक कोस पर, एक एक हाथ के अंतर पर, ऊँच धाने जाने पर, एक कोस की दूरी पर।

( घ ) विपधाधार—मीकरों पर दया करो राजा उस कन्या पर मोहित हो गये आप पर मेरा विश्वास है, इस बात पर बड़ा विश्वास हुआ जाकर जेहि पर सत्य सनेहू जानि मेव पर कोई धाधेप नहीं करता।

( ङ ) कार्य—मेरे बोलने पर वह अमसक हो गया इस बात पर सब अगदा मिट जायगा लोम-दम पर कहा सुनी हो गई अफ्से काम पर इमान मिळता है पाओ क छोटे सूटों पर राजा को बरबीब की बाढ़ आइ।

( च ) अधिष्ठा—दस अर्थ में अंशा की द्विगुण होती है जैसे गर से चिट्ठियाँ पर चिट्ठियाँ आती हैं ( सर० ) दिन पर दिन माक बढ़ रहा है तगाई पर तगाया घेरा जा रहा है अगई में सिपाहियों पर सिपाही बन्द रहे हैं।

( छ ) निरिबध अक्ष—समय पर वर्षा नहीं हुई, मौक डीक समय पर गया, गाड़ी भी बन्द कर पंचाङ्गिस मिनट पर आती है एक एक घंटे पर दवा दी जाने।

( ज ) निबन्ध-पाठन—बह अपने बड़ों की आला पर बजती है, बड़के माँ बाप के स्वभाव पर होते हैं, अंत में बह अपनी जानि पर गया, गुन अपनी बात पर नहीं रहत।

( ष ) अर्धतरता—मोजब करने पर पाक लाना बात पर बात निर-बती है आपका पत्र आने पर अब प्रबंध हो जायगा।

( ष ) विरोध अथवा अनादर—दस अर्थ में ‘पर’ के परबाद बहुधा ‘नी’ आता है; जैसे, बह भीरुपि बात रोग पर बजती है, जैसे पर मोक अफक बड़का होठ होने पर भी अगुर है, इतना होने पर भी कोई निरब-ब हुआ, मेरे कई बार समझाने पर भी वह बुझने नहीं दोइता।

५५०—जहाँ, कहाँ, यहाँ, वहाँ, ऊँचे, नीचे, आदि कुछ स्थान-वाचक क्रिया-विशेषण के साथ विकल्प से 'पर' आता है; जैसे, पहले जहाँ पर सम्बन्ध हो अङ्कुरित फूली-कली ( भारत० ) वहाँ अभी समुद्र है वहाँ पर किसी समय बंगला या ( सर० ) ऊपरबाबा पंचर २ पुष्ट से अधिक ऊँचे पर था ( विचित्र० ) ।

५५१—चढ़ना, मरना (इच्छा करना), बटना, छेड़ना, बारना, विद्वावर, निर्मर आदि शब्दों के योग से बहुधा 'पर' का प्रयोग होता है; जैसे पहाड़ पर चढ़ना साम पर पर मरना, आज का काम कल पर मत छोड़ो, मेरा काम आपके आने पर निर्मर है, तो-पर धारों उरबसी ।

५५२—बहुधा में पर का रूप 'पै' है; और यह कभी-कभी 'से' का पर्याय होकर कर्त्तव्य करक में आता है, जैसे मोपै बरपो नाहिं चाहु । कभी कभी यह 'पास के धर्म में प्रयुक्त होता है, जैसे—निज भाव पै अबहीं मोहि माने (आत्०) हम पै एक भी पैसा नहीं है । इस विभक्ति का प्रयोग बहुधा कविता में होता है ।

५५३—कभी-कभी 'में' और 'पर' आपस में बदल जाते हैं; जैसे क्या आप घर पर ( = घर में ) मिर्छे, बीकर इच्छा पर ( = वृक्षाव में ) पैदा है, उसकी देह में ( = देह पर ) कपड़ा नहीं है, जल में ( = जल पर ) गाड़ी बाध पर, बल गाड़ी पर बाध ।

५५४—अधिकरत्व-कारक की विभक्ति के साथ कभी आपादान और सर्वत्र-कारकों की विभक्तियों का योग होता है० और जिस शब्द के साथ ये विभक्तियाँ आती हैं, उससे दोबो विभक्तियों का अर्थ पाया जाता है, जैसे, वह बीड़े पर से गिर पड़ा; जहाज पर के नावियों ने आर्जुन मनाया इस नगर में का कोई आदमी तुमको जानता है ? हिंदुओं में से कई लोग विद्यावत को

---

● एक विभक्ति के परन्तु वृत्तरी विभक्ति का योग होना हिंदी भाषा की एक विशेषता है जिसके कारण कई एक पैदाकरत्व इत भाषा के विभक्ति प्रत्ययों का स्वतंत्र अर्थव अर्थवा उनके अपभ्रंश मानते हैं । संस्कृत में विभक्ति के परन्तु कभी-कभी वृत्ता प्रत्यय हो जाता है — जैसे, आईकार, प्रमत्त, ये—पर विभक्ति-प्रत्यय नहीं आता ।

गये हैं, शरीर पर का नाच मुझे बहुत ही भापा (विचित्र) ।  
(घ — ५३० व) ।

५५५—कई एक काव्याचक और स्थानवाचक क्रिया-विशेषकों में और विशेषकर आकारांत संज्ञाओं में अधिभ्रम-कारक की विभक्तियों का खोप ही जाता है जैसे इन दिनों हर एक चीज मेंहगी है उस समय मेरी तुम्हें ठिकाने नहीं थी मैं उनके दरयासे कमी नहीं गया कुछ बड़े सूर्य निकलता है, उस जगह बहुत भीड़ थी, हम आपके पाँच पदों हैं ।

(घ) प्राचीन कविता में इस विभक्तियों का खोप बहुत होता है। जैसे पुत्रि पिरिय वन बहुत अजेगू (राम०) घरी अजिर पयोदा राती (ज००) । जो सिर परि महिमा मही, कहीयत राजा-राव । प्रगदत जगता अपनी, मुफ्त सु पहिरत पाव ॥ (जय) ।

५५६—अधिभ्रम की विभक्तियों का मित्य खोप होत के कारण कई एक संज्ञाओं का प्रयोग संबंध-सूचक के समान माने जगा है जैसे बघ, कितार, नाम, शिपय खेध, पछट (घ — २३३) ।

५५७—कोई-कोई वैषाकरय 'तक' और 'तखे' धारि कई एक अर्थों की अधिभ्रम-कारक की विभक्तियों में गिनते हैं पर ये खूब बहुतवा संबंध-सूचक अथवा क्रिया-विशेष के समान प्रयोग में आते हैं इसलिये उन्हें विभक्तियों में गिनना भूल है । इसका विवेचन यथास्थान हो चुका है ।

### ( ८ ) संबोधन-कारक ।

५५८—इस कारक का प्रयोग किसी को बिताने अथवा पुकारने में होता है। जैसे, माई, तुम कहाँ गये थे ? मित्रों, करो हमारी शीघ्र सहाय (सर०) ।

५५९—संबोधन-कारक के साथ (आगे या पीछे) बहुतवा कोई-एक विस्मयादि बोधक आता है जो मूक से इस कारक की विभक्ति मान क्रिया जाता है। जैसे, लजा रे मन, हरि किमुजन को लीग (सूर०), ह प्रसु रवा करो हमारी ईसा हो पड़ो तो आघो ।

(क) कविता में कवि लोग बहुतवा अपने नाम का प्रयोग करते हैं जैसे आप कहते हैं और जिसका अर्थ कमी कमी संबोधन कारक का प्रयोग है ।

रहिमत, निज मन की ध्यवा । सूरदास, स्वामी कल्याण । यह शब्द अपने  
अर्थ के अनुसार और-और करके में आया है जैसे, कवि गिरिधर कविराय,  
कविदास तुलसी से शब्दों हठि राम संमुख करत को ?

तीसरा अध्याय ।

### समानाधिकरण शब्द ।

५३ — जो शब्द या वाक्यांश किसी समानार्थी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने  
के लिए वाक्य में आया है उसे जब शब्द का समानाधिकरण कहते हैं जैसे,  
पदम के पुत्र राम मन को गये, पिता-पुत्र दोनों वहाँ बैठे हैं, मुख हृषी की  
पय दिखाया, यह हमारा कार्य का था । ( भारत\* ) ।

इन वाक्यों में राम दोनों और यह कस्य पुत्र, पिता-पुत्र और पदम  
के समानाधिकरण शब्द हैं ।

५४ — हिंदी में समानाधिकरण शब्द अथवा वाक्यांश बहुधा नीचे लिखे  
अर्थ सूचित करते हैं—

( अ ) नाम, पदवी, दशा अथवा जाति—जैसे, महाराजा प्रतापसिंह,  
भारत मुनि, गोसाईं तुलसीदास, रामशंकर बिवाठी, गोपाळ नाम का  
बच्चा, मुझ आफत को उचले के लिए ।

( आ ) परिमाण—दो सेर आटा, एक तोला सोना, दो बीघे बरती  
एक गज कपड़ा दो हाथ चीड़ाई ।

( इ ) निरुचय—अच्छी तरह से पढ़ना यह एक गुण है, पुत्र दोनों बैठे  
हैं, जो वह बच्चे उम्र सम आमत ( सत्य ) ।

( ई ) समुदाय—सोना चाँदी लोहा आदि धातु कहते हैं राज पाद,  
घब-घाम सब पूय ( सत्य ), वे सबके सब भाग गये ( विधि ), धन,  
बरती सबका सब हाथ से निकल गया । ( गुडका\* ) ।

( ३ ) धूपकता—पोली-पत्रा, पूजा-पाक, शान होम-अप कुत्र मो काम क  
 धया ( सर ) , विपत्ति में भार्-बैतु, श्री-पुत्र, कुईव परिवार कोई साथी  
 नहीं होता ।

( ४ ) शम्भार्य—जहाँ से नगरकोट ( शहरपनाह ) का चटक सी गत्र  
 बुर या ( बिचित्र ) , संवत् ११३३ ( सन् ११०६ ) में ( नागरी० ) , छिम  
 द्या में—इस हासल में समाज के बनाण हुए नियम धर्मात् कायदे हर  
 धामो की मानवा सुभासिब समझ जायगा ( स्वा ) ?

( ५ ) मूल-संशोधन—इसका उपाय ( उपयोग ) सीमा के बाहर  
 हो जाता है ( सर ) में उच समय कचहरा को—नहीं बाजार को जा  
 रहा था ।

( ६ ) धनधारण—बंशहास मेरी संपत्ति-अतुल संपत्ति का धनधारी  
 होगा । ( बंश ) , धन्यी मिथा पाये हुए मुसलमान धार हिंदू भी—विशेष  
 करके मुसलमान फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं ( सर ) ।

२१२—'सय कोइ 'कुत्र होवो धरि 'यह दूसरे शब्दों के समा  
 धाधिक्य हाउर धाते हैं; धरि 'धादि नामक 'धर्मात्' 'सरीला', 'जसे,  
 बहुधा दो समाधाधिक्य शब्दों के बीच में धाते हैं । इन सबके उदाहरण  
 ऊपर धा चुके हैं ।

२१३—समाधाधिक्य शब्द जिस धारक में धाता है उसी में उसध  
 मुख्य शब्द भी रहता है; जैसे राजा जनक की पुत्री सीता के विवाह के दिन  
 स्वर्धर रथा गया । इस वाक्य में मुख्य शब्द राजा धरि पुत्री सर्वध-धारक  
 में हैं क्योंकि उनके समाधाधिक्य शब्द जनक धरि सीता सर्वध-धारक में  
 धाये हैं ।

( ७ ) समाधाधिक्य शब्द का धर्य धरि धारक मूल शब्द के धर्य धरि  
 धारक से निष्ठ न होना चाहिये । नीचे किल वाक्य इस नियम के विपर होने  
 के धरय ध्युक्त हैं—

धन राजकुमार सिबाधर् ( गीतन पुत्र का पहला नाम ) २१ वर्ष के हुए  
 ( सर० ) , गठ धर्य का ( सन् १८१४ ) दिसाव ।

( ८ ) कमी-कमी एक वाक्य भी समाधाधिक्य होता है; जैसे,  
 यह पूरा मरोसा रखा है कि मेरे धन का फल मरोसे ही

इस वाक्य में 'कि' से आरंभ होनेवाला उपवाक्य 'भरीसा' शब्द का समा नाभिकरण है ।

[ ६०—वाक्यों का विशेष विचार इस भाग के दूर पर परिच्छेद में किया जायगा ।

### चौथा अध्याय

## उद्देश्य, कर्म और क्रिया का अन्वय

### ( १ ) उद्देश्य और क्रिया का अन्वय ।

५१४—जब अस्त्यस्य कर्ता-कारक वाक्य का उद्देश्य होता है, तब उसके शिग, कचन और पुरुष के अनुसार क्रिया के शिग कचन और पुरुष होते हैं जैसे लड़का खाता है, तुम कम आओगे, शिर्षों गीठ गाती थीं, पीकर गाँव को भेजा जायगा, धीरे बजाई गई । ( अ०— ३१६, ३१७ ) ।

[ ६—समाध्यम भविष्यत् तथा विधिकाल से कृतवाच्य में और स्थितिकर्तक 'होना' क्रिया के सामान्य वतमानकाल में शिग के कारण क्रिया का कर्ता नहीं होता, जैसे, लड़का खाये, शिर्षों गीठ गाये, हम पढ़ें हैं लड़कौ ए वा ।

५१५—आदर के अर्थ में एकवचन उद्देश्य के साथ बहुवचन क्रिया आती है; जैसे, मेरे बच्चे भाई आये हैं, सोले राम बोरि लुग पायी, महाराजी कीन शिर्षों पर दबा करती थीं, राजकुमार समा में बुझाये गये ।

( क ) कविता में कभी-कभी विधिकाल अथवा समाध्यमभविष्यत् का सम्बन्ध-पुरुष अन्वय पुरुष उद्देश्य के साथ आता है; जैसे, करहु सी मम उर घाम, करी सुसंपति, सदन, सुख ।

५१६—जब काठिवाचक संज्ञा के स्थान में कोई समुदायवाचक संज्ञा ( एकवचन में ) आती है, तब क्रिया का शिग-कचन समुदायवाचक संज्ञा के अनुसार होता है; जैसे, शिपाहियों का एक झुंड आरहा है, उनके कोई संतान नहीं हुई, समा में बहुत भीड़ थी ।



११०—यदि पूर्ण क्रिया की उद्देश्य पूर्ति के लिंग-वचन पुरुष उद्देश्य के लिंग-वचन-पुरुष से मिलें तो क्रिया के लिंग-वचन-पुरुष बहुधा उद्देश्य ही के अनुसार होते हैं। जैसे, वह टकसाल में समझा जावेगा, (सत्य) बेटी किसी दिन पराए घर का बन होती है (शकु०) हम क्या से क्या हो गये (सर०), चाहे कपड़े शोक के बिम्ब माने जाते हैं। दूर देश में बसने वाली यात्रि वहाँ के घसड़ी रहने वालों को नष्ट करने का कारखाने हुए। (सर०)।

ध्रुव—यदि उद्देश्य-वृत्ति का धर्म मुख्य हो अथवा उनमें वचन या मध्यम पुरुष सर्वनाम प्राये, तो क्रिया के लिंग-वचन-पुरुष उद्देश्य पूर्ति के अनुसार होते हैं और उसका पूर्ण संबन्ध-कारक की विभक्ति बहुधा उसी के लिंग के अनुसार होती है, जैसे,—हिन्दू और क्रांति का प्रभाव हिंदी हो सकती है (सर०), उसकी एक रकाबी मेरा एक निवाला होता (विधि०) इन सब समाधों का मुख्य उद्देश्य मैं ही था, उनकी आशा तुम्हीं हो, मूठ बोलना उसकी आदत हो गई है, इस पोर बुद्ध का कारण प्रकाश की स्थापना थी।

[ ११०—शिव भेषक बहुधा इस बात का विचार रखते हैं कि उद्देश्य-वृत्ति के लिंग वचन क्या-संभव नहीं हो उद्देश्य के होते हैं। जैसे, मोदी क्षितिपैयी की भी छाकी है (सर०), तबका कवि भी हम लोगों का एक अखिल है (सर०)। हम लोगों के पून पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे (सर०), यह तुम्हारी सखी उनकी बेटी कभीकर हुई (शकु०) महाराज उसके हाथ के खिलाफ थे (विधि०)। ]

१११—यदि संबन्धक समुच्च-बोधक से लगी हुई एक पुरुष और एक ही लिंग की एक से अधिक एकवचन प्राविवाचक अज्ञान अमत्यन कर्ता-कारक में आकर उद्देश्य हो तो उनके बीच से क्रिया कसरी पुरुष और कसरी लिंग के बहुवचन में आयेगी, जैसे, किसी वन में हिरण और बंधा रहते थे। मीठम और सोहन प्रकृत पर खेच रहे हैं बहू और लक्ष्मी काम कर रही हैं। बाँझ के वेप में बर्न और सत्व भाते हैं (सत्व०)। माई और माझाव पीकर छेकर भेजे गये, बोझ और कुचा एक जगह बंधि जाते थे; तितली और पंखी जैसे नहीं बनीं।

सर०—उद्देश्यों की पृथक्ता के धर्म में क्रिया बहुधा एकवचन में आती

है, जैसे, बीच और बोहा धमी पहुँचा है। मेरे पास एक गाय और एक भैंस है, राजधानी में राजा और बख्त मंत्री रहता है, वहाँ एक बुढ़िया और बहकी आई। कुर्ब का प्रत्येक बाघरु और बृज इस बात का प्रबल करता है । ( सर० ) ।

५९९—संयोजक समुच्चय-बोधक से शुरू हुई एक ही रूप और किंग की दो वा अधिका अप्राधिवाचक भवना भाववाचक संज्ञार्थे यदि एकवचन में भावों तो किन्ना बहुधा एकवचन ही में रहती है; जैसे बहके की देह में कर्मण कोहु और मौस रह गया है, उसकी बुद्धि का बल और राय का अन्तः निपम इसी एक काम से मासूम हो जावेगा ( गुण० )। मेरी बातें सुनकर महारानी को हर्ष तथा आश्चर्य हुआ, मुझे मैं से बड़ा और छोटा निकला, कठोर संकीर्णता में क्या कमी बाह्यों की मानसिक पुष्टि, चित्त की विस्तृति, और चरित्र की बहिष्ठा हो सकती है ( सर० ) ।

( अ ) ऐसे उदाहरणों में कोई-कोई खेलाक बहुवचन की किन्ना करते हैं; जैसे मन और शरीर मट-भट हो जाते हैं ( सर० )। माता के काम-पान पर भी बच्चे की निरोगता और जीवन अवलंबित हैं ( तथा ) ।

५००—यदि भिन्न-भिन्न किंगों की दो ( वा अधिका ) प्राधिवाचक संज्ञार्थे एकवचन में भावों तो किन्ना बहुधा पुल्लिङ्ग, बहुवचन में आती है; जैसे, राजा और रानी मूर्च्छित हो गये ( सर० )। राजपुत्र और माखबवती उजाब को का रहे हैं ( तथा )। कर्मण और अदिति बातें करते हुए दिखाई दिने ( शकु० ) महाराज और महारानी बहुत प्यार करते थे ( विचित्र० )। बीच और गाय करते हैं ।

( अ ) कइ एक ईह समासों का प्रयोग इसी प्रकार होता है; जैसे, कौ-पुत्र भी अपने नहीं रहते ( गुण० )। बेठ-बेरी सबके घर होते हैं, उनके मा-बाप शहीब थे ।

[ ६ —इस निबन्ध का सिद्धांत यह है कि पुल्लिङ्ग बहुवचन क्रिया के भिन्न-भिन्न उद्देश्य की केवल संख्या ही लक्षित करने की आवश्यकता है, उनकी शक्ति नहीं। यदि क्रिया क्लीबिय बहुवचन में रखी जावगी, तो यह अर्थ होगा कि क्लीब-शक्ति के दो प्राधिबों के विषय में कहा गया है वा बाठ यथार्थ में नहीं है । ]

१०१—यदि मित्र-मित्र लिङ्ग-वचन की एक से अधिक संज्ञार्थ अन्वयण कर्ता-कारक में आवें तो क्रिया के लिङ्ग-वचन अन्तिम कर्ता के अनुसार होते हैं जैसे महाराज और सम्पूर्ण समा उसके शेषों की मन्त्री भक्ति जानती है ( विविध० ), गर्मी और हवा के लड़के घर भी लड़के देने थे ( हित० ), बच्चों में रेत घर लूट-कछियाँ खेतों में हैं ( डेढ ) इसने तीन बंध और घर मुझार्थ ही ईसा की जीवनी में उनके हिसाब का ज्ञान तथा आपसी न मिलेगी ( सर० ) हास में मुँह, गाँव और खोँछें पूर्ण हुए जान पड़ती हैं ( नागरी ) ।

१०२—मित्र-मित्र पुरुषों के कर्ताओं में यदि उत्तम पुरुष आवे तो क्रिया उत्तम पुरुष में होगी, और यदि मध्यम तथा अन्य पुरुष कर्ता हों तो क्रिया मध्यम पुरुष में रहेगी, जैसे हम और तुम वहाँ लडेंगे; ए और वह लड जाता; तुम और वे लड जाओगे; वर घर में साथ पड़ती थीं; हम और पूरुष क सम्म देण इस शेष से लडे हैं ( विविध० ) ।

१०३—जब अनेक संज्ञार्थ कर्ता-कारक में आकर किसी एक ही प्राची का परार्थ को सूचित करती हैं तब उनकी क्रिया एकवचन में आती है, जैसे, वह मसिख नाविक और प्रवासी सम् १५०९ ई में परबोक को सिबाया, उनके बंध में कोई नामलंबा और पार्श्विका नहीं रहा ।

( य ) यही नियम पुस्तकों आदि के संयुक्त नामों में बलित होता है, जैसे, पार्श्वी और पयोदा इतिवचन मस में लगी है, पयोदा और श्रीकृष्ण किसका सिखा हुआ है ।

१०४—यदि कई कर्ता विभाजक समुच्चयबोधक के द्वारा लगे हों तो अन्तिम कर्ता क्रिया से अभिन्न होता है; जैसे, इस काम में कोई हाथि अथवा काम नहीं हुआ मैं या मेरा भाई जावगा; माया मित्री न राम; पोपियाँ का साहित्य टिप्प लिखिया का काम है ( विविध० ) ये अथवा तुम वहाँ लडर जाना ।

१०५—यदि एक वा अधिक उद्देश्यों का कोई समासाधिकरण शब्द हो तो क्रिया उसी क अनुसार होती है, जैसे, अष्टमहासिद्धि लक्ष्मि और बारहों प्रयोग, आदि हैबता आते हैं ( सत्य ) ; मर्द, औरत समी श्रीमेर सेहरे के होते हैं ( सर० ), वन करती सबका सब हाथ के निकल गया ( पुष्टक० ), की और पुत्र कोई साथ नहीं जाता, ऐसी पतिव्रता की देवा आशाकारी पुत्र

और ऐसे तुम आप—यह स्वयंयोग ऐसा हुआ माओ अन्त और विषय भी विधि तीनों इच्छते हुए ( शब्द० ), सुरा और सुंदरी दो ही तो प्राणियों के पागल बनाने की शक्ति रखती हैं ( तिथि० ) ।

[ २०—'विचित्र-विपर्यय' में 'ईमान और ध्यान दोनों ही बची', यह वाक्य श्रुत्या है । इसमें क्रिया पुत्रिय में बाह्य, क्योंकि उद्देश्य भी दोनों संज्ञाएँ मित्र-मित्र शिग की हैं ( अ० १७०—२० ), और उनके लिए जो समुदायवाचक शब्द आया है वह भी दोनों का बोध कराता है । संभव है कि 'बची' शब्द ज्ञापे की मूल हो । ]

## ( २ ) कर्म और क्रिया का अन्वय

५०६—सकर्मक क्रियाओं के मूलकारणिक कर्तृत्वं से बने हुए शब्दों के साथ जब सम्प्रत्यय कर्ता कारक और अप्रत्यय कर्म-कारक आता है तब कर्म के शिग-बचन-पुरुष के अनुसार क्रिया के शिपादि होते हैं ( अ० —५१८ ), जैसे, खदके ने पुस्तक पढ़ी; हमने खेद देखा है, जो ने विद्व बवाये थे, पंडितों ने यह विद्या होगी ।

५०७—कर्म कारक और क्रिया के अन्वय के अधिकारत नियम उद्देश्य और क्रिया के अन्वय ही के समाव हैं इसलिये हम उन्हें बर्हि संक्षेप में विचारकर उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करते हैं—

( अ ) एक ही शिग और एकवचन की अनेक प्राणिविवाचक संज्ञाएँ अप्रत्यय कर्म-कारक में आवें तो क्रिया बची शिग के बहुवचन में आता है; जैसे, मैंने पाव और मैंस मोछ लीं; ठिकरती ने भेदिया और जीता देखे; महाजन ने बर्हि खदक्य और भठीजा भेजे; हमने नाटी और पोठा देखे ।

[ २५ —अप्रत्यय कर्म-कारक में उचम और मध्यम पुरुष नहीं आते । ]

( आ ) बर्हि अनेक संज्ञाओं से पृथक्पृथा का बोध हो तो क्रिया एकवचन में आपयी; जैसे मैंने एक बौड़ा और एक बैल देखा; महाजन ने अपना खदका और भठीजा भेजा; किसान ने एक गांप और एक मैंस मोछ ली; हमने नाटी और पोठा देखा ।

( इ ) बर्हि एक ही शिग की एकवचन अप्रणिविवाचक अथवा भाववाचक संज्ञाएँ कर्म ही तो क्रिया एक वचन में आपयी; जैसे, मैंने कुँदें में से बर्हि

धीरे छोटा मिथ्या उसने मुझे धीरे धीरे संसूक में रख ही सिपाही के पुत्र में साहस धीरे धीरे दिखाया था ।

( ३ ) यदि मित्र-मित्र किंगों की अनेक प्रायोजक संशय एकवचन में धारों तो क्रिया बहुधा पुष्पिग बहुवचन में धारों है जैसे-जैसे अक्षय धीरे धीरे धीरे राजा ने दास धीरे धीरे मेरे किसान ने वृद्ध धीरे गाय बेचे थे ।

( ४ ) यदि मित्र-मित्र किंग-वचन की एक से अधिक संशय अपत्यय धर्म-कारक में धारों तो क्रिया अंतिम धर्म के अनुसार होगी, जैसे उसने मेरे बास्ते साथ कमीजें धीरे धीरे कपड़े तैयार किये थे (विचित्र०) मैंने किरती में एक सी मरे बंध लीन सी मेरे धीरे जाने-जाने के किये रोटियाँ और शराब मरपुर रख ही थी ( तथा ) उसने वहाँ देक देक धार प्रवेश किया ।

( ५ ) जब अनेक संशयें अपत्यय धर्म-कारक में धार कर किमी एक ही वस्तु को सूचित करती हैं तब क्रिया एकवचन में धारती है; जैसे मैंने एक धर्या पकोसी धीरे मित्र पाया है, लक्ष्मी ने 'माता धीरे कम्पा' पड़ी ।

( ६ ) यदि कई धर्म विभाजक समुच्चय-बोधक के द्वारा उभरे हों तो क्रिया धर्म के अनुसार होती है; जैसे तुमने टोपी या कुर्ता क्रिया होगा, लक्ष्मी ने पुस्तक, कागज धरया पेंसिल पाई थी ।

( ७ ) यदि धर्म का धर्मों का कोई समानाधिकार्य शब्द हो तो क्रिया इसी के अनुसार होती है जैसे लक्ष्मी ने वन संतान, आरोग्यता धारि सब सुख पाया, हरिश्चंद्र ने राज-पाद, पुत्र-पत्नी धर हार सब कुछ त्याग दिया ।

( ८ ) यदि अपूर्व सकर्मक क्रियाओं की पूर्ति ( धं०—१२५ ) किंग वचन से धर्म के किंग-वचन मित्र हों तो क्रिया के किंग-वचनपुत्र धर्म के अनुसार होते हैं उसने अपना शरीर मित्री कर किया, हमने धरनी कुर्ता पत्थर कर ली, क्या तुमने मेरा धर धरनी बर्पाती समझ किया ।

( ९ ) यदि धर्म-पूर्ति के धर्म की प्रधानता हो तो धर्मों की क्रिया के किंग-वचन उसी के अनुसार होते हैं; जैसे, धर्य मी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनवाई है ( सार ) !

५०८—बीचे बिची रचनाओं में क्रिया सब पुष्पिग एकवचन धीरे धर्य रूप में रहती है ( धं - १२८ ) ।

( क ) यदि अकर्मक का उद्देश्य संप्रत्यय हो जैसे मैंने नहीं कहा था, रक्की को खाना था, रोगी से बैठा नहीं जाता। यह बात सुनते ही उसे रो आया ।

( ख ) यदि सकर्मक क्रिया का उद्देश्य और मुख्य धर्म, दोनों संप्रत्यय हैं, जैसे, मैंने रक्की को देखा, उन्हें बहुभूम्य चार पर लिखाया जाता ( सर० ) ; मिसेज पेरी बेसेंट को उसका संरक्षक बनाया गया है ( बागरी० ) ; श्री ने सहेबियों को बुझाया; बिधाता ने इसे दासी बनाया ( सत्य० ) ; तापु ने श्री को शही समझा मीर कसिम ने मुंगेर ही को अपनी राजधानी बनाया ( सर० ) ।

( ग ) जब वाक्य अथवा अकर्मक क्रियात्मक संज्ञा उद्देश्य हो जैसे, शुरू होता है कि आज पाकी गिरेगा, हो सकता है कि वह वहाँ से खिंट जाने लड़े उठना कामकरी होता है ।

( घ ) जब संप्रत्यय उद्देश्य के साथ वाक्य अथवा क्रियात्मक संज्ञा कर्म हैं, जैसे जबके ने कहा कि मैं आऊँगा, हमने नरों का बॉस पर वाक्य कहा, तुमने बात करवा न सोखा ।

५०३—यदि दो वा अधिक संयोजक समावापिकरक वाक्य 'और' संयोजक समुच्चयबोधक ) लड़े हों और उनमें मित्र-मित्र रूपों के (संप्रत्यय वा अप्रत्यय ) कर्ता-कारक आते तो बहुवा पिङ्गले कर्ता-कारक का अर्थ-पर हो जाता है; परंतु क्रिया के किंग-अचन-युक्त पचा-विषय ( कर्ता कर्म ) तथा माव के अनुसार रहते हैं, जैसे, मैं बहुत बेश-बैसातों में बूम चुका पर ( ) ऐसी आवादी नहीं नहीं देखी ( विचित्र० ) ; मैंने यह पद का दिया और ( ) एक दूसरे स्थान में जाकर धर्म-धर्मों का अर्थ-पर ले जगा ( सर० )

[ ५ —इस प्रकार की रचना से जान पड़ता है कि हिंदी में अर्थ-पर कर्ता-कारक की सकर्मक क्रिया कर्मवाच्य नहीं मानी जाती और संप्रत्यय कर्ता-कारक अर्थ-कारक माना जाता है, जैसा, कि कई-कई भाषा-समझते हैं ] ।

### सर्वनाम ।

५८०—सर्वनामों के अधिकांश अर्थ धीरे प्रयोग तथा वर्गीकरण उपर साधन के प्रकारों में लिखे जा चुके हैं । यहाँ उनके प्रयोगों का विचार करते समयों के संबंध से किया जाता है ।

५८१—पुरुषवाचक, निरवयवाचक और संवधवाचक सर्वनाम त्रिष संज्ञाओं के बहने में आते हैं उनके किंग और वचन सर्वनामों में पाये जाते हैं, परंतु संज्ञाओं का अरक सर्वनामों में होना आवश्यक नहीं है जैसे लाडुके में कहा कि मैं जाता हूँ; पिता ने पुत्रियों से पूछा कि तुम किसके माम्य से आती हो; जो न सुने लौहि का कहिये, लाडुके बाहर खड़े हैं; उन्हें भीतर बुलाओ ।

( क ) यदि अपधान पुरुषवाचक सर्वनाम व्यापक अर्थ में उदरक का कर्म होकर आये तो किया बहुत्वा पुर्विजग रहती है, जैसे, कोई रूप कहता है, कोई कृष्ण; सब अपनी बहाइ चाहते हैं क्या हुआ ? उसने जो किया सो हीक किया ।

५८२—इस काइ खेतक का वचन भूमरे के भाष्य को उद्वृपत करता अपका बुहाता है तब मूख भाष्य के सर्वनामों में नीचे लिखा परिवर्तन और अर्थ भेद होता है—

( क ) यदि मूख भाष्य का वृत्तर्त्ती अन्वयुरूप स्वयं उम भाष्य का संबन्धाता हो अपका भाष्य बुहावे जाने के समय उपलब्ध हो, तो उसके लिये निरवयवर्त्ती अन्वयुरूप का प्रयोग होगा, जैसे ( कृष्ण न कहा कि ) गोपाक ( मेरे विषय में ) कहता था कि यह ( कृष्ण ) बहा वपुर है । ( हरि ने राम से कहा कि ) गोपाक ( तुम्हारे विषय में ) कहता था कि यह (राम) बहा वपुर है ।

( ख ) पुनरुक्त भाष्य से आ उत्तम पुरुष सबनाम आता है उसका यथार्थ संबन्ध तो प्रसंग ही से जाना जाता है, पर संभाष्य में त्रिष व्यक्ति की प्रभावता होती है बहुत्वा उसी क लिये उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है; जैसे, ( १ ) विद्यामित्र ने हरिश्चंद्र से पूछा कि क्या तू ( तुम्हे ) नहीं जानता कि

मैं क्यों हूँ ? ( २ ) बाबमीकि ने राम से कहा कि तुमसे मुझसे ( अपने विषय में ) प्यार कि मैं कहीं हूँ ( पर ) मैं आपसे कहते हुए सजुबाता हूँ ।

( ग ) किसी की धीर से दूसरे का सहिष्णु सुवाने में संबादवाता दोनों के लिए विकल्प से क्रमशः अन्वयपुस्तक धीर मध्यम पुस्तक का प्रयोग करता है; जैसे, बाबू साहब ने मुझसे आपसे यह विकल्प के लिये कहा था कि हम ( बाबू साहब ) उनके ( आपके ) पत्र का उत्तर कुछ विराम से होंगे, (अपना) बाबू साहब ने मुझसे आपकी यह विकल्प के लिये कहा था कि वे ( बाबू साहब ) आपके पत्र का उत्तर कुछ विराम से होंगे ।

[ ६ — वहाँ सवनामों का अर्थ संदिग्ध रहता है वहाँ जिस व्यक्ति के लिये सवनाम का प्रयोग किया गया है, उसका कुछ भी उल्लेख कर देने से संदिग्धता मिट जाती है, जैसे, क्या तुम ( मेरे विषय में ) समझते हो कि मैं मूल हूँ ? क्या तुम ( अपने विषय में ) सोचते हो कि मैं विद्वान् हूँ ? गोपाल ने राम से कहा कि मैं तेरी मौकरी करूँगा ? ]

५८३—आहरसूचक 'आप' शब्द वाक्य में उद्देश्य हो तो क्रिया अन्वयपुस्तक बहुवचन में आती है धीर परोक्ष विधि में गांत रूप आता है, जैसे, आप गया चाहते हैं, आप वहाँ अवश्य पधारियेगा ।

अप०—धं — १२३ ( क ) ।

५८४—जब एक ही वाक्य में उद्देश्य की धीर संकेत कायेवाले सर्वनामों के संबंध-कारक का प्रयोग कर्ता को छोड़कर शेष कारकों में आनेवाली संज्ञा के साथ होता है, तब उसके बदले निज-वाचक सर्वनाम का संबंध-कारक आया जाता है; जैसे, मैं अपने घर से आ रहा हूँ आप अपने भाई के लीकर को क्यों नहीं बुलाते ? बीजे ने अपने पैरु से भविष्यवाणी कहाई कीई अपनी रही की कहा नहीं कहता, कहके से अपना काम नहीं किया जाता ।

( घ ) यदि वाक्य में दो अलग-अलग उद्देश्य हों धीर पहले उद्देश्य के संबंध से दूसरे उद्देश्य की संज्ञा का उल्लेख करना हो तो निज-वाचक के संबंध-कारक का प्रयोग नहीं होता, किन्तु पुस्तकवाचक के संबंध-कारक का प्रयोग होता है; जैसे, एक दुष्टा मनुष्य धीर उसका कष्टका बाजार का आते थे । एक महाशय आया धीर उसके पीछे उसके पीछे आया ।



( घा ) जब कर्ता अरक को बोधय्य धर्म्य कारकों में आनेवाली संज्ञा ( वा सर्वनाम ) से संबंध से किसी दूसरी संज्ञा का उल्लेख करना हो तो विकल्प से निज-वाचक धरवा पुरुषवाचक सर्वनाम का संबंध-अरक आता है। जैसे मैंने कपड़े को अपने ( वा ठसके ) पर मेज दिया तुम किसी से अपना ( उसका ) मेज मत पूछो। माझिक नीकर को अपनी ( उसकी ) माता के साथ वहीं रहने देता ।

( इ ) यदि 'अपना का संकेत वाक्य के उद्देश्य के बद्धे विपय के उद्देश्य की ओर हो तो उसका प्रयोग कर्ता अरक में आनेवाली के संज्ञा के साथ हो सकता है। जैसे अपनी बर्दा सबको माती है (उक्त०) अपना दोष किसी को नहीं दिखाइ देता ।

( ई ) सर्वसाधारण के उल्लेख में 'अपना' का प्रयोग स्वतंत्रता से होता है, जैसे अपना हाथ बगवाय, अपनी-अपनी बकली अपना-अपना राग, अपना बुक अपने साथ है ।

( उ ) बोधवाच में कभी-कभी 'अपना का संकेत बध्ता की ओर होता है, जैसे वह देखकर ( मेरा ) भी किछ बकानमान हो गया इतने में अपने ( हमारे ) नीकर आ गये ।

( ऊ ) बहुधा पुद्गेकबंध में ( कहीं 'हम लोग' के लिए मराठी वाचक' के अनुकरण पर 'अपना' शब्द भी व्यवहृत होता है ) हमारा' के प्रतिनिधि के अर्थ में 'अपना' का प्रयोग होता है जैसे यह किछ अपने ( हम लोगों के ) महाराजा का है, यह सब अपने देश में नहीं होता। प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा आशोच्य है ( भारत ), धाराम और कुरी से कटती है उल अपनी, किरतानिया ने हमको हमधों से है बचावा ( सर० ) ।

[ ६०—ऊपर ( उ ) और ( ऊ ) में दिये गये प्रयोग अनुकरणीय नहीं हैं, क्योंकि इनका प्रचार एकदेशीय है। ऐसे प्रयोगों में बहुधा अर्थ की असहता पाई जाती है, जैसे, उक्त ने अपने ( हमारे अथवा निज के ) लव विपाही मार डाले । ]

( ञ ) कहीं-कहीं आध्यात्मिक में 'आपका' के बद्धे 'अपना' आता है, जैसे महाराज अपना ( आपका ) बर कहाँ है। यह प्रयोग भी एकदेशीय है अतएव अनुकरणीय नहीं है ।

( ५ ) कमी-कमी अवधारण के लिये 'विज' के अर्थ में संज्ञा अवयव सर्वनाम के संबंध-कारक के साथ 'अपना' जोड़ दिया जाता है, जैसे, यह संमति मेरी अपनी ( विज ) की है ।

छठा अध्याय ।

### विशेष्य और संबंध-कारक ।

५८४—यदि विशेष्य विकृत रूप में आए ( अ०—३१६ ) तो आकारांत विशेष्यों में उसके लिए वचन कारक के कारण विकार होता है, जैसे, छोटे बच्चे, ऊँच घर में, छोटी बच्ची ।

५८५—विशेष्य-विशेष्य और विशेष्य का अन्वय नीचे दिये विषयों के अनुसार होता है—

( १ ) यदि अनेक विशेष्यों का एक ही विधारी विशेष्य ही तो वह प्रथम विशेष्य के द्विग-वचनानुसार बदलता है, जैसे, यह कौनसा बप-तप, तीर्थ-यात्रा होम-यज्ञ और प्रायश्चित्त है ( गुटक्य ) अपने छोटी-छोटी रिक्ता बिर्या और प्याछे रख लिये ( विभिन्न० ) उसकी छी और बचके ।

( २ ) यदि एक विशेष्य के पूर्व अनेक विशेष्य हों तो सभी विशेष्य निम्न विशेष्यों में विशेष्य के अनुसार विकार होगा, जैसे, एक खची, मोटी और गोक बड़ी बाघो, पीने और देने कटि ।

( ३ ) काल दूरता माप धन दिशा और रीति-वाचक संज्ञाओं के पहले जब संख्यावाचक विशेष्य आता है और संज्ञाओं से समुदाय-रूप बोध नहीं होता है, तब वे विकृत कारकों में भी बहुधा एकवचन ही के रूप में आती हैं, जैसे तीव्र दिन में, दो कोस का घंटा चार मन की गीत, दो तुज्जार रुपये में दो प्रकार से, तीव्र ओर से ।

( ४ ) तीव्र दिन में तीव्र दिनों में, तीनों दिव में और तीनों दिनों में—इन वाक्यांशों के अर्थ में सूत्रम अंतर है । पहले में साधारण गिनती है, दूसरे में अवधारण है और तीसरे तथा चौथे में समुदाय का अर्थ है ।

( ४ ) विशेष्य बहुधा प्रत्ययान्त संज्ञा की भी विशेषता पठनाता है और इसके अनुसार इसका रूपांतर होता है; जैसे पढ़ी आमदनीशाह; काले बोईबाधी गाड़ी ।

५८०—संबंध-कारक में अकारांत विशेष्य के समान विकार होता है । संबंध-कारक को भेदक और उसके संबंधी शब्द को भेद्य कहते हैं [ धं०—३०५ ( ४ ) ] । यदि भेद्य विरुद्ध रूप में आवे तो भेदक में भी वही विकार होता है; जैसे राजा के महस में, सिपाहियों के कपड़े, लड़के की घड़ी ।

५८१—यदि अनेक भेद्यों का एक ही भेदक हो तो वह प्रथम भेद्य भवत होता है; जैसे जाति के सर्वगुण-संपन्न वालाक और वालिकाओं का विवाह होने देना चाहिये ( सर० ) ; जिसमें शब्दों के भेद अस्तित्वा और व्युत्पत्ति का बर्णन हो ।

५८२—यदि भेद्य से केवल वस्तु की जाति का भयं दृष्ट हो ( संप्र्या की नहीं ) तो भेदक बहुवचन होने पर भी भेद्य एकवचन रहता है जैसे साधुओं का चित्त कोमल है; राजाओं की नीति विचक्षण होती है; महारमाओं के उपदेश से हम लोग धरना आचरण सुधार सकते हैं ।

( ५ ) यद्यपि भेदक में उसका मूल द्विग-वचन रहता है तथापि उसमें भेद्य का द्विग-वचन माना जाता है; जैसे लड़के ने कहा कि मेरी पुस्तकें खो गईं । इस वाक्य में 'मेरी' शब्द 'लड़का' संज्ञा के योग से उसे लीङ्गिक और बहुवचन कहेंगे ।

५८३—यदि विशेष्य-विशेष्य अकारांत हो तो विभक्ति-रहित कर्ता के साथ उसमें उद्भव विशेष्य के समान विकार होता है। जैसे सोना पीसा होता है; बास हरी है; लड़की छोटी सीखती है बात ठलठी हो गई; मेरी बात पूरी होना करिन है ।

( ६ ) यदि द्विपार्थक संज्ञा अथवा तारकशक्ति कर्तव्य का कर्ता संबंध कारक में आवे तो विशेष्य-विशेष्य उसके द्विग-वचन के अनुसार विकार से बरहता है; जैसे, दूबसा ( दुर्बला का ) पाड़ा सोघा होना भी बहुत है ( शब्द ) भाँव का तिरछा ( तिरछी ) होना अच्छा नहीं है; माता के

म्यारि ( म्यारी ) होते ही सब काम बिगड़ने लगा, पत्तों के पीछा ( पीछे ) पड़ते ही पीछों को पानी देना चाहिए ।

५३१—विषेय में आनेवाले संबंध-कारक में विषेय-विशेष्य के समान विकार होता है ( अं ५३० ), जैसे यह बड़ी तुम्हारी दिखती है, वे जोड़े राजा के मित्रों राजा को प्रजा के धर्म का होना आवश्यक है, आपका पत्रिय-कुल का ( वा पत्रिय-कुल के ) बचना ठीक नहीं है, यह भी यहाँ से घाने की नहीं ।

( अ ) यदि विषेय में आनेवाली संज्ञा उद्देश्य से मित्र क्षिग में आने, ती बसके पूर्ववर्ती संबंध-कारक का क्षिग बहुधा उद्देश्य के अनुसार होता है, जैसे, सरकार प्रजा की माँ-माय है पुलिस प्रजा की सेवक है, राबो पतिव्रता सियों की मुख्य थी, तुम मेरे गधे को ( गध का ) घर हो मैं तुम्हारी जान की ( जान का ) जंगल हो गई है ( अं ५३० ) ।

अप —संतान घर का उदाहरण है, यह बच्चा मेरे संशु की शोभा है ।

५३२—विमक्ति-रहित कर्म के परचाय आयेवाला अकारणत विषेय-विशेष्य उस कर्म के साथ क्षिग-बचन में अन्वित होता है, जैसे गाड़ी खड़ी करी, बरजी ने कपड़े ढीले बनाये, मैं तुम्हारी बात पक्की समझता हूँ ।

( अ ) यदि कर्म संप्रत्यय हो तो विषेय-विशेष्य के क्षिग-बचन कर्म के अनुसार विकल्प से होते हैं, जैसे, झोड़, होने है, तड़पकर धरती ठंडा हमको ( हिं० म्या० ), रहो बात को अपनी करते बड़ी तुम ( तथा ) बर्ही मुनि क्षपि देवताओं को बैठे पाता वा ( प्रेम० ), इन्हीं वन में अकेले मठ लीविपी ( तथा ) आप इस बच्ची को अच्छा ( अच्छी ) कर सकते हैं ?

( आ ) कर्तृवाच्य के माधे प्रयोग में [ अं —३९८— ( १ ) ] विषेय विशेष्य के संबंध से तीन प्रकार की रचना पाई जाती है, जैसे—

( १ ) तुमने मुझ हासी की जंगल में अकेली खोड़ी ( गुरुका० ) ।

( २ ) आपने मुझ भबबा को अकेली जंगल में खोड़ा ( गुरुका० ) ।

( ३ ) ( मीने ) इसको ( बच्ची की ) इतना बड़ा बनाया ( सर० ) ।

इस विषय क अन्य उदाहरण

( १ ) तुमने मुझे वन में लजी अकेली ( प्रेम ) ।

- ( २ ) रघु ने नंदिनी को अपने सामने खड़ा देखी ( १५० ) ।  
 ( ३ ) ईनि ( इन्हें ) ऊन सीधे कर सिये ( १५० ) ।  
 ( ४ ) इसने सब गावियों को खड़ा किया ।

इस रचनाओं में विशेष विशेषण धीर किया का पृष्ठता एतदंतर अर्थ मयुर बाण पड़ता है; जैसे, रघु ने नंदिनी को अपने सामने खड़ा देखी अथवा रघु ने नंदिनी को अपने सामने खड़ा किया । अनधिक विचार के बिने सिद्धांत का कोई आधार नहीं है ।

[ ६०—इस प्रकार के विशेषणों को कोई-कोई वैवाचक्य क्रियाविशेषण मानते हैं ( अ०—४२७—६० ), क्योंकि इनसे कभी-कभी क्रिया की विशेषता सूचित होता है । वहाँ इनसे ऐसा अर्थ पाया जाता है, वहाँ इन्हें क्रिया विशेषण मानना ठीक है, जैसे देवों को सीधे लगाओ । ]

सातवाँ अध्याय ।

कालों क अर्थ और प्रयोग ।

( १ ) संमाध्य मविष्यत्-काल

११३—संमाध्य मविष्यत्-काल बीसे किले अर्थों में आता है—

( अ ) संमाधमा—आज ( आजकल ) पानी बरसे। ( कहीं ) वह बीर न आये, हो न हो। राम जाने ।

इस अर्थ में संमाध्य-मविष्यत् के साथ बहुधा 'शान्त' ( कदाचित् ), 'कहीं', आदि आते हैं ।

( आ ) निराशा अथवा परामर्श—अन में क्या करूँ ? हम यह कहती किसको वूँ ?

यह अर्थ बहुधा परमवाचक वाक्यों में होता है ।

( इ ) इच्छा, आशीर्वाद, शाप—मैं यह बात राजा को सुमाऊँ, आपका पत्रा हो। इतर आपकी कहती करूँ, मैं चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की याद लेवे ( शुद्ध )। गात्र परै उन लोगन के ।

( ई ) कर्त्तव्य, आवश्यकता तुमको कब योग्य है कि वन में बसो इस काम के लिये कोई उपाय धरकर किया जाये ।

( ब ) उद्देश्य, हेतु—पूसा करो जिसमें बात बन जाय, इस बात कब बर्बा हमने इसलिये की है कि उसकी शक्ति बुर हो जाय ।

( क ) विरोध—तुम हमें देखो व देखो, हम तुम्हें देखा करें, ये कुम भी कहें, चाहे जी हो, अनुभव ऐसे विरह का क्यों न करे बेहाश ।

( ल ) उत्प्रेक्षा ( तुच्छता )—तुम ऐसी बातें करते हो मानो कहीं के राजा होओ, कवि ने तुम्हारे अपराध को मूख अपनी कन्या पसं मेज ही है जैसे कोई चोर के पास अपना बग मेज है, जैसे किसी को लुब्ध छुहारों से हठकर हमारी पर लगे ऐसे तुम रनिवास की क्षिपों को बोध इस गौबारी पर प्राप्त हुए हो ( शकु ) ।

( म ) अविश्वस्य—जब मैं बोलीं तब तुम दूरत बढकर भागना, जो कोई पहाँ धावे उसे धाने दो ।

इस धर्म में क्रिया के साथ बहुधा सर्वत्र-वाचक सर्वनाम अथवा क्रिया विशेष्य आता है ।

( ने ) सांकेतिक संभावना—तुम चाहो तो धनी भगवा मित्र जाय, धनही हो ती हम धर जायें, जो तू एक बेर उसको देखे तो फिर ऐसी न करे ( शकु० ) ।

इस धर्म में जो ( चगर, पदि )—तो से मिले हुए वाक्य आते हैं ।

५३४—कविता की कथाओं में संभाव्य-भविष्यत् बहुधा सामान्य वर्तमान के धर्म में आता है । कभी-कभी इससे मूलकाल के धन्वास का भी बोध होता है । उदा०—बदल-यवत संपति-सखिज मन-सरोज अदि जाय ( सत ), उतर हैत सुाकीं विनु मारे ( राम ) बरु बंदमहि प्रसे व राहु ( तथा ), देक न काई सके खड़े हो इस मकर से ( क० क० ) बया पीकर हिरन मारै ( कदा ), एक मास रिह भाये धायै ( कदा० ), सुजी उई मैं रोज मनेरे ( हि धं ), सुजे रहैं सखिपौं भित धेरे ( तथा ) चबके गुर गुर होइ पुराना ( राम ) ।

## ( २ ) सामान्य भविष्यत् काल ।

५१२—इस काख से प्रकारम कार्य कपवा दण के अतिरिक्त नीचे छिपे कार्य सूचित होते हैं—

( अ ) शिरस्य की कवयता—येछा पर और कहीं न मिलेगा जहाँ तुम जाओगे वहाँ में जो जाईगी, उस अपि का रूप बधा क्यो होगा ।

( आ ) प्रार्थना—प्रत्येक शक्तों में यह अर्थ पाया जाता है; जैसे, क्या आप कछ वहाँ चलेगें ? क्या तुम मेरा इतना काम कर दोगे ? क्या मे मेरी बात सुनेंगे ?

( इ ) संभावना—बह सुभ कमी न कमी मिलेगा । किसी किसी तरह बह काम हो जायगा । कबहुँ तो हीनामाय के भ्रुक पड़ेगी काम ।

( ई ) संकेत—यदि रोगी की सेवा होगी, तो बह अच्छा हो जायगा अगर बहा चलेगी तो गरमी कम हो जायगी ।

( क ) संवेद, उदासीनता—होना क्रिया का सामान्य भविष्यत् काख हुआ इस अर्थ में आता है, जैसे, हृष्य गोपाय का भाई होगा, बीकर इस मय बाजार में होगा, क्या उनके कदकी है ? होगी; क्या बह आदमी गल है ? होगा; कान जाने, अगर बह जायगा तो जायगा नहीं तो जाईगा ।

## ( ३ ) प्रत्यक्ष विधि ।

५१३—इस काख के अर्थ ये हैं—

( अ ) अनुमति प्रत्येक—उत्तम पुरुष के दोनों बचकों में किसी की अनुमति कपवा परामर्श ग्रहण करने में इस काख का उपयोग होता है। जैसे, क्या मैं जाऊँ ? हम लोग यहाँ बैठें ?

( आ ) संमति—उत्तम पुरुष के दोनों बचकों में कमी कमी इस काख से भीता की संमति का बोध होता है। जैसे, चखें, उध रोगी की परीक्षा करें । हम लोग मोहन को वहाँ पुत्रावें ।

दिक्रमा क्रिया से इस प्रयोग में कमी-कमी बचकी सूचित होती है। जैसे, देखें, तुम क्या करते हो । देखें, बह कहाँ जाता है ।

( ६ ) आज्ञा और उपदेश—वहाँ बैठो, किसी को गाड़ी मत दो, वे मन हरि-विमुक्त को संग ( चुर० ), गौकर घसी वहाँ से जाये ।

( ७ ) धार्मिक—आप मुझ पर कृपा करें, नाम, मेरी इतनी विन्ती मानिये ( सख० ), माय करहु बाबक पर कोहू ( राम ) ।

( ८ ) आग्रह—अब खबो, दर होती है । उठो, उठो, जमि खोबत रहहु ।

[ सु०—आग्रह के अर्थ में बहुधा 'तो तही' क्रियाविशेष्य वाक्यांश जोड़ दिया जाता है, जैसे खतो तो तही, आप बैठिये तो तही, वह आवे तो तही । ]

५६०—आग्रह के अर्थ में इस अर्थ के अल्प प्रत्यय बहुवचन का, अथवा 'हूये'—प्रत्ययांत क्य का प्रयोग होता है। जैसे महाराज इस मार्ग से आर्ये आप वहाँ बैठिये, नाम मेरी इतनी विन्ती मानिये । इन दोनों रूपों में पहला क्य अधिक शिक्षाचार सूचित करता है ।

( अ ) आग्रह-सूचक विधिग्रह का क्य कभी-कभी संभाव्य भविष्यत् के अर्थ में जाता है, जैसे, मन में आती है कि सब जोड़-काड़ वहाँ बंद रहिये, ( शकु ), मनुष्य-जाति की क्षियों में इतनी दमक कहाँ पाह्ये ( तथा ), देखिये, इसका फल क्या होता है ? अगर दिने के आसपास गंधक और फिट्ठरी बिखर वीजिये तो ( कैसी ही हवा खबे ) तिया व हुयेगा ( अ०—३८१—३—६ )

इन बधाहरणों में 'रहिये' भावनात्मक और 'पाह्ये', 'देखिये' तथा 'बीजिये' कर्मवाच्य हैं ।

( आ ) "बाहिये" भी एक प्रकार का कर्मवाच्य संभाव्य भविष्यत्-वाचक है, क्योंकि इसका उपयोग आग्रह-सूचक विधि के अर्थ में कभी नहीं होता, किन्तु इससे वर्तमानकाल की आकरवकता ही का बोध होता है ( अ०—३९१ ) ।

( इ ) "खेना" और "बधना" क्रियाओं का प्रत्यय विधिग्रह बहुधा उदासीनता के अर्थ में विस्मयादि-बोधक के समान प्रयुक्त होता है जैसे, खो में जाता हूँ, खो में यह खबा, मीने कहा कि खो, अम कुछ देरी नहीं है, खबो, आपने यह काम कर लिया ।

### ( ४ ) परोक्ष विधि ।

५६८—परोक्ष विधि से आज्ञा, उपदेश, मार्गता, आदि के साथ भविष्यत्



काष्ठ का अर्घ्य पाया जाता है, जैसे, कब मेरे यहाँ आना, हमारी छीम ही सुधि खींचियो, ( भारत ), कौजो सदा धर्म से शासन, स्वल्प प्रजा के मत् हरियो ( सर० ) ।

५११—“घाप” के साथ परोक्ष विधि में यांत आहरसूचक विधि का प्रयोग है, जैसे, कब घाप नहीं आइयेगा । घाप आइयो शुभ प्रयोग नहीं है ।

१०—निषेध क विधे विधिकार्यों में बहुधा न, नहीं और मत् तीनों अर्थों का प्रयोग होता है पर “घाप” के साथ परोक्ष विधि में और उत्तम तथा अन्य पुरुषों में ‘मत्’ नहीं आता । “न” से साधारण निषेध “मत्” से कुछ अधिक धार ‘नहीं’ से और भी अधिक निषेध सूचित होता है, जैसे नहीं म जाना, पुत्र ( पृथ्वी ), पुत्री, अब बहुत काम मत् कर ( राज० ), प्राण्य देवता, वाक्यों के अन्त में से नहीं बट होना । ( सत्य० ), घाप नहीं म आइयेगा ( अ०—१३९ ) ।

### ( ५ ) सामान्य संकेतार्थ काल

१ १—यह काल बोधे किये अर्थों में आता है—

( अ ) किया की अस्तित्व का संकेत ( तीनों कार्यों में ), जैसे, मेरे एक भी माई होता, तो मुझे बड़ा सुख मिलता ( मृत ) । जो उसका काम न होता तो वह अभी न आता ( वर्तमान ) । यदि कब घाप मेरे साथ चलते, तो वह काम अवरुध हो जाता । ( मविष्यत् ) ।

[ अ —सामान्य संकेताथ-काल में बहुधा दो वाक्य परि-तो से जुड़े हुए आते हैं और दोनों वाक्यों की क्रियाएँ एक ही काल में रहती हैं । कभी कभी मुख्य वाक्य की क्रिया सामान्य मृत अथवा पूर्ण-मृत में आती है, जैसे, जो तुम ठठके पाव खाते तो अन्ध था । यदि मेरा नौकर न आता तो मेरा काम हो गया था । ]

( आ ) अस्तित्व इच्छा—जैसे, हा । जगमोहनसिंह, घाम तुम जीवित होते कुछ दिव के परचात् नींद नित्र अंतिम सोते ।

१०१—कभी-कभी सामान्य संकेतार्थ काल से, सामान्य मविष्यत् काल के अर्थ में इच्छा सूचित होती है, जैसे, मैं चाहता हूँ कि वह मुझसे मिलता

(=मिछे) । यदि आप कहते (=कहें) तो मैं उसे बुझाता (=बुझाऊँ) । इसके लिए यही उपाय है कि आप बहरी आते ।

१०३—भूतकाव की किसी घटना के विषय में संदिग्ध का उत्तर देने के लिये सामान्य संकेतार्थ काव का उपयोग यहुना प्रत्यक्षक और निपेक्षक वाक्य में होता है, जैसे, अर्जुन का क्या सामर्थ्य थी कि हमारी बहिन को ले आता ? मैं इस पेड़ को क्यों ब सौंभती ?

## ( ६ ) सामान्य वर्तमान-काल

१. ४—इस काव के अर्थ ये हैं—

( अ ) घोड़ने के समय की बरखा—जैसे धमी पानी बरसता है । गाड़ी आती है । वे आपकी बुझाते हैं ।

( आ ) ऐतिहासिक वर्तमान—भूतकाव की बरखा का इस प्रकार बर्णन करवा माधो वह प्रत्यक्ष हो रही हो, जैसे तुलसीदासजी ऐसा कहते हैं । राजा हरिश्चन्द्र मंत्रियों सहित आते हैं । लोक बिकर सब रोवहिं ( राम० )

( इ ) स्थिर सत्य—साधारण विषय किन्ना सिद्धांत बताने से अर्थात् प्रेसी बात कहने में जो सदैव और सत्य है इस काव का प्रयोग दिया जाता है, जैसे, सूर्य पूर्व में उद्व होता है । पत्नी धर्म लेते हैं । सोना पीला होता है । आत्मा अमर है । “बिता से सब आशा रोगी निर्र जीवन को जो जोतो है” ( सर ) इवली कथे होते हैं ।

( ई ) वर्तमान-काल की अपूर्वता, जैसे पंडितजी स्नान करते हैं ( कर रहे हैं ) । मैं धमी बिकता हूँ ।

( उ ) अम्बास—जैसे हम बड़े लड़के उन्हे हैं । सिपाही रात को पहरा देता है । गाड़ी दोपहर को आती है । बुद्धित-दोष-गुण गवहिं ब साधू ( राम )

( ऊ ) आसन्नभूत—आपको राजा समा में बुझाते हैं । मैं धमी अयोध्या से आता हूँ ( सत्य ) । क्या हम सेरी जाति-योति पड़ते ? ( शकु )

( ए ) आसन्न भविष्यत्—मैं तुम्हें धमी देखता हूँ । अब तो वह मरता है । जो गाड़ी अब आती है ।

( ५ ) संकेत-वाचक वाक्यों में भी सामान्य-वर्तमान का प्रयोग होता है। जैसे, पीटी की मौत घाती है तो पर निकलते हैं। जो मैं सबसे कुछ कहता हूँ तो वह अयस्य हो जाता है।

( ६ ) बोधवाचक की कविता में कभी-कभी सामान्य मणिष्यत् के अर्थों होना क्रिया के योग से बने हुए सामान्य-वर्तमान का प्रयोग करते हैं, जैसे कहाँ जहाँ है वह धारा ( पृक्षांत० ) यह रचना अब अयस्यित हो रही है ( अ ३५५, ३—सा )

### ( ७ ) अपूर्ण मृत-काल

१०५—इस काळ से नीचे किंचि अर्थ सूचित होते हैं—

( अ ) मृतकाळ की किमी क्रिया की अयस्य रण—किसी जगह क्या होती थी। चिन्ताही थी वह रो रोकर।

( ब ) मृतकाळ की किसी धारण में एक काम का बार-बार होना—  
कहाँ-कहाँ रामचंद्रजी जाते थे, कहाँ-कहाँ आदाम में अब धापा करते थे। वह जो-जो करता था उसका उत्तर में होता जाता था।

( ३ ) मृतकाळिक अयवास—पहले वह बहुत सोता था। मैं उसे जितना पानी पिखाता था, उतना वह पीता था।

( ४ ) कब के साथ इस काळ से अयोग्यता सूचित होती है। जैसे वह कहाँ कब रहता था ? राजा की बलि इस पर कब खर सकती थी ? वह रात्र पूरा ( उसे ) कब धारता था ?

( ५ ) मृतकाळीय उद्देश्य—मैं आपके पास जाता था। वह कपड़े पहिनता ही था कि नीकर ने उसे पुकारा।

[ ६०—इस अय में क्रिया के साथ बहुत 'ही' अयस्य का प्रयोग होता है। ]

( ७ ) वर्तमान काळ की किसी बात को पुहराने में हमका प्रयोग होता है, जैसे, हम चाहते थे ( और फिर भी चाहते हैं ) कि आप मेर साथ रहें।

## ( ८ ) समाख्य वर्तमान-काल ।

१०१—इस काल के अर्थ ये हैं—

( अ ) वर्तमान-काल की ( अपूर्ण ) क्रिया की संभावना—कहाविए, इस गाड़ी में मेरा भाई आता हो । मुझे घर है कि नहीं कोई देखता न हो ।

[ १०—आदर्शका व्यक्त करने के लिये इस काल के धातु बहुधा 'य' का प्रयोग करते हैं । ]

( आ ) अभ्यास ( स्वभाव वा अर्थ )—ऐसा बोना जाओ की धिं धिं में इस मीठ आता हो । हम ऐसा घर चाहते हैं जिसमें भूप आती हो ।

( इ ) मूल धातुवा भविष्यत्-काल की अपूर्णता की संभावना—अब धातु आये, तब मैं भोजन करता होंगे । अगर मैं खिलता होंगे तो मुझे न बुझाया ।

( ई ) उद्येवा—धातु ऐसे बोलते हैं मानो मुख से फूट पड़ते हों । ऐसा शब्द हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो ।

( उ ) सांकेतिक वाक्यों में भी बहुधा इस काल का प्रयोग होता है; जैसे, अगर वे आते हों, तो मैं उनके लिये रसीरुं का प्रबंध करूँ ।

[ ११—उपयुक्त वाक्यों में कभी-कभी उदाहरण क्रिया 'होना' मूलकाल के रूप में आती है; जैसे, अगर वह आता हुआ, तो क्या होगा ? ]

## ( ९ ) सदिग्ध वर्तमान-काल ।

१०२—यह काल नीचे लिखे अर्थों में आता है—

( अ ) वर्तमान-काल की क्रिया का सदिग्ध—गाड़ी आती होगी । वे मेरी सब कथा जानते होंगे । तेरे लिये गीतमी अङ्कुराती होगी ।

( आ ) लर्ण—धातु पक्षियों से बलती होगी । यह तेरा पक्षान से निकल जाता होगा । धातु सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करते होंगे ।

( इ ) मूलकाल की अपूर्णता का सदिग्ध—अब समय में वह काम करता होंगेगा । अब धातु उनके पास गये तब वे बिरुदी खिलते होंगे ।

( ई ) उदासीयता वा तिरस्कार—वहाँ पकितनी आते हैं ?—आते होंगे ।

## ( १० ) अपूर्ण संकेतार्थ काल

१ ८—इस काल में नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—  
 ( अ ) अपूर्ण क्रिया की प्रसिद्धता का संकेत—अगर वह काम करता होता, तो अब तक चतुर हो जाता। अगर हम कमाते होते तो वे बातें क्यों सुननी पड़तीं।

( आ ) वर्तमान का भूतकाल की ओर अतिवृद्धा—मैं चाहता हूँ कि वह अक्षय पड़ता होता। उसकी वृद्धा थी कि मेरा माई मेरे साथ काम करता होता।

( इ ) कर्मी-कमा पूर्ववाक्य का खोर कर दिया जाता है और केवल उत्तरवाक्य बाधा जाता है जैसे इस समय वह अक्षय पड़ता होता ( = अगर वह बीता रहता तो पढ़ने में मन लगाता )।

## ( ११ ) सामान्य भूतकाल

१ १—सामान्य भूतकाल नीचे लिखे अर्थ सूचित करता है—

( अ ) बोलने या लिखने के पूर्व क्रिया की अवर्तन अर्थ—जैसे, विद्यालय में इस बुक पर मैं विद्योग दिया। गाड़ी सभरे आई। प्रसन्न कहि दुःख सह उठि आई।

( आ ) आसन्न-भविष्यत्—आप आत्रिय, मैं अभी आया, अब वह बेसीत मरा।

( इ ) संचितिक अर्थवा सर्वव्यापक वाक्यों में इस काल से साधारण या निश्चित भविष्यत् का बोध होता है। जैसे अगर तुम एक भी कदम बने ( बड़ोगे ), तो तुम्हारा बुरा हाल होगा। ज्योंही पाकी कमा ( खेला ), त्योंही हम भागे ( भागेंगे )। जहाँ मैंने कुछ कहा, वहाँ वह दुरंत उठकर चला।

( ई ) अर्थात्, संशोभन अर्थवा स्थिर साथ सूचित करने के लिये इस काल का उपयोग सामान्य-वर्तमान के समान होता है जैसे, ज्योंही वह उठा ( उठता है ) त्योंही उसने पाकी मँगा ( मँगाया है )। जो, मैं वह खला। जिसने न दी गाँजे की कड़ी ( खा नहीं पाया है )। पढ़ा जिन्होंने ईद प्रमाकर, काय-बखट हुए पचाकर।

[ सू०—( १ ) 'होना' क्रिया के सामान्य भूतकाल के निपेक्षवाचक रूप से वर्तमान-काल की इच्छा सूचित होती है जैसे, आब मेरे कोर बहिन म हुर्द, मही तो आब मैं भी उतके पर बाकर फाटा ( गुरका )। मेरे पास तलवार न हुर्द, मही तो उन्हें अम्बाम का स्वाद बला देता ।

( २ ) होना, ठहरना, कहलाना के सामान्य भूतकाल से वर्तमान निश्चय सूचित होता है; जैसे, आप लोग सामु हुए ( ठहरे वा कहलाने ) आपको कोरु कमी नहीं हा सकती । ]

( ३ ) 'धामा' क्रिया के भूतकाल से कमी-कमी तिरस्कार के साथ वर्तमानकालिक अर्थसा सूचित होती है; जैसे, वे आये हुनिया भर के होशियार । हाता को बिकवाकर बोवा आये बिरवामिब बचे ( घर० ) ।

( ४ ) प्रश्न करने में समझना, देखना, आदि क्रियाओं के सामान्य भूत से वर्तमान-काल का बोध होता है; जैसे, वह आपको वहाँ भेवता है—समझे ? देखा, कैसी बात कहता है ?

[ सू० कहरना में मानना क्रिया का सामान्य-भूत वर्तमान काल सूचित करता है जैसे, माना कि ठसे त्वग लेने की इच्छा न हो । ]

( ५ ) संकेतार्थक वाक्यों में हय काल से बहुधा सामान्य-सविष्यत् काल का अर्थ सूचित होता है जैसे यदि मैं वहाँ गया भी तो कोई काम नहीं है । यह काम चाहे उसने किया, चाहे उसके माई ने किया, पर यह पूरा न होया ।

( १२ ) आसन्न भूतकाल ( पूर्ण वर्तमान-काल ) ।

५१०—इस काल के अर्थ ये हैं —

( अ ) किसी भूतकालिक क्रिया का वर्तमान-काल में पूरा होना, जैसे, बार में एक साजु आये दे । उसने कमी नहावा है ।

( आ ) ऐसी भूतकालिक क्रिया की पूर्णता जिसका प्रयास वर्तमान काल में पाया जाये; जैसे बिहारी कबि ने सतसहं लिखी है । हवानन्द-सरस्वती ने अग्नेय का अनुवाद किया है । सारतर्पण में अनेक दासी राजा हो गये हैं ।

( ६ ) बैठना खैटना सोना, पढ़ना उठना पढ़ना मरना आदि शरीर व्यापार अथवा शरीरस्थिति-सूचक क्रियाओं के आसन्नमूत्र-काल के रूप से बहुधा वर्तमान स्थिति का बोध होता है। जैसे राजा बैठे हैं ( बैठे हुए हैं ) मरा बोधा लेख में पढ़ा है ( पढ़ा हुआ है )। अथवा मरना है।

[ ६ — पयाप में ऊपर क वाक्या क मूलकालिक कुरंत स्वतंत्र विरोध पय है और उपका प्रयाग विवेक के साथ हुआ है। ऐसी अवस्था में उन्हें क्रिया के साथ मिलाकर आसन्न मूलकाल मानना मूल है। इन क्रियाओं के आसन्न मूल काल क शुद्ध उदाहरण न हैं—राधा अर्घ्य बैठे हैं ( अर्घ्य के अथ तक कहे से )। लड़का अमा खाता है। ]

( ७ ) मूलकालिक क्रिया की आहुति सूचित करण में बहुधा आसन्न मूलकाल आता है। जैसे, जब-जब अनाहुति हुई है तब-तब अकाळ पढ़ा है। जब जब वह मुझे मिला है तब तब उसमें बोझा दिया है।

( ८ ) किसी क्रिया का अन्वयास—जैसे उसने कर्क का कथ्य किया है। आपने कई पुस्तकें खिखी है।

### ( १३ ) पूर्य भूतकाल

१११—इस काल का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

( अ ) बोलने वा लिखने के बहुत ही पहिले की क्रिया। जैसे सिध्द्वर ने हिंदुस्तान पर चढ़ाई की थी। अथवापन में हमने अंगरेजी सीखी थी। सन् १८५९ में इस देश में अकाळ पढ़ा था। आज सहर में आपके पहलौ गया था।

[ ६०—मूलकाल की निकटता वा दूरता अथवा और आसन्न अथवा अनी आती है। वखा की दृष्टि से एक ही समय कमी-कमी निकट और कमी-कमी दूर प्रतीत होता है। आठ बजे सवरे आनेवाले कितनी आदमी से, दिन के आरह बजे, वृहदा आदमी इत अथवा का आप मानकर बह कर सकता है कि तुम सहर आठ बजे आये थे और फिर उत अथवा का आर मानकर बह बह भी कह सकता है कि तुम सवरे आठ बजे आये हो। ]

( आ ) दो मूलकालिक घटनाओं की सम-अधीनता—जे घोड़ी ही दूर से जे कि एक और महाशय मिये। क्या पूरी न होने पाई थी कि सब लोग गये।

( ६ ) सांकेतिक वाक्यों में इस वाक्य से आसिद्ध संकेत सूचित होता है; जैसे, यदि बीकर एक हाथ धीरे मारता, तो चोर मर ही गया था। जो तुमने मेरी सहायता न की होती तो, मेरा काम पिंगल हुआ था।

( ६ ) यह वाक्य कभी-कभी आसघमूत के अर्थ में भी आता है; जैसे, अभी मैं आपसे यह कहने आया था कि मैं धर में रूँगा ( आया था= आया हूँ )। हमने आपको इसलिये बुलाया था कि आप मेरे प्रश्न का उत्तर दें।

### ( १४ ) समाव्य भूतकाल

११२—इस वाक्य से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

( अ ) भूतकाल की (पूर्व) क्रिया की संभावना—जैसे, हो सकता है कि उसने यह बात सुनी हो। जो कुछ तुमने साधा हो उसे साफ साफ कहो।

( आ ) आशंका का संदिग्ध—कहीं चोरों ने उसे मार न खाया हो; विवाह की बात सखी ने हँसी में न कही हो। पढ़ना बाकि होइ मय मीखा ( राम० )।

( इ ) भूतकालीन उल्लेख में—वह मुझे ऐसे बधाता है मानों मैंने कोई भारी अपराध किया हो। वह वैसी बातें बजाता है मानो उसने कुछ भी न देखा हो।

( ई ) सांकेतिक वाक्यों में भी इस वाक्य का प्रयोग होता है; जैसे, यदि मुझमें कोई दोष हुआ हो तो आप उसे चमा लीजियेगा। अगर तुमन मेरी किताब की हो तो सच-सच क्यों नहीं कह देते।

### ( १५ ) सदिग्ध भूतकाल ।

११३—इस वाक्य के अर्थ ये हैं—

( अ ) भूतकालिक क्रिया का संदिग्ध—जैसे, उसे हमारी चिट्ठी मिली होगी। तुम्हारी धर्ती बीकर से कहीं रक्ष ही होगी।

( आ ) अनुमान—कहीं पापी परसा होगा, क्योंकि ईश्वर हवा बच रही है। रोहितारण भी अब इतना बड़ा हुआ होगा। जादू साहब कब उद्वेगुर पहुँचे होंगे।



( इ ) मिश्रणा—श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धीमे उठाया होगा ? कबव मुनि ने क्या संदिग्ध भेजा होगा ?

[ ६०—यह प्रयाग बहुधा प्रत्यक्षवाचक वाक्यों में होता है । ]

[ ६१ ] तिरस्कार का घृणा—पंडितजी ने एक पुस्तक लिखी है—विनी होगी ।

[ ६२ ] सांकेतिक वाक्यों में इस काळ से संभावना की कुछ मात्रा सूचित होती है। जैसे यदि मैंने आपकी पुराई की होगी तो ईश्वर मुझे दंड देगा । अगर उसने मुझे बुझाया होगा तो मुझसे उसका कुछ काम अवश्य होगा ।

### ( १६ ) पूर्ण संकेतार्थ-काल ।

११४—इस संकेतार्थ काळ से नीचे किये अर्थ सूचित होते हैं और इसका उपयोग बहुधा सांकेतिक वाक्यों में होता है—

( अ ) पूर्ण क्रिया का अस्तिज संकेत—जैसे, जो मैंने अपनी लपकी ल मारी होती, तो अचक्र पा । यदि तुने भगवान् को इस मंदिर में बिठाया होता, तो वह अचक्र क्यों रहता ।

[ ६०—कभी कभी पूर्य संकेताथ-काल दोनों सांकेतिक वाक्यों में आता है और कभी-कभी केवल एक में । ]

( आ ) मूलकाळ की अस्तिज इच्छा—जब वह तुम्हारे पास आने से, तब तुमने उन्हें बिठवाया तो होता । तुमने अपना काम एक बार तो कर लिया होता ।

[ ६१—इस अर्थ में बहुधा अचकारय-बोधक क्रियाविरोधस्य 'तो' का प्रयोग होता है । ]

## आठवाँ अध्याय

## क्रियार्थक संज्ञा ।

११५.—क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग साधारणतः भाववाचक संज्ञा के समान होता है, इसलिए इसका प्रयोग बहुवचन में नहीं होता; जैसे, कहना सहज है पर करना कठिन है ।

( अ ) इभ संज्ञा का कर्मांतर आकारांत संज्ञा के समान होता है; और जब इसका उपयोग विशेषण के समान होता है, तब इसमें कभी-कभी द्विवचन और लक्ष्य के अर्थ विकार होता है । यह संज्ञा बहुधा संबोधन कारक में नहीं आती ( अं०—१०२—अ ), ( ११६ ) ।

( आ ) क्रियार्थक संज्ञा का उद्देश्य संबंधकारक में आता है; परंतु अप्राधिवाचक कर्ता की बिल्कि बहुधा ह्रास रहती है जैसे शत्रुके का जाना टीक नहीं है । हिंदुओं को गाय का मारा जाना सहज नहीं होता । रात को पानी बरसना ठक हुआ । पिछले उदाहरण में पानी का बरसना भी कह सकते हैं ।

[ अ — दो भूतकालिक क्रियाओं की समकालीनता बताने के लिए पहली क्रिया 'धा' के साथ क्रियायक संज्ञा के रूप में आती है जैसे, उसका नहीं पहुँचना या कि बिट्ठा आ गई । ]

( इ ) संज्ञा के समान क्रियार्थक संज्ञा के पूर्व विशेषण और परचाय संबंध-सूचक अन्वय आ सकता है; जैसे, सुंदर बिल्ले के बिले बसे हुआम भिखा ।

( ई ) सकर्मक क्रियार्थक संज्ञा के साथ उसका कर्म और अपूर्ण क्रियार्थक संज्ञा के साथ उसकी पूर्ति आ सकती है और सब प्रकार की क्रियाओं से बनी क्रियार्थक संज्ञाओं के साथ क्रियाविशेष्य अथवा अन्वय कारक आ सकते हैं; जैसे, यह काम जल्दी करने में लाभ है । मंत्री के अत्यात्मक राजा बन जाने से देश में गड़बड़ी मच गई । बूढ़ को सुख कर दिखाना कोई हमसे सीक जाय । पत्नी का पति के साथ बिता में भस्म होना हिंदुओं में माथीव काह से बड़ा घाटा है ।

( ५ ) किसी किसी क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग प्रातिवाचक संज्ञा के समान होता है जैसे गावा (व्याप्त), जाना (अभोजन) सुखकामार्थों में), प्रपना (=सोता) ।

( ६ ) जब क्रियार्थक संज्ञा विधेय में आती है तब उसको प्रातिवाचक उद्देश्य संप्रदान-कारक में और अप्रातिवाचक उद्देश्य कर्ता कारण में रहता है जैसे मुझे जाना है। लड़के को प्रपना काम करना था। इस सगुण से क्या फल होता है। जो होना या सो हो किया।

११६—जब क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग विद्भन्व से विरोधय के समान होता है उस समय उसके विग-बचन कर्ता अथवा कर्म के अनुसार होते हैं, मुझे दबाई पीनी पड़ेगी। जो बात होनी थी सो हो गई। मुझे सबके काम सिखाने होंगे। इन उदाहरणों में क्रमशः पीना, होना और सिखाना ही मुख्य हैं। होनी=मनवाना पीनी=पानोपा और सिखाने=शिक्षणीया।

११७—क्रियायुक्त संज्ञा का संप्रदान-कारक बहुधा निमित्त वा प्रपोजन के अर्थ में आता है पर कभी-कभी उल्टी विमर्श का अर्थ हो जाता है, जैसे वे उन्हें लेने को गये हैं। मैं इसी लड़कों के मारने को ठकवार थावा हूँ (गुरका)। आपसे कुछ माँगने आये हैं।

( ७ ) बोधवाचक में बहुधा वाक्य की मुख्य क्रिया से कभी दुरई मिथार्थक संज्ञा का संप्रदान-कारक रूपका वा विरोधता का अर्थ सूचित करता है, जैसे जाने को तो मैं नहीं जा सकता हूँ सिखाने को तो वह यह बोल दिया सकता है।

( ८ ) 'कहना' क्रियार्थक संज्ञा का संप्रदान-कारक प्रत्ययता अथवा उदाहरण के अर्थ में आता है जैसे कहने को तो उनके पास बहुत कम है पर कर्म ही बहुत है। उन्होंने कहने को मेरा काम कर दिया।

( ९ ) 'होना' क्रिया के साथ विधेय में क्रियार्थक संज्ञा का संप्रदान-कारक तत्परता के अर्थ में आता है, जैसे जान कर जाने को है। वह जाने को हुआ।

११८—विरोधय के अर्थ में क्रियार्थक संज्ञा विधेय में नहीं के साथ संबन्ध-कारक में आती है, जैसे वह नहीं जाने को नहीं। मैं नहीं से नहीं ठटने का।

[ ६०—इन उदाहरणों में मुख्य क्रिया का बहुधा लोप रहता है, और क्रियायक संज्ञा के लिंग वचन उद्देश्य के अनुसार होते हैं । ]

६१—क्रियार्थक संज्ञाओं का उपयोग कई एक संयुक्त क्रियाओं में होता है जिसका विशेषण प्रयोज्य हो सकता है ( ६०—५०१-४०१ ) ।

( अ ) क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग परोक्षविधि के अर्थ में भी किया जाता है—[ ६०—३८९ ( ४ ) ] ।

( आ ) वया अथवा स्वभाव सूचित करने में बहुधा मुख्य वाक्य के साथ आगेवाले विधेयवाचक वाक्यों में क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग होता है। जैसे, कुँवरजी का अपूप रूप क्या कई ? कुँवरजी ने नहीं खाता, न खाया, न पीना, न किसी से कुछ कहाँ न सुनना । इन उदाहरणों में क्रियार्थक संज्ञा कर्ता कारक में आती जा सकती है और उसके साथ 'अच्छा लगता है' क्रिया अभ्याहत समझी जा सकती है ।

### नवीं अध्याय

#### कृदंत

६२—क्रियार्थक संज्ञा के सिवा हिंदी में जो और कृदंत हैं वे कर्पांतर के आधार पर दो प्रकार के होते हैं—( १ ) विधारी ( २ ) अविधारी । फिर इनमें से प्रत्येक के अर्थ के अनुसार कई भेद होते हैं, यथा—

( १ ) विधारी { ( १ ) वर्तमानअधिक कृदंत  
( २ ) मृतअधिक कृदंत  
( ३ ) कर्तृवाचक कृदंत

( २ ) अविधारी { ( १ ) अपूर्ण क्रियाधोतक कृदंत  
( २ ) पूर्णक्रियाधोतक कृदंत  
( ३ ) तात्पर्यक कृदंत  
( ४ ) पूर्वअधिक कृदंत

## [ १ ] वर्तमान-कालिक कूर्द्व

१२१—इस कूर्द्व का उपयोग विशेष्य वा संज्ञा के समान होता है और इसमें धातुगत शब्द की बाह् विकार होते हैं; जैसे खलती बबड़ी देखकर, पहला पाणी, मरतों के घागे, भागतों के पीये हुएने को ठिनने का सहाया ।

( अ ) वर्तमानकालिक कूर्द्व विशेष्य में धातु कर्ता वा कर्म की विशेषता ( वया ) दृष्टकाता है जैसे कोई शूद्र गाप को मारता हुआ धाता है । सिपाही ने क-बोर भागतें हुए दले । वृसय बोका जीता हुआ धातु धाया । छियाँ गीत गाती हुईं गए । सवक पर एक धावनी आता हुआ दिखाई देता है । ई कर्क को दौड़ाता धाईगा ।

( आ ) आठ समय धातु कर्क, मरती बेरा, जीते जा छिठी बार धादि उदाहरणों में वर्तमान कालिक कूर्द्व का प्रयोग विशेष्य के समान हुआ है । धाकार के स्थान में ए होने का कारण यह है कि उस विशेष्य के विशेष्य में विभक्ति रुद्धार है । इस उदाहरणों में समय कर्क, दरा इत्यादि को संज्ञार्थ पदार्थ विशेष्य नहीं है, किन्तु केवल एक प्रकार की लक्षणा० से विशेष्य मानो जा सकता है । जाते=जान के लीटल=धीरने क । इस विचार से वहाँ जाते, धीरने, धादि संबंधकारक हैं और संबंध-कारक विशेष्य का एक रूपांतर ही है ।

( इ ) कभी कभी वर्तमानकालिक कूर्द्व विशेष्य विशेष्य-विध्य होन पर क्रिया की विशेषता बतकाता है; जैसे हिरन कीकड़ी मरता हुआ भागा । हाथी मूमता हुआ बबता है । बबड़ी धातुकी हुई बोकती है । इस धर्म में वर्तमानकालिक कूर्द्व की द्विपक्ति भी होती है; जैसे पायी धानेक वशों में मूमता-मूमता लीय छियाँ रसोद् करते-करते मक गईं ।

## [ २ ] भूतकालिक कूर्द्व

१२२—धर्मक क्रिया से बना हुआ भूतकालिक कूर्द्व कर्तृवाचक और सर्मक क्रिया से बना हुआ कर्मवाचक होता है और दोनों का प्रयोग विशेष्य के समान होता है; जैसे रमा हुआ बोका लेव में पका है एक धामवनी जखी हुई बबड़ीयाँ बटोरया वा, दूर से आया हुआ घुसाधिर ।

• लक्षणा शब्द की दृष्टि ( शक्ति ) से बिचले उक्त क्विती ध्य से मिलता सुत्रता ध्य दृष्टित होता है और उक्तका हृदय परपर है ।

( अ ) वह कर्तव्य विधेय-विशेष्य होकर भी आता है; जैसे, वह सब से फुल्ला नहीं समाता। वहाँ एक पल्लव विद्धा हुआ था। आप तो मुझसे थोड़े गये वीते हैं इसका सबसे ऊँचा भाग सदा बर्क स हींका रहता है। उसके दो एक पक्ष में कुछ फल लुनी हुए देते। बार घबराया हुआ भाया।

( भा ) कमी कमी सत्कर्मक मूलकर्मिक कर्तव्य का उपयोग कर्मवाचक होता है और तब उसका विशेष्य उसका कर्म नहीं किन्तु कर्ता अथवा वृत्त कर्म्य होता है। कर्म विशेष्य के पूर्व आकर विशेष्य का अर्थ पूर्ण करता है, जैसे, काम सीखा हुआ बौद्ध, इनाम पाया हुआ ब्रह्म, पर कथा हुआ विष्णु। ( सत्य० ) नीचे नाम दी हुई पुस्तकें ( सर० )। यह विद्वत्ता प्रयोग विशेष्य प्रचलित नहीं हैं।

[ ६ — किसी किसी की उमति में ये उदाहरण सामासिक शब्दों के हैं और हमें मिलाकर लिखना चाहिए, जैसे इनाम-पाया हुआ, नाम दी हुई। ]

( इ ) मूलकर्मिक कर्तव्य का प्रयोग बहुधा संज्ञा के समान भी होता है और इसके साथ कमी-कमी 'विधा' का योग होता है, जैसे, किये का कब। जलसे पर बोध। मरने को मारना। बिना विचारों की कर, सा पीने पड़ता। उसके इसको विना केड़े न छोड़ते।

( ई ) मूलकर्मिक कर्तव्य बहुधा अपनी संबंधी संज्ञा के संबंधकारक के साथ आता है; जैसे मेरी किसी पुस्तकें। कपास का बना कपड़ा। घर का सिखा हुआ ( अ०—५२० )।

### ( ३ ) कर्तव्यवाचक कृत्त ।

६२६—इस कर्तव्य का उपयोग संज्ञा अथवा विशेष्य के समान होता है और विद्वत्ता प्रयोग में इससे कमी-कमी आसन्नमविषय का अर्थ सूचित होता है, जैसे, किसी लिखनेवाले की बुझाओ। मूढ सोचनेवाले मनुष्य आरत नहीं पाता। गाड़ी आनेवाली है।

( अ ) और और कर्तव्यों के समान सत्कर्मक क्रिया से बना हुआ यह कर्तव्य भी कर्म के साथ आता है और यदि यह अपूर्ण क्रिया से बना हो तो इसके साथ इसकी पूर्ति आती है; जैसे, धड़ी बचानेवाला कृ को सदा बतानेवाला; यज्ञ हीनवाला।

## ( ४ ) अपूर्ण क्रिया-घोषक कृदन्त

६२४ — यह कृदन्त सदा अविधारी ( एकारांत ) रूप में रहता है और इसका प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है; जैसे उसको बर्णन करते करते ( = रहने में ) दो महीने हो गये। मुझे सारी रात तलफती थी। यह कहते मुझे बड़ा हर्ष होता है।

( अ ) अपूर्ण क्रिया-घोषक कृदन्त का उपयोग बहुधा तप होता है, जब कृदन्त और मुख्य क्रिया के अन्तरेण मिश्र-मिश्र होते हैं और कृदन्त का अर्थ ( कमी-कमी ) छल रहता है जैसे, दिन रहते यह काम हो जायगा। मेरे रहते कोई काम नहीं कर सकता। बर्णन से लौटते रात हो जायगी। बात कहते दिन जाते हैं।

( आ ) जब वाक्य में कर्ता और कर्म अलग-अलग विभक्ति के साथ आते हैं तब उसका वर्तमानकालिक कृदन्त उनके पक्ष अविधारी रूप में आता है और उसका उपयोग बहुधा क्रियाविशेषण के समान होता है; जैसे उसने आते हुए मुझसे यह कहा था। मैंने उन कियों को लौटते हुए देखा। मैं बीर को इस पक्षकृदन्तों हुए सुन रहा था।

( इ ) अपूर्ण क्रियाघोषक कृदन्त की बहुधा विरक्ति होती है और उससे विरयता का बोध होता है; जैसे बात करते-करते उसकी बोली बन्द हो गई, मैं डरते डरते उसके पास गया हँसते हँसते प्रसन्नतापूर्वक देवता के आशों में अपने सारे सुखों का अतिशय कर देना ही परम धर्म है।

यह मरते मरते बचा—यह आगमग मरने से बचा।

( ई ) विरोध सूचित करने के लिए अपूर्ण क्रिया-घोषक कृदन्त के परभाव 'मी' अस्मय का वाग क्रिया आता है जैसे, मंगलसाधन करते मी जो विपत्ति घान पड़े तो संतोष करना चाहिए, यह धर्म करते हुए मी संभवोग से, बर्णन हो गया, आकर मरते मरते मी सब न बोला।

( उ ) अपूर्ण क्रियाघोषक कृदन्त का कर्ता-कारक में कमी स्वतंत्र होकर, कमी संभवोग-कारक में और कमी सर्वप्रकारक में आता है; जैसे मुझे यह कहते आनंद होता है, दिन रहते यह काम हो जायगा आपके होते कोई कठिनाई न होगी, उसने बचते हुए यह कहा।

( क ) पुनरुक्त अपूर्ण क्रियाघोषक का, कर्ता कमी-कमी हुए रहता है, और तब यह कर्तृत्व स्वतंत्र वरग में आता है; जैसे होते-होते अपने अपने पते सबने छोड़े, चखते-खहते उन्हें एक गाँव मिखा ।

( ख ) वर्तमानकालिक कर्तृत्व और अपूर्ण क्रियाघोषक कर्तृत्व कमी-कमी समान अर्थ में आते हैं, जैसे, पार्वती को पुस्तक पढ़ते देखकर उसके शरीर में आग लग गई ( सर ) तुम इस बकबती की सेवा-योग्य बाइक और जी को बिकता देखकर टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? ( सत्य ) ।

[ सू०—वर्तमानकालिक कर्तृत्व के पुस्तिग-बहुवचन का रूप अपूर्ण क्रियाघोषक कर्तृत्व के समान होता है, पर दोनों के अर्थ और प्रयोग भिन्न भिन्न हैं, जैसे, छद्म पर शैला और बालक फिरते हुए दिखाई देते हैं । ( वर्तमान कालिक कर्तृत्व ) । ( सर ) । उन रहते उरसाह दिखायेया यह जीवन ( अपूर्ण क्रियाघोषक कर्तृत्व ) ।

### पूर्ण क्रियाघोषक कर्तृत्व ।

१२५—यह कर्तृत्व भी सदा अविच्छिन्नी रूप में रहता है और क्रिया विशेष्य के समान उपयोग में आता है; जैसे, राजा को मरे दो वर्ष हो गये । उनके कहे क्या जाता है ? सोना जानिये कैसे आदमी जानिये पसे ।

( अ ) इस कर्तृत्व का उपयोग भी बहुधा तभी होता है जब इच्छा कर्ता और मुख्य क्रिया का कर्ता भिन्न-भिन्न होते हैं; जैसे पहर दिन खड़े हम छोग बाहर निकले, कितने एक दिन बीते राजा फिर बच को गये ।

( आ ) सकर्मक पूर्ण क्रियाघोषक कर्तृत्व से क्रिया और उद्देश्य की दशा सूचित होती है, जैसे, एक कृपा मुँह में रोटी का टुकड़ा डबाये आ रहा या हमारी बड़की कृता लिये आती बी । यह कीच महा अर्थकर सेप, अंग में भमूल पीते, एको तक जहा छटकये क्रिष्ण भुमाता बछा आता है । ( सत्य ) ) वह एक मीठर रूपसे है । सौपे मुँह में मीठक डबाये या ।

( इ ) निश्चय या अविशयता के अर्थ में इस कर्तृत्व की विशिष्टि होती है; जैसे, वह मुसाये-मुसाये मरि आता; बड़की बैठे-बैठे उन्ना गई, बैठे-बिठाये यह आप्त कहीं से आई ? सिर पर बोम झाड़ू-लाड़े वह बहुत दूर चला गया ।



( ई ) अपूर्ण और पूर्ण क्रियाघोतक कर्तृत्व बहुधा कर्ता से संबंध रखते हैं, पर कभी-कभी उनका संबंध कर्म से भी रहता है और यह बात उनके धर्म और स्वाध्याय से सूचित होती है; जैसे मैंने कबके को खोलते हुए देखा, तिसाही ने चोर को मास लिये हुए पकड़ा; इन वाक्यों में कर्तृत्वों का संबंध कर्म से है। इससे स्वतंत्र हुए कौनको सुझाया, मैंने सिर भुंकाये हुए राजा को प्रणाम किया। ये वाक्य यद्यपि कर्तृत्वों काय पढ़ते हैं, ती भी इनमें कर्तृत्वों का संबंध कर्ता से है।

( घ ) पूर्ण क्रियाघोतक कर्तृत्व का कर्ता अपूर्ण क्रियाघोतक कर्तृत्व के कर्ता के समान, धर्म के अनुसार अलग अलग कारकों में जाता है; जैसे इनके मरे न रोइये, मुझे पर जोड़े एक युग बीठ गया। वस्तु बने गाड़ी चार्ह।

( ङ ) कभी-कभी इस कर्तृत्व का प्रयोग 'बिना' के साथ होता है; जैसे बिना आपके आये हुए वह काम न होया।

( च ) अपूर्ण और पूर्ण क्रियाघोतक कर्तृत्व बहुधा कर्मबाध्य में नहीं आते। यदि आकरकता हा तो कर्मबाध्य का धर्म कर्मबाध्य ही से बिना जाता है, जैसे, वह मुलाये ( कृपाये गये ) बिना यहाँ न आया। गाते गाते ( गाये जाते-जाते ) बुके नहीं वह। ( एकांत० )।

### [ ६ ] तात्कालिक कर्तृत्व।

१११—इस कर्तृत्व से मुख्य क्रिया के समय के साथ ही होतेवाली धरवा का बोध होता है; और यह अपूर्ण क्रियाघोतक कर्तृत्व के अंत 'में' ही जोड़ने से बनता है; जैसे, बाप के मरते ही कड़की ने पूरी आदतें सीटीं, सुरज निकलते ही वे लोग भागे, इतना सुनते ही वह भाग-बगूचा हो गया, जबका सुम्ने देखते ही ब्रिप जाता है।

( अ ) इस कर्तृत्व की पुनरुक्ति भी होती है और उससे काव की अर्थ स्थिति का बोध होता है; जैसे, वह मूर्ति देखते-ही-देखते जोप हो गई, आपकी लिखते ही-लिखते कई बडे बप जाते हैं।

( आ ) इस कर्तृत्व का कर्ता, धर्म के अनुसार, कभी-कभी मुख्य क्रिया का कर्ता और कभी-कभी स्वतंत्र होता है; जैसे उससे आते ही उपग्रह मसाया उसको आते ही उपग्रह मच गया।

## [ ७ ] पूर्वकाशिक कूर्दंत । -

१२०—पूर्वकाशिक कूर्दंत मनुष्य क्रिया के बहरेय से संबंध रखता है जो कर्ता-कारक में आता है जैसे, मुझे देखकर वह चला गया, काशी से कोई बड़े पंडित यहाँ आकर ठहरे हैं। वेस ने उस मनुष्य की मचाई पर प्रसन्न होकर वे तीनों कुवहाविर्पा उभे दे रीं ।

( अ ) कभी-कभी पूर्वकाशिक कूर्दंत कर्ता-कारक को छोड़ अन्य कारकों से संबंध रखता है, जैसे आगे बसकर उन्हें एक आदमा मिखा; माई को देखकर उसका मन शांत हुआ ।

( आ ) यदि मुख्य क्रिया कर्मवाच्य हो तो पूर्वकाशिक कूर्दंत भी कर्म वाच्य होना चाहिये पर व्यवहार में इसे कर्तृवाच्य ही रखते हैं; जैसे, घाटी छोड़कर एकसी कर हो गई ( छोड़कर=छोड़ी जाकर ), उसका माई मँसूर एकड़ कर थककर के दरबार में लाया गया ( सर ); ( पकड़कर=पकड़ा जाकर ) ।

[ १०—'कविता-रत्नाप' में पूरुकाशिक क्रिया के कर्मवाच्य का यह उदाहरण आया है —

धिर निच परिवच पूछे जाकर  
बोले यम की ठठठे वाहर ।

इस वाक्य में 'पूछे जाकर क्रिया का प्रयोग एक विरोध अर्थ ( पूछना=परचाह करना ) में व्याकरण से शुद्ध माना जा सकता है, पर उसके साथ 'परिवच कर्म का प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि 'परिवच पूछे जाकर' व संयुक्त क्रिया ही है और न समास है । इसके सिवा यह कर्मवाच्य की रचना के विद्वत् भी है । ( अं०—१५९ ) ]

( इ ) कभी-कभी पूर्वकाशिक कूर्दंत के साथ स्वतंत्र कर्ता आता है जिसका मुख्य क्रिया से कोई संबंध नहीं रहता; जैसे, चार बजकर राम मिमर हुए; पार्च जाकर पार्च बरये की बचत होगी; आठ घड़ी पेठ होकर यह कुत्त कुत्त । इस तरह से परिभाषी का दुष्ट मिष्टकर शिष्ट क्या पर हो गया है; ( शकु० ); हानि होकर पौ हमारी दुईठा होती नहीं ( भारत० ) । ( अं०—५११—घ ) ।

- ( ई ) कभी-कभी स्वतंत्र कर्ता कुछ रहता है और पूर्वाधिक कर्तव्य स्वतंत्र दशा में धाता है, जैसे धागे जाकर एक गाँव दिखाई दिया। समय पाकर उसे गर्भ रहा। सब मिलाकर इस पुस्तक में कोई दो ही पृष्ठ हैं।
- ( उ ) कभी-कभी पूर्वोक्त क्रिया पूर्वाधिक कर्तव्य में गृहस्थ जाती है, जैसे, वह ठठा और उठकर बाहर गया घड़ें बहकर वर्तन में जमा होता है और जमा होकर जम जाता है।
- ( ङ ) बहना, करना, इटना और होना क्रियाओं के पूर्वाधिक कर्तव्य कुछ विशेष धर्मों में भी धाते हैं, जैसे विद्य से बटकर बिते की बहाई क्रीडिप ( सर ) ( अर्थिक विशेष्य )।

क्रिया सक्रम से इटकर है, ( दूर, कि वि )।

वे शाकी करके प्रसिद्ध है ( नाम से, सं सू० )।

तुम प्राण्य होकर संस्कृत नहीं जानते ( होने पर भी )।

( ने ) एक बार बंगाल में होकर किसी गाँव को जाते थे ( से )

( ञ ) लेकर—यह पूर्वाधिक कर्तव्य काक, संख्या अथवा और स्थान का आरंभ सूचित करता है, जैसे, सबेरे से लेकर सन्धि तक, पौष से लेकर पचास तक। हिमाचल से लेकर सैतुबंन-नामदेवर तक, राजा से लेकर रंक तक। इन सब धर्मों में इस कर्तव्य का प्रयोग स्वतंत्र होता है।

[ ५ —ईगता 'लहया' क अनुकरण पर कभी-कभी हिंदी में 'लेकर' विवाह का कारण सूचित करता है जैसे, धातुकता धर्म को लेकर कर बल्लेवे होते हैं। यह प्रयोग सिद्ध अर्थमत्त नहीं है। ]

दशमो अध्याय।

संयुक्त क्रियाएँ।

११८—जिन अक्षरारण्य-बोधक संयुक्त क्रियाओं ( बोधना, कइना, रोना, ईसना आदि ) के साथ अक्षरारण्य के धर्म में 'धाता' क्रिया धाती है उनके साथ बहुधा प्रायिवाचक कर्ता रहता है और वह संप्रदान-कारक में धाता है,

कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं, जैसे बातें न होने पाईं, बहरी के मारे में बिदूरी न खिलने पाया । तात न देखन पावईं तोही ( राम० ) ।

( घ ) पूर्वबधिरु कर्त्त के योग से बधी हुई सकर्मक अथवाशुभोचरु क्रियाएँ बहुधा कर्मवि अथवा माभेप्रयोग में आती हैं; जैसे उसने अपना कपब पूरा न कर पाया या ( सर० ) । कुछ लोगों न बधी कठिनाई से बीमान को एक दृष्टि देख पाया ।

( ङा ) यदि उपर ( घ ) में लिखी क्रिया अकर्मक हो तो कर्त्तरिप्रयोग होता है, जैसे, विदुष बाबू की पाठ पूरी न हो पाई की ( सर० ) ।

३३८—बीजे लिखी ( सकर्मक वा अकर्मक ) संपुक्त क्रियाएँ ( कर्त्तवाच्य ) में भूतकालिक कर्त्त से बने हुए कालों में सर्वत्र कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं ।

( १ ) आरंभबोधक—कड़का पढ़ने लगा । कड़कियाँ काम करने लगी ।

( २ ) निष्पत्ताबोधक—हम बातें करते रहे । वह मुझे दुखाता रहा है ।

( ३ ) अन्त्यासबोधक—धों वह हीन दुःखिणी बास्ता रोया की दुख में उस रात ( हिं प्र ) । बारह बरस बिबली रहे, पर भाइ ही खैरु क्रिये ( मारत० ) ।

( ४ ) शक्तिबोधक—कड़की काम न कर सकी, हम उसकी बात कठिनाई से समझ सक ये ।

( ५ ) पूर्णताबोधक—बीकर बीठ प्यइ सुझ । की रत्तोई बना सुखे है ।

( ६ ) वे नामबोधक क्रियाएँ बी देना वा पढ़ना के योग से चलती हैं; जैसे, चोर घोड़ी दूर दिखाई दिना; वह शम्भू ही ठीक-ठीक न सुनाई पदा ।

### द्वारहवाँ अध्याय

#### अध्याय ।

३३९—सर्वव्यापक क्रियाविशेषण क्रिया की विशेषता बताने के लिये वाक्यों को भी जोड़ते हैं; जैसे जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि; जय-तक जीता, तब-तक सीमा ।

१४०— जब तक क्रिया-विशेषक बहुधा संभाव्य भविष्यत् तथा दूसरे कालों के साथ आता है, धार क्रिया के पूर्व विशेषवाचक प्रथम्य आता आता है। जैसे जब तक मैं न आऊँ, तब तक तुम यहाँ रुहरा। जब तक मैंने उनसे रुपये की बात नहीं निकाला तब तक वे मेर यहाँ आने रहे।

१४१— जब 'महा' का धर्म काक वा अशक्या का होता है तब उसके साथ बहुधा धर्तुर्ण भूतकाक आता है; जैसे, हम काम में जहाँ पहुँच दिन अगत न वहाँ धर घट लगते हैं; जहाँ वह मुझसे सीखते थे वहाँ धर मुझे पिताते हैं।

१४२— न कही मत। 'न' सामान्य वर्तमान, धर्तुर्णभूत धार आसक्य भूत ( एष्यवर्तमान ) कालों को छोड़कर बहुधा प्रथम्य कालों में आता है। 'नहीं' संभाव्य भविष्यत्, क्रियार्थक संज्ञा तथा दूसरे कृत, विधि धीर संके सार्थ कालों में बहुधा नहीं आता। 'मत' केवल विधिकाल में आता है। उदा—जबका वहाँ न गया; भाँकर काम न आयेगा मेर साथ कीई न रहे हम कहीं रुहर नहीं सकत, बहका' न खेना धनु से कैया अधर्म धर्म है ? ( क क० )। उसका धर्म मत पूराधा ( सत्य० )।

१४३—संवाचक समुच्चयबोधक समान शब्द-भेद संज्ञाओं के समान कारक धीर क्रियाओं के समान धर्म कालों को आधते हैं। जैसे आरु, गीमो धीर विगत की तरकारी धीर दाख-आत। इकताक वास्तव में, मजदूरी के हाथ में एक बड़ा ही विद्वत धीर कार्य सिद्ध करानेवाला इधियार है। उन कालों में इसका मूल हा स्वागत किया होगा धीर बड़े धन से दिन आये होंगे।

( घ ) यदि वाक्य की क्रियाओं का संबंध मित्र-मित्र कालों से हो तो वे मित्र-धिय कालों में रहकर यी संपोचक समुच्चयबोधक के द्वारा जाड़ी जा सकनी हैं; जैसे, हम धर में रहा हूँ, रहता हूँ धीर रहूँगा; वह धरने आया था धीर शाम को जाता आबता।

१४४—संकेतवाचक समुच्चयवाचक बहुधा संभाव्य धार संकेतार्थ कालों में आते हैं जैसे, जो मैं न आऊँ तो तुम चले जाना। यदि समय पर पाबी धरकरता, तो समय बट न होती।

१४५—'बाहे-बाहे' संभाव्य भविष्यत् काल के साथ धीर 'भाओ' बहुधा संभाव्यवर्तमान के साथ आता है; जैसे धार बाहे दरबार में रहे, बाहे मन

( इ ) यदि प्रसंग से धर्म स्पष्ट हो सके तो बहुधा कर्ता धीर संबंध कारक का शोष कर देते हैं; जैसे, उसका बाप बड़ा धनकाय था, ( ) घर के भारी सारा हाथी मूमा करता था ( ) बन के मरु में सबसे धैर-विरोध रखता था, ( ) बीरसिंह की पॉव ही बरस का शोष के मर गया ( गुटकर० ) ।

( ई ) संबंधकारक क्रियाविशेष्य और संबन्धकारक समुच्चयबोधक के साथ 'होना', 'बनना' 'पह सकता', आदि क्रियाओं का उद्देश्य—जैसे वहाँ तक ( ) ही बहती धाना, जो मुझमें ( ) ब हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकलता, जैसे ( ) बना, ऐसे उन्हें प्रसन्न रखन का प्रयत्न आप सत्त्व करते रहे ।

( उ ) 'जायना' क्रिया के सभास्य भविष्यत्-काळ में धन्यपुरुष कर्ता—जैसे तुम्हारे मन में ( ) न जाने क्या सोच है, ( ) क्या जाने किसीके मन में क्या है ।

( ङ ) छोटे-छोटे प्रत्ययकारक तथा धन्य वाक्यों में धन्य कर्ता का अनुमाय क्रिया के रूप से हो सकता है तब उसका शोष कर देते हैं; जैसे, क्या ( ) वहाँ जाते हो ? हाँ, ( ) जाता हूँ । धन्य तो ( ) मरते हैं ।

( च ) व्यापक धर्मवाची प्रकर्मक क्रियाओं का कर्म लुप्त रहता है, जैसे, बहिन तुम्हारी ( ) प्यार रही है । कवच ( ) पह सकता है, पर ( ) किस नहीं सकता । बहिरो ( ) सुनै, गूँग पुनि ( ) बोले ।

( छ ) विशेष्य अथवा संबंधकारक के परचात् 'जात' 'हाथ', 'सगति', आदि धर्मवाचे विशेष्य का शोष हो जाता है, जैसे दूरमें की क्या ( ) बसाइ इसमें राजा भी कुछ नहीं कर सकता वहाँ चारों इन्दी हों वहाँ का ( ) क्या कहना, सुधरी ( ) बिगई बेगही, बिगरी ( ) फिर सुधरी न हमारी और बनकी ( ) धपड़ी निभी ।

( ए ) होना क्रिया के वर्तमान-काळ के रूप बहुधा कहावतों में, विशेष वाचक विशेष्य में तथा उद्गार में लुप्त रहते हैं; जस दूर के डीह सुहावने ( ) में वहाँ जाने का नहीं ( ), महाराज की जप ( ), आपकी प्रबाम ( ) ।

( ए ) कमी कमी स्वरूपबोधक समुच्चयबोधक का खोप विकल्प से होता है; जैसे बीकर बोझा ) महात्मा, पुरोहितजी आते हैं। क्या जाने ( ) किसी के मन में क्या भरा है। कविता में इसका खोप बहुधा होता है; जैसे, जपन जपेज, भा अमरप आन्। तब ईसिके पिय सौ कइो बसौ दिदीया हीम्ह ।

( षो ) यदि 'अपि' और उनके नित्य-संबंधी समुच्चय-बोधकों का भी कमी-कमी खोप होता है; जैसे ( ) आप नुरा न मानें तो एक बात कई, वह जो वेसे दुःख में है ( ) हमें कोई छुड़ानेवाला चाहिये। ( अर्थात् ) 'अपि', इसलिये आपि समुच्चयबोधक भी कमी-कमी लुप्त रहते हैं; जैसे, ताँबा जहान स विकसता है, इसका रंग ज्ञात होता है। मरे मर्यों पर भीव पकी है, इस समय बहकर उनकी चिता मेंच चाहिये।

१५४—अपूर्व अप्पाहार वाले क्लिष्टे स्थानों में होता है—

( अ ) एक वाक्य में कर्ता का उल्लेख कर दूसरे वाक्य में बहुधा उसका अप्पाहार कर देते हैं; जैसे, हम लोग राजकुंरी कम्पा नहीं पाछते और ( ) कमी किसी के साथे-ससुरे नहीं कहजात। आप अपने-अपने कहकों को सेइँ और ( व्यय आदि की कुछ चिन्ता न करें )।

( आ ) यदि एक वाक्य में समस्तप कर्ताकारक वाले और दूसरे में अप्रत्यय तो पिछले कर्ता का अप्पाहार कर दिया जाता है जैसे, मैं बहुत देह-देहांतों में भूम जुका हूँ, पर ( ) ऐसी आबादी कहीं नहीं देखी ( विचित्र ) मैंने बह बह त्याग दिया और ( ) एक दूसरे स्थान में जाकर धर्म धर्मों का अप्पपच करने लगा। ( सर )।

( इ ) यदि अनेक विशेषणों का एक ही विशेष्य हो और उससे एकवचन का बोध हो तो उसका एक ही बार उल्लेख होता है जैसे काली और नीली स्पाही। गोक और मुंदर सेहरा।

( ई ) यदि एक ही क्रिया का अन्वय कई उद्देश्यों के साथ हो तो उसका उल्लेख केवल एक ही बार होता है; जैसे राजा रावी और राजकुमार राजधानी को छूट आये; वेह में कल और पूछ दिखाइ देते हैं।

( उ ) अनेक मुख्य क्लिष्टाओं की एक ही सहायक क्रिया हो तो उसका उपयोग केवल एक बार अंतिम क्रिया के साथ होता है, जैसे मित्रता हमारे

१५३—इसके सिवा दूसरे धारकों में आगेबाह्य शब्द उन शब्दों के पूर्व आते हैं जिससे उनका संबंध रहता है, जैसे, मेरे मित्र की बिछी कई दिव में धाई, यह गाड़ी बंवाई से कलकत्ते तक जाती है ।

१५०—विशेष्य संज्ञा के पहले धीर क्रिया विशेष्य ( वा जिवाविशेष्य वाक्यांश ) बहुधा क्रिया के पहले आते हैं, जैसे, एक सेहिया किसी नदी में ऊपर की तरफ पानी पी रहा था, राजा आज नगर में आये हैं ।

१५१—अवधारण्य के छिपे ऊपर लिखे क्रम में बहुत कुछ अंतर पड़ जाता है, जैसे—

( अ ) कर्ता धीर कर्म का स्थानांतर—बड़के को मीने नहीं दखा । पड़ी कोई बटा खे गया ।

( आ ) संप्रदान का स्थानांतर—तुम यह बिट्ठी गंजी को देना । उसने अपना नाम सुफको नहीं पताथा, ऐसा कहना तुमको कथित न था ।

( इ ) क्रिया का स्थानांतर—मीने हुआया एक को धीर धापे दस । तुम्हारा पुत्र है बहुत धीर पाप है थोड़ा । बिककर है देदे जीने को । कपड़ा है तो सस्ता पर भीरा है ।

( ई ) क्रिया-विशेष्य का स्थानांतर—आज सबरे पानी गिरा, किसी समय हा बटोही साथ-साथ आते थे, हृष्यादि ।

१५२—समावाचिकात् शब्द सुबन् शब्द के पीछे आता है धीर पिछले शब्द में विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे, कच्छ, तेरा भाई बाहर खड़ा है अवाची सुवार को हुआओ ।

१५३—अवधारण्य के छिपे भेदक धीर भेद के बीच में संज्ञाविशेष्य जिवा विशेष्य आ सकते हैं, जैसे, मैं तेरा क्योंकर भरोसा करूँ, बिधाता का भी तुम पर कुछ बस न खड़ेगा ।

( अ ) यदि भेद क्रियार्थक संज्ञा हो तो उसके संबंधी शब्द उसके धीर अर्थक के बीच में आते हैं, जैसे, राम का बल को आसा स्थिर हुआ, धापका इस प्रकार आते बनाना डीक नहीं ।

१५४—अर्थवाचक धीर उसके अनुसंधी सर्वनाम के कर्माद् कारक बहुधा वाक्य के आदि में आते हैं जैसे उसके पास एक पुस्तक है जिसमें



हवताओं के विप्र हैं, वह नीकर क्यों है जिसे आपने मेरे पास भेजा था ।  
जिससे आप बूया करते हैं उस पर हमने लोग प्रेम करते हैं ।

११५—प्रत्ययवाचक क्रिया-विरोधय धीर सर्वनाम के अन्वय के द्विये मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के बीच में भी आ सकते हैं; जैसे, वह जाता क्या था ? हम क्यों जाँचेंगे ? ऐसा क्या क्यों चाहिए ? व होता क्या है ? वह चाहता क्या है ?

( अ ) प्रत्ययवाचक अन्वय 'क्या' बहुधा वाक्य के आदि में धीर कभी कभी बीच में अथवा अंत में आता है; जैसे, क्या गाड़ी था गाँ ? गाड़ी क्या था गाँ ? गाड़ी था गाँ क्या ?

( आ ) प्रत्ययवाचक अन्वय 'क' वाक्य के अंत में आता है; जैसे आप क्यों चलेगे न ? राजपुत्र तो कुण्ड से है न ? भका देखेंगे न ? ( सत्य ) ।

११६—तो भी, ही, भर, तक और मात्र वाक्यों में उन्हीं शब्दों के परभाव आत है जिस पर इनके कारण अन्वय होता है; धीर इनके स्वामीतर न वाक्य में अन्वय आता है; जैसे हम भी गाँव का आते हैं, हम तो गाँव को आते हैं हम गाँव को तो आते हैं ।

( अ ) 'मात्र' को दोष दूसरे अन्वय मुख्य क्रिया धीर सहायक क्रिया के बीच में भी आ सकते हैं धीर 'माँ' तथा 'तो' को दोष शेष अन्वय संज्ञा धीर विभक्ति के बीच में आ सकते हैं । ही कर्तृवाचक कर्तृत्व तथा सामान्य अविषय कथ में प्रत्येक के पहले भी आ जाता है जैसे, हम क्यों आते माँ हैं । लड़का अपने मित्र तक की बात नहीं मानता, अब उन्हें बुझाया भर है, वह काम आप ही ने ( अथवा आपने ही ) किया है ऐसा तो होने ही गा, हम क्यों जाने ही जाते थे ।

( आ ) 'केवल' संबंधी शब्द के पूर्व ही में आता है ।

११७—संबंधवाचक क्रियाविरोधय, कहीं-तहाँ कब-तब, जैसे-जैसे, आदि बहुधा वाक्य के आरंभ में आते हैं जैसे, कब मैं बोझूँ तब तुम तुरंत ककर आगियो । जहाँ तेरे सींग समारें तहाँ जा ।

११८—विषयवाचक अन्वय 'न' 'नहीं' धीर 'मत' बहुधा क्रिया के पूर्व आत हैं; जैसे, मैं न आऊँगा, वह नहीं गया, तुम मत आओ ।

१७४—प्रत्येक शब्द-भेद की व्याख्या में जो-जो बर्तन आकरपक है वह नीचे लिखा जाता है—

( १ ) संज्ञा—प्रकार, किंग, बचन, कारक संबंध ।

( २ ) सर्वनाम—प्रकार, प्रतिबिहित संज्ञा किंग बचन कारक, संबंध ।

( ३ ) विशेषण—प्रकार, विशेष्य, किंग, बचन, विचार ( हो तो ) ।  
सम्बन्ध ।

( ४ ) क्रिया—प्रकार, वाच्य, अर्थ, काळ पुरन, किंग, बचन, प्रयोग ।

( ५ ) क्रियाविशेषण—प्रकार, विशेष्य, विचार, ( हो तो ) संबंध ।

( ६ ) समुच्चयबोधक—प्रकार, अन्वित शब्द, वाच्योप अथवा वाच्य ।

( ७ ) सम्बन्धसूचक—प्रकार, विचार, ( हो तो ) सम्बन्ध ।

( ८ ) विस्मयादिबोधक—प्रकार संबंध ( हो तो ) ।

[ ६०—शब्दों का प्रकार कताते समय उनके व्युत्पत्ति संबंधी मेटकद, यौगिक और योगकद—भी बताया जावक है । ]

१७५—अब पद-परिचय के कई एक उदाहरण दिये जाते हैं । पहले सरल वाक्य-रचना के और फिर कठिन वाक्य-रचना के शब्दों की व्याख्या किली जायगी ।

### ( क ) सहज वाक्य-रचना के शब्द ।

( १ ) वाक्य—वाह ! क्या ही आनन्द का समय है !

वाह—कद विस्मयादिबोधक अल्पव, आरवर्षबोधक ।

क्याही—यौगिक विशेषण, अवधारण बोधक प्रकारवाचक सर्वनामिक, विशेष्य 'आनन्द' अधिकारी शब्द ।

आनन्द का—संज्ञाकारक संज्ञा, भाववाचक, पुर्विग, एकवचन, संबंध-कारक संबंधी शब्द 'समय' ।

समय—कद संज्ञा, भाववाचक, पुर्विग एकवचन, प्रभाव कर्ताकारक, 'ही' क्रिया से अन्वित ।

हे—मूळ अकर्मक क्रिया रिपतिबोधक, कर्तृवाच्य, विरयवार्थ, सामान्य वर्तमान-काळ, अन्वपुरन, पुर्विग, एकवचन 'समय कर्ता-कारक से अन्वित, कर्तारि प्रयोग ।

( २ ) बचन—जो अपने बचन को नहीं पाबता वह विरवास के योग्य नहीं है ।

जो—एक सर्वनाम, संबंधवाचक 'मनुष्य' संज्ञा को धोर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुंलिंग एकवचन, प्रथम कर्ताकारक 'पाबता' क्रिया का ।

अपने—एक सर्वनाम निरूपवाचक, 'जो' सर्वनाम को धोर संकेत करता है, अन्य पुरुष पुंलिंग, एकवचन, संबंधकारक संबंधी शब्द 'बचन' को, विभक्तिपुरुष विशेष्य के कारण विभूत रूप ।

[ २ — संज्ञा धोर सर्वनाम के संबंध कारक, की ध्यास्या से लिंग धोर बचन का निरूप करना कुछ कठिन है, क्योंकि इसमें निश्चय लिंगबचन के लय-लाप सेट के लिंग बचन के कारण स्थावर होता है । एही कारणवा हकी ध्यास्या से होनी स्त्री का ठहरेल होना चाहिये । ( अ — ३८६ अ ) ]

बचन को—दीगिक संज्ञा भाववाचक, पुंलिंग, एकवचन समस्त्य कर्म कारक, 'पाबता' सक्रमक क्रिया से अभिहृत ।

महीं—दीगिक क्रिया-विशेष्य, विशेषवाचक, विशेष्य 'पाबता' क्रिया ।

पासता-मूख क्रिया सक्रमक, कर्तृवाच्य, विरचयार्थ सामान्य वर्तमान काक, अन्यपुरुष,—पुंलिंग, एकवचन को कर्ता से अभिहृत, 'बचन को' कर्म पर अभिहृत । कर्तृप्रयोग । ( महीं के योग से है सहायक क्रिया का धोर अं०—३३३—७ ) ।

वह—एक सर्वनाम निरूपवाचक, 'जो' सर्वनाम को धोर संकेत करता है, अन्यपुरुष पुंलिंग एकवचन, प्रथम कर्ताकारक है' क्रिया का ।

विरवास के—दीगिक संज्ञा भाववाचक पुंलिंग एकवचन, संबंध कारक, संबंधी शब्द 'योग्य' । इस विशेष्य के लीग से विभूत रूप ।

योग्य—दीगिक विशेष्य, गुणवाचक, विशेष्य 'वह' पुंलिंग एकवचन विशेष्य-विशेष्य । इसका प्रयोग संबंधसूचक के समाज है । ( अं०— ३३३ ) ।

महीं—दीगिक क्रिया-विशेष्य विशेषवाचक, विशेष्य है ५६७ ।

दिन को—अधिकरण के अर्थ में सम्प्रत्यय कर्मकारक । ( दिन को=दिन में । अ०—१२५ ) ।

( २ ) मुझे वहाँ जाना था ।

मुझे—इह पुङ्गवाचक सर्वनाम वत्त के नाम की और संकेत करता है, वृत्तमपुङ्गु उभयक्ति, एकवचन, कर्ता के अर्थ में सम्प्रदाय-कारक, 'जाना था' क्रिया से अन्वय ।

जाना था—संयुक्त क्रिया, भावरयकताबोधक, अकर्मक कर्तृवाच्य, निरवधार्य सामान्य मृतकाल, अल्पपुरुष पुङ्क्तिग, एकवचन कर्ता 'मुझे' भावे प्रयोग ।

[ अ०—किसी किसी का मत है कि इस प्रकार के वाक्यों में क्रियार्थक संज्ञा 'जाना' कर्ता है और उसका अन्वय इकहड़ी क्रिया 'था' से है । इस मत के अनुसार प्रस्तुत वाक्य का यह अर्थ होगा कि मेरा वहाँ जाने का व्यवहार वा भी अब नहीं है । इस अर्थमेव के कारण 'जाना था' संयुक्त क्रिया ही मानना ठीक है । ]

( ३ ) संवत्—१६२७ वि में बड़ा अकाश पड़ा था । संवत्—अधिकरण-वाचक ।

१६२७—कर्मधारय-समास, अत्र संज्ञावाचक, विशेष्य 'संवत्, पुङ्क्तिग, एकवचन ।

वि० ( विक्रमी )—बीगिक विशेष्य गुणवाचक, विशेष्य 'संवत्, पुङ्क्तिग, एकवचन ।

( ४ ) किसी की विद्या न करनी चाहिये ।

करनी चाहिये—संयुक्त क्रिया, कर्तृत्वबोधक, अकर्मक, कर्तृवाच्य निरवधार्य, संभाव्य भविष्यत्-काल, (अर्थ सामान्य वर्तमान), अल्पपुरुष, पुङ्क्तिग, एकवचन, कर्ता 'मनुष्य का ( वृत्त ) कर्म विद्या, कर्मविप्रयोग ।

( ५ ) वृत्त समय एक बड़ी भयानक घाँसी आई ।

वृत्त—सार्वभौमिक निरवधारक विशेष्य विशेष्य, समय, पुङ्क्तिग, एकवचन, विशेष्य समय, विद्वत् कारक में होत के कारण विशेष्य कर्म वृत्त कर ।

समय—अधिकार का, विमर्श हस्त है ( अर्थ —५५५ ) ।  
यही—परिमाणवाचक क्रियाविशेष, विशेष्य 'मया' वाचक विशेष्य । मूक  
में आकारित विशेष्य होने के कारण विह्वल रूप । ( अर्थविशेष ) ।

( १ ) यह बहका गानेवाला है ।

गानेवाला—वैगिक कर्तृवाचक कर्तृत्वं मकमक, संज्ञा, आतिवाचक  
अर्थवाचक 'बहका' संज्ञा का समानाधिकार्य है किया कीर्तित्व ।

( २ ) गानेवाला—अविष्यत्वाचक-वाचक सङ्घर्षक [कर्तृत्वं विशेष्य  
विशेष्य 'बहका', विशेष्य-विशेष्य पुर्विङ्ग पञ्चम्यत्वं । यह पदपरिचय  
अर्थात्त में है ।

( ३ ) शर्मा ने सहोदरियों को बुसाया ।

बुसाया—कर्तृवाच्य भावे प्रयोग ।

( ४ ) दुर्गा के मारे यहाँ कैने सैठा जायगा ।

मारे—वैगिक सर्वपसूचक अर्थवाच्य 'दुर्गा' संज्ञा के सर्वत्र-कारक के  
आय काकर उभयका सर्वत्र 'सैठा जायगा' किया से निजाता है । ( यह उभय  
'मारा मृतकालिक कर्तृत्वं का विह्वल रूप है । )

सैठा जायगा—अङ्गिक किया मातृवाच्य विरचयाय, सामान्य अवि  
ष्यत् काच अर्थपुरत पुर्विङ्ग पञ्चम्यत्वं इत्यका उद्भव ( सैठना ) किया के  
अर्थ में संमिश्रित है भावे प्रयोग ।

( ५ ) गणित सीता हुआ आदमी प्याहार में सङ्घट्ट होता है ।

गणित—अप्राप्य कर्मकारक 'सीता हुआ' मकमक मृतकालिक कर्तृत्वं  
विशेष्य का कर्म ।

सीता हुआ—अङ्गिक मृतकालिक कर्तृत्वं इत्यका प्रयाग यहाँ कर्तृ  
वाचक है 'विशेष्य 'आदमी' ।

आदमी—वैगिक संज्ञा ।

( ६ ) बहनवाच को क्या कहें और ।

क्या—अरववाचक सर्वत्रवाच्य ( वान ) हस्त संज्ञा की और संकेत करता  
है अर्थपुरत, पुर्विङ्ग पञ्चम्यत्वं कम कारक अर्थ शिक्मक किया को  
कर्म पृथि ।

कहै—क्रिया द्विकर्मक, कर्तृवाच्य, संभाव्यार्थ, संभाव्य मदिष्यत् काष्ठ, अल्पपुरुष, उभयलिंग, एकवचन, कर्ता 'कोई' से अश्रित मुख्य कर्म 'करने-वाले को' और कर्मपति 'त्या' पर अधिकार। कर्तरिप्रयोग।

( ११ ) गाड़ी में भाख खावा जा रहा है।

भाख—कर्ता-कारक 'खावा जाता है' क्रिया का कर्म; उद्देश्य होकर आया है, क्योंकि क्रिया कर्तृवाच्य है।

खावा जा रहा है—अवधारण-बोधक संयुक्त क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, निरवधार्य, अपूर्ण वर्तमानकाल, अल्पपुरुष, पुल्लिंग एकवचन, 'भाख' अव्यय कर्म ( उद्देश्य ) से अश्रित; कर्ता छुप्त। कर्मवि-प्रयोग।

( १२ ) फिर लम्हें एक बहुमुख्य चावर पर छिटाया जाता।

लम्हें—कर्म-कारक, 'छिटाया जाता' क्रिया का सम्प्रत्यय कर्म; उद्देश्य होकर आया है।

छिटाया जाता—क्रिया-सकर्मक, कर्तृवाच्य निरवधार्य, अपूर्ण मूल-काल, सहकारी क्रिया 'जा' का बोध, अल्पपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, 'लम्हें' अव्यय कर्म उद्देश्य, कर्ता छुप्त। भावे प्रयोग।

( १३ ) आठ बजकर दस मिनट हुए हैं।

आठ—संख्यावाचक विशेष्य, वहाँ संज्ञा की नाई आया है, आतिवाचक संज्ञा, पुल्लिंग, बहुवचन, कर्ताकारक, 'बजकर' पूर्वकाधिक कर्तृत् का स्वतंत्र कर्ता।

—बजकर—सकर्मक, पूर्वकाधिक कर्तृत्, अल्प कर्तृवाच्य-इसका स्वतंत्र कर्ता 'आठ', वह मुख्य क्रिया 'हुए हैं' की विशेषता बताता है।

( १४ ) यह सुनते ही—मों-बाप कुँवर के पास दौड़े आये।

सुनते ही—पीणिक तात्कालिक कर्तृत्, अल्प सकर्मक, कर्तृवाच्य 'यह' कर्म पर अधिकार; 'आये' मुख्य क्रिया की विशेषता बतलाता है।

दौड़े—सकर्मक मूलकाधिक कर्तृत् विशेषण विशेष्य 'मों बाप', पुल्लिंग बहुवचन।

( १५ ) गिनते-गिनते भी महीने पूरे हुए।

गिनते गिनते—पुनरुक्त अपूर्ण क्रियापीठक हृदंत अन्वय, कर्तृवाच्य ( अर्थ कर्मवाच्य ) इहरेण 'महीने', कर्ता दुष्ट, कृप' क्रिया की विशेषता बतघाता है ।

( १९ ) मुझसे हैंसते देख सय-कोई हैंस पड़े ।

हैंसते—अकर्मक वर्तमानकालिक हृदंत विशेषण विशेष्य 'मुझसे', विभक्ति-सुक्त विशेष्य के कारण अधिकारी रूप ।

सब-कोई—संपुक्त अतिरचयवाचक सर्वनाम, 'बोग ( दुष्ट ) संज्ञा की ओर संकेत करता है, अन्वयपुरुष, पुष्पिग, बहुवचन कर्ताकारक हैंस परे क्रिया का ।

हैंस-पड़े—संपुक्त अकर्मक क्रिया, अचानकता बोधक, सामान्य भूतकाल, कर्तरिप्रयोग ।

( १० ) शिष्य को चाहिये कि गुरु की सेवा करे ।

चाहिये—क्रिया सकर्मक, कर्तृवाच्य विरचयार्थ सामान्य, अविष्मत्वाच्च ( अर्थ सामान्य वर्तमान काल ), अन्वयपुरुष पुष्पिग, एकवचन, कर्ता 'शिष्य' को, कर्म कृपरा वाच्य 'गुरु' - -कर । भावेप्रयोग । 'चाहिये' अधिकारी क्रिया है ।

( १८ ) किसान भी अर्थिकियों की गदरी से बहलता हुआ ।

भी—अचानक-वाचक अन्वय किसान संज्ञा क विषय में अधिकता सूचित करता है । ( यह क्रिया विशेष्य भी माना जा सकता है, क्योंकि यह 'बहलता हुआ' के विषय में भी अधिकता सूचित करता है । )

[ ३ —कोई-कोई इसे संवाचक समुच्चय-बोधक अन्वय समझकर देखा मानत हैं कि पहले कहे हुए किसी शब्द को प्रस्तुत वाच्य के निर्दिष्ट शब्द से मिलाता है । इस मत के अनुकार 'म' 'कितान' संज्ञा की परले कहा हुए किसी संज्ञा से मिलाता है । ]

बहलता—वर्तमानकालिक हृदंत विशेषण, विशेष्य किसान ।

'बहलता हुआ' को निरचयवाचक संपुक्त क्रिया भी मान सकते हैं ।  
( अं०—१००—३ ) ।

( १६ ) जो न होत बग अरु मरत को !

सकल परम गुर धरति धरत को ॥

जो—संकेतवाचक समुदाय-बोधक अन्वय, हो, वाक्यों को जोड़ता है—  
जो 'मरत को और सकल 'धरत को ।

होत—स्थितिवाचक अकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, संकेतार्थ, सामान्य, संकेतार्थ काष्ठ, अम्बपुरुष 'पुङ्खिण, एकवचन, कर्ता, 'अरु' कर्तरिप्रयोग ।

को ( का ) संबंध-कारक की विभक्ति ।

धरत—सकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, सामान्य संकेतार्थ काष्ठ कर्ता 'कर्म का' 'धर्म-गुर', कर्तरिप्रयोग ।

को—प्रत्ययवाचक सर्वनाम, कर्ताकारक ।

( २० ) अन्होंने सट मुकको मीठ पर खड़ा कर दिया ।

सट—वाच्यवाचक क्रिया विशेष्य अन्वय, 'कर दिया' क्रिया की विशेषता बतलाता है ।

खड़ा—विधेय-विशेष्य, विशेष्य 'मुककी' 'कर दिया' अपूर्ण सकर्मक क्रिया की प्रति ।

( २१ ) मेरे राम को तो सब साफ मासूम होता बा ।

मेरे राम को ( =मुकको )—संयुक्त पुरुषवाचक सर्वनाम, उचमपुरुष, समवाय-कारक 'होता या क्रिया से संबंध ।

तो—अवधारणबोधक अन्वय, 'मेरे राम को' सर्वनाम के अर्थ में विशेष्य बतलाता है ।

साफ—क्रिया विशेष्य, स्थितिवाचक होता या क्रिया की विशेषता बतलाता है ।

( २२ ) यन, परती सब का सब हाथ से निकल गया ।

यन का सब—सर्वनामिक वाक्यांश, 'यन, परती' संज्ञाओं की ओर संबोध करता है, कर्ता कारक, 'निकल गया' क्रिया से अश्लेष 'यन' 'परती' का समावाचिकत्व ।

( २३ ) जो अपने से बहुत बड़े हैं, उनसे बर्बर क्या ।



अपने से—निश्वाचक सर्वनाम, 'मनुष्य ( हठ ) संज्ञा की ओर संकेत करता है अपादान-कारक, 'है' क्रिया से संबंधित ।

पुनः—रीतिवाचक क्रिया-विशेषण, 'हो सकता है' ( हठ ) क्रिया की विशेषता बताता है । क्या—कैसे ।

( १४ ) क्या मनुष्य निरा पशु है ?

क्या—प्रश्नवाचक अभ्यय, 'है' क्रिया की विशेषता बताता है ।

निरा—विशेषण गुणवाचक विशेष्य 'पशु' संज्ञा पूर्वसंग एकवचन ।

( १५ ) मुझे पता चला कि कमी न कमी धरम सुटकारा होगा ।

कमी न कमी—क्रिया विशेषण वाक्यांश आक्षेपवाचक ।

( १६ ) वह अपमान भला किससे सहा जायगा ?

भला—विस्मयादिबोधक अनुमीत सूचक ।

( १७ ) होनेवाली बात मानो उसे पहले ही से मालूम हो गई थी ।

मानो—( सूच में क्रिया ) समुच्चयबोधक, समतासूचक, प्रस्तुत वाक्य को पहले वाक्य से मिटाता ।

पहले ही से—क्रियाविशेषण वाक्यांश आक्षेपवाचक ।

मालूम—'बाल' संज्ञा का विशेष-विशेषण ।

( १८ ) अजब के तीन-बार—अप्ययि सुब पढ़ी ।

अजबके—क्रियाविशेषण ।

तीन-बार—क्रियाविशेषण-वाक्यांश ।

[ ९ —अर्ध जोई 'तीन' और बार' शब्दों की अज्ञा-अज्ञा अक्षरानुक्रम करते हैं । वे 'बार' क पश्चात् 'क' संबंधितक अभ्यय का अप्पाहार मानकर 'बार' को संज्ञा कहते हैं । ]

सुन पढ़ी—संपुक्त सकारक क्रिया अक्षरानुक्रमाबोधक कर्तृवाच्य ( अर्थ कर्मवाच्य ), निश्चयार्थ, सामान्य भूत-काल अन्वयपुरुष लीङ्गि एकवचन अक्षरानुक्रमाबोधक, कर्तृनिर्दिष्ट ।

( १९ ) यह सु' गज बंवा और कम से कम तीन गज मोटा था ।

सु' गज—परिमाणवाचक विशेषण 'यह'

[ ६०—सुः शब्द संख्यावाचक विशेष्य है और गण शब्द आतिवाचक संज्ञा है, परंतु दोनों मिलकर 'यह' 'सर्वनाम' के द्वारा किसी संज्ञा का परिमाण सूचित करते हैं। सुः गण को परिमाणवाचक क्रिया-विशेष्य भी मान सकते हैं, क्योंकि एक प्रकार से 'संज्ञा' विशेष्य भी विशेषता बताता है। किसी-किसी के विचार से सुः और गण शब्दों की व्याख्या अलग अलग होनी चाहिए। ऐसी अवस्था में गण शब्द को या तो संबन्ध कारक में (=सुःगण का संज्ञा) मानना पड़ेगा, या उसे 'यह' का समानाधिकरण स्वीकार करना होगा। ]

कम से कम—परिमाणवाचक क्रिया-विशेष्य-वाक्यांश, विशेष्य तीन ( ३० ) में अभी उसे देखता हूँ न ?

सु—अवधारणवाचक अभ्यय ( क्रिया-विशेष्य ), 'देखता हूँ' क्रिया के विशेष्य में विरचय सूचित करता है।

( ३१ ) क्या घर में, क्या बग में, ईरवर सब बगह है।

क्या—क्या—संयोजक समुच्चय बोधक 'घर में' और 'बग में' संज्ञाओं को जोड़ता है।

# तीसरा भाग

## वाक्य-विन्यास

दूसरा परिच्छेद ।

वाक्य-मृगकरण ।

पहला अध्याय ।

### विषयारम्भ

१०१—वाक्य-मृगकरण के द्वारा शब्दों तथा वाक्यों का परस्पर संबंध जाना जाता है और वाक्यार्थ के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है ।

[ १ ] — यद्यपि इस प्रक्रिया के द्वारा तब तक संस्कृत भाषा में वाक्ये जाते हैं और वहाँ से हिन्दी के कुछ व्याकरणों में लिए गये हैं, तथापि इसके विरुद्ध विवेचन की उत्पत्ति श्रीगुरुजी भाषा के व्याकरण से है, जिसमें यह विषय व्यापराज से लिया गया है और व्याकरण के साथ इसकी संगति मिलाने गई है ]

( क ) वाक्य के साथ, कर्म की दृष्टि से, जैसा व्याकरण का मुख्य संबंध है वैसे ही कर्म के विचार से व्याप-शास्त्र का भी बड़ा संबंध है । व्याकरण का मुख्य विषय वाक्य है; पर शास्त्र का मुख्य विषय वाक्य नहीं, किंतु अनुमान है, जिसके पूर्व उसमें, कर्म की दृष्टि से वहाँ और वाक्यों का विचार किया जाता है । शास्त्र के अनुसार प्रत्येक वाक्य में तीन बातें होनी चाहिये—श्री पद और एक विभाव-चिह्न । दोनों पदों को क्रमशः उद्देश्य और विषय तथा विभाव-चिह्न को संयाजक कहते हैं । वाक्य में जिसके विषय उद्देश्य और विषय को संयाजक कहते हैं और उद्देश्य के विषय में संयाजक कहलाता है । उद्देश्य और विषय में संयाजक कहलाता है वह विषय कहलाता है । उद्देश्य और विषय में संयाजक कहलाता है वह विषय कहलाता है । उद्देश्य और विषय में संयाजक कहलाता है वह विषय कहलाता है ।

• जोड़-जोड़ इसे वाक्य विच्छेद का नाम है •

है और हम विज्ञान की संयोजक शक्ति से सूचित करते हैं। साधारण बोल-  
 चाल में वाक्यों के ये तीन अवयव बहुधा अलग-अलग अवयव स्पष्ट नहीं  
 रहते इसलिये भाषा के प्रचलित वाक्य को व्याप-शास्त्र में योग्य स्वरूप  
 दिया जाता है, अर्थात् व्याप-शास्त्र के स्वीकृत वाक्य में उद्देश्य, विधेय और  
 संयोजक स्पष्टता से रचे जाते हैं। उदाहरण के लिये 'घोड़ा घोड़ा हीना', इस  
 साधारण बोल-चाल के वाक्य को व्याप-शास्त्र में 'घोड़ा हीनेवाला वह'  
 कहेंगे। व्याकरण में इस प्रकार का रूपांतर संभव नहीं है क्योंकि उसमें  
 कर्ता, कर्म, क्रिया, आदि का विरचय अधिकार में शब्दों के रूपों की संगति  
 पर केवल ध्यान की दृष्टि से व्याप दिया जाता है। इसलिये व्याकरण के वाक्य  
 को वीसा का वीसा रखकर, उसमें शास्त्र के उद्देश्य और विधेय का प्रयोग  
 करते हैं। व्याकरण और शास्त्र के इसी मेख का नाम वाक्य-पुनर्रचना है।  
 वाक्य-पुनर्रचना में केवल व्याकरण की दृष्टि से विचार नहीं कर सकते, और  
 न केवल व्याप-शास्त्र की ही दृष्टि से, किंतु दोनों के मेख पर दृष्टि रखनी  
 पड़ती है।

साधारण बोल-चाल के वाक्य में व्याप-शास्त्र का संयोजक शब्द बहुधा  
 मिथ्या हुआ रहता है, और व्याकरण में उसे अवयव बताने की आवश्यकता  
 नहीं होती, इसलिये वाक्य-पुनर्रचना की दृष्टि से वाक्य के केवल दो ही मुख्य  
 भाग माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय। व्याकरण में कर्म को विधेय से  
 भिन्न मानते हैं, परंतु व्यापशास्त्र में वह विधेय के अंतर्गत ही माना जाता है।  
 यहाँ यह कह देना आवश्यक मान पड़ता है कि उद्देश्य और कर्ता तथा विधेय  
 और क्रिया समामार्थक शब्द नहीं हैं; यद्यपि व्याकरण के कर्ता और क्रिया  
 बहुधा व्यापशास्त्र के कर्मणः उद्देश्य और विधेय होते हैं।

दूसरा अध्याय ।

## वाक्य और वाक्यों में भेद ।

१००—एक विचार पूर्णता से प्रकट करनेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं । ( ध०—८६—घ ) ।

१०८—वाक्य के मुख्य दो अवयव होते हैं—( १ ) उद्देश्य और ( २ ) विधेय ।

( अ ) जिस वस्तु के विषय में कुछ कहा जाता है उसे सूचित करनेवाले शब्दों को उद्देश्य कहते हैं; जैसे, आत्मा अमर है, घोड़ा दौड़ रहा है राम ने रावण को मारा, इन वाक्यों में आत्मा घोड़ा, और राम न उद्देश्य हैं, क्योंकि इनके विषय में कुछ कहा गया है अर्थात् विधान किया गया है ।

( आ ) उद्देश्य के विषय में जो विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले शब्दों को विधेय कहते हैं; जैसे ऊपर किले वाक्यों में आत्मा, घोड़ा, राम ने, इन उद्देश्यों के विषय में क्रमशः अमर है दौड़ रहा है रावण को मारा, ये विधान किये गये हैं; इसलिये इन्हें विधेय कहते हैं ।

१०९—उद्देश्य और विधेय मध्येक वाक्य में बहुत स्पष्ट रहते हैं; परंतु भाववाचक में उद्देश्य प्रायः किया ही में संमिश्रित रहता है; जैसे, मुझसे कछा नहीं जाता, कचके से बोलते नहीं बनता । इन वाक्यों में क्रमशः कछना और बोलना उद्देश्य किया ही के अर्थ में मिले हुए हैं ।

११०—रचना के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—( १ ) साधारण ( २ ) मिश्र और ( ३ ) संयुक्त ।

( क ) जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है उसे साधारण वाक्य कहते हैं जैसे, आज बहुत धानी गिरा । जिसकी अमक्यता है ।

( ख ) जिस वाक्य में मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय के सिवा एक या अधिक समापिका किर्याएँ रहती हैं उसे मिश्र वाक्य कहते हैं; जैसे, वह क्रीडण मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो । जब कचका पीच बरस का हुआ तब पिता ने उसे मरसे को भेजा । वैदिक लोग कितना भी अशुभ किछे तो भी उनके अक्षर अक्षे नहीं बनते ।

( ब ) वाक्यांश—घड़ौ जाना अष्क नहीं है । मूठ बोलना पाप है ।  
 खेत का खेत सूख गया ।

( क ) संज्ञा के समास उपबोग में आनेवाले कोई भी शब्द—'दौड़कर'  
 पूर्ववाकिक कर्त है । 'क' व्यंजन है ।

[ सू —एक वाक्य भी उद्देश्य हो सकता है; पर उस अर्थत्वा में वह  
 अकेला नहीं आता, किन्तु मित्र वाक्य का एक अंगत्व होकर आता है,  
 ( अं०—७२ ) । ]

६८७—वाक्य के साधारण उद्देश्य में विशेषवादि जोड़कर उसका  
 विस्तार करते हैं । उद्देश्य की संख्या नीचे दिये शब्दों के द्वारा बढ़ाई जा  
 सकती है—

( क ) विशेष्य—अच्छा बच्चा माता-पिता की आज्ञा मानता है ।  
 लाखों आदमी इसके से मर जाते हैं ।

( ख ) संबंधकारक—दुर्गों की भीड़ बढ़ गई । मोहन की सब  
 चीजें आई गई । इस द्वीप की सिपाई बड़ी बचक होती हैं । जहाज पर के  
 नावियों ने आर्जव मनाया ।

( ग ) समावाधिकरक शब्द—परमेश, कृष्णस्वामी करी की गये ।  
 बच्चे पिता, जयसिंह बह बात नहीं चाहते थे ।

( घ ) वाक्यांश—दिन का शका हुआ आदमी रात को खूब सोता है ।  
 आकाश में फिरता हुआ चंद्रमा राहु से मसा जाता है । काम सीखा  
 हुआ बौद्ध कर्मिण्ड से मिलता है ।

[ सू०—( १ ) उद्देश्य का विस्तार करनेवाले शब्द स्वयं अपने गुण-  
 नायक शब्दों के द्वारा बढ़ाने का सकते हैं; जैसे एक बहुत ही सुंदर लड़की  
 बही का रही थी । आपके बड़े लड़के का नाम क्या है ? जहाज का तबले  
 ऊपर का हिस्सा पहले दिखाई देता है ।

( २ ) ऊपर लिये एक अथवा अनेक शब्दों से उद्देश्य का विस्तार हो  
 सकता है; जैसे, तेजी के साथ दौड़ती हुई, छोटी-छोटी, मुनहरी मङ्गलियाँ  
 ताफ दिखाई पड़ती थी । घोड़ों की बड़ती हुई टाँगों की आवाज घूर-घूर तक  
 टैस रही थी । बाबिल अली के समय का, इतों से बना हुआ एक पक्क  
 मकाम अभी तक बड़ा है ।

१८२—साधारण विधेय में केवल एक समापिका बिना रहती है, और वह किसी भी वाक्य अर्थ का एक पुरुष, किंग बचन और प्रयोग में पा सकती है। 'किया' शब्द में संयुक्त किया का भी समावेश होता है। उदा०—  
पापी गिरा। बड़का जाता है। पत्थर पौंका जायगा। धरि-बॉरि उठेका होने लगा।

(क) साधारणतः प्रकर्मक क्रियाएँ अपना अर्थ स्वयं प्रकट करती हैं। परंतु कोई-कोई प्रकर्मक क्रियाएँ ऐसी हैं कि उनका अर्थ पूरा करने के लिये उनके साम कोई शब्द जुगाने की आवश्यकता होती है। वे क्रियाएँ ये हैं— बनना, दिखना, निकलना, कहना, उठना, पढ़ना, रहना।

इसकी अर्थ-पूर्ति के लिए संज्ञा विशेषण अथवा और कोई गुणवाचक शब्द जुगाना जाता है; जैसे, वह आदमी पागल है। बसका बड़का खोर निकला। बौकर मासिक बन गया। वह पुस्तक राम की थी।

(ख) प्रकर्मक क्रिया का अर्थ कर्म के बिना पूरा नहीं होता और प्रकर्मक क्रियाओं में दो कर्म आते हैं; जैसे पढ़ी घोंसली बनाते हैं। वह आदमी मुझे बुझाता है। राजा ने ब्राह्मण को दाम दिया। पशुपत देवदत्त को ब्याकरण पढ़ाता है।

(ग) करना बनाना समझना पाना रखना आदि प्रकर्मक क्रियाओं के कर्मवाचक के रूप अर्पण होते हैं; जैसे वह सिपाही सरदार बनाया गया। उस आदमी काहाक समझ जाता है। उसका कहना भूट पाया गया। उस बड़े का नाम शंकर रखा गया।

(घ) जब अर्पण क्रियाएँ अपना अर्थ आपही प्रकट करती हैं तब वे अपने-ही विधेय होती हैं जैसे, ईश्वर है। सबेरा हुआ। चंद्रमा दिखाता है। मेरी बही बनार्न जायगी।

(ङ) 'होना' क्रिया के वर्तमानकाल के रूप कभी-कभी लुप्त रहते हैं; जैसे, मुझे इनसे क्या प्रयोजन (है)। वह अब जाने का नहीं (है)।  
१८३—कर्म में उद् रूप के समान संज्ञा अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाला कोई दूसरा शब्द आता है—





आये । वे मुझमें प्रेम पूर्वक पाये । खोर कहीं न कहीं सिपा है । पुस्तक हाथों-हाथ बिक गई । उसने जैसे-जैसे काम पूरा किया ।

( ४ ) सम्बन्ध-सूत्र-मूल शब्द—बिबिधा धोती समेत बंद गई । वह सूत्र के मारे मर गया । मैं ठमके यहाँ रहता हूँ । धौलेवाँ में कर्मनाशा तक उत्तम पीछा किया । मरने के सिवा और क्या होगा ? यह काम तुम्हारी सहायता बिना न होगा ।

( ५ ) कर्ता, कर्म धरि सर्वव्ययार्थों को छोड़ शेष शब्द—मैंने चाकू से काट बाटा । वह महाने को गया है । घुल से काट गिरा । मैं अपने किये पर पड़ता हूँ

[ ६—( १ ) संशयन-कारक बहुधा वाक्य से कोई संबंध नहीं रखता, इसलिये वाक्य पृथक्कारण से उक्त शब्द स्थान नहीं है ।

( २ ) एक वाक्य भी विभक्तिक ही लक्षणा है परंतु उसके योग से पूरा वाक्य मिल हो जाता है । अ—० १ ) । ]

१६३—एक से अधिक विशेषवर्णक एक ही वाच्य उपयोग में आ सकते हैं । जैसे इसके बाद, उसने तुरंत घर के स्वामी से कहकर, बंधे को पहने के लिए मर्दसे की मेजा । मैं अपना काम पूरा करके बाहर के कमरे में, अष्टवार पड़ता हुआ बैठा था ।

१ १—अर्थों के अनुसार विशेषवर्णक के पीछे लिख भेद होते हैं—

( १ ) कावचाचक—

( अ ) विरिचकाचक—मैं कहा थाया । क्या पैदा होते ही दुःख पीने लगता है । आपके जाने के बाद नीकर थाया । गाड़ी पीछे यत्रे थायागी ।

( इ ) अचधि—वह हा महीने बीमार रहा । हम दिन भर काम करते हैं । क्या तुम मेरे जाने तक न खरोंगे ? मेरे रहते यह काम हो जायागा ।

( उ ) पीकः पुन्य—जसने धार-धार बह कहा । वह संदूक यना-यना कर बेचता है । वे रात-रातभर जागते हैं । पंक्तिगी क्या कहते समय पीक-पीक में बुझुके सुनात हैं । सिपाही पासपर पाश छोड़ते हुए भागे थे । काम करते-करते अनुभव हो जाता है ।

( २ ) स्थानवाचक—

( अ ) स्थिति—पंजाब में हाथियों का बस नहीं है। उसके एक व्यवहार है। हिन्दुस्तान के उत्तर में हिमालय पर्वत है। यथाय गंगा के किनारे बसा है।

( इ ) गति—( १ ) आरंभ-स्थान—माछल ब्रह्मा के मुँह से बल्यक हुए। गंगा हिमालय से निकलती है। वह छोड़े पर से गिर पडा।

( २ ) अन्त-स्थान—गाढ़ी बंबई को गई। अंगरेजों ने कर्मनासा तक उसका पीका किया। छोडा जंगल की तरफ भागा। आगे जैसे बहुरिः खुलाह।

( ३ ) रीतिवाचक—

( अ ) शुद्धरीति—मोठी लच्छी बडा नाम अछड़ी तरह सम्माहती है। बडना मन से फटा है। छोडा लँगडाला हुआ मामा। सारी रात लकफले बीती।

( इ ) साधक ( अथवा कर्तव्य )—मंजी के द्वारा राजा से मॅट हुई। सिपाही ने लकवार से बीते को मारा। वह ताबा किसी कुसरी कुंजी से नहीं छुडता। देवता पापुसों से सताये गये। इस कलम से बिकते नहीं बडता।

( उ ) आदित्य—मेरा भाई एक कपड़े से गया। राजा बड़ी सेना लेकर चड आया। मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। बिना पानी के कोरें बीकपारी नहीं बी सकता।

( ४ ) परिचामवाचक—

( अ ) निरवय—मैं इस मील बडा। धन से बिया भंड है। यह बडका तुम्हारे बराबर काम नहीं कर सकता। वह ली आठ-आठ भाँसू रीती है। सिर से पैर तक आदमी की बंबाई का पुत्र के बगमग होती है।

( इ ) अनिरवय—वह बहुत करके बीमार है। कदाचित् मैं व का सर्फूंगा।

[ ६०—नहीं ( न, मत ) को विभेय विल्लारक न मानकर साधारण विभेय का अर्थ मानना उचित है। ]

( ५ ) अर्थकारण-वाचक—

(घ) हेठ का कारण—गुम्हारे आने से मेरा काम सफल होगा।  
 घूप काड़ी होने के कारण वे पेव की क्षापा में डबर गये। वह भारे डर के  
 काँपने लगा।

(ङ) कार्य वा निमित्त—पीने को पानी लाओ। हम माउक देखने  
 को गये थे। वह मेरे सिये एक किताब लाया। आपको नमस्कार है।

(च) इष्य (उपादान कारक)—गाय के धमड़े के बूने पत्थर बाते  
 हैं। शूकर से मिठाई बनती है।

(ज) विरोध—मलाई करते तुम्हारे होती है। मेरे देखते मेरिया  
 बच्चे को उठा ले गया। गूपान आने पर भी उसने बहाव चलाया। मेरे  
 रहते किसी को इतनी सामर्थ्य नहीं है।

६६०—पूर्वोक्त विवेचन के अनुसार साधारण वाक्य के अक्षरबन्ध किस  
 क्रम से प्रदर्शित करना चाहिए, उसका विचार यहाँ किया जाता है—

(१) वाक्य का साधारण उद्देश्य लिखो।

(२) यदि उद्देश्य के कोई गुणवाचक शब्द हों तो उन्हें लिखो।

(३) साधारण विधेय बताओ, और यदि विधेय में अपूर्ण किया हो तो  
 उसकी पूर्ति लिखो।

(४) यदि विधेय में सकर्मक किया हो तो उसका कर्म बताओ और  
 यदि किया द्विकर्मक अथवा अपूर्ण सकर्मक हो तो क्रमशः उसका गीय कर्म  
 वा पूर्ति भी लिखो।

(५) विधेय-पूरक के, गुणवाचक शब्दों को विधेय-पूरक के साथ ही  
 लिखो।

(६) विधेय बर्तक बताओ।

इस सूची से नीचे लिखे दो कोष्ठक प्राप्त होते हैं—

उद्देश्य		विधेय			
साधारण उद्देश्य	उद्देश्य	साधारण विधेय	विधेय पूरक		विधेय-विस्तारक
			कम	पूर्ति	

उद्देश्य	{ साधारण उद्देश्य उद्देश्य बन्धक	
विधेय		{ साधारण विधेय विधेय पूरक विधेय-विस्तारक

[ ४ — इन कौटुंबों में से पहला अधिक प्रचलित है । ]

६६८—पृथक्करण क कुत्र उदाहरण—

- ( १ ) पानी बरसा ।
- ( २ ) वह आदर्मी पागल ही गया ।
- ( ३ ) समापति ने अपना मापन पड़ा ।
- ( ४ ) इसमें वह बेचारा क्या कर सकता था ?
- ( ५ ) सीढ़ी के सहारे मैं जहाज पर जा पहुँचा ।
- ( ६ ) एक सेर भी बस होगा ।
- ( ७ ) खेत का खेत सूख गया ।
- ( ८ ) यहाँ चापे मुझे दो बर्ष हो गये ।
- ( ९ ) राजमंदिर से बीस फुट की दूरी पर चारों तरफ दो फुट ईंकी शीशार है ।
- ( १० ) दुर्गाप के मारे यहाँ शीय नहीं जाता था ।
- ( ११ ) यह अपमान, मजा, किससे कहा जायगा ?
- ( १२ ) विपाकबाधे बहुत दिनों से अपना राज्य बढ़ाते चले आते थे ।
- ( १३ ) विद्वान् को सहा धर्म की बिठा करनी चाहिये ।
- ( १४ ) मुझे दो दान ब्राह्मणों को देने हैं ।
- ( १५ ) मीर काश्मि ने मुँगेर ही को अपनी राजधानी बनाया ।
- ( १६ ) बसका कहना सूत समझ गया ।

बौधा अप्याय ।

मिथ्र वाक्य ।

१६०—मिथ्र वाक्य में मुख्य उपवाक्य एक ही रहता है, पर भावित उपवाक्य एक से अधिक भी सकते हैं। भावित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा-उपवाक्य विशेषण-उपवाक्य और क्रिया-विशेषण उपवाक्य।

( क ) मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा या संज्ञा-वाक्यांश के बद्दे जो उपवाक्य आता है उसे संज्ञा उपवाक्य कहते हैं; जैसे, तुमको क्या योग्य है कि जन में बसो ? इस वाक्य में 'जन में बसो' भावित उपवाक्य है और यह उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के 'जन में बसना' संज्ञा-वाक्यांश के बद्दे आया है। मुख्य उपवाक्य में इस संज्ञा-उपवाक्यांश का उपबोग इस तरह होगा—तुमको क्या में बसना क्या योग्य है ? इसी तरह 'इस मेले का मुख्य उद्देश्य है कि व्यापार की वृद्धि हो', इस मिथ्र वाक्य में 'व्यापार की वृद्धि हो' यह उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की संज्ञा 'व्यापार की वृद्धि के बद्दे आया है'।

( ख ) मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता बताने-वाला उपवाक्य विशेषण उपवाक्य कहलाता है जैसे, जो मनुष्य जनमान् होता है उस सभी चाहते हैं। इस वाक्य में 'जो मनुष्य जनमान् होता है' यह भावित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के 'जनमान्' विशेषण के स्थान में प्रयुक्त हुआ है। मुख्य उपवाक्य में यह विशेषण इस तरह रखा जायगा—जनमान् मनुष्य को सभी चाहते हैं और यहाँ 'जनमान्' विशेषण 'मनुष्य' संज्ञा की विशेषता बतलाता है। इसी तरह यहाँ ऐसे कई लोग हैं जो दूसरों की चिंता नहीं करते', इस वाक्य में 'जो दूसरों की चिंता नहीं करते' यह उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के 'दूसरों की चिंता न करनेवाले' विशेषण के बद्दे आया है जो 'मनुष्य' संज्ञा की विशेषता बतलाता है।

( ग ) क्रिया विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बतलाता है। जैसे, जब सबेरा हुआ तब हम लोग बाहर गये। इस मिथ्र वाक्य में 'जब सबेरा हुआ' क्रिया विशेषण उपवाक्य है। यह मुख्य उपवाक्य के 'सबेरे' क्रियाविशेषण के स्थान में आया है। मुख्य उपवाक्य में इस क्रियाविशेषण का प्रयोग यों होगा—'सबेरे हम लोग बाहर गये और यहाँ, यह क्रियाविशेषण 'गये' क्रिया की विशेषता बतलाता है। इसी प्रकार 'मैं

तुम्हें वहाँ भेजूँगा वहाँ कंस गया है' इस मिश्र वाक्य में 'जहाँ कंस गया है' वह धाकित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के कंस के जाने के स्थान में क्रिया विशेष्य-वाक्यार्थ के बड़े धाया है जो 'भेजूँगा' क्रिया की विशेषता बतलाता है।

[ टी०.—ऊपर के विवेचन से सिद्ध होता है कि धाकित उपवाक्यों के स्थान में उनकी भाँति के अनुकूल उची ध्रय की संज्ञा विशेष्य ध्रयवा क्रियाविशेष्य रखने से मिश्रवाक्य साधारण वाक्य हो जाता है और इसके विरुद्ध साधारण वाक्यों की संज्ञा विशेष्य वा क्रिया-विशेष्य के बड़से उनकी भाँति के अनुकूल, उची ध्रय के संज्ञा उपवाक्य, विशेष्य उपवाक्य ध्रयवा क्रियाविशेष्य उपवाक्य रखने से साधारण वाक्य मिश्र वाक्य बन जाता है। ]

• •.—त्रिभ प्रकार साधारण वाक्य में सामानाधिकरण्य संज्ञार्थ विशेष्य वा क्रिया-विशेष्य वा सकते हैं उसी प्रकार मिश्र वाक्य में दो वा अधिक सामानाधिकरण्य धाकित उपवाक्य भी वा सकते हैं। उदा०—इम चाहते हैं कि कइके निरोगी रहें और विद्वान् हो। इस मिश्र वाक्य में इम चाहते हैं विशेष्य उपवाक्य है और 'कइके निरोगी रहें' और विद्वान् हो ये दो धाकित उपवाक्य हैं। ये दोनों उपवाक्य 'चाहते हैं' क्रिया के कर्म हैं। इसलिये दोनों सामानाधिकरण्य संज्ञा-उपवाक्य हैं। यदि इसके स्थान में संज्ञार्थ रखी जायें तो ये दोनों सामानाधिकरण्य होगा, जैसे, इम 'कइको का निरोगी रहना' और उचका विद्वान् होना' चाहत हैं इस वाक्य में रहना और होना संज्ञार्थ का 'चाहते हैं' क्रिया से ही एक प्रकार का—कर्म का संबंध है। इसलिये ये दोनों संज्ञार्थ सामानाधिकरण्य हैं।

( क ) मिश्र वाक्य में जिस प्रकार प्रधान उपवाक्य के संबंध से धाकित उपवाक्य चाते हैं उसी प्रकार धाकित उपवाक्यों के संबंध से भी धाकित उपवाक्य वा सकते हैं। जैसे नींकर ने कहा कि मैं त्रिभ वृद्धम में गया वा उसमें दबा नहीं मिथी। इस वाक्य में मैं त्रिभ वृद्धम में गया वा उपवाक्य 'उसमें दबा नहीं मिथी' इस संज्ञा उपवाक्य का विशेष्य उपवाक्य है। इस पूरे वाक्य में एक ही प्रधान उपवाक्य है। इसलिये यह समूचा वाक्य मिश्र ही है।

( क ) कमी कमी मुख्य उपवाक्य में संज्ञा धीर उसका सर्वनाम, हीर्षो आते हैं, जैसे पानी जो बाइलों से बरसता है, वह मंथ्य रहता है परछा कमरा जहाँ में गया हस्तमें अर्धे सिपाहियों को मर्षय अथवा माक्षित करन का काम सिखलाया जाता है ( सर ) ।

[ ६०—इस प्रकार की रचना, जिसमें पहले संज्ञा का उपयोग करके परचात् उसका संबंधवाचक सर्वनाम रखते हैं और फिर कमी-कमी उस संज्ञा के बदले निश्चयवाचक सर्वनाम भी लाते हैं, अंगरेजी के संबंध-वाचक सर्वनाम की इसी प्रकार की रचना के अनुकरण का फल जान पड़ता है० । यह रचना हिंदी में आचरना बढ़ रही है परंतु निश्चले निश्चयवाचक सर्वनाम का उपयोग क्वचित होता है जैसे, सर्वदर्शो सर्वशक्तिमत् जगदीश्वर का जो घट घट का अन्तर्बामी है, आपका मन में कुछ भी मय उत्पन्न न हुआ [गुटका०] बंबूदीप नाम का प्रदीप जो दीपक-समान माम की पाता है, प्रसिद्ध क्षेत्र है ( श्यामा ) कहीं-कहीं नदी की तली मीठी रेत से, जिसमें बहुधा बारीक रेत भी मिली होती है, रेंकी रहती है ।

( ख ) कमी-कमी विशेष्य-उपवाक्य विशेष्य के समान मुख्य उपवाक्य की संज्ञा का अर्थ मर्षित नहीं करता किंतु उसके विषय में कुछ अधिक सूचना देता है। जैसे, उसने एक नेबका पाखा था, जिसपर उसका बड़ा प्रेम था । इस वाक्य का यह अर्थ नहीं है कि उसने बड़ी नेबका पाखा था, जिस पर उसका बड़ा प्रेम था, किंतु इसका अर्थ यह है कि उसने एक (कोई) नेबका पाखा था और उस पर उसका प्रेम हो गया । इसी प्रकार इस ( अथवा ) वाक्य में विशेष्य-उपवाक्य मर्षित नहीं, किंतु समासाधिकारक है—इस कविता की आमीह-त्रियता धीर अपव्यय की अनेक क्यार्थ सुनी जाती हैं जिनका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है ( सर० ) । इस अर्थ के विशेष्य-उपवाक्य बहुधा मुख्य उपवाक्य के परचात् आते हैं और उनके संबंध-वाचक सर्वनाम के बदले

• प्रेमसागर में भी ऐसी रचना पाई जाती है जिससे प्रकट होता है कि या तो वह रचना हिंदी में बहुत पुराना है और अंगरेजी रचना से इसका कोई संबंध नहीं है, किंतु फारसी रचना से है, ( संस्कृत में एसी रचना नहीं है । ) या जलकुबीलास पर भी अंगरेजी का प्रमाण पड़ा है । प्रेमसागर का उदाहरण यह है—यह पाप-रूप, कास-आवरण बराकनीमूरत जो आपके सम्मुख लड़ा है, तो पाप है । प्राचीन कविता में बहुधा इस रचना के उदाहरण नहीं मिलते ।



विकल्प से शीर के साथ निरवयवाक अर्थनाम रचना जा सकता है।  
ऐसे उपवाक्यों को विशेष्य-उपवाक्य न मानकर समानाधिकार्य उपवाक्य  
मानना चाहिए।

[ ५ — इस रचना के संबंध में भी बहुत ही सहिष्णुता है कि  
यह श्रंगरेवी रचना का अनुकरण है पर सबसे प्राचीन गद्य-शब्द प्रेमसागर  
में भी यह रचना है जैसे, ( ये सब ) धर्मों से उत्तम ब्रह्म कहेंगे, बिलते ए  
कर्म-मरण से भूत महासागर पार होगा। प्राचीन कविता में भी इस रचना  
के उदाहरण पाये जाते हैं, जैसे—

रामनाम को कश्य-तब कलि कल्याण निबाध।  
को सुमिरत भये भाग तें तुलसी तुलसीदात ॥

इन उदाहरणों से विद्व होता है कि ( श्रंगरेवी के समान ) हिंदी में  
विशेष्य उपवाक्य दो धर्मों में आता है—सर्पादक और समानाधिकार्य  
और पिछले अर्थ में उठे विशेष्य उपवाक्य नाम देना अशुद्ध है। ]

### क्रिया विशेष्य-उपवाक्य

३०९ — क्रिया विशेष्य-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता  
बतलाता है। जिस प्रकार क्रिया-विशेष्य विधय को बढ़ाने में उसका अर्थ,  
स्थान शक्ति, परिमाण्य कारक और कुछ प्रकथित करता है उसी प्रकार क्रिया  
विशेष्य-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के विधेय का अर्थ पूर्ण करवायाओं में  
बढ़ाता है। क्रिया-विशेष्य के समान क्रिया-विशेष्य-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य  
विशेष्य अथवा क्रिया-विशेष्य की भी विशेषता बताता है; जैसे—

क्रिया की विशेषता — 'जो आशा है, तो हम बन्मभूमि देख आये।  
( = अपाके आशा देने पर )।

विशेष्य की विशेषता — इन लक्ष्यों का पानी इतना उँचा पहुँच जाता  
है कि बड़े-बड़े पूर धा जाते हैं। ( = बड़े-बड़े पूर धाने के बोध )।

क्रिया विशेष्य की विशेषता — गाड़ी इतने धीरे चली 'कि शहर क  
बाहर दिन निकल आया।' ( = शहर के बाहर दिन निकलने के समय  
तक )।

[ सू०—मिथ वाक्यों में क्रिया-विशेषण-उपवाक्यों की संख्या अत्यन्त आधित उपवाक्यों की अपेक्षा अधिक रहती है । ]

०००—क्रिया विशेषण-उपवाक्य पाँच प्रकार के होते हैं—(१) काल-वाचक ( २ ) स्थानवाचक ( ३ ) रीतिवाचक ( ४ ) परिमाण-वाचक ( ५ ) अर्थ-करवाचक ।

### ( १ ) कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य ।

००० क—कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य से नीचे दिये अर्थ सूचित होते हैं—

( क ) निश्चित काल—जब किसाम यह पंजा खोजने की आये, 'तब तुम सोस शोककर मुझे के समान पद जाना । 'ज्योंही मैं आपको पत्र लिखने आया', त्योंही आपका पत्र आ पहुँचा ।

( ख ) कालावस्थिति—'जब तक हाथ से पुस्तकें लिखने की आरम्भ रही,' तब तक प्रथम बहुत ही संक्षेप में लिखी जाते थे जब आधी बढ़े जोर से लिख रही थी ' तब वह एक टापू पर आ पहुँचा ।

( ग ) संयोग का पीलापुष्प—जब जब मुझे काम पड़ा तब-तब आपने सहायता दी । जब-कभी श्रीरू दीन-मुन्नी उसके द्वार पर आता, ' तब वह उसे अन्न और दवा देता ।

००० द—काल-वाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य जब, ज्योंही, जब-जब, जब-तक और जब कभी संबंधवाचक क्रिया-विशेषणों से आरंभ होते हैं, और मुख्य उपवाक्य में उनके कालसंबंधी तब त्योंही, तब-तब तब-तक आते हैं ।

### ( २ ) स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य ।

० ३—स्थानवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के संबंध से नीचे दियी अवस्थायें सूचित करता है—

( क ) स्थिति—'जहाँ अभी समुद्र है, वहाँ किसी समय बंगाल था । 'जहाँ भ्रमति' वहाँ संपति आता ।

( ख ) गति का आरंभ—'वे लोग भी वहाँ से आये, वहाँ से आरंभ लोग आये थे ।' वहाँ से शब्द आता था' वहाँ से एक मन्त्र आता हुआ दिखाई दिया ।

( ग ) गति का अन्त — जहाँ तुम गये थे वहाँ गयेरा भी गया था । मैं तुम्हें वहाँ भेजूँगा 'जहाँ कंस गया है ।'

०१०—स्वाभाविक क्रियाविशेष्य-उपवाच्य में वहाँ वहाँ से, जिनर आते हैं और मुख्य उपवाच्य में उनके कित्त्व-संबंधी वहाँ ( वहाँ ) वहाँ से और उधर रहते हैं ।

[ ८ —( १ ) 'वहाँ' का अर्थ कभी कभी कालशाब्द होता है जैसे, 'प्राया में वहाँ पहले दिन लगते थे' वहाँ अर्थ पंटे लगते हैं ।

( २ ) 'वहाँ तक का अर्थ बहुधा परिणामवाच्य होता है जैसे, 'वहाँ तक हो सके' देवी गतिर्वा सीधी कर दो कामें ( अ — ७१३ ) । ]

( ३ ) रीतिवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाच्य ।

०११—रीतिवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाच्य से समता और विषमता का अर्थ पाया जाता है; जैसे दोनों बिर ऐसे दूटे, जैसे, हाथियों के पूँख पर सिंह दूटे । 'जैसे प्राणी आहार से जीते हैं' जैसे ही खाद से बढ़ते हैं । 'जैसे धाय बोधते हैं' जैसे मैं नहीं बोध सकता ।

अस कदि इरिह मई उदि इही ।  
मानहु रीच-तरगिन चारी ॥

०१२—रीतिवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाच्य जैसे, 'स्वों ( कविता में ), 'मानो से धारम होते हैं और मुख्य उपवाच्य में उनके कित्त्व संबंधी जैसे, ( ऐसे ) जैसे स्वों आते हैं ।

( ४ ) परिमाशवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाच्य ।

०१३—परिमाशवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाच्य से अधिकता तुल्यता अल्पता, अनुपात आदि का बोध होता है; जैसे 'उजों उजों मीठं कामरी', स्वों स्वों भारी होय । 'जैसे-जैसे कामदानी बढ़ती है' जैसे-जैसे कर्ष भी बढ़ता जाता है । 'जहाँ तक हा सके' वह काम अवश्य करना । कितनी दूर यह रहेगा उतनी ही कार्य-सिद्धि होगी ।

०१४—परिमाशवाचक क्रियाविशेष्य उपवाच्य में उजों-उजों जैसे-जैसे, वहाँ-तक, कितना कि आते हैं और मुख्य उपवाच्य में उनके कित्त्व संबंधी जैसे जैसे ( जैसे-जैसे ), स्वों स्वों, वहाँ-तक उतना वहाँ तक रहते हैं ।

७१३—क्यार जिनके चार प्रकार के उपवाक्यों में जो संबंध-वाचक क्रिया विशेष्य और उनके मित्य-संबंधी शब्द आते हैं उनमें कभी-कभी किसी एक प्रकार के शब्दों का जोप हो जाता है; जैसे जब तक मर्म न जाने वैद्य व्रीष्य नहीं दे सकता । कदाचित् जहाँ पहले महाहीन थे, अब समुद्र हो ।

वर्षादि बरस भूमि मित्यराये ।

। वया बरहि कुच विद्या पाये ॥

७१४—कभी-कभी संबंधवाचक क्रियाविशेष्यों के बड़े संबंधवाचक विशेष्यों और संज्ञा से बने हुए वाक्यांश, और मित्य-संबंधी शब्दों के बड़े मित्यवाचक विशेष्य और संज्ञा से बने हुए वाक्यांश आते हैं । ऐसी अवस्थाओं में आश्रित उपवाक्यों को विशेष्य-उपवाक्य मानना उचित है, क्योंकि वद्यपि ये वाक्यांश क्रिया विशेष्यों के पदार्थी हैं तथापि इससे संज्ञा की प्रयामता रहती है ( अं०—७ ५ ) । जैसे जिस काल श्रीकृष्ण हस्तिनापुर को चले, उस समय की खीना हृद्य बरबी नहीं जाती । जिस जगह से वह आता है उसी जगह छोट जाता है । जिस प्रकार तहखानों का पता नहीं चलता वही प्रकार मनुष्य के मन का रहस्य नहीं मात्तुम होता ।

### ( ५ ) कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाक्य ।

७१७—कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाक्यों से नीचे जिनके अर्थ पाये जाते हैं—

( १ ) हेतु वा कारण—इस उन्हें सुख होंगे, 'क्योंकि उन्होंने हमारे लिए बड़ा हुक सहा' । वह इसलिये कहा जाता है "कि प्रहय जगा है" ।

( २ ) संकेत—"जो यह प्रसंग चलता" तो मैं भी सुनता । "यदि उनके मत के विरुद्ध कोई झुड़ करता है" तो वे उस तरह बहुत कम प्यान होते हैं ।

( ३ ) विरोध—वद्यपि इस समय मेरी बैठना शक्ति मूर्च्छित सी हो रही है" तो भी वह दरप अँकों के सामने घूम रहा है । सब काम वे थकेसे नहीं कर सकते, "बादे वे कैसे ही होशियार क्यों न हों ।"

( ४ ) कार्य वा निमित्त—इस बात की चर्चा हमने इसलिये की है "कि उसकी शंका दूर हो जाये ।" "तपोवत-वासियों के कार्य में विघ्न न हो," इसलिये रम को यहीं रखिये ।

( ५ ) परिधाम वा कथ—इस शब्दों का प्राची इतना ऊँचा पहुँच जाता है ' कि बड़े-बड़े पूर का जाते हैं" । मुझे मरना नहीं "जो मैं तैरा पक्ष करूँ ।  
 \*१८—कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेष्य-उपवाक्य व्यपिचरय समुच्चय शोचकों से धार्य होते हैं, जो बहुधा जोड़े से जाते हैं । इसकी सूची नीचे दी जाती है ।

धामित वाक्य में कि		मुख्य वाक्य में
		{ इससिपु, इतना ऐसा, यहाँ तक
क्यों कि		
{ ओ यदि धार पपवि		{ तो, तथापि, तो भी, किंतु
{ चाहे—कैसा कितना किता - क्यों ओ किससे ताकि		{ तो भी, पर

\*१९—इन मुहरे समुच्चयशोचकों में से कभी-कभी किसी एक काक का जोड़ हो जाता है। जैसे, मुरा न मानो तो एक बात कर्तु । वह कैसा ही कट होता, सह होता था ।

\*२०—यह मुख्य मिश्र वाक्यों का प्रचलकारण बताया जाता है । इसमें मुख्य धीर धामित उपवाक्यों का परस्पर संबंध बताकर साधारण वाक्यों के समान इनका प्रचलकारण किया जाता है—

( १ ) बड़े संतोष की बात है कि येमे सङ्कल्प सगुहकों के सामने हमें धामितय दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

यह समूचा वाक्य मिश्र वाक्य है । इसमें "बड़े संतोष की बात है" मुख्य उपवाक्य है धीर इतना उपवाक्य संज्ञा उपवाक्य है । यह संज्ञा-उप वाक्य मुख्य उपवाक्य की "बात" सज्ञा का समानाधिकरण है । इन शोचों उपवाक्यों का प्रचलकारण धामित-साधारण वाक्यों के समान करना चाहिये, यथा,

वाक्य	प्रकार	उद्देश्य		विधेय			उपलक्षण
		साधा उद्देश्य	उद्देश्य बचक	साधा विधेय	कर्म पूर्ति	विधेय विस्तारक	
बड़े संतोष की बात है	मुख्य उपवाक्य	बात	बड़े संतोष की	है	--	--	
कि ऐसे सद्दय सज्जनों के सामने हमें अभिनव दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है	संज्ञा उपवाक्य, मुख्य उपवाक्य की "बात" संज्ञा का समानाधि करण	अवसर	ऐसे सद्दय सज्जनों के सामने अभिनव दिखाने का	हुआ है	प्राप्त	हमें	

( १ ) स्वामी, यहाँ कीज तुम्हारा बेटी है जिसके बचने को कौप कर क्याव हाथ में ली है । ( मुख्य उपवाक्य )

( क ) स्वामी, यहाँ कीज तुम्हारा बेटी है । ( मुख्य उपवाक्य )

( ख ) जिसके बचने को कौप कर क्याव हाथ में ली है ।

[ विशेष्य-उपवाक्य ( क ) का ]

वाक्य	प्रकार	उद्देश्य		विधेय			उपलक्षण
		साधा उद्देश्य	उद्देश्य बचक	साधा विधेय	कर्म	पूर्ति	
(क) मुख्य उपवाक्य	कीज			है	--	तुम्हारा बेटी	यहाँ
(ख) विशेष्य उपवाक्य (क) का	जुमने (सुप्त)	---	ली है	नृपाय	--	जिसके बचने को; कौप कर हाथ में	---

- ( ३ ) वेग नहीं था जिससे सब एक-संग क्षेम-कुण्ड से कुटी में पहुँचे  
( मिथ वाक्य )  
( क ) वेग नहीं था । ( मुख्य उपवाक्य )  
( क ) जिससे सब एक संग क्षेम-कुण्ड से कुटी में पहुँचे ।  
[ क्रियाविशेष्य-उपवाक्य, ( क ) का । ]

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य बद्धक	साधारण विशेष्य	कर्म	पूर्ति	विशेष विल्लारक	सं. श.
( क ) मुख्य उपवाक्य		ए क्षेम,	--		--		वेग	--
( क ) क्रिया विशेष्य उपवाक्य ( क ) का कार्य		सब	--	पहुँचे	--	--	एक संग क्षेम कुण्ड से कुटी में	विशेष

- ( क ) जो छात्रमी जिस समाज का है ; उसके व्यवहारों का कुछ न कुछ  
असर उसके द्वारा समाज पर अस्तर ही पड़ता है ( मिथ वाक्य )  
( क ) उसके व्यवहारों का कुछ न कुछ असर उसके द्वारा समाज पर  
अस्तर ही पड़ता है । ( मुख्य उपवाक्य )  
( क ) जो छात्रमी जिस समाज का है । [ विशेष्य उपवाक्य  
( क ) का ]

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य बद्धक	साधारण विशेष्य	कर्म	पूर्ति	विशेष विल्लारक	सं. श.
( क ) मुख्य उपवाक्य		छात्रमी	जो	है	--	जिस समाज		--
( क ) विशेष्य उपवाक्य ( क ) का		असर	उसके व्यवहारों का; कुछ न कुछ	पड़ता है			उसके द्वारा समाज पर, अस्तर ही	

( ५ ) सुना है, इस बार रीत्यों में भी बड़ा उरसाह फैला रहा है । ( मिश्र वाक्य )

( क ) सुना है । ( मुख्य उपवाक्य )

( ख ) इस बार रीत्यों में भी बड़ा उरसाह फैल रहा है । [ संज्ञा-उपवाक्य ]

( क ) का कर्म ]

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य बर्णक	साधारण विधेय	कर्म	पूर्ति	विधेय विस्तारक	संशु
(क)	मुख्य उपवाक्य	मैंने सुना	--	सुना है	(ख) वाक्य			
(ख)	संज्ञा उपवाक्य (क) का कर्म	उरसाह	बड़ा	फैल रहा है		--	इस बार रीत्यों में भी	--

( ६ ) जैसे कोई किसी चीज को मोम से चिपकाता है, उसी तरह तुने अपने मुझाबे को परससा पाने की इच्छा से यह फल इस पेड़ पर लगा दिया । ( मिश्र वाक्य )

( क ) उसी तरह तुने अपने मुझाबे को परससा पाने की इच्छा से यह फल इस पेड़ पर लगा दिया । ( मुख्य उपवाक्य )

( ख ) जैसे, कोई किसी चीज को मोम से चिपकाता है । [ विशेषण उपवाक्य, ( क ) का, यहाँ जैसे=जिस तरह ]

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य बर्णक	साधा विधेय	कर्म	पूर्ति	विधेय विस्तारक	संशु
(क)	मुख्य उपवाक्य	तुने		लगा दिया	यह फल		अपने मुझाबे को, परससा पाने की इच्छा से, इस पेड़ पर उमी तरह	
(ख)	विशेषण उपवाक्य (क) का	कोई	--	चिपकाता है	किसी चीज की		मोम से, जैसे	



( ० ) प्रायः लोगों के मन में यही एक बात समा रही है कि जहाँ तक ही सके शीघ्र ही शत्रुओं से बर्दाब लेना चाहिये । ( मिथ वाक्य )

( क ) प्रायः लोगों के मन में यही बात समा रही है । ( मुख्य-उपवाक्य )

( ख ) कि शीघ्र ही शत्रुओं से बर्दाब लेना चाहिये । [ संज्ञा उपवाक्य ]

( ग ) का; बात संज्ञा का समावाचिकरण ] ।

( ग ) जहाँ तक ही सके । [ क्रिया-विशेष्य उपवाक्य ( क ) का परिष्कार ] ।

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य वाक्य	साधारण क्रिया	कर्म	पूर्ति	विशेष्य	संज्ञा- विस्तारक	संज्ञा
(क) मुख्य उपवाक्य (ल) का	वात	यही	एक	समा रही है				प्रायःकाल लोगों के मन में	---
(ख) संज्ञा उपवाक्य (क) का, वात संज्ञा का समा वाचिकरण	इसे	सुप्त		लेना बर्दाब चाहिये			शीघ्र ही शत्रुओं से		कि
(ग) क्रिया-विशेष्य उपवाक्य (ल) का परिष्कार	यह (सुप्त)		हो सके				जहाँ तक		---

( ८ ) शत्रु इसलिये नहीं मारे जा सकते कि उन्होंने बर ही ऐसा प्रायः किया है जिससे उन्हें कोई नहीं मार सकता ।

( क ) शत्रु इसलिये नहीं मारे जा सकते । ( मुख्य उपवाक्य )

( ख ) कि उन्होंने बर ही ऐसा प्रायः किया है [ क्रिया-विशेष्य उपवाक्य; ( क ) का कारण ] ।

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य वचक	साधारण विशेष्य	कर्म	पूति	विशेष विस्तारक	सं. सं.
(क)	मुख्य-उपवाक्य (ख) और (ग) का	मैं		नहीं मानता	(ख) और (ग) उप वाक्य			
(ख)	संज्ञा-उपवाक्य (क) का कर्म	रीति	यह बुरी, लक्ष्मी मारमेकी	पल गई			रघुवंशी राजपूती में क्योंकर	कि
(ग)	संज्ञा-उपवाक्य (क) का कर्म (ख) का समाना- धिकरण	किसने		चलाई	रीति (सुत)			और

( ११ ) यद्यपि स्वामीजी का उचित मुझे विशेष रूप से मालूम नहीं तथापि जन-श्रुतियों द्वारा जो सुना है और जो कुछ शर्तों देना है उस ही विद्यता है । ( मित्र वाक्य )

( क ) तथापि उसे ही विद्यता है । ( मुख्य उपवाक्य )

( ख ) जन-श्रुतियों द्वारा जो सुना है । [ विशेष्य-उपवाक्य, ( क ) का ] ।

( ग ) और जो कुछ शर्तों देना है । [ विशेष्य-उपवाक्य, ( क ) का, ( ख ) का समानाधिकरण ] ।

( घ ) यद्यपि स्वामीजी का उचित मुझे विशेष रूप से मालूम नहीं । क्रिया-विशेष्य उपवाक्य, ( क ) का विशेष ] ।

वाक्य	प्रकार	उपप्रास उद्देश्य	उद्देश्य पदक	वाच्यार्थ विशेष	कम	शक्ति	अर्थ (अर्थ)	अर्थ (अर्थ)	सं. शं.
(क)	मुख्य उपवाक्य	सं (सुप्त)		अज्ञाना उसे हूँ			ही		वभासि
(ख)	विशेष्य उपवाक्य (क) का	मैंने (सुप्त)	--	मुना है	को		जनकतियों द्वारा	--	
(ग)	विशेष्य-उप वाक्य (क) का, (ख) का उतमाना विशेष्य	मैंने (सुप्त)	--	देखा है	का कुछ		झालों (से)		घोर
(घ)	क्रियाविशेष्य उपवाक्य (क) का विशेष	करित	स्वामाभी नहीं है का (सुप्त)			मंजिला	मुने, विशय रूप स		यथापि

पाँचवाँ अध्याय ।

### संयुक्त वाक्य

०२१—संयुक्त वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्य रहते हैं और इन प्रधान उपवाक्यों के साथ बहुधा इनके आश्रित उपवाक्य भी रहते हैं ।

[ ए. —पहले ( अं. —८६०—ग में ) कहा गया है कि संयुक्त वाक्यों में जो प्रधान ( समानाधिकरण्य ) उपवाक्य रहते हैं वे एक दूसरे के आश्रित नहीं रहते पर इतने यह न समझ लेना चाहिये कि उनमें परस्पर आश्रय कुछ भी नहीं होता । बात यह है कि आश्रित उपवाक्य प्रधान उपवाक्य पर कितना अवलंबित रहता है उतना एक प्रधान उपवाक्य दूसरे प्रधान उपवाक्य पर नहीं रहता । यदि दोनों प्रधान उपवाक्य एक दूसरे से स्वतंत्र रहे तो उनमें आश्रयसंगति कैसे उत्पन्न होगी ? इसी तरह मिश्र वाक्य का प्रधान उपवाक्य भी अपने आश्रित उपवाक्य पर जोड़ा-बहुत अवलंबित रहता है ]

०२२—संयुक्त वाक्यों के समानाधिकरण्य उपवाक्यों में चार प्रकार का संबंध पाया जाता है—संयोजक, विभाजक, विरोधदर्शक और परिव्यामबोधक । यह संबंध बहुधा समानाधिकरण्य समुच्चयबोधक वाक्यों के द्वारा सूचित होता है जैसे,

( १ ) संयोजक—मैं आगे बढ़ गया, और वह पीछे रह गया । बिधा से शान बढ़ता है बिचार-शक्ति प्राप्त होती और मात्र मिळता है । वेद के जीवन का आधार केवल पानी ही नहीं है, बरन कई और पदार्थ भी हैं ।

( २ ) विभाजक—मैरा माई यहाँ आवेगा या मैं हा उसके पास जाऊँगा । उन्हें न बीद आती थी न भूल-व्यास लगती थी । अब ए या पूर ही जायागा, नहीं तो कुर्तों-गिर्तों का मन्व्य बनेगा ।

( ३ ) विरोधदर्शक—ये लोग नये बसनेवालों से सरीस खड़ा करते थे; परंतु धीरे धीरे बंधक पहाड़ों में भगा दिये गये । कामवालों के प्रबल हो जाने से आदमी बुराचार नहीं करते, किंतु अंतःकरण क निर्बल हो जाने से वे वैसा करते हैं ।

( ४ ) परिव्यामबोधक—शाहजहाँ इस बेगम को बहुत चाहता था; इस लिये उसे इस रीति से बनाप की बड़ी रक्षि हुई । मुझे उन लोगों का भेद लेना था, सो मैं वहाँ उठकर बपकी बातें सुनने लगा ।

७२३—कभी-कभी समावाधिकार्य उपवाक्य विना ही समुच्चयबोधक के जोड़ दिये जाते हैं। जबका जोड़े से घालेवाले ध्वनियों में से किसी एक का कोप हो जाता है उसे मीकर तो क्या उनके छाया भी जन्म-मर यह बात न मूछेंगे। मेरे मछरों पर मीक पड़ी है। इस समय बच्चकर जमड़ी सिवा मेरा चाहिये। इन्हें घाले का इर्प न जाने का शाक।

७२४—जिस प्रकार संयुक्त वाक्य के प्रधान उपवाक्य समावाधिकार्य समुच्चय बोधकों के द्वारा जोड़े जाते हैं उसी प्रकार मिश्र वाक्य के आश्रित उपवाक्य भी इन ध्वनियों के द्वारा जोड़े जा सकते हैं ( धं—० )। जैसे क्या ससार में ऐसे समुच्चय नहीं दिखाई देते, जो करोड़पति तो हैं पर शिवका सखा मात हुए भी नहीं है। इन पूरे वाक्य में 'शिवका सखा मात हुए भी नहीं है। आश्रित उपवाक्य है और वह 'जो करोड़पति तो हैं इस उपवाक्य का विरोधपूर्ण समावाधिकार्य है। तो भी इन उपवाक्यों के धराब पूरा वाक्य संयुक्त वाक्य नहीं हो सकता; क्योंकि इतमें केवल एक ही प्रधान उपवाक्य है।

### संयुक्त संयुक्त वाक्य।

७२५—जब संयुक्त वाक्य के समावाधिकार्य उपवाक्यों में एक ही उद्देश्य जबका एक ही विषय या दूसरा कोई एक ही भाग बार-बार आता है तब इस भाग की पुनरुक्ति मिटाने के लिये उसे एक ही बार लिखकर संयुक्त वाक्य ( धं—१५४ ) को संयुक्त कर देते हैं। चारों प्रकार के संयुक्त वाक्य संयुक्त हो सकते हैं; जैसे,

- ( १ ) संयोजन—प्रद और उपप्रद सूर्य के आस पास घूमते हैं=प्रद सूर्य के आस-पास घूमते हैं और उपप्रद सूर्य के आस-पास घूमते हैं।
- ( २ ) विभाजन—न उसमें पपे न छूक से = न उधमें पपे से न छूक से।

( ३ ) विरोध-पूर्ण—इस समय वह गीतम के नाम से नहीं, बरन् पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ=इस समय वह गीतम के नाम से नहीं, बरन् पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

( ४ ) परिषाम-बोधक—पत्ते सूख रहे—हैं इसलिये पीछे दिखाई देते हैं—पत्ते सूख रहे हैं। इसलिये वे पीछे दिखाई देते हैं ।

•१६—संज्ञित संयुक्त वाक्य में—

( १ ) दो या अधिक उद्देश्यों का एक ही विधेय हो सकता है, जैसे, मधुप्य और कुत्ते सब बगइ पाये जाते हैं । उन्हें आगे पढ़ने के लिये न समय, न धन, न इच्छा हाती है ।

( २ ) एक उद्देश्य क दो या अधिक विधेय हो सकते हैं, जैसे पर्मा से पदार्थ फैलते हैं और डंक स मिडुइते हैं ।

( ३ ) एक विधेय के दो या अधिक कर्म ही सकते हैं, जैसे, पानी अपने साथ मिट्टी और पत्थर बहा ले जाता है ।

( ४ ) एक विधेय ही दो या अधिक पूर्तिपाँ हो सकती हैं, जैसे, सोबा सुँवर और कीमती होता है ।

( ५ ) एक विधेय के दो या अधिक विधेय-विस्तारक हो सकते हैं, जैसे, पुराणमा के बर्नताक पढ़ने और वेद का अध्ययन करने से हृदय नहीं होता । बह माह्यय भति संतुह हो आलीबाँइ है, बहाँ से उठ राजा भीष्मक क पास गया ।

( ६ ) एक उद्देश्य के कई उद्देश्यबर्नक हो सकते हैं, जैसे, मेरा और भाई का विवाह एक घर में हुआ है ।

( ७ ) एक कर्म अथवा पूर्ति के अनेक गुणवाचक शब्द हो सकते हैं, जैसे सतपुत्रा, बर्नबा और तासो के पानी को छुश करता है । घोड़ा उपयोगी और साइसी जावपर है ।

•१७—ऊपर लिके समी प्रकार के संज्ञित प्रयोगों के कारण साधारण वाक्यों को संयुक्त वाक्य मानना ठीक नहीं है, क्योंकि वाक्य के कुछ भाग मुख्य और कुछ गीण होते हैं । जिस वाक्य में एक उद्देश्य के अनेक विधेय हों या अनेक उद्देश्यों का एक विधेय हो अथवा अनेक उद्देश्यों के अनेक विधेय हों, उसी को संज्ञित संयुक्त वाक्य मानना उचित है । यदि वाक्य के दूसरे भाग अनेक हो और वे समानाधिकरण समुच्चय-बोधकों के द्वारा भी जुड़े हों तो भी उनके कारण साधारण वाक्य संयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि

ऐसा करने से एक ही साधारण वाक्य के कई अभाववाक्य उपवाक्य बनाने पड़ेंगे।

उदा०—इसिमन्ही उसी दिन से रात दिन आठ पहर, चौसठ घड़ी सोते जागते बैठे खड़े चलते-फिरते खाते-पीते, लड़ते उम्हीं का ध्यान किया करती थी और गुण गाया करती थी। इस वाक्य में एक उद्गम के दो विधेय हैं और दोनों विधेयों के एकत्र आठ विधेय-विस्तारक हैं। यदि हम हममें से प्रत्येक विधेय-विस्तारक को एक एक विधेय के साथ अलग-अलग लिखें तो दो वाक्यों के बन्धे सोसड़ वाक्य बनाने पड़ेंगे। परंतु ऐसा करने के विषे कोई कारण नहीं है, क्योंकि एक तो ये सब विधेय-विस्तारक किसी समुच्चयबोधक से नहीं जुड़े हैं और दूसरे इस प्रकार के शब्द वा वाक्यांश वाक्य के केवल गीब अवयव हैं।

०१८—कभी-कभी साधारण वाक्य में 'और' से जुड़े हुए ऐसी दो संज्ञाएँ आती हैं जो अलग-अलग वाक्यों में नहीं लिखी जा सकतीं अथवा जिससे केवल एक ही व्यक्ति वा वस्तु का बोध होता है, जैसे दो और दो चार होते हैं। राम और हृष्य मित्र है। राम उसने केवल रोटी और तरकारी खाई। इस प्रकार के वाक्यों को संयुक्त वाक्य नहीं मान सकते क्योंकि हममें माये हुए जुड़े शब्दों का क्रिया से अलग-अलग संबंध नहीं है। इन शब्दों को साधारण वाक्य का केवल संयुक्त भाग मानना चाहिये।

०१९—अब दो एक उदाहरण संयुक्त वाक्य के प्रयुक्तकारण के विषे आते। इसमें हुए संयुक्त वाक्य के प्रधान वाक्य के उपवाक्यों का परस्पर संबंध ना पड़ता है, और संयुक्त संयुक्त वाक्य के संयुक्त भागों को पूर्णता प प्रकट करने की आवश्यकता होती है। शेष बातें साधारण अथवा मिश्र वाक्यों के समान कहाँ जाती हैं—

( १ ) दो-एक दिन आठे हुए दासी ने उसको देखा था किंतु वह संख्या के पीछे आया था, इससे वह उसे पहचान न सकी, और उसने यही जाना कि और ही सुपचार मित्रक आया है। ( संयुक्त वाक्य )

( २ ) दो-एक दिन आठे हुए दासी ने उसको देखा था। ( मुख्य उप वाक्य पर ग ग का समावाधिकरण )

( ३ ) किंतु वह संख्या के पीछे आया था। मुख्य उपवाक्य ग ग का समावाधिकरण, क का विशेष इशंक )

( ग ) इससे वह उसे पहचान न सकी । ( मुख्य उपवाक्य व का समानाधिकरण, व का परिचयाम बोधक )

( घ ) और उसने घड़ी बनाई । ( मुख्य उपवाक्य व का, ग का संपीडक )

( ङ ) कि नीकर ही चुपचाप बिकस जाता है । ( संज्ञा उपवाक्य व का कर्म )

( १ ) अन्व जातियों के प्राचीन इतिहास में विचार-स्वतंत्र के कारण अनेक महात्मा पुरुष सूखी पर चढ़ाये या धाग में जकाये गये, परंतु यह धार्म्य जाति ही का धौरवाभित प्राचीन इतिहास है जिसमें स्वतंत्र विचार प्रकट करने वाले पुरुषों को चाहे उनके विचार कोऽमृत के चित्तम ही प्रतिबुद्ध क्यों न हों अक्षतार और सिद्ध पुरुष मानने में बरा भी आनाकानी नहीं की गई । ( संकुचित संयुक्त वाक्य )

( क ) अन्व जातियों के प्राचीन इतिहास में विचार-स्वतंत्र के कारण अनेक महात्मा पुरुष सूखी पर चढ़ाये गये । ( मुख्य उपवाक्य व ग का समानाधिकरण )

( ख ) वा ( अन्व जातियों के प्राचीन इतिहास में विचार-स्वतंत्र के कारण अनेक महात्मा पुरुष ) धाग में जकाये गये । ( मुख्य उपवाक्य ग का समानाधिकरण, क का विभाजक )

[ ५ — इस वाक्य में विधेय विस्तारक और उद्देश्य का संक्षेप किया गया है । ]

( ग ) परंतु वह धार्म्य जाति ही का धौरवाभित इतिहास है । ( मुख्य उपवाक्य व का, क, ख का विरोध-वर्तक )

( घ ) जिसमें स्वतंत्र विचार करनेवाले पुरुषों को अक्षतार और सिद्ध पुरुष मानने में बरा भी आनाकानी नहीं की गई । ( विशेष्य उपवाक्य व का )

[ ६० — इस वाक्य के विधेय विस्तारक में लक्ष्यक क्रियायक संज्ञा की पूर्ति संयुक्त है, पर इसके कारण, वाक्य के लक्ष्यकरण में विधेय, विस्तारक को दुहराने का आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पूर्ति के दोनों उभरी से एक ही



भावना सुविद्ध होती है। यदि विचार-विचारक को सुस्पष्ट तो भी उल्लेख वाक्य नहीं बनावे जा सकते, क्योंकि वह वाक्य का मुख्य अवयव नहीं है। ]

( ८ ) चाहे उनके विचार जोरमत्त के कितने ही प्रतिरूप क्यों न हों।  
[ क्रिया-विशेष्य उपवाक्य ( ४ ) का विशेष० ]

छुटा अप्पाय ।

संयुक्त वाक्य

०१०—यद्यपि वाक्यों में ऐसे शब्द जो उसके अर्थ पर से सहज ही समझ में आ सकते हैं, संक्षेप, अर्थ गौरव आने के विचार से छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार के वाक्यों को संयुक्त वाक्य कहते हैं। ( अंक—१५१—१५४ )। उदा०—( ) सुना है। ( ) कहते हैं। दूर के लोग सुनायें ( )। यह आप जैसे लोगों का काम है—यह ऐसे लोगों का काम है जैसे आप हैं। इन उदाहरणों के सूत्रे हुए शब्द वाक्य-रचना में आवेक आवश्यक होने पर भी अपन अन्वय से वाक्य के अर्थ में कोई हीनता उत्पन्न नहीं करते।

[ १०—संयुक्त शब्द वाक्य की एक प्रकार के संयुक्त वाक्य हैं, पर उनकी विशेषता के कारण उनका विशेष अलग किया गया है। संयुक्त वाक्यों के बग में केवल ऐसे वाक्यों का समावेश किया जाता है जो साधारण वाक्य-विभक्त होते हैं और जिनमें मात्राएँ शब्दों का जोड़ किया जाता है जो वाक्य में पहले कभी नहीं आते अथवा जिनके कारण वाक्य के अवयवों का संबंध नहीं होता। इस प्रकार के वाक्यों के अनेक उदाहरण अन्वय-रूप में दिए जा चुके हैं, इसलिए वहाँ उनके लिखने की आवश्यकता नहीं है। ]

०११—किसी-किसी विशेष्य-वाक्य के साथ पूरे मुख्य वाक्य का जोड़ हो जाता है; जैसे, जो हो आज़ा, जो आप अन्वय ।

०१२—संयुक्त वाक्यों का प्रवर्णन करते समय अन्वय-रूप शब्दों को प्रकट करने की आवश्यकता होती है; पर इस बात का विचार रखना चाहिये कि इन वाक्यों की जाति में कोई हेर-फेर न हो।

[ टी०—वाक्य-प्रवर्णन का विस्तृत विवेचन हिंदी में अंगरेजी भाषा के व्याकरण से किया गया है, इसलिए हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में इस

विषय को प्रकृत नहीं किया है। कुछ पुस्तकों में इसका संक्षेप से ब्यखन पाया जाता है, और कुछ में इसकी बेबल खोज-बार बारें लिखी गई हैं। ऐसी समस्या में इन पुस्तकों में की हुई विवेचना का खंडन-खंडन अनावश्यक जान पड़ता है। ]

सातवीं अध्याय ।

विशेष प्रकार के वाक्य ।

०३३—अर्थ के अनुसार वाक्यों के जो आठ भेद होते हैं ( अं०—५०९ ) उनमें से संकेतार्थक वाक्य को द्वीदक, शेष सभी वाक्य तीनों प्रकार के हो सकते हैं। संकेतार्थक वाक्य मिश्र होते हैं। उदा०—

( १ ) विधानार्थक ।

साधारण—राजा नगर में आये। मिश्र—जब राजा नगर में आये तब आर्जुन ममाया गया। संयुक्त—राजा नगर में आये और उनके बिये आर्जुन ममाया गया।

( २ ) नियेषवाचक ।

सा०—राजा नगर में नहीं आये। मि०—जिस देश में राजा नहीं रहता वहाँ की प्रजा की शांति नहीं मिलती। सं०—राजा नगर में नहीं आये, इस-लिये आर्जुन नहीं ममाया गया।

( ३ ) आश्चर्यार्थक

सा—अपना काम देखो। मि०—जो काम तुम्हें दिया गया है उसे देखो। सं०—बात भीत बंद करी और अपना काम देखो।

( ४ ) प्रश्नार्थक

सा०—वह आदमी आया है ? मि०—क्या तुम जानते हो कि वह आदमी कब आया ? सं०—वह कब आया और कब गया ?

## ( ५ ) विस्मयादिवोचक ।

सा०—तुमने तो बहुत अच्छा काम किया । मि०—जो काम तुमने किया है वह तो बहुत अच्छा है । तुमने इतना अच्छा काम किया और मुझे इसकी खबर ही न दी ।

## ( ६ ) इच्छाबोधक ।

सा०—इंतजार तुम्हें थिरागु करे । मि०—बढ़ बर्हो रहे बर्हो सुख से रहे ।  
स०—मगवान्, मैं सुखी रहूँ और मेरे सन्तान तुमसे भी सुखी रहें ।

## ( ७ ) सद्दह सूचक ।

सा०—यह बिट्टी एकदके वै किल्ली होगी । मि०—जो बिट्टी मिली है वह उस एकदके में किल्ली होगी । स०—गीकर बर्हो से बच्चा होगा और सिपाही बर्हो पहुँचा होगा ।

## ( ८ ) संवैतार्थक ।

मि०—जो वह धाक धाके तो बहुत अच्छा हो । जो मैं आपको पहले से जानता, ता आपका बिरबाम न करता ।

[ सू०—ऊपर वाक्यों के का अर्थ बताते गये हैं उनके बिदे मित्र वाक्य में यह आश्चर्यक नहीं है कि उक्त उदाहरण में भी वैसा ही अर्थ लक्षित हो का मुख्य स लक्षित होता है, पर संयुक्त वाक्य के उदाहरण उमानार्थी होने पारिष्ट । ]

०३३—मित्र-मित्र अथवा अन्य वाक्यों का प्रत्यक्षरूप उसी रीति से किया जाता है का तीनों प्रकार के वाक्यों के लिये पहले लिखी जा चुकी है ।

( घ ) आन्तरिक वाक्य का उद्देश्य मध्यम पुरुष सर्वनाम रहता है; पर बहुधा उसका अर्थ कर दिया जाता है । कर्मी-इमा अन्य पुरुष सर्वनाम आन्तरिक वाक्य का उद्देश्य होता है; जैसे, वह एक से यहाँ न आये, उसके दुर्ग के पास न आये ।

( ङ ) जब प्रत्यक्ष वाक्य में कर्तृत्व किया की शरता के विषय में प्रश्न किया जाता है, तब प्रत्यक्ष वाक्य का अर्थ 'क्या का प्रयोग किया जाता है और वह बहुधा वाक्य के अर्थ में अर्थ में आता है; परन्तु वह वाक्य का कीर्त अर्थ नहीं समझा जाता ।

भाटपों अभ्यास ।

विराम चिह्न ।

०१५—शब्दों और वाक्यों का परस्पर संबंध बताने तथा किसी विषय को निम्न-निम्न भागों में बाँटने और पढ़ने में सुविधा के लिए, छेदों में निम्न चिह्नों का उपयोग किया जाता है, उन्हें विराम चिह्न कहते हैं ।

[ टी०—विराम चिह्नों का विशेषतः अँगरेजी भाषा के अधिकांश व्याकरणों का विषय है और हिंदी में यह वही से ले लिया गया है । हमारी भाषा में इस प्रणाली का प्रचार अब इतना बढ़ गया है कि इसका प्रहण करने में कोई साधन विचार हो ही नहीं सकता, पर यह प्रश्न अत्यंत उत्पन्न हो सकता है कि विराम चिह्न शुद्ध व्याकरण का विषय है या भाषा रचना का ? यथाय में यह विषय भाषा रचना का है, क्योंकि लेखक का वक्ता अपने विचार स्पष्टता से प्रकट करने के लिए जिस प्रकार अन्वय और अभ्यन्त के द्वारा शब्दों के अनेकानेक विचारों का संबंध, विषय-विभाग, आशय की स्पष्टता, साधन और विस्तार, आदि बातें जान लेता है ( जो व्याकरण के नियमों से नहीं जानी जा सकती ) ठीकी प्रकार लेखक को इन विराम चिह्नों का उपयोग कवल भाषा के व्यवहार ही से ज्ञात हो सकता है । व्याकरण से इन विराम चिह्नों का कवल इतना ही संबंध है कि इनके नियम बहुधा वाक्य-वृत्त पर स्थापित किये गये हैं, परंतु अधिकांश में इनका प्रयोग वाक्य के अर्थ पर ही अवलंबित है । विराम चिह्नों के उपयोग से, भाषा के व्यवहार से संबंध रखनेवाला कोई सिद्धांत भी उत्पन्न नहीं होता इतकिये इन्हें व्याकरण का अंग मानने में बाधा होती है । यथार्थ में व्याकरण से इन चिह्नों का कवल गौण संबंध है, परंतु हमकी उपयोगिता के कारण व्याकरण में इन्हें स्थान दिया जाता है । ता मी इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि कद-एक चिह्नों के उपयोग में बड़ा महत्त्व है और नियमहीनता से अँगरेजी में इन चिह्नों का उपयोग होता है वह हिंदी में आवश्यक नहीं समझी जाती । ]

०१६—मुख्य विराम-चिह्न ये हैं—

- ( १ ) अक्षय विराम,
- ( २ ) अर्ध विराम
- ( ३ ) पूर्ण विराम ।

- ( ७ ) प्रथम-विह्वल ?
- ( ५ ) धारभर्ष-विह्वल !
- ( ६ ) निर्देशक ( दृष्ट )—
- ( ७ ) कोटक ( )
- ( ८ ) अन्ततः-विह्वल " "

[ ५ —अंगरेजी में कौतन नामक एक और विह्वल ( ) है, पर हिंदी में इसके विह्वल का अर्थ होने के कारण इसका उपयोग नहीं किया जाता। पूरा विराम विह्वल का अर्थ ( १ ) हिंदी का है पर ये विह्वल के अर्थ अंगरेजी की के हैं । ]

( १ ) अल्प-विराम ।

१२०—इस विह्वल का उपयोग बहुधा निचे लिखे स्थानों में किया जाता है—

( क ) जब एक ही शब्द भेद के दो शब्दों के बीच में समुच्चय बोधक न हो, जैसे वहाँ पीछे हर दोष दिखाई देते थे । वे लोग नदी साधे पार करते बसे ।

( ख ) पाठ समुच्चय बाधक से जुड़े हुए दो शब्दों पर विशेष ध्यानारण देना हो, जैसे यह पुस्तक उपयोगी, अतएव उपार्देव है ।

( ग ) जब एक ही शब्द-भेद के तीन या अधिक शब्द आते हैं और उनमें बीच-बीच से समुच्चय बाधक रहे, तब अंतिम शब्द को बीच-बीच में शब्दों के परचाय । जैसे, आठक बंधु सीप का संपुट, मरा घट भी भरता है ।

( घ ) जब कई शब्द आते हैं तो प्रत्येक शब्दों के परचाय, जैसे महाने हुए आर मुक्त पाप और पुण्य दिन आर गठ, ये सब बताये हैं ।

( ङ ) समावाधिकरण शब्दों के बीच में, जैसे ईशान के पादच्छा, आदिरशाह ने दिवशी पर चढ़ाई की ।

( च ) यदि उद्देश्य बहुत बड़ा हो तो उसने परचाय, जैसे चारो तरफ पसानेवाले सवारों के घोड़ों की पंती हुई आवाज दूर-दूर तक फैल रही थी ।

( छ ) कई-पुत्र किया विशेषय बाधकाओं के साथ, जैसे बने महारामाओं

मे समय समय पर यह उपदेश दिया है। एक इच्छी कदक मजदूर रस्ती का एक सिरा अपनी कमर में छपेट, दूसरे सिरे को धरती के बड़े टुकड़े में बाँध, नदी में कूद पड़ा।

( क ) संबोधन अरक की संज्ञा श्रीर संबोधन शब्दों के परचाय, जैसे, बलराम, फिर भी ए सबकी इच्छा पूरी करता है। जी, मैं यह चला।

( ख ) शब्दों में बहुधा पति के परचाय, जैसे—

भक्ति मोर सब गुण-रहित, विरम-विदित गुण एक।

( ग ) कथाहरणों में, जैसे, कथा, भादि शब्दों के परचाय।

( ङ ) संज्ञा के शब्दों में एकसे से ऊपर इच्छर वा तुहरे शब्दों के परचाय जैसे, १, २३३।३३, ५७ २१२।

( च ) संज्ञा-वाक्य की जोड़ मिश्र-वाक्य के रूप बड़े उपवाक्यों के बीच में; जैसे, हम उन्हें मुक्त देंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे लिए कुछ सहा है। आप एक ऐसे समुच्चय की खोज कराइए, जिससे कमी कुछ का नाम व मुना हो।

( छ ) जब संज्ञा-वाक्य मुख्य वाक्य से किसी समुच्चय-बोधक के द्वारा नहीं जोड़ा जाता; जैसे, एकके से कहा मैं अभी आता हूँ। परमेश्वर एक है, यह धर्म की मूल बात है।

( ज ) जब संयुक्त वाक्य के प्रधान उपवाक्यों में घना संबंध रहता है तब उनके बीच में; जैसे, पहले मैंने कगीचा देखा, फिर मैं एक टीले पर चढ़ गया श्रीर वहाँ से उतरकर सीधा इधर चला आया।

( झ ) जब छोटे समावाधिकारक प्रधान वाक्यों के बीच में समुच्चय बोधक नहीं रहता; तब उनके बीच में जैसे, पानी बरसा, हवा चली जोड़े गिरे। सूरज निकला बुध्या सबेरा, पत्नी शीर मचात है।

## ( २ ) अर्द्ध विराम ।

७३८—अर्द्धविराम भीषे किसी अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है—

( क ) जब संयुक्त-वाक्यों के प्रधान वाक्यों में परस्पर क्रिये संबंधी नहीं रहता, तब वे अर्द्धविराम के द्वारा अलग किये जाते हैं। जैसे, बर्दगाँव का पहाड़ कटवाकर उन्होंने विरक्त साजुओं को चुप्य किया था; पर लोगों की धार्मता पर सरकार ने इस धरपा को सीमा-यत्र कर दिया।

( क ) उन पूरे वाक्यों के बीच में जो विकल्प से अंतिम समुच्चयबोधक के द्वारा जोड़े जाते हैं; जैसे सूर्य का घस्त हुआ; आकाश घास हुआ; बरस पौधों से उठकर घूमने लगे; मोर अपने रहने के स्थानों पर जा बैठे; हरिय हरियाली पर सोने लगे; पक्षी गाते गाते बोंसलों की घोर बड़े; और जंगल में बरि-बरि धँचेरा फैलने लगा ।

( घ ) जब मुख्य वाक्य से कारकवाचक क्रियाविशेषक का निम्न संबंध नहीं रहता; जैसे, हवा के द्वारा से साधुन का एक मुकुटका भी नहीं बन सकता; क्योंकि बाहरी हवा का द्वारा भीतरी हवा के द्वारा से बन जाता है ।

( ङ ) किसी नियम के परचाय आनेवाले उदाहरण-सूचक जैसे ' राष्ट्र के पूर्व ।

( च ) उन कई आश्रित वाक्यों के बीच में जो एक ही मुख्य वाक्य पर अवलंबित रहते हैं; जैसे जब तक हमारे देश के परे-खिले लोग बह न जाने लगे कि देश में क्या क्या हो रहा है; शासन में क्या क्या सुधार हैं; और किम-किम बातों की आवश्यकता है; और आवश्यक सुधार किये जाने के लिए प्राधीन न करने लगे; तब तक देश की दशा सुधारना बहुत कठिन होगा ।

### ( ३ ) पूर्ण विराम ।

०२६—इसका उपयोग नीचे लिख स्थानों में होता है—

( क ) प्रत्येक पूर्ण वाक्य के अन्त में जैसे, इस वही से विदुस्तान क हो समविभाग होते हैं ।

( ख ) बहुधा हीरेक और ऐसे राष्ट्र के परचाय जो किसी वस्तु के उल्लेख-मात्र क किए जाता है; जैसे, राम-बन गमन । पराधीन सपनेहुँ मुक माही ।—मुबसी ।

( ग ) प्राचीन भाषा के पद्यों में अर्थात् की परचाय; जैसे—  
वासु राम मिय प्रजा दुखारी ।  
सो श्रुप अक्षसि नरक अघिकारी ॥

[ ५०—पूरे देश के अंत में दो सही लकारों लगात हैं । ]

( ङ ) कमी कमी अर्थ की पूर्णता के कारण और, परंतु, अथवा इसलिये आदि समुच्चय-बोधकों के पूर्व-वाक्य के अंत में; जैसे, ऐसा एक भी मनुष्य

यहाँ जो संसार में कुछ न कुछ कामकारी कार्य न कर सकता हो। और ऐसा ही कोई मनुष्य यहाँ जिसके लिए संसार में एक न एक उचित स्थान न हो।

### ( ४ ) प्रश्न चिन्ह ।

७४ — यह चिह्न प्रश्नवाचक वाक्य के अंत में लगाया जाता है। जैसे, क्या वह वीर तुम्हारा ही है ? वह ऐसा क्यों कहता था कि हम यहाँ न जाएँगे ?

( क ) प्रश्न का चिह्न ऐसे वाक्यों में नहीं लगाया जाता जिसमें प्रश्नवाचक के रूप में हो; जैसे, कलकत्ते की राजधानी क्या थी ?

( ख ) जिस वाक्यों में प्रश्नवाचक शब्दों का अर्थ संबंध-वाचक शब्दों का होता है, उनमें प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जाता जैसे, आपने क्या कहा, सो मैंने नहीं सुना। यह नहीं जानता कि मैं क्या चाहता हूँ।

### ( ५ ) आश्चर्य चिह्न ।

७५ — यह चिह्न विस्मयादिबोधक वाक्यों और मनोविकार सूचक शब्दों, वाक्यांशों तथा वाक्यों के अंत में लगाया जाता है। जैसे, बाह ! कमल तो तुम्हें अक्षय्य प्रसादा दिया। राम-राम ! उस लड़क़े ने हीन पत्नी को मार डाला।

( क ) तीव्र मनोविकार-सूचक संबोधन-शब्दों के अंत में भी आश्चर्य चिह्न आता है। जैसे, विरहचपलना दृष्टि से मायब ! मरी और निहारारो !

( ख ) मनोविकार सूचित करने में यदि प्रश्नवाचक शब्द आये तो भी आश्चर्य चिह्न लगाया जाता है; जैसे, क्यों ! क्या तुम्हारे लोगों से अंधी है !

( घ ) कहता हुआ मनोविकार सूचित करने के लिए जो अथवा तीव्र आश्चर्य चिह्नों का प्रयोग किया जाता है जैसे, शोक ! शोक महाशोक ! ! !

[ ६ — वाक्य के अंत में प्रश्न वा आश्चर्य का चिह्न आने पर पूरा विराम नहीं लगाया जाता। ]

### ( ६ ) निर्देशक ( उश ) ।

७६ — इस चिह्न का प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में होता है—



( क ) समान धिक्कार शब्दों का वाक्यांशों अथवा वाक्यों के बीच में, जैसे, बुनिया में बसापन—मृतकत्व—पेसी चीज नहीं आ गयी गयी मनी फिरती हो । जहाँ इन बातों से उसका संबंध न रहे—यह बेवक मनाचिनीह की सामग्री समझी जाय—वही समझना चाहिये कि उसका उद्देश्य यह हो गया—इसका वय बिगड़ गया ।

( घ ) किसी वाक्य में भाव का अचानक परिवर्तन होने पर वीम, सबको सात्वता देना, बिचारी दुः सीमा को इच्छा करना, भीम—भार क्या ?

( ग ) किसी विषय के साथ सम्बंधी अन्य बातों की सूचना देने में, जैसे, इसी सोच में सदेरा हा गया कि हाप ! इस बीनाच में घप जैसे घाय बचेंगे—म जाने भीम मीत मर्क्या ! इगर्ब के राजनीतियों के ही एक हैं—एक उदार, दूसरा अनुदार ।

( ङ ) किसी के बचनों को उद्धृत करने के पूर्व, जैसे मैं—क्या नहीं से जमीन कितनी दूर पर होगी ? कसाव—कम से कम तीन सौ मील पर । हम छोटी को सुना-मुनाकर यह अथवा बोली में बचने लाग—मुम छोटी को पीठ से पीठ बांधकर समुद्र में डुबा देंगे । क्या है—

सर्वत्र बरोबर तर नहीं, मूठ बराबर वाप ।

[ ६०—अंतिम उदाहरण में कोई कई लेखक कालन घोर डेय लगात हैं, पर हिंदा में कालन का प्रचार नहीं है । ]

( च ) लेख के बीच लेखक या पुस्तक के नाम के पूर्व, जैसे—दिले न चागुन आग करे, यह वय चढ़ती बार ।

—बिहारी ।

( ञ ) कई एक परस्पर-संबंधी शब्दों की साथ-साथ बिचकर वाक्य का संक्षेप करने में जैसे प्रथम अध्याय—प्राची भाषा । मन—सिर—घुर्की । ६—११—१२१८— ।

( ट ) बातचीत में कड़ापट सूचित करने के लिए, जैसे मैं—अब—अब—वहीं—सकता ।

( ठ ) ऐसे शब्द या उपवाक्य के पूर्व जिस पर अक्षरवाच्य की आवश्यकता है जैसे, फिर क्या बा—जो सब में सिर टपाने निराने ! पुस्तक का नाम है—रमानसता ।

( ष ) ऐसे विवरण के पूर्व जो धयास्वात न लिखा गया हो, जैसे इस पुस्तकखण्ड में कुछ पुस्तकें—इतिहासिक—ऐसी भी हैं जो अन्वय नहीं मही हैं ।

### ( ७ ) षोडश ।

७४१—कोडक नीचे लिखे स्थानों में पाता है—

( क ) विषय-विभाग में क्रम-सूचक अक्षरों वा अक्षरों के साथ, जैसे, ( क ) काष्ठ, ( घ ) स्थाय, ( ग ) रीति, ( ङ ) परिमाण । ( १ ) उम्मा अङ्कार, ( २ ) अर्थाङ्कार, ( ३ ) उभयाङ्कार ।

( ख ) समानार्थी शब्द वा वाक्यांश के साथ जैसे अक्रिय के लीनो लोग ( इच्छा ) अप्रियतर उन्हीं की संज्ञा है । इसी अक्षेत्र में एक रईस किसान ( बड़े जमींदार ) का बहका था ।

( ग ) ऐसे वाक्य के साथ जो मूल वाक्य के साथ आकर उससे रचना का कोई संबंध नहीं रखता; जैसे राधा मेरी का सीधुर्ष अद्वितीय था ( जैसी वह सुख्या भी वैसी ही पृथिव्येव सुख्या थी ) ।

( घ ) किसी रचना का अन्त करने में बाहर से अगाधे गये शब्दों के साथ जैसे, परापीव ( को ) सपनेहु सुख नाही ( है ) ।

( ङ ) नाटकदि संवादमय क्षेत्रों में हाव-भाव सूचित करने के लिये जैसे ईश—( आनंद से ) अय्य देवसेना अविगत हो गई ?

( च ) शृंग के संतोषन वा संदिह में; जैसे यह किछ आकर शब्द ( बर्ष ? ) का निर्मात कम है ।

### ( ८ ) अष्टम विह ।

७४२—इन विहों का प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में किया जाता है—

( क ) किसी के महत्वपूर्व बचन उद्धृत करने में अथवा कदावर्तों में; जैसे, इसी प्रेम से प्रेरित होकर अर्थियों के मुच से यह परम पवित्र वाक्य निकला था—“जमनी अम्मभूमिश्च स्वर्गादि परीयसी । उस वाक्य के मुचपय देखकर बस आग पही कहते थे कि “होमहार विरवान के होठ चीकने पात” ।

( क ) स्वाकृत्य, तर्क अर्थात् आदि साहित्य विषयों के उदाहरणों में, जैसे, 'मीर्य-वशी राजाओं के समय में भी भारतवासियों को अपने देश का शान था' ।—यह साधारण वाक्य है। उपमा का उदाहरण—

प्रभुहिं देखि सय रूप हिय हारे।  
किमि राखेय जयन भये तारे ॥

( ग ) कमी-कमी संज्ञा वाक्य के साथ, जो मुख्यवाक्य के पूर्व आता है, जैसे, 'रबर काहे का बनता है, वह बात बहुतों को मालूम नहीं।

( ब ) जब किसी अपर शब्द या वाक्य का प्रयोग अपर या शब्द के अर्थ में होता है। जैसे हिंदी में 'जु' का उपयोग बर्ही होता। शिक्षा बहु व्यापक शब्द है। चारों ओर से 'मारो मारो' की आवाज सुनाई देती थी।

( ङ ) अप्रचलित विदेशी शब्दों में, विशेष प्रचलित अथवा आक्षेप योग्य शब्दों में और ऐसे शब्दों में किमका आक्षेप बताया हो; जैसे, इन्होंने भी ए० की परीक्षा बड़ी कामचारी के साथ "पास" की। आप कसकसा बिध विद्यालय के "पेजो" थे। कहते भरयबाखे अपनी तक "इदसा" ही बंठ है। उनके "भर" में और बगी है।

( च ) पुरातन, समाचार-पत्र क्षेत्र विज्ञ, मूर्ति और पदवी के नाम में तथा लेखक के उपनाम और बहुतों के व्यक्तिवाचक नाम में; जैसे कपडाकाँकर से "सत्तम" नाम का भी साप्ताहिक पत्र निकलता था, इसका इन्होंने ही मास तक संपादन किया। इसके पुराने बर्कों में "परसम" नाम के एक खेचन के लेख बहुत ही हास्यपूर्ण होते थे। बर्हई में "सरदार-गुद" नाम का एक बड़ा विद्यार्थि-गुद है।

[ ए० ( १ ) अक्षर, शब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य अप्रधान हो या अवतरण बिहों से फिरे हुए वाक्य के भीतर इन बिहों का प्रयोग हो ती इन्हारे अवतरण बिहों का उपयोग किया जाता है, जैसे, 'इस पुस्तक का नाम हिंदी में 'आर्वा-समाचार' छपता है। अपने मा को 'मा' और पानी को 'वा' आदि कहते हैं। ]

( २ ) जब अवतरण-बिहों का उपयोग ऐसे लेख में किया जाता है, जो कई पैरों में विभक्त है तब वे विद्व प्रत्येक पैरे आदि में और अनुच्छेद के आदि अंत में लिखे जाते हैं। ]

के ऊपर अथवा हाठिने पर लिख देते हैं और उसके मुख्य स्वाम के नीचे, १ यह चिन्ह कर देते हैं; जैसे

शक्ति

पहो

रामदास की रचना १ स्वामाधिक है । किसी दिन हम भी आपके १ आचरो ।

### ( ६ ) टीका-सूचक चिन्ह ।

७५१—पृष्ठ के नीचे अथवा हाठिने में कोई सूचना देने के तात्पर्यकी शब्द के साथ कोई एक चिन्ह, अंक अथवा अक्षर लिख देते हैं; जैसे, इस समय मेवाड़ में राजा उदयसिंह ० राज करते थे ।

### ( ७ ) संकेत ।

७५२—समय की वृत्त अथवा पुनरुक्ति के विचारके के लिये किसी संज्ञा की संक्षेप में लिखने के निमित्त इस चिन्ह का उपयोग करते हैं; जैसे, का० ब० । वि० । सर० । जी । रा० सा० ।

( क ) अंगरेजों के कई एक संक्षिप्त नाम हिंदी में भी संक्षिप्त भाव लिखे गये हैं, जबकि इस भाषा में उदक पूर्व रूप प्रचलित नहीं है; जैसे, बी० प । सी० आई० ई० । सी० पी० । बी० आई० पी० आर० ।

### ( ८ ) पुनरुक्ति-सूचक चिन्ह ।

७५३—किसी शब्द या शब्दों को बार-बार प्रत्येक पंक्ति में लिखने की आवश्यक मिश्रावे के लिये सूची आदि में इस चिन्ह का प्रयोग करते हैं; जैसे, श्रीमान् माधवीय पं मदनमोहन माधवीय, प्रभाग

” ” कान् सी० आई० चित्तामणि, ”

### ( ९ ) तुरपता-सूचक चिन्ह ।

७५४—शब्दार्थ अथवा शक्ति की तुरपता सूचित करने के लिये इस चिन्ह का उपयोग किया जाता है; जैसे शिबित=पहा डिखा । दो और दो = ४; अ=ब ।

० वे बरी उदयसिंह थे जिनकी मास रक्षा पद्मादाई ने की थी ।

## ( १० ) स्थान-पूरक चिन्ह ।

७५५—यह चिन्ह सूचियों में जाती स्थान भरने के काम आता है।  
वैसे,

श्लोक ( कविता ) 'बाबू मैमिळीराय गुठ' १७९ ।

## ( ११ ) समाप्ति-सूचक चिन्ह ।

७५६—इस चिन्ह का उपयोग बहुधा श्लोक अथवा पुस्तक के अंत में करते हैं, जैसे,

### परिशिष्ट ( क )

#### कविता की मापा ।

१—हिंदी कविता प्रायः तीन प्रकार की ब्रह्मभाषाओं में होती है—ब्रज भाषा अथवा धीर कहीं बोधी । हमारी अधिकांश प्राचीन कविता में ब्रज-भाषा पाई जाती है और इसका बहुत कुछ प्रभाव अन्य दोषों भाषाओं पर भी बना है । स्वयं ब्रजभाषा ही में कभी-कभी बुद्धिबलही तथा दूसरी दो भाषाओं का बोधा-बहुत मेल पाया जाता है, जिससे यह कहा जा सकता है कि ब्रज ब्रजभाषा की कविता प्रायः बहुत कम मिलती है । अथवा में तुलसीदास तथा अन्य दो चार श्रेष्ठ कवियों ने कविता की है, परंतु शेष प्राचीन तथा कई एक आधुनिक कवियों ने मिश्रित ब्रजभाषा में अपनी कविता लिखी है । आज कम कुछ वर्षों से कहीं बोधी अर्थात् बोध बाक की भाषा में कविता होने लगी है । यह भाषा प्रायः गद्य ही की भाषा है ।

२—इस परिशिष्ट में हिंदी कविता की प्राचीन भाषाओं के शब्द-आवक के कई एक विचित्र संक्षेप में देने का प्रयत्न किया जाता है । इस विषय में

---

● इस विषय को संक्षेप में लिखने का कारण यह है कि व्याकरण के नियम गद्य ही की भाषा पर रचे जाते हैं और उनमें पद्य के प्रचलित शब्दों का विचार केवल प्रयोग किया जाता है । यद्यपि आधुनिक हिंदी का ब्रजभाषा से परिचित संबंध है, तथापि व्याकरण की दृष्टि से दोनों भाषाओं में

ब्रजभाषा ही की प्रचलना रहेगी, तो भी कविता की दूसरी प्राचीन भाषाओं की रूपारखी भी जो हिंदी में पाई जाती हैं, ब्रजभाषा की रूपारखी के साथ ब्यास-मिश्र ही जायगी; पर प्रत्येक रूपारख के साथ यह बताया कठिन होगा कि वह किस विशेष उपभाषा का है। ऐसी अवस्था में एक प्रकार के मिश्र मिश्र रूपारखों का उल्लेख एक ही साथ किया जायगा। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जितने रूपों का संग्रह इस परिशिष्ट में किया गया है उनके सिवा और भी कुछ अधिक रूप पद्य-रत्न कविता में पाए जाते हैं।

१—राध और पद्म के शब्दों के वर्ध-विस्थास में बहुतों यह अंतर पाया जाता है कि राध के द, ध, स, ब, श, धीर द के बदले पद्म में क्रमशः र, क, व, स और द ( अथवा ल ) आते हैं; और संपुक्त वर्धों के अक्षर अक्षर-अक्षर छिपे जाते हैं; जैसे, पदा=परा, धल=जल, पीपल=पीपर, वन=वन शील=सील रथा=रथका, साधी=साधी, बल=जलन, धर्म=धरम।

२—राध और पद्म की भाषाओं की रूपारखी में एक साधारण अंतर यह है कि राध के अधिकतर आकारांत पुष्पिग शब्द पद्म में औकारांत रूप में पाये जाते हैं; जैसे,

सुँदा—सोना=सोनो येरा=येरो, हिवा = हिबो, नाता=नातो, बसेरा=बसेरो, सपभा=सपबाँ, बहाना=बहानो ( उर्दू ), मायका=मायको।

सर्बाम—मेरा=मेरो अथवा=अपनो, परापा=परापो विसा=विसो, जितना=जितनो।

विशेष—असा=असरो पीला=पीरो, कँबा=कँबो नपा = नबो, बषा=बषो सोबा=सोबो, तिरबा=तिरबो।

दिया—गवा=गयो, देखा=देखो, जाईगा=जाइगी, करता=करतो जाना=जान्यो।

बहुत कुछ अंतर है। यदि केवल इतना ही अंतर पूरातया प्रकट करने का प्रयत्न किया जावे, तो भी ब्रजभाषा का एक छोटा मोटा ब्याकरण लिखने की आवश्यकता होगी; और इतना करना प्रस्तुत ब्याकरण के उद्देश्य के बाहर है। इस पुस्तक में कविता के प्रयोगों का काँड़ा-बहुत विचार रखा गया हो चुका है यहाँ यह कुछ अधिक निबन्धित रूप से, पर संक्षेप में किया जायगा। हिंदी कविता की भाषाओं का पूरा विवेचन करने के लिए एक स्वतंत्र पुस्तक की आवश्यकता है।

## लिंग ।

५—इस विषय में गद्य और पद्य की मापानुसंगीत में विशेष अंतर नहीं है । श्री वेदा वचन में ईं और इति प्रत्ययों का उपयोग अन्यान्य प्रत्ययों की अपेक्षा अधिक किया जाता है । जैसे वर-बुद्धिनि सङ्गुवादि । बुद्धिनि सिय सुंदर । सुधि हू न कीर्ति ठङ्गाइवी इत्येक इठ । मिश्रितनि यतु चाँद न चहत् ।

## ध्वनन ।

६—बहुधा सूचित करने के लिये कविता में गद्य की अपेक्षा कम रूपोंवर होते हैं और प्रत्ययों की अपेक्षा शब्दों से अधिक काम किया जाता है । रामचरित-मावस में बहुधा समूहवाची नामों ( गन, सुंद, पूष मिश्र आदि ) का विशेष प्रयोग पाया जाता है । उदा—

बहुधा-ठट हुँम कर्ष्य के पुंज तरे तिनके नबनोर भिरे । कपटी हातिफा तद जाखन सौं कुसुमावलि ले मकरि गिरि ।

इन उदाहरणों में मोटे ध्वनों में लिये हुए शब्द अर्थ में बहुवचन हैं, पर उनके रूप वृत्त ही हैं ।

( क ) अधिकृत कारकों के बहुवचन में संज्ञा का रूप बहुधा जसा का देसा रहता है, पर कहीं-कहीं उसमें भी विहित कारकों का रूपान्तर दिखाई देता है । आकारोठ खीरिंग शब्दों के बहुवचन में ष के बदले बहुधा र्ँ पाया जाता है ।

उदा —भीरा ये दिन कठिन हैं । निमोठत ही कपु भौर की मीरत । सिंगरे दिन वेही सुहाति है बातें ।

( ख ) विहित कारकों के बहुवचन में बहुधा न, न्ह धववा नि धाती है, जैसे, पूषेति सांगम्ह कह उदाह । ज्यों ध्यांखिन सब बन्धिवे । व रदो र्ँपुरा होइ कानन में ।

## कारक ।

७—रूप में संज्ञाओं के साथ निम्न-निम्न कारकों में जोड़े लिखी विभक्तियों का प्रयोग होता है—

कर्त्ता—ने ( कश्चित् ) । रामचरित-मावस में इसका प्रयोग नहीं हुआ ।

कर्म—हि, कीं, कई

कारण—ते, तो

संप्रदान—हि, कीं, कई

अपादान—ते, तो

संबंध—की, कर, केरा, केरो । भेष के छिग और बचन के अनुसार कीम, केरा और केरो में बिकार होता है ।

अधिकरण—मी, मां, माहिं, मांइ, माँइ ।

### सर्वनामों की कारक-रचना ।

—संज्ञाओं की अपेक्षा सर्वनामों में अधिक क्पांतर होता है इसलिये इनके कुछ कारकों के रूप बहूँ दिखे जाते हैं ।

#### उत्तम-पुरुष सर्वनाम

कारक	पुरुषवचन	बहुवचन
कर्ता	मी, हीं	हम
बिहृत रूप	भो	हम
कर्म	मीकीं, मीहिं	हमकीं हमहिं
	गोकईं ( अथ )	हमकईं
संबंध	मेरी, मोर, मोरा	हमारी, हमार
	मम ( सं )	

#### मध्यम-पुरुष सर्वनाम ।

कर्ता	तू तैं	तुम
बिहृत रूप	तो	तुम
कर्म	तुकीं तूहिं	तुमकीं तुमहिं
	तूकईं	तुमकईं
संबंध	तेरो, तोर, तोर	तुम्हारी, तुम्हार
	तव ( सं० )	तिहारी, तिहार



### अन्य-पुरुष सर्वनाम

( तिङ्प्रत्यय )

कर्ता	मद्, एहि, -	वे
विभूत	वा एहि,	इम
कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्म	बाकी	इमको इमाई
संबन्ध	बाहि, एहिऊई	इमऊई
	बाकी, एहिऊ	इमको, इमऊ
	( दूरप्रती )	
कर्ता	योह या सो	वे, वे
विभूत रूप	वा ता, तेहि	उन तिन
कर्म	बाकी, ताहि	उनकी उनहि
संबन्ध	ताऊई	तिनको, तिनहि
	बाकी, ताकी	तिनकी, तिनऊ
	तासु ( सं०ह-तस्य )	उनकी उनऊ
	ताऊ, तेहिऊ	

### निजवाचक सर्वनाम

कर्ता	आसु
विभूत	आसु
कर्म	आसुकी
संबन्ध	आसुन, आसुनी

एकवचन के समाप्त

### सर्पवाचक सर्वनाम

कर्ता	बो, बीन	वे
विभूत रूप	बा	जिन
कर्म	बाकी बेहि	जिनकी
संबन्ध	बाहि बाऊई	जिनऊई
	बाकी, बाऊ	जिनकी जिनऊ

( १६८ )

( सं० षष्ठ्य ) केहि  
कर, कासु

प्रश्नवाचक सर्वनाम [ कौन ] ।

कारक	पुङ्गवचन	बहुवचन
कर्ता	कौन को, कबय	कौन, को
विभूत रूप	का	किन्
कर्म	काकी, काहि, केहि	किन्की, किन्हि
संबन्ध	काकी, काकर	किन्की, किन्कर

( स्या )

कर्ता	का कहा	का, कहा
विभूत रूप	काहे	काहे
कर्म	काहे की	काहे की
संबन्ध	काहे की	काहे की

अनिश्चयवाचक सर्वनाम [ कोई ]

कर्ता	कोठ कोय	कोठ कोय
विभूत रूप	काहू	काहू
कर्म	काहू को काहुहि	काहू की, काहुहि
संबन्ध	काहू की	काहू की

[ कुछ ]

कर्ता	कसु	कसु
विभूत रूप	कसु	कसु
कर्म	} ये रूप नहीं पाये जाते ।	
संबन्ध		

( १९८ )

( सं -- पत्य ) बेहि  
कर, पासु

प्रद्वनवाचक सर्वनाम [ कौन ] ।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कौन को, कवन	कौन, को
विकृत रूप	का	किन
कर्म	काकी, काहि, केहि	किनकी, किनहि
संबंध	काकी, काकर	किनकी, किनकर

( क्या )

कर्ता	का कहा	का, कहा
विकृत रूप	काहे	काहे
कर्म	काहे की	काहे की
संबंध	काहे की	काहे की

अनिश्चयवाचक सर्वनाम [ कोइ ]

कर्ता	कोइ कोय	कोइ, कोय
विकृत रूप	काहू	काहू
कर्म	काहू को काहुहि	काहू की, काहुहि
संबंध	काहू की	काहू की

[ कुछ ]

कर्ता	कसु	कसु
विकृत रूप	कसु	कसु
कर्म	} ये रूप नहीं पाये जाते ।	
संबंध		

सामान्य सक्रियार्थ-काल ।

कर्ता—पुर्विचय ।

पुस्तक	प्रकृत्यचय		वस्तुवचन
१	होते, होते-हैं	१—३	होते
२	होते, होते-हैं तो होंगे	२	होते होते-हैं
३	होते, होंगे		

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१	होती, होती-हैं	}	होती,
१—३	होत, होती		

सामान्य वर्तमान-काल ।

कर्ता—पुर्विचय वा स्त्रीलिंग ।

१	होतु हीं होत हीं	१—२	होतु हैं होत हैं
२—३	होतु है, होत है	२	होतु हीं, होत हीं

अपूर्व-भूत-काल ।

कर्ता—पुर्विचय ।

१	होत रहो—रहे-हैं	}	होत रहे
२—३	होत रहो		

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३	होत रही, रहे-हैं	होत रहीं
-----	------------------	----------

सामान्य भूत-काल ।

कर्ता—पुर्विचय ।

१	मयी मय-हैं	१—३	मये
२	मयी, मये-हैं		
३	मयी, मय-हैं, मये-हैं		

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।

१—३ रही, ही

१—३ रही, हीं

[ धृ०—इस क्रिया के शेष काल विकारदशक 'होना' क्रिया के स्त्री के समान होते हैं । ]

होना ( विकार-दर्शक ) ।

संभाव्य-भविष्यत् ( भयथा सामान्य-वर्तमान )

कर्ता—पुंलिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग ।

पुरुष	पक्षयजन	पुरुष	बहुवचन
१	होई	१—३	होएँ
२—३	होय, होये, होई	२	हो

विविधाल ( प्रत्यय )

कर्ता—पुंलिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग ।

१	होई	१—३	होएँ
२—३	होय, होये	२	हो, होइ

विविधाल ( परोक्ष )

कर्ता—पुंलिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग ।

१	होइयो	होइयो, होइ
---	-------	------------

सामान्य भविष्यत् ।

कर्ता—पुंलिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग ।

१	होइहीं, हेंहीं	१—३	होइँ, हेंँ
२—३	होइँ, हेंँ	२	होइँ, हेंँ

अवध

कर्ता—पुंलिङ्ग

१	होइँगे	१—३	होइँगे
२—३	होयगे	२	होये

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।

१	होइँगी	१—३	होइँगी
२—३	होयँगी	२	होयँगी

सामान्य सक्रियार्थ-काल ।

कर्ता—पुर्विचय ।

पुरुष	एकवचन		बहुवचन
१	होतो, होतेहैं	१—३	होते
२	होतो, होतेहैं तो होण	२	होते होतेहैं
३	होतै, होण		

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१	होती, होतिहैं	}	होती,
१—३	होत, होती		

सामान्य धर्तमान-काल ।

कर्ता—पुर्विचय वा स्त्रीलिंग ।

१	होण हीं, होव हीं	१—३	होण हें होव हें
१—३	होण है, होव है	२	होण हीं, होव हीं

अपूर्व-भूत-काल ।

कर्ता—पुर्विचय ।

१	होव रघो—रहेहैं	}	होव रहे
१—३	होव रघो		

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३	होव रही, रहेहैं	होव रहीं
-----	-----------------	----------

सामान्य भूत-काल ।

कर्ता—पुर्विचय ।

१	मबी मयहैं	१—३	मवे
२	मबी, मबेसि		
३	मबी, मबह, मबेसि		

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन
१—३	मई		मई

आसन्न भूत-काल ।

कर्ता—पुंलिङ्ग ।

१	मयी ही	१—३	मये हैं
२—३	मयी है	२	मये ही

कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।

१	मई हों	}	मई हैं
२—३	मई है		

[ ६० ] अवशिष्ट स्मों का प्रसार बहुत कम है और वे ऊपर लिखे स्मों की सहायता से बनाये जा सकते हैं । ]

ध्वंशनात् घातु ।

सङ्घा ( अङ्गनाम किया ) ।

- क्रियार्थक संज्ञा—बहना, बहनी, बहिनी  
कर्तृवाचक संज्ञा—बहनाहार  
वर्तमानकालिक कृदन्त—बहत, बहतु  
भूतकालिक कृदन्त—बस्यी  
पूर्वकालिक कृदन्त—बसि, बसिके  
कारणविज्ञ कृदन्त—बहतही  
अपूर्व क्रियाघोषक कृदन्त—बहत, बहतु  
पूर्व क्रियाघोषक कृदन्त—बसे

समाध्य-भविष्यत् ( अथवा सामान्य-वर्तमान ) ।

कर्ता—पुंल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग ।

पुंल्लिङ्ग, बहुवचन	१—३	बसें, बसहिं
--------------------	-----	-------------

पुङ्ग	पुङ्गवचन	पुङ्ग	पुङ्गवचन
२	बढै बढसि	२	बढा, बढु
२	बढै बढइ बढहि		
विधिकाल ( प्रत्यक्ष ) ।			
कर्ता—पुङ्गिण वा स्त्रीणिण ।			
१	बढौ बढ्ये	१—३	बढि बढिहि
२	बढ, बढे, बढरी	१	बढौ बढु
विधिकाल ( परोक्ष ) ।			
कर्ता—पुङ्गिण वा स्त्रीणिण ।			
२	बढियो		बढियो
आदासूक्त विधि			
२—३	बढिये		बढिये
सामान्य-भविष्यत् ।			
कर्ता—पुङ्गिण वा स्त्रीणिण			
१	बढिई	१—३	बढिई
२—३	बढिई	२	बढिई
( अथवा )			
कर्ता—पुङ्गिण			
१	बढीयो	१—३	बढीगे
२—बढीयो		२	बढीगे
कर्ता—स्त्रीणिण ।			
१	बढीगी	१—३	बढीगी
२—३	बढीगी	२	बढीगी
सामान्य सकृदाय ।			
कर्ता—पुङ्गिण			
१	बढतो बढत	१—३	बढते
	बढतई	२	बढतेइ
३	बढतो, बढत		
	बढतेइ		
३	बढतो, बढत		



कता—स्त्रीलिङ्ग ।

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन
१	बखती, बखतिका	}	बखती
१—२	बखती बखत		

सामान्य वर्तमान-काल ।

कता—पुंलिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग ।

१	बखत हूँ	१—२	बखत रहे
१—२	बखत है	२	बखत ही

( अयथा )

कता—स्त्रीलिङ्ग

१	बखति हूँ	१—२	बखति है
१—२	बखति है	२	बखति ही

अपूर्व भूत-काल ।

कता—पुंलिङ्ग ।

१	बखत रही—रहेहें	१—२	बखत रहे
१—२	बखत रही		रहे—रही

कता—स्त्रीलिङ्ग ।

१—२	बखत रही	१—२	बखत रही
२	बखत रही, हुई		

सामान्य-भूत

कता—पुंलिङ्ग ।

१—२	बखी	१—२	बखे
-----	-----	-----	-----

कता—स्त्रीलिङ्ग ।

१—२	बखी		बखी
-----	-----	--	-----

प्रासन्न भूत-काल ।

पुरुष	पुरुषवचन	पुरुष	पुरुषवचन
		कर्ता—पुरुषिण ।	
१	बढ़पी हो	१—३	बढ़े है
२—३	बढ़पी है	२	बढ़े ही
		कर्ता—स्त्रीकिण ।	
१	बढ़ी हो	१—२	बढ़ी है
२—३	बढ़ी है	२	बढ़ी ही

पूर्य्य भूत-काल ।

		कर्ता—पुरुषिण ।	
१—३	बढ़यो रह्यो हो	१—३	बढ़े रहे है
		२	बढ़े रहे—रही, है
		कर्ता—स्त्रीकिण ।	
१—३	बढ़ी रही हो	१—३	बढ़ी रही, ही

स्वरांत घातु ।

पाठ्य ( अकर्मक ) ।

- क्रियार्थक संज्ञा—पाया पावनी, पाइयो
- कर्तृवाचक—पावणहार
- कर्तृभावकाधिक कर्तृत्व—पावत
- भूतकाधिक कर्तृत्व—पायी
- पूर्वकाधिक कर्तृत्व—पाय पाइ, पापई,
- पाइके

- तत्काधिक कर्तृत्व—पावतही
- अपूर्व क्रियापीठक—पावत
- पूर्व क्रियापीठक—पाये

## सामान्य मविष्यत्-काल ।

( अथवा सामान्य वर्तमान-काल )

कर्ता—पुर्विज्ञा वा स्त्रीविग ।

पुद्व	पुद्वचन	पुद्व	बहुवचन
१	पावौ पावळें	१—३	पावहिं, पावे
२	पावै, पावहिस	२	पावौ, पावहु
३	पावै पावद्, पावहि		

विधि-काल ( मत्पच ) ।

कर्ता—पुर्विज्ञा वा स्त्रीविग ।

१	पावौ, पावळें	१—३	पावै पावहि
२	पाड, पावै, पावही	२	पावौ, पावहु

विधि-काल ( परोच ) ।

२	पाईवो	२	पाईपी
---	-------	---	-------

आदर-सूचक विधि ।

२—२	पाइये	२—२	पाइये
-----	-------	-----	-------

सामान्य मविष्यत्-काल ।

१	पाइवों	१—३	पाइवै
२—३	पाइवै	२	पाइवौ-

( अथवा )

कर्ता—पुर्विज्ञा ।

१	पाइवों, पाइवुंगो	१—३	पाइवें, पाइविंगे
२—३	पाइवो पाइविंगो	२	पाइवौ पाइवुंगे-

कर्ता—स्त्रीविग ।

१	पाइवों, पाइवोंगी	१—३	पाइवोंगी
२—३	पाइवोंगी	२	पाइवोंगी

( १७७ )

सामान्य संकेतार्थ-काल ।

		कर्ता—पुङ्क्तिग ।		
पुरुष	एकवचन		पुरुष	बहुवचन
१—३	पावतो		१—३	पावते
		कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।		
१—३	पावती	१—३	पावती	

सामान्य वर्तमान-काल ।

		कर्ता—पुङ्क्तिग ।		
१	पावत हौ		१—३	पावत हे
२—३	पावत है	२		पावत ही
		कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।		
१	पावति हौ	१—३	पावति हे	
२—३	पावति है	२	पावति ही	

अपूर्व भूतकाल ।

		कर्ता—पुङ्क्तिग ।		
३	पावत रह्यौ		१—३	पावत रहे
२—३	पावत रह्यो	२		पावत रहे-रही
		कर्ता—स्त्रीलिङ्ग ।		
१—३	पावत रही	१—३	पावत रही	

सामान्य भूत-काल ।

		कर्ता—पुङ्क्तिग ।		
१—३	पायी	१—३	पाये	
३७				

## कर्म—शीर्षिक ।

पुरुष	पुरुषवचन	पुरुष	वदुवचन
१—३	पाई	१—३	पाई

[ सू० सामान्य भूतफल तथा इस वग के अन्य शब्दों में सकर्मक क्रिया की फल-रचना अकर्मक क्रिया के समान होता है । 'अर्थात् फल ऊपर के आदेश पर बन सकत है । ]

## अभ्यय ।

अभ्ययों की वाक्य-रचना में गण और पद की भाषाओं में विशेष अंतर नहीं है, पर पिछली भाषा में हम शब्दों से प्रांतिक रूपों का ही प्रचार होता है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं—

## क्रिया-विशेषण ।

स्थानवाचक—इहाँ, इत, इँसे ऊँ, तहाँ, तित, तितै, उहाँ, उह, उहाँवों, ऊहाँ, कित, कितै, ऊँ, ऊँवों उहाँ, जित, जितै, ऊँ, ऊँव ।

कारणवाचक—अब अबै, अबहिँ ( अभी ), तब, तबै, तबहिँ ( तभी ), कब, कबै, कबहुँ, ( कभी ), जब, जबै, जबहिँ ( जभी ) ।

रीति वाचक—येसे, अस, जो, हमि, तैसे, तस, त्यो, बैस, तिमि, कैसे, कथ, क्यों, किमि जैसे अस रूपों, जिमि ।

परिमाण-वाचक—बहुत, बह केवळ, बिपट अतिशय, अति ।

## संबंध सूचक

निकट, मेरे, हिय, बिब, मध्य, समुच्च तरे, ओर, बिनु, बी, छगि, बाई अनुक्रम, समाव, करि, जाम, हेतु, सरिस, इव, खाने अहित, इत्यादि ।

## समुच्च-बोधक ।

संबोधक—ओ अब, फिर, पुबि, तथा तहँ—ऊँ ।

विभाजक—वतक, बाहित, न—व के—कै, वरु, मनु ( राम० ) पी, बी, अपवा, किवा, चाई—अदे, का-अ ।

विरोध दर्शक—ऐ तरुपि, बघपि—तरुपि ।

परिग्रामदर्शक—पातें, पासों, इदि, हेतु, जातें ।

स्वस्मयबोधक—कै, जो ।

संभव-पर्यक—जी—तो आप—तो ।

विस्मयादि-बोधक

हे र, हा हाय, हा-हा, अहह, भिह् अय कहि पाहि पर ।

परिच्छिष्ट ( छ )

काव्य-स्वतंत्रता ।

११—कविता की दोनों प्रकार की मापनों में अलग-अलग प्रकार की काव्य-स्वतंत्रता पाई जाती है; इसलिये इसका विचार दोनों के संबंध से अलग अलग किया जायगा ।

( अ ) प्राचीन मापा की काव्य-स्वतंत्रता ।

५१—विभक्तियों का बोध—

( क ) कर्ता-कारक—इन बाही कसु कात्र बिगारा । नारव् देखा विदुष अर्पता—( राम ) । जगत अथाचो जिहि सज्ज—( सत० ) ।

( ख ) कर्म—भूप भरत पुनि विव बुझाई—( राम० ) । पारी अजा मिछ पार कियो—( जगत्० ) ।

( ग ) कर्म—ओं अँखिन सब देखिबे—( सत० ) जागि अगम आपनि कइदाई—( राम० ) ।

( घ ) संवदान—आमर्षत मीलादि सब पहिरये रबुवाच—(राम०) । सुरन बीरव देत पह नव बर गुण संचार ( क क ) ।

( ङ ) धरादाव—हामि कुसंग सुसंगति काहु । आकहु बेर विरित सब काहु— राम० ) विदुष भयंकर के करन जो कनु पित अकुपत—( जगत्० ) ।

( च ) संबंध—भूप रूप, तब राम दुराध—( राम० ) पाबस घन-बेविपार में—( सत० ) ।

( ३ ) अधिकरण—मामुर्विश मे मूप बबरे—( राम० ) । एक पाप भीत एक मति कहीये बरे—( जय० ) ।

११—सपादाकक और सहकररी क्रियाओं का शीप—

( क ) भव जो कही सो सुदी—( कबीर० ) । बनि रहीम बे खोग—( रहीम० ) ।

( ख ) अति विकराक न जात ( ) बताबी—( जय० ) । कपि कह ( ) भर्मशीलता होरी । हमहुँ सुबी तत पर-तिय-बोरी । राम० ) ।

१२—संबंधी कर्मों में से किसी एक कर्म का शीप बबबा विपर्यय ओ बनरवों बय बंधु-विषोह ।

( ) पिता-वचन बहिं मन्त्रों ओहू ॥ ( राम० )

कोटि अतन कोक करै, पिर न प्रकृतिहिं बीच ।

( ) नख बस नख ऊँचो चरी, अंत बीच को गीच ॥ ( सत )

जाके राखै साहूयाँ, ( ) मारि न सकिहै कोय । ( कबीर० )

छी बगि या मय सदन महुँ, हरि आबहिं केहि बाट ।

निपट विकट प्रै छीं जुटे, सुबहिं न कपट-कपाट ॥ ( सत )

तब बगि मोहिं परखियहु भाई ।

×

×

×

बन बगि आबहुं सीठहिं बेबी ॥ ( राम० )

१५—प्रचलित कर्मों का अपघ्नस—

काज-काज ( राम० )

सपना—सापना ( जय० ) ।

एकत्र—एकत ( सत० ) ।

संस्कृत—संसकित ( कबीर० ) ।

१६—पाम धातुओं की बहुतायत—

प्रमाय—प्रमावित ( सत० ) ।

विद्व—विद्विषे ( कुंड० ) ।

गबन—गबनहु ( राम ) ।

अनुराग—अनुरागत ( सीति० ) ।

१७—अर्थ के अनुसार यमांतर—

- मेघनाद—वनयाद ( रा० ) ।  
 हिरण्यपाप—हाटकबोधक ( तत्र ) ।  
 कुंभज—घटक ( तत्रैव ) ।

( आ ) खड़ीबोली की काव्य-स्वतंत्रता ।

१८—यद्यपि खड़ीबोली की कविता में शब्दों को इतनी ठोसमरौब होती जितनी प्राचीन भाषा की कविता में होती है तथापि उसमें भी श्लोक बहुत कुछ स्वतंत्रता से काम लेते हैं । खड़ीबोली की काव्यस्वतंत्रता कीचे लिये विषय पाये जाते हैं—

[ क ] शब्द-दाप ।

१९—खड़ी-खड़ी प्राचीनशब्दों का प्रयोग—

नेक न जोवन-काल विद्याका ( सर० ) ।

पल-भर में तजके मनता सब ( हि० प्र० ) ।

सुष्वनित पिछ लौं जो बारीक या बगला ( त्रिप० ) ।

२०—कठिन संस्कृत शब्दों का अधिक उपयोग—

माता है जो स्वयमपि बही रूप होता बरिष्ठ ( त्रिप० ) ।

स्पर्कुल-जलज का है जो समुत्कुलसहायी ( त्रिप० ) ।

२१—संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश—

मार्गं बुभुमारम ( सर० ) ।

हरिचर्चत्र=हरिचंद्र ( क० क० ) ।

बपयि=यद्यपि ( हि० प्र० ) ।

परमार्य=परमारथ ( सर० ) ।

२२—मानघानुष्यों का प्रयोग—

न तो यों मुझे लोग सम्मानते हैं ( सर० ) ।

देख मुझ का भी मन सोमा ( क० क० ) ।

२३—बंधे समास—

दुख-जलनिधि-शुभी का सहाय करों है ( त्रिप० ) ।

अगरित-कमल-अमल जल-पूरित ( उ० क० ) ।



शैलेंद्र-तीर-सरिता-अक्ष ( सर० ) ।

१४—अरसी अरबी शब्दों का अक्षमिष प्रयोग—

अफसोस ! अक्षतक मी बने हैं पात्र जो संताप के—( सर० ) ।

शिरोरोग का अंतः एक दिन बिये बहाना । ( तत्रैव ) ।

१५—शब्दों की तोष-मरोह—

आधार=आधारा ( मिष० ) ।

गुही=गुही ( सर० ) ।

आहता=अहत ( तत्रैव ) ।

बही=बहि ( पुरात० ) ।

१६—संस्कृत की बर्ष-गुफ्त—

किन्तु अमी लोग उछी सचेरे ( हिं प्र० ) ।

मुझ पर मत आना बाब कोई कबापि ( सर० ) ।

सहीनर-कित्तीय के स्वर्गोत्त हाव भी किना ( सर० ) ।

१७—पाद-पूरक सम्बन्ध—

है सु अक्षिण समान कक्षबही ( सर० )

न होगी अहो पुत्र बाबों स्वभावा ( तत्रैव० ) ।

१८—विषम तुकांत—

रत्न-अक्षित सिंहासह-अपर जो अक्षे ही रहते थे ।

गुण-मुकुटों के सुमन रत्न-अक्ष अक्षिण भूषित करते थे ।

—( सर० ) ।

अब तक तुम पत्र पात्र करोगे बित बीरोग-अक्षिण रहोगे ।

पूछोगे बित बने फखीरों, पुत्र कभी मद्र-पात्र न करोगे ।

—( सुषि० ) ।

( ख ) व्याकरण-दोष ।

१९—संकर समास—

अक्ष-बाग ( सर० ) ।

रत्न-क्षेत्र ( तत्रैव ) ।

छोड़-अक्ष ( तत्रैव ) ।

मंठ-दिश ( तत्रैव ) ।

भारत-अक्षि ( तत्रैव ) ।

३०—शब्दों के प्राचीन रूप—

कीजिये=करिये ( सर० ) ।

हूजियो=हूजो ( तत्रैव ) ।

देघोगे=दोगे ( तत्रैव )

जबती है=जबै है ( एकान्त ) ।

सरखपन=सरखपना ( प्रिय० ) ।

३१—शब्दों-मेहों का प्रयोगांतर—

( क ) अकर्मक क्रिया प्रयोग अकर्मक क्रिया के समान अकर्मक का अकर्मक के समान—

( १ ) प्रेम-सिंदु में स्व त्रय वर्ग को शीघ्र नहा दो ( सर० ) ।

( २ ) व्यापक न ऐसी एक भाषा और कीखलाती यहाँ ।

( ख ) विशेष्य को क्रिया विशेष्य बनाना—जीवन सुखद बताते थे ( सर० ) ।

३२—अप्रायिवाचक कर्म के धाप अभावश्यक विष्ट—

सहसा उछले पकड़ किया कुण्ड के कर छोड़ो । ( सर० ) ।

पाकर उचित सतकार छोड़ो ( तत्रैव ) ।

३३—' यहीं' क बदलै 'न' का प्रयोग—

छुक ! न हो सकते यहाँ से वे कदापि रसाख हैं ( सर० ) ।

खिलना मुझे न आता है ( तत्रैव )

३४—भूत-आद्य का प्राचीन रूप—

रति जी जिसकी देख खजामी ( क० क० )

मोह-महाराज की पताका फहरायती है ( तत्रैव ) ।

३५—कर्मवि-प्रयोग की भूत—

छद्रिचन एक रस-केहि धाप निर्धारि ( सर० ) ।

स्वपद-अत्र किये जिसमें हमें ( क० क० ) ।

३६—विभक्तियों का छोप—

( ओ ) मम सद्गन बहादा स्वर्ष मंदाकिणी का । ( प्रिय० ) ।

शैलेंद्र-तोर-सरिता-जल ( सर० ) ।

१७—आरसी आरबी शब्दों का अरमिष्ठ प्रयोग—

अफसोस ! भवतक भी बने हैं पाव जो संताप के—( सर० ) ।

शिरोरोग का अंतः एक दिव खिये बहाना । ( तत्रैव ) ।

१५—शब्दों की लोभ-मरोह—

आधार=आधारा ( त्रिप० ) ।

रुही=रुही ( सर० ) ।

बाहता=बाहत ( तत्रैव ) ।

मही=महि ( पृकान्त० ) ।

१६—संस्कृत की बर्ष-गुफ्त—

किन्तु अभी लोग उसी सवेरे ( हि० प्र० ) ।

मुख पर मत आया दोष कोई कदापि ( सर० ) ।

उत्पीनर-वितम्ब मे स्वर्माद्य शब्द भी किना ( सर० ) ।

१७—पाद-पूरक शब्द—

है सु कोकिल समाज क्यबैबी ( सर० )

न होगी आहो पुष्ट बीबी स्वभाषा ( तत्रैव० ) ।

२८—विषम तुकान्त—

रत्न-आशित सिंहासह-अपर ओ अरेव ही रहते थे ।

सुप-मुकुटों के सुमन राजकण्ड शिबको भूषित करते थे ।

—( सर० ) ।

जब तक तुम पय पाव करोगे, विष बीरोग-शरीर रहोगे ।

फूलोंमें मित्र पये फूलोंमें, पुत्र कमी मद-पाव न करवा ।

—( सुषि० ) ।

( सु ) व्याकरस-दोष ।

२९—संकर समास—

बय-बाग ( सर० ) ।

रथ लेत ( तत्रैव० ) ।

कोक-बक ( तत्रैव ) ।

मंथ दिव ( तत्रैव ) ।

भारत-बाजी ( तत्रैव ) ।

२०—शब्दों के प्राचीन रूप—

कौत्रिये=करिये ( सर० ) ।

हृत्रियो=हृत्रो ( तत्रैव ) ।

देत्रीगे=द्रीगे ( तत्रैव ) ।

अधती है=अधी है ( पुकांठ ) ।

सरसपन=सरसपना ( म्रिय ) ।

२१—शब्दों-भेदों का प्रयोगांतर—

( क ) सकर्मक क्रिया प्रयोग सकर्मक क्रिया के अमान सकर्मक का सकर्मक के समान—

( १ ) प्रेम-सिद्धु में स्व जन्म बर्ण को शीघ्र महा द्यो ( सर० ) ।

( २ ) ध्यापक न देखी एक भाषा और दीखझाती बर्णो ।

( ख ) विद्येव्य को क्रिया विद्येव्य बनाना—जीव्य सुखद् विद्याते  
ये ( सर० ) ।

२२—प्रपायिबाचक कर्म के साथ अनाकरवक विद्—

सहसा उससे पकड़ किया कृष्य के कर को । ( सर० ) ।

पाकर उचित सत्कार को ( तत्रैव ) ।

२३—"वहीं" के बरवै न का प्रयोग—

एक ! न हो सकते कर्णों से वे कहापि रखा है ( सर० ) ।

खिचना मुझे न धाटा है ( तत्रैव ) ।

२४—मूल-व्यय का प्राचीन रूप—

रति मी जिसको देख सजानी ( क क० )

मोह-महाराज की पताका फहरानी है ( तत्रैव ) ।

२५—कर्मवि-प्रयोग की मूल—

ताद्विषय एक रस-केवि थाप निर्घारि ( सर० ) ।

स्वपद-भ्रष्ट क्रिये विघमें हमें ( क० क० ) ।

२६—विभक्तियों का बोध—

( ओ ) मम सद्मन बहाया स्वर्ष मंदाक्रीणी का । ( म्रिय० ) ।

सुरपुर बीठी हुई ( सर० ) ।

१०—सहकारी किया कर खोप—

किंतु उख-पद में मध रहता ( सर० ) ।

हाय ! आज जब मैं क्यों फिरते, धार्यों तुम सरसी के तीर ।

—( तपैव ) ।

१८—संबंधी शब्दों में से किसी एक का अथवा विपर्यय—

मबल जो तुममें पुष्ट्यार्थ हो—

( ) सुखभ कौन तुम्हें पदार्थ हो ( पच० )

बिच्छा बही इच्छ पम का खब,

( ) कर आये अनुभाव ( सर० )

कहो म मुम्मे-बापी बचकर, ( ) जयजीवन है स्वप्न-समाप्त

—( बीजम० ) ।

जब तक तुम पचमाय करोगे । ( ) बित निरोध शरीर रहोगे ।

—( सुक्ति० ) ।

कब मुक जिसका मैं आज बौं भी सकी हूँ ।

बह हृदय हमारा मिस-तारा कहां है ? ( मिव० )

समाप्त

—

## उदाहृत ग्रंथों के नामों क संकेत ।

- [ १ ] अथ०—अथर्ववेदा सूत्र ( पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय )  
 [ २ ] आर्या-जीवन ( पं० रामचंद्र शुक्ल )  
 [ ३ ] आरा०—आराध्य-मुष्पांशुका ( पं० श्रीधर पाठक )  
 [ ४ ] ईग०—ईगर्भक का इतिहास ( पं० श्यामबिहारी मिश्र )  
 [ ५ ] इति०—इतिहास-तेमिर-भ्रातृक भा० १—३ ( राजा शिबप्रसाद )  
 [ ६ ] एकांत०—एकांतवासो योगी ( पं० श्रीधर पाठक )  
 [ ७ ] एकर०—एकर कारतकारी मध्यमद्वय ( रा० सा० बाबू मधुसूदनसाहू )  
 [ ८ ] क० क० कविता-कलाप ( पं० महाश्वोरप्रसाद द्विवेदी )  
 [ ९ ] कवि-प्रिया ( शेषवहास कवि )  
 [ १० ] कर्पूर०—कर्पूर मंजरी ( भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [ ११ ] कबीर—कबीर साहब के ग्रंथ  
 [ १२ ] कदा०—कदावत ( प्रचलित )  
 [ १३ ] कुंड—कुंडलिका ( गिरधर कविराय )  
 [ १४ ] गो—गोदान ( बाबू प्रेमचंद्र )  
 [ १५ ] गंगा—गंगा कदरी ( पद्याकर कवि )  
 [ १६ ] गुल्का०—गुल्का भा० १—३ ( राजा शिबप्रसाद )  
 [ १७ ] चंद्र०—चंद्रहाम ( बाबू मैथिलीचरण गुप्त )  
 [ १८ ] चंद्र प्र—चंद्रप्रभा धीर पूर्ण प्रकाश ( भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [ १९ ] चौ० पु—चापू पुस्तक ( पं० मदनमोहनमालवीय )  
 [ २० ] जगत्—जगत्त्रिभुव ( पद्याकर कवि )  
 [ २१ ] जोषम०—जोषमोदेरप ( रा सा० पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी )  
 [ २२ ] बीबिका परिपटी ( पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय )  
 [ २३ ] डेठ०—डेठ हिंदी का गठ ( पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय )  
 [ २४ ] तिब्रो०—तिब्रोत्तमा ( बाबू मैथिलीचरण गुप्त )  
 [ २५ ] दु० स०—दुखसी-सतसई ( गो दुखसीदास )  
 [ २६ ] बागरी०—बागरी प्रचारिणो-पत्रिका ( बायी-बा०-प्र सभा )  
 [ २७ ] बीलि-कठक ( महाराज प्रतापसिंह )  
 [ २८ ] बाळ०—बीळदेवा ( भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र )

- [२३] विबंध—विबंध चंद्रिका ( पं रामनारायण चतुर्वेदी )  
 [२०] पद्य०—पद्य-प्रबंध ( बाबू मैथिलीशरण गुप्त )  
 [३१] परी०—परीक्षा-गुण ( बाबा श्रीधरदासदास )  
 [३२] प्रबन्धि०—प्रबन्धि-माधव ( पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री )  
 [३३] मित्र०—मित्र प्रभास ( पं० अबोध्यासिंह कपाध्याय )  
 [३४] पीपूष०—पीपूषाचार-रीति ( पं० रामेश्वर भट्ट )  
 [३५] प्रेम०—प्रेमसागर ( पं० बलरूबी शास्त्र कवि )  
 [३६] मा० द्रु०—भारत-दुर्वेदा ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [३७] भाष्यसार०—भाष्यसार-संग्रह ( नागरी-मचारिणी-सभा )  
 [३८] भारत०—भारत भारती ( बाबू मैथिली शरण गुप्त )  
 [३९] मुद्रा०—मुद्राराक्षस ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [४०] रघु०—रघुवंश ( पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी )  
 [४१] रत्ना०—रत्नावली ( बाबू बाबूमुकुंद गुप्त )  
 [४२] रहीम०—रहिमन-शक ( रहीम कवि )  
 [४३] राज०—राजनीति ( पं० बलरूबीशास्त्र कवि )  
 [४४] राम०—रामचरित-भावस ( यो० तुलसीदास )  
 [४५] ब०—ब्रह्मी ( बाबा भगवान्‌रहीम )  
 [४६] विद्या०—विद्यार्थी ( पं० रामजीशास्त्र ठमाँ )  
 [४७] विद्याकुल—विद्याकुल ( राजा शिवप्रसाद )  
 [४८] विचित्र०—विचित्र-विचरण ( पं० जयचाम प्रसाद चतुर्वेदी )  
 [४९] विमर्शि०—विमर्शि विचार ( पं० गौर्विद्यारामय्य मिश्र )  
 [५०] बी०—बीजा ( अक्षयप्रसाद द्विवेदी )  
 [५१] ब्रज०—ब्रजविद्या ( ब्रजवासी दास कवि )  
 [५२] शकु०—शकुंतला ( राजा ब्रह्ममर्षिह )  
 [५३] शिवा०—शिवा ( पं० सूरदासारायण पांडेय )  
 [५४] शिव —शिवर्षु का चिन्ता ( बाबू बाबूमुकुंद गुप्त )  
 [५५] स्वामा —स्वाम स्वप्न ( शकुल जयमोहनसिंह )  
 [५६] सत —सतसई ( बिहारीशास्त्र कवि )  
 [५७] सार०—सार हरिश्चंद्र ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [५८] सद्०—सद्गुणी पाण्डक ( छतराम )  
 [५९] सर०—सरस्वती ( पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी )  
 [६०] सरो०—सरोजिनी ( बाबू रामकृष्ण वर्मा )

- [६१] साखी०—साखी ( कबोर साहब )  
 [६२] छाके०—छाकेठ ( नैपिजीगरण गुठ )  
 [६३] मुंदरी०—मुंदरी-तिष्ठक ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [६४] सूक्ति०—सूक्ति-मुक्तावली ( पं रामचरित उपाध्याय )  
 [६५] सूर०—सूर-भाषण ( सूरदास कवि )  
 [६६] स्वा०—स्वाधीनता ( पं महावीर प्रसाद त्रिवेदी )  
 [६७] रईद०—रईदगुठ ( बाबू जयशंकरप्रसाद )  
 [६८] हि०—हितकारिणी ( रा सा० पं० रघुबरप्रसाद त्रिवेदी )  
 [६९] हि० क्ये—हिंदी-कौचिक-रत्नाका ( रा सा० बाबू रघुनाथमुंदरदास )  
 [७०] हि० प्र०—हिंदी प्रथमाका ( प नाथबहाब सग्ने )

### मायाओं क नामों क संकेत ।

घ०—घरकी  
 प्रा०—प्राकृत  
 रई—रईगरयो

स—संस्कृत  
 हि—हिंदी

### अन्य संकेत

घं०—घंठ  
 कहा०—कहावत  
 सू—सूचना

प्रत्या०—प्रोत्पार्थक  
 टी—टीका  
 उदा०—उदाहरण

हिंदी व्याकरण की सर्वमान्य पुस्तकें ।

( कानन-क्रम क अनुसार )

- [ १ ] हिंदी-व्याकरण—पादरी ध्यादम साहित्य ।  
 [ २ ] व्याकरण-रत्नकोषिणी—पं रामचरित ।  
 [ ३ ] व्याकरण-त्रोदय—पं श्रीवाह ।



- [२३] निबंध—निबंध चंद्रिका ( पं रामचारायण चतुर्वेदी )  
 [२४] पद्य०—पद्य-प्रबंध ( बाबू मैथिलीशरण गुप्त )  
 [२५] परी०—परीक्षा-गुण ( बाबा श्रीविद्यासदास )  
 [२६] प्रथमि०—प्रथमि-भाष्य ( पं० गंगाप्रसाद अग्रिहोत्री )  
 [२७] प्रिय०—प्रिय प्रवास ( पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय )  
 [२८] पीपूष०—पीपूषघास-टीका ( पं० रामेश्वर भट्ट )  
 [२९] प्रेम०—प्रेमसागर ( पं० छद्मजी साह कवि )  
 [३०] भा० हु०—भारत-हूर्वर्य ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [३१] भाषासार०—भाषासार-संग्रह ( बायरी-मचारिणी-सभा )  
 [३२] भारत०—भारत भारती ( बाबू मैथिली शरण गुप्त )  
 [३३] मुद्रा०—मुद्राराक्षस ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [३४] रघु०—रघुवंश ( पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी )  
 [३५] रत्न०—रत्नवली ( बाबू बाबूमुकुंद गुप्त )  
 [३६] रहीम —रहिमन-कृतक ( रहीम कवि )  
 [३७] राज०—राजपीठि ( पं० छद्मजीसाह कवि )  
 [३८] राम०—रामचरित-भाष्य ( यो० मुकुंददास )  
 [३९] रू —रुही ( बाबा भगवानदीप )  
 [४०] विद्या०—विद्यार्थी ( पं० रामजीसाह शर्मा )  
 [४१] विद्याङ्कुर—विद्याङ्कुर ( राजा शिवप्रसाद )  
 [४२] विचित्र०—विचित्र-विचार ( पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी )  
 [४३] विमर्श०—विमर्श विचार ( पं० गोविंदबारायण मिश्र )  
 [४४] वी०—वीणा ( कश्मिरप्रसाद दीक्षित )  
 [४५] ब्रज०—ब्रजविद्या ( ब्रजवासी दास कवि )  
 [४६] शकु०—शकुंतला ( राजा कश्मिरसिंह )  
 [४७] शिवा०—शिवा ( पं० सकलबारायण पांडेय )  
 [४८] शिव०—शिवर्षा का चिह्न ( बाबू बाबूमुकुंद गुप्त )  
 [४९] श्यामा०—श्याम स्वप्न ( अङ्कुर जगमोहनसिंह )  
 [५०] सत०—सतसई ( बिहारीसाह कवि )  
 [५१] सत्य०—सत्य हरिश्चंद्र ( भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र )  
 [५२] सद्—सद्गुणी पाण्ड ( जंतराम )  
 [५३] सर—सरस्वती ( पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी )  
 [५४] सरो०—सरोजिणी ( बाबू रामकृष्ण वर्मा )

- [६१] साक्षी०—साक्षी ( कर्षोर साहब )  
 [६२] साके०—साकेत ( मैथिलीशरण गुप्त )  
 [६३] मुंबरी०—मुंबरी-विष्णु ( भारतेन्दु कान् हरिश्चन्द्र )  
 [६४] सृष्टि०—सृष्टि-सुखावली ( पं० रामचरित उपाध्याय )  
 [६५] सूर०—सूर-सागर ( सूरदास कवि )  
 [६६] स्वा०—स्वाधीनता ( पं० महाशार प्रसाद द्विवेदी )  
 [६७] स्वर्ग०—स्वर्गगुप्त ( कान् प्रयशकरप्रसाद )  
 [६८] हि०—हितकारिणी ( रा० सा० पं० रघुबरप्रसाद द्विवेदी )  
 [६९] हि० को०—हिंदी कोविद-रत्नमाळा ( रा० मा० कान् रघुनाथमुंशरदास )  
 [७०] हि० प्र०—हिंदी प्रपञ्चाळा ( प० नाथबहाब धर्म )

भाषाओं के नामों के संकेत ।

अ०—अरबी  
 प्रा०—प्राकृत  
 सं०—संस्कृत

सं०—संस्कृत  
 हि०—हिंदी

अन्य संकेत

घं०—घंटा  
 कहा०—कहावत  
 सू०—सूत्र

प्रपा०—प्रेतपार्श्वक  
 टी०—टीका  
 उदा०—उदाहरण

हिंदी व्याकरण की धर्मनाम्य पुस्तकें ।

( काल-क्रम के अनुसार )

- [ १ ] हिंदी-व्याकरण—पादरी धारम साहिव ।  
 [ २ ] भाषा-तरुणकोषिणी—पं० रामचरित ।  
 [ ३ ] भाषा-वर्णोदय—पं० श्रीवाह ।

- [ ४ ] मनीष-चंद्रोदय - पाठ्य मनीषचंद्र राय ।  
 [ ५ ] भाषा-तत्त्व-दीपिका—पं० हरि गोपाळ पाण्डे ।  
 [ ६ ] हिंदी-व्याकरण—राजा शिवप्रसाद ।  
 [ ७ ] भाषा-भास्कर—पादरी पृथरिघटक साहिव ।  
 [ ८ ] भाषा प्रभाकर—झकुर रामचरवसिंह ।  
 [ ९ ] हिंदी-व्याकरण—पं० केशवराम अह ।  
 [ १० ] वाक्योच्च-व्याकरण—पं० भाषवस्यद हुरुक ।  
 [ ११ ] भाषा-तत्त्व प्रकाश—पं० निरदेरवरदत्त शर्मा ।  
 [ १२ ] प्रवैलिका हिंदी व्याकरण—पं० रामद्विज मिश्र ।

अंगरेजी में लिखी हुई हिंदी-व्याकरण की पुस्तकें ।

- [ १ ] कैलाश कृत—हिंदी-व्याकरण ।  
 [ २ ] पृथरिघटक-कृत—हिंदी व्याकरण ।  
 [ ३ ] हार्नबी-कृत—पूर्वी हिंदी का व्याकरण ।  
 [ ४ ] डॉ० मिबर्सन-कृत—बिहारी भाषाओं का व्याकरण ।  
 [ ५ ] विष्णु-कृत—हिंदी मैनुएल ।  
 [ ६ ] एडविन प्रीचर-कृत—रामायणीय व्याकरण ।  
 [ ७ ] " " "—हिंदी-व्याकरण ।  
 [ ८ ] रेपरेड शोकरा—हिंदी व्याकरण ।

